उत्तरी भारत का इतिहास

HISTORY OF NORTHERN INDIA

[650—1200 A. D.]

प्रो. हेतसिंह बघेला

एम. ए. (इतिहास, हिन्दी)

एम. एड., बी. टी.

प्राचार्य

श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, अलवर

भूतपूर्व अपर निदेशक

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान सरकार

रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज

History

1 डॉ. श्रीकृष्ण ओझा — भारतीय पुरातत्व
2 हेतसिंह बघेल — उत्तरी भारत का इतिहास
3 डॉ. जे. आर. कामले — अमेरिका का इतिहास
4 एल.पी. वैश्य, टी.एन. गुप्ता — भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास
5 पी. के. मजूमदार — भारत के प्राचीन अभिलेख
6 डॉ. सुभाष काश्यप — भारत का संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष
7 प्रतापसिंह — मध्यकालीन भारत (1200–1526)
8 प्रतापसिंह — मुगलकालीन भारत (1526–1656)
9 डॉ. श्रीकृष्ण ओझा — मुगलकालीन भारत (1656–1761)
10 डॉ. मथुरालाल शर्मा — अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (1919–45)
11 डॉ. एम. एल. शर्मा — यूरोप का इतिहास (1870–1917)
12 डॉ. एम. एल. शर्मा — यूरोप का इतिहास (1815–1945)
13 डॉ. एम. एल. शर्मा — आधुनिक विश्व (1917–45)
14 डॉ. वी. एस. भार्गव — प्राचीन भारतीय इतिहास
15 डॉ. वी. एस. भार्गव — मध्यकालीन भारतीय इतिहास
16 डॉ. वी. एस. भार्गव — आधुनिक भारतीय इतिहास
17 प्रो. वी. एम. दिवाकर — आधुनिक भारत (कम्पनी राज के कारनामे)
18 डॉ. वी. एस. भार्गव — राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण
19 डॉ. श्रीकृष्ण ओझा — भारतीय चिन्तन का इतिहास
20 डॉ. एस. सी. मिश्रा — मराठों का इतिहास
21 भार्गव, जैन, गुप्ता — विश्व का इतिहास
22 जी. पी. सिंहल — प्राचीन भारत (600 B.C. to 78 A.D.)
23 प्रो. हरफूलसिंह आर्य — भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
24 डॉ. श्रीकृष्ण ओझा — प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास
25 डॉ. ए. अवस्थी एवं डॉ. आर. के. अवस्थी — आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तन
26 डॉ. एम. एल. शर्मा — अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (1945–77)
27 डॉ. श्रीकृष्ण ओझा — प्राचीन भारत (78 A.D.–650 A.D.)
28 हरिशचन्द्र शर्मा — प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ

Published by Research Publications in Social Sciences, New Delhi & Jaipur
Printed at Shri Laxmi Printers, Jaipur

प्राक्कथन

हर्षोत्तर उत्तरी भारत के मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन तथा लेखन की ओर अभी बहुत कम विद्वानों का ध्यान गया है। भारतीय इतिहास का यह काल यद्यपि तत्कालीन अनेक राजपूत राजवंशों की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित परस्पर संघर्ष तथा उत्तरी भारत का विभिन्न राजनीतिक इकाइयों में विभाजन का दृश्य उपस्थित करता है किन्तु गुर्जर-प्रतिहार तथा चौहान जैसे राजवंशों ने अपनी शक्ति एवं शौर्य से उत्तरी भारत के अधिकांश भू-भाग पर अपना साम्राज्य स्थापित कर विदेशी आक्रांताओं से देश की रक्षा का सफल दायित्व निभाया था। वस्तुत: गुर्जर-प्रतिहार तथा चौहानों का साम्राज्य तथा प्रभाव–क्षेत्र हर्ष की अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण था, अत: वे भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट कहे जा सकते हैं। उत्तरी भारत के तत्कालीन हिन्दू शासकों ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की अभिवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान किया। भारतीय इतिहास के इस समृद्ध एवं गौरवपूर्ण युग का उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निष्पक्ष अध्ययन किया जाना सर्वथा वांछनीय है। इस युग से सम्बन्धित जो शोध–कार्य हुए हैं उन्हें समेकित कर तथा तत्कालीन शिलालेखों, अभिलेखों, साहित्यिक ग्रन्थों, अवशेषों आदि का सूक्ष्म अध्ययन कर सरल भाषा तथा बोधगम्य शैली में इस युग का प्रामाणिक इतिहास लिखे जाने की नितान्त आवश्यकता है। उत्तरी भारत के इतिहास सम्बन्धी कतिपय पुस्तकें जो प्रकाश में आई हैं वे इतिहास के अध्ययन व अध्यापन करने वाले विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करती। विश्वविद्यालयों में "उत्तरी भारत का इतिहास" स्नातकोत्तर कक्षा के इतिहास–पाठ्यक्रमों का अंग बन चुका है तथा अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम से पठन-पाठन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई है। इस दृष्टि से हिन्दी में इस युग के इतिहास की उपयुक्त पुस्तक के न होने का अभाव रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक इस अभाव की पूर्ति हेतु किया गया प्रयास है। लेखक ने सम्बद्ध ग्रन्थों तथा उपलब्ध स्रोत-सन्दर्भों का समुचित अध्ययन कर इस पुस्तक के लेखन में इसे विद्यार्थियों, प्राध्यापकों एवं इतिहास के सामान्य पाठकों के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाने का आद्योपान्त ध्यान रखा है। उन सभी विद्वानों का लेखक आभारी है जिनके ग्रन्थों का उपयोग उसने किया है। आशा है यह पुस्तक वांछित उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी। पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने सम्बन्धी पाठकों के सुझावों का लेखक सदैव स्वागत करेगा।

हेतसिंह बघेला

अनुक्रमणिका

1 राजपूतों की उत्पत्ति

(The Origin of Rajputs)

राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। एक मतानुसार राजपूत विदेशी हैं, दूसरा मत उन्हें देशी मानता है तथा तीसरा मत उनकी देशी-विदेशी मिश्रित उत्पत्ति की मान्यता रखता है। इन मतों की विवेचना करने से पूर्व 'राजपूत' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार कर लेना ठीक होगा। डॉ० वी० ए० स्मिथ की यह मान्यता कि राजपूतों की आठवीं या नवीं शताब्दी में सहसा उत्पत्ति हुई, अनेक इतिहासकारों के शोध-निष्कर्षों के आधार पर निर्मूल सिद्ध होती है। श्री जयनारायण आसोपा[1] ने 'राजपूत' शब्द की व्युत्पत्ति की स्रोत-संदर्भों के आधार पर विवेचन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि वैदिककालीन 'राजपुत्र', 'राजन्य' या 'क्षत्रिय' वर्ग ही कालान्तर में राजपूत जाति में परिणित हो गया।

'राजपूत' शब्द वैदिक 'राजपुत्र' का अपभ्रंश है। ऋगवेद में "कस्य धत धवस्ता भवथः कस्य बानरा, राजपुत्रेव सवनाय गच्छथः"; यजुर्वेद में "पशवी राजपुत्रो गोपायति राजन्यो वै प्रजानामधिपति रायुध्रुव आयुरेव गोपायत्पथो क्षत्रमेव गोपायते", तथा ऋगवेद में ही "ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्वाहू राजन्य कृतः" के रेखांकित शब्द यह स्पष्ट करते हैं कि 'राजपुत्र' तथा 'राजन्य' समानार्थक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। राजन्य 'क्षत्रिय' अर्थात योद्धाओं के लिए प्रयुक्त होता था जो राज्य के अधिपति थे। मनुस्मृति में भी क्षत्रिय का यही अर्थ लिया गया है। शतपथ ब्राह्मण में राजपुत्र, राजन्य तथा क्षत्रियों का पृथक रूप में उल्लेख यह प्रकट करता है कि ब्राह्मण काल (1000 ई० पू०) से इनमें भेद किया जाना आरम्भ हो गया।

महाभारत, तैत्रेय ब्राह्मण तथा कालिदास के 'रघुवंश' में इन शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप में हुआ है। डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा[2] ने 'राजपुत्र' शब्द का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र, कालिदास के मालविकाग्निमित्र, अश्वघोष के सौंदरानंद तथा बाण भट्ट के हर्षचरित एवं कादम्बरी ग्रन्थों में विभिन्न अर्थों में किया जाना बतलाया है। कौटिल्य ने राजा के पुत्रों के लिए तथा कालिदास व अश्वघोष ने सामन्तों के पुत्रों के अर्थ में राजपुत्र शब्द का प्रयोग किया है। ह्वेनसांग के यात्रा-वर्णन में राजाओं को राजपुत्र के रूप में उल्लेख न कर उन्हें क्षत्रिय माना है।

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (pp. 4–10)
2. डॉ० गौ० ही० ओझा : राजपूताना का इतिहास, भाग–1

कल्हन की राजतरंगिनी में राजपुत्र शब्द का प्रयोग भूस्वामियों के लिये किया है किन्तु उन्हें राजपूतों के 36 वंशों से सम्बन्धित माना है। इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि 12वीं शताब्दी के आरम्भ में राजपुत्र या राजपूत वंश एक पृथक जाति के रूप में अस्तित्व मे आ गया था। महाभारत काल तक राजपुत्र, राजन्य तथा क्षत्रिय समानार्थक थे किन्तु बाद में राजपुत्र तथा क्षत्रियों में विभेद किया जाने लगा। राजपुत्र एक शासक-वर्ग तथा क्षत्रिय एक जाति के रूप में माने गए।

सभी शासक राजन कहलाते थे और उनके सम्बन्धी राजपुत्र। प्राचीन काल मे कुछ शासक यूनानी, शक एवं हूण विदेशी थे तथा कुछ देश के ही क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा अन्य जातियों के थे। इन देशी तथा विदेशी शासकों में परस्पर वैवाहिक संबधों द्वारा विलयन की प्रक्रिया चल रही थी। शासकों तथा सामन्तों के वंशज राजपुत्र थे जो अपने राज्य विनिष्ट होने के पश्चात भी स्वयं को राजपूत (राजपुत्र) कहने लगे। पश्चिमोत्तर सीमा से प्रवेश करने वाले तुर्कों ने जब 13वीं तथा 14वीं शताब्दी में भारत मे राज्य स्थापित किया तो वे पराजित शासकों को राजपूत (राजपुत्र) नाम से पुकारने लगे। पराजित शासक अधिकतर अपनी सुरक्षा हेतु वर्तमान राजस्थान प्रदेश में ही केन्द्रित होने लगे जिसके कारण अंग्रेजों ने भी इस प्रदेश को राजपूतों के अधिवासन के आधार पर राजपूताना कहा।

अतः श्री आसोपा[1] ने यह निष्कर्ष निकाला है कि राजपूतों की उत्पत्ति चयन तथा अपचयन के सिद्धान्त (Theory of Selection and Rejection) के अनुसार हुई। "नये राजा (शासक) और उनके पुत्र एवं सामन्त इस वर्ग में सम्मिलित हो गये तथा जिन्होंने क्षत्रिय कार्य छोड़ कर अन्य व्यवसाय अपना लिये वे इस वर्ग से पृथक हो गए। यह राजन्य और क्षत्रिय की संकल्पना वैदिक काल की भाँति ही है।" पश्चिमोत्तर भारत में वसने वाले लोग विश्व के सभी लोगों को आर्य बना कर उनका धर्मपरिवर्तन कर भारतीकरण करना चाहते थे। भारतीय समाज में उन सभी लोगों को सम्मिलित किया जाता रहा जो स्वेच्छा से आर्य बनना चाहते थे। किन्तु मुस्लिम आक्रमणकारी ही एक ऐसा वर्ग भारत में आया जो अपने धर्म इस्लाम को छोड़कर आर्य बनना नहीं चाहते थे। अतः भारतीय समाज की उदारवादी भारतीय-करण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो गई तथा समाज कठोर होता गया। वह वर्ग जो राजपुत्र कहलाता था धीरे-धीरे अपना राज्य खोता गया किन्तु उसने अपनी गौरवपूर्ण उपाधि राजपुत्र बनाये रखी।

यद्यपि श्री बी० एन० रेऊ[2] ने उपरोक्त चयन तथा अपचयन के सिद्धान्त को काल्पनिक माना है किन्तु श्री आसोपा की मान्यता है कि राजपूत अर्थात् राजपुत्र जाति की उत्पत्ति इसी सिद्धान्त के आधार पर देशी तथा विदेशी शासकों के धर्म-परिवर्तन द्वारा

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs, pp. 7
2. *B. N. Reu* : Indian Culture, Vol. III

भारतीयकरण की प्रक्रिया से हुई । इतिहासकार श्री कानूनगो तथा श्री अशोक कुमार मजूमदार भी इस तथ्य को स्वीकार करते है कि राजपूत शब्द की व्युत्पत्ति राजपुत्र शब्द से हुई तथा मुस्लिम विजेताओं ने इन्ही पराजित राजपुत्रों को राजपूत की सज्ञा दी । राजपूत काल के अनेक साहित्य ग्रन्थो तथा शिलालेखों में भी राजपूतों को राजपुत्र कहा गया है । हेमचन्द्र के 'त्रिष्टिशलाका-पुरुषचरित', आबू पर्वत लेख, मेरुतुंग के 'प्रबन्ध चिंतामणि', कल्हन की 'राजतरंगिणी', चित्तौड़ लेख आदि स्रोतों से तत्कालीन राजपूतों को राजपुत्र बतलाया गया है । इस प्रकार राजपूत जाति की उत्पत्ति 12वीं शताब्दी के अन्त तथा 13वी शताब्दी के आरम्भ में हुई जिनमे अनेक वंश सम्मिलित थे ।

श्री आसोपा के शब्दों में 'राजपूत जाति की व्युत्पत्ति सम्बन्धी निष्कर्ष इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है । "इस प्रकार मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में जाति सम्बन्धी पर्याप्त अस्थिरता थी किन्तु 1200 ई० पश्चात के इस्लाम के प्रसार के साथ आक्रमण के भय से हिन्दू धर्म ने कछुए की तरह अपना सिर और पैर खोल में ढक लिये और अपनी प्रगतिशील विशेषता त्याग दी । अब धर्म-परिवर्तन का कोई अवसर नहीं रहा तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना तक राजपूत एक जाति बन चुकी थी जिसमें सम्मिलित होने का कोई अवसर उत्तर मध्यकालीन भारत के नये राजपुत्रों को नहीं मिल सका और उन्हें केवल अपने तत्कालीन बल तथा वैभव से ही संतुष्ठ रहना पड़ा किन्तु वे राजपूत जाति में सम्मिलित नही किये जा सके ।"[1]

राजपूतों की उत्पत्ति के विभिन्न मत और उनकी समीक्षा
(Different Theories of the Origin of Rajputs and their Critical Evaluation)

राजपूत शब्द की व्युत्पत्ति तथा राजपूत जाति के प्रादुर्भाव की उपरोक्त प्रक्रिया को समझने के पश्चात राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मतों का विवेचन किया जाना आवश्यक है । जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि राजपूत 'राजपुत्र' शब्द का अपभ्रंश है तथा इस जाति में देशी शासक तथा विदेशी शासकों का धर्मपरिवर्तन द्वारा भारतीयकरण होने के बाद उनके परस्पर विलियन से उत्पन्न राजपुत्र वर्ग सम्मिलित था । यह विलियन की प्रक्रिया 12वी शताब्दी तक सम्पन्न हो चुकी थी । अत: विलियन के पूर्व राजपूत अर्थात् राजपुत्रों के मूल वंशों के आधार पर उनकी उत्पत्ति के विभिन्न मत प्रचलित हो गये । इन मतों को निम्नांकित वर्गो में विभक्त किया जा सकता है[2] :—

(1) अग्निवंशीय मत,

(2) सूर्य और चन्द्रवंशीय मत,

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (p. 10)
2. डॉ० गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास (प्रथम भाग pp. 29–35)

(3) विदेशी वंश का मत,
(4) गुर्जर वंश का मत,
(5) ब्राह्मण वंशीय मत।

(1) **अग्निवंशीय मत** (Fire Origin)—अपने वंश की उत्पत्ति देवताओं से मानने की परम्परा प्राचीन रही है। दैवी उत्पत्ति से अपने वंश की श्रेष्ठता स्थापित करना मानवीय दुर्बलता तथा आकर्षण रहा है। मिश्र के शासक (कराही) स्वयं को 'रा' (सूर्य) का पुत्र कहते थे और यूनानी शासक अपनी एकता बनाये रखने के लिये अपनी उत्पत्ति एक ही देवता से मानते थे। कुशान शासक चीनी शासकों की भाँति 'देवपुत्र' की उपाधि धारण करते थे। भारत में भी कुछ लोग अपनी उत्पति सूर्य, चन्द्र या अग्नि देवता से मानते थे। अग्निवंशीय मत भी सूर्य तथा चन्द्रवंशीय मतों के समान एक मिथक (Myth) है।

श्री पार्जिटर ने सर्वप्रथम 'आग्नेय' जाति का उल्लेख महाकाव्यों तथा पुराणों में किया जाना बतलाया। मारकण्डेय पुराण, महाभारत के वन तथा अनुशासन पर्व और रामायण के अयोध्या काण्ड में आग्नेय जाति का उल्लेख है। पार्जिटर के अनुसार यह जाति कुरु क्षेत्र के उत्तरी भाग में रहती थी। श्री वी० एस० पाठक ने इन्हीं स्रोतों के आधार पर इस जाति का अधिवासन उत्तरी भारत में बतलाया है, जो आगे चल कर ब्राह्मणों में परिणित हो गई। श्री आसोपा[1] ने मारकण्डेय तथा विष्णुपुराण के आधार पर आग्नेय अर्थात् अग्नि से उत्पन्न जाति के पूर्वज 'अग्निधरा' (जिसके वंश में भरत नामक प्रतापी राजा हुआ) की 'मनु स्वयंभुव' से उत्पत्ति मानी है। मनु स्वयंभुव 'मनु वैवस्वत' से भिन्न है। मनु वैवस्वत सूर्यवंशियों का पूर्वज था तथा 'इला' चन्द्रवंशियों का पूर्वज था। ऋगवेद में वर्णित भरतवंशी आग्नेय थे जो बाद में ब्राह्मण बने और वे चन्द्रवंशी दुपयन्त के पुत्र भरत से सम्बन्धित नहीं थे।

श्री आसोपा की मान्यता है कि अग्निवंश की मान्यता मध्ययुग की कपोल-कल्पना मात्र नहीं है बल्कि यह महाभारत तथा पुराणों के युग तक प्राचीन है। 'अग्निजया' शब्द अग्नि से उत्पन्न वंश का द्योतक है। श्री कृष्ण स्वामी आयंगर ने दूसरी शताब्दी के तमिल भाषा के ग्रंथ "पुर्नानूरू" में एक सामंत की उत्पत्ति अग्नि-कुण्ड से बतलाई गई है। श्री डी० सी० सरकार ने महाराष्ट्र के नानदेद जिले से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख में (जो 11वीं शताब्दी का है) अग्निवंश का उल्लेख पाया है। पद्मगुप्त के ग्रंथ "नवशसांक-चरित" (974-1000 ई०) में परमार शासक को आबू पर्वत पर वशिष्ठ के अग्निकुण्ड से उत्पन्न माना है तथा परमारों के परवर्ती सभी लेखों में अग्निवंशी होने का उल्लेख है। श्री नीलकण्ठ शास्त्री को अग्निवंश का प्रमाण दक्षिण भारत के एक शासक कुलोतुंग तृतीय (1178-1216 ई०) के शिलालेख से मिला है। चंदबरदायी द्वारा 12वीं शताब्दी के अंत में रचित ग्रंथ

1. *J.N. Asopa* : Origin of Rajputs (p. 22)

"पृथ्वीराज रासो" में चालुक्य (सोलंकी), प्रतिहार, चहमान तथा परमार राजपूतों की उत्पत्ति आबू पर्वत के अग्निकुण्ड से बतलाई है किन्तु इसी ग्रंथ में एक अन्य स्थल पर इन्हीं राजपूतों को "रवि-शशि-जाधव वंशी" कहा है।

अग्निवंशीय उत्पत्ति के उपरोक्त स्रोतों की समीक्षा द्वारा इस मत से संबंधित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पद्मगुप्त ने परमारों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से बतलाते हुए इन्हें 'ब्रह्म-क्षत्र' भी माना है। श्री वी. एन. रेऊ ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि वशिष्ठ के वंशज परमार क्षत्रियों को (जिनके पूर्वज पहले ब्राह्मण थे किन्तु बौद्ध बन गये थे) पवित्र अग्नि कुण्ड से पवित्र किया। श्री ओझा ने 'ब्रह्मक्षत्र' की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो शासक ब्रह्मत्व और क्षत्रियत्व दोनों गुण धारण करते थे उनके लिये 'ब्रह्मक्षत्र' कहा जाता था। डॉ० दशरथ शर्मा का मत है कि परमार पहले ब्राह्मण थे किन्तु धर्म की रक्षार्थ क्षत्रिय बने।[1] इसके पूर्व भी शुंग, शातवाहन, कदम्ब तथा पल्लव शासक ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय कहलाये। श्री ओझा ने अग्निवंशी मत की एक अन्य व्याख्या भी की है। परमारवंश के प्रथम शासक 'धूम्रराज' का एक उत्कीर्ण लेख में उल्लेख है। अतः "धूम्र" अर्थात् अग्नि से निकले हुए धुएँ से धूम्रराज की अग्निवंशी उत्पत्ति मानी गई। किन्तु अन्य अग्निवंशी राजपूतों ने इस मत को मान्यता नहीं दी है। श्री आसोपा का मत है कि परमार ब्राह्मण से क्षत्रिय बने। मंडोर के प्रतिहार ब्राह्मण हरिश्चन्द्र के वंशज तथा कन्नौज के प्रतिहार लक्ष्मण के वंशज कहे जाते हैं। अतः प्रतिहार भी ब्राह्मण से क्षत्रिय बने थे। चहमानों का पूर्वज सामन्त बिजोलिया लेख के अनुसार विप्र था। चालुक्य भी अभिलेखों के आधार पर ब्राह्मणों के वंशज थे। इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' में उल्लिखित सभी चार राजपूतवंश ब्राह्मण से क्षत्रिय बने थे। अग्निवंशी कहने का तात्पर्य था कि अग्निकुण्ड से उनकी शुद्धि की गई। ये ब्राह्मण अपनी प्राचीन आग्नेय उत्पत्ति को बनाये रखने के लिए अग्निवंशी राजपूत कहलाए।

डॉ० गोपीनाथ शर्मा[2] ने चन्दबरदाई के "पृथ्वीराज रासो" में वर्णित अग्निकुण्ड से उत्पन्न चार राजपूत वंशों के प्रकरण को मात्र कवि की कल्पना माना है। भाटों, नैणसी और सूर्यमल्ल ने इस मत का काफी प्रचार किया किन्तु 16वीं शताब्दी के अभिलेखों व साहित्यिक ग्रंथों से यह प्रमाणित होता है कि इन चार राजवंशों में से तीन वंश—प्रतिहार, चौहान व परमार सूर्यवंशी तथा चालुक्य (सोलंकी) चंद्रवंशी थे। डॉ० दशरथ शर्मा ने भी अग्निवंशी मत को भाटों की कल्पना की एक उपज मात्र बतलाया है। डॉ० ईश्वरी प्रसाद इसे तथ्यरहित बतलाते हुए लिखते हैं कि यह ब्राह्मणों का एक प्रतिष्ठित जाति की उत्पत्ति की महत्ता निर्धारित

1. "राजस्थान भारती" भाग 3 (पृष्ठ 7)
2. डा० गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग-1 (पृ० 29)

करने का प्रयास मात्र है।[1] श्री क्रुक महोदय इस मत के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अग्निवंशी कहने का तात्पर्य है कि विदेशी तथा देशी शासकों को अग्नि से पवित्र कर राजपूत जाति में सम्मिलित किया गया। श्री आसोपा का पूर्व उल्लिखित मत भी विचारणीय है कि ब्राह्मण जो क्षत्रिय बने थे अपनी प्राचीन आग्नेय उत्पत्ति को बनाए रखने के लिए अग्निवंशी राजपूत कहलाए।

(2) सूर्य तथा चंद्रवंशीय मत (Solar and Lunar Origin)—अग्निवंशी राजपूतों के समान ही अपनी दैवी उत्पत्ति मानते हुए राजपूत वंशों ने स्वयं को सूर्यवंशी अथवा चन्द्रवंशी होने की श्रेष्ठता प्रतिपादित की। डॉ० ओझा अग्निवंशी मत का खण्डन करते हुए राजपूतों को सूर्य और चंद्रवंशी मानते हैं। इसके प्रमाण स्वरूप शिलालेखो व ग्रंथो का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि नाथ लेख (971 ई०), आरपुर लेख (1285 ई.), आबू शिलालेख (1428 ई०) तथा शृंगीऋषि के लेख में गुहिलवंशी राजपूतों को रघुकुल (सूर्यवंशी) से उत्पन्न माना है। पृथ्वीराज विजय, हम्मीर महाकाव्य और सुजान चरित्र में चौहानों को क्षत्रिय माना है। वंशावली लेखकों ने राठौड़ों को सूर्यवंशी और यादवों, भाटियों एवं चन्द्रावती के चौहानों को चंद्रवंशी माना है। इन प्रमाणो के आधार पर डॉ. ओझा राजपूतो को प्राचीन क्षत्रियों के वंशज मानते हैं।[2]

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने इस मत को सभी राजपूतों की उत्पत्ति के लिये स्वीकार करना आपत्तिजनक माना है क्योंकि राजपूतों को सूर्यवंशी बतलाते हुए उनका वंशक्रम इक्ष्वाकु से जोड़ दिया गया है जो प्रथम सूर्यवंशी राजा था। बल्कि सूर्य और चंद्रवंशी समर्थक भाटों ने तो राजपूतों का संबंध इन्द्र, पद्मनाभ, विष्णु आदि से बताते हुए काल्पनिक वंशक्रम बना दिया है। इन मतो के समर्थक किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाये। अतः डॉ. गोपीनाथ शर्मा यह मानते हैं कि इस मत का एक ही उपयोग दिखायी देता है कि 11वीं शताब्दी से इन राजपूतो का क्षत्रियत्व स्वीकार कर लिया गया, क्योंकि इन्होंने क्षात्र धर्म के अनुसार विदेशी आक्रमणों का मुकाबला सफलतापूर्वक किया। आगे चलकर यह मत लोकप्रिय हो गया और तभी से इसको मान्यता प्रदान की जाने लगी।[3]

श्री जय नरायण असोपा[4] ने सूर्य तथा चंद्रवंशी मिथक (Myth) का विश्लेषण करते हुए यह मान्यता प्रकट की है कि सूर्यवंशी तथा चद्रवंशी मूलतः आर्यों के दो दल थे जो भारत आये। पहला दल मध्य एशिया की Jaxartes तथा दूसरा दल उसी प्रदेश की Ili नदियों से चलकर भारत में प्रवेश किया। महाभारत तथा

1. डा० ईश्वरी प्रसाद : मध्यकालीन भारत का इतिहास (पृ० 25)
2. डा० गौ. हीं. ओझा : राजपूताने का इतिहास (पृ० 41–78)
3. डा० गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग–1 (पृ० 31)
4. जय नारायण आसोपा : Origin of Rajputs (पृ० 16–19)

पुराणों में सर्वप्रथम राजपूतों की सूर्य तथा चंद्र से उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। पार्जिटर की यह मान्यता कि सूर्यवंशी क्षत्रिय द्रविड़ थे और चद्रवंशी क्षत्रिय प्रयाग में शासक थे, श्री सी० वी० वैद्य अस्वीकार करते हैं। वैंडीदाउ के आधार पर श्री वैद्य यह मानते हैं कि सुदूर उत्तरी देश से आर्यों की एक शाखा ने भारत में प्रवेश किया और वे सप्त सिंधु में बस गए। वैद्य ने भारत की जनगणना रिपोर्ट (1921) के आधार पर कहा है कि आर्यो का पहला दल उत्तरी भारत में आया जिनकी प्रतिनिधि भाषाएँ राजस्थानी, पंजाबी, पहाड़ी तथा पूर्वी हिन्दी हैं। आर्यो का दूसरा दल उत्तरी भारत में प्रवेश कर दक्षिण में जबलपुर, दक्षिण-पश्चिम में काठियावाड़ तथा उत्तर-पूर्व में नैपाल तक पहुँच गया। ये दो आर्यो के दल ही महाभारत काल से सूर्य व चंद्रवंशी क्षत्रिय कहलाने लगे। श्री वैद्य की मान्यता है कि मनु स्वयंभुव के वंशज 'भरत' ऋगवेद में वर्णित भरत जाति है जो महाकाव्य काल में सूर्यवंशी कहलाये। यह आर्यो का पहला दल था। दूसरे दल में ऋगवेद वर्णित यदु, तुर्वस, अनुस, द्रुह्यु तथा पुरु वर्ग के लोग थे जो चंद्रवंशी कहलाए।

श्री आसोपा श्री वैद्य की उपरोक्त मान्यता को भाषायी आधार पर स्वीकार नहीं करते तथा वे ऋगवेद के भरत तथा मनु स्वयंभुव के वंशज भरत को एक ही वर्ग का नहीं मानते। सूर्यवंशी इक्षवाकु राजा मनु वैवस्तव का पुत्र था, न कि मनु स्वयंभुव का। वैवस्तव का अर्थ सूर्य है जिसके वंशज इक्षवाकु कहलाये। वेदों में वर्णित 'इक्षवाकु' आर्यो के प्रथम दल के सूर्यवंशी थे तथा 'अइल' आर्यो के दूसरे दल के चन्द्रवंशी थे। श्री आसोपा ने 'इक्षवाकु' तथा 'अइल' के मूल अधिवासन स्थल की खोज करते हुए कहा है कि महाभारत व हरिवंश में वर्णित 'इक्षुमती' नदी कुरुक्षेत्र में थी। रामायण में भी इसका उल्लेख है। स्ट्रैबो ने भी व्यास और जमना नदियों के बीच एक नदी इसेमस (इक्षुमती) का उल्लेख किया है जिसे यूनानी मिनेन्डर ने पार किया था। इससे प्रतीत होता है कि आर्यों की इक्षुवाक शाखा इक्षुमती नदी के तटों पर बस गई थी। आर्य मध्य एशिया से भारत आये थे। मध्य एशिया में जैक्सटीज (Jaxartes) नदी से आने वाले इन आर्यो ने भारत में कुरुक्षेत्र प्रदेश की नदी का नाम भी जैक्सरटीज का भारतीय रूप इक्षुमती रख दिया तथा स्वयं इक्षवाकु कहलाये। इनका शासक इक्षवाकु मनु वैवस्तव (सूर्य) का पुत्र था। इसके कारण ही सूर्यवंशी मत का प्रचलन हुआ।

महाभारत, हरिवंश तथा विष्णु पुराण में पंजाब की नदी 'इरा' का उल्लेख है जो अब 'रावी' के नाम से पुकारी जाती है। रामायण के अयोध्या काण्ड में वर्णन है कि भरत ने कैकेय प्रदेश से आते हुए शतद्रु के तट पर 'अइल' राज्य को पार किया। इससे स्पष्ट होता है कि 'अइल' आर्यो की दूसरी शाखा का अधिकार क्षेत्र इरा (रावी) तथा शतद्रु (सतलज) नदियों के मध्य था। मध्य एशिया में, जहाँ से ये आर्य भारत आए, Jaxartes (इक्षवाकु) नदी के उत्तर में एक और नदी 'इली' थी। इली नदी से भारत आने वाले दूसरी शाखा के आर्य 'अइल' थे जो चन्द्रवंशी

कहलाये । रूस में उत्खनन द्वारा भी आर्यों के अवशेष इस 'इली' नदी के तट पर मिले है । मध्य एशिया की यू-ची जाति इली नदी के तट पर बस गई थी । चीनी स्रोतों से विदित होता है कि यह यू-ची 'चन्द्रमा के लोग' इली नदी के तट पर बसे थे । इससे प्रतीत होता है कि जब ये लोग भारत आये तो स्वयं को चन्द्रवंशी कहने लगे । श्री आसोपा की मान्यता है कि इक्ष्वाक मनु वैवस्तव से सम्बन्धित थे । ये आर्य थे जो जैक्सरटीज (Jaxartes) से होते हुए इक्षुमती होते हुए भारत में पूर्व की ओर चले गये । अइल भी जो सोम ऋषि तथा बुद्ध के वंशज थे, आर्य थे । ये इली व इरा नदी के तट पर रहते थे जिन्होंने यह नाम अन्य स्थानों तथा नदियों को भी दिया जहाँ वे गये । भारत की इरावती नदी तथा लंका का प्राचीन नाम इला भी इस तथ्य को प्रकट करते है । अत: श्री आसोपा की मान्यता है कि सूर्यवंशी व चन्द्रवंशी क्षत्रिय आर्यों की वे दो शाखाएँ थी जो मध्य एशिया से भारत आई । एक शाखा वहाँ की जैक्सरटीज नदी तट से तथा दूसरी शाखा वहाँ की इली नदी तट से भारत आई ।

(3) विदेशी वंश का मत (Foreign Origin)—उपरोक्त दोनों मतों के विपरीत इतिहासकार कर्नल टॉड ने राजपूतों को शक और सिथियन बताया है । इसके प्रमाण में वे राजपूतों में प्रचलित ऐसे रीति-रिवाजों का उल्लेख किया है जो शक जाति के रीति-रिवाजों से साम्य रखते हैं । सूर्य की पूजा, सती-प्रथा, अश्वमेध यज्ञ, मद्यपान, शस्त्रों और घोडों की पूजा तथा तातारी और शकों की पुरानी कथाओं का पुराणो की कथाओं से मिलना ऐसे तथ्य है जो राजपूतो को विदेशी उत्पत्ति को प्रकट करता है । डॉ० स्मिथ ने भी शक, यूची, गुर्जर व हूण विदेशी जातियों का भारत में धर्म परिवर्तन कर हिन्दू बन जाना स्वीकार किया है और इन विदेशी जातियों के राज्य स्थापित हो जाने पर उनसे राजपूतों की उत्पत्ति मानी है । राजपूतों ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु स्वयं को चन्द्र या सूर्यवंशी कहना आरम्भ कर दिया । कर्नल टॉड की पुस्तक का सम्पादन करने वाले श्री विलियम क्रुक[1] भी इस मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि वैदिक कालीन क्षत्रियों एवं मध्यकालीन राजपूतों की अवधि का अन्तराल इतना अधिक है कि दोनों के सम्बन्ध को मूल वंश-क्रम से सम्बन्धित करना संभव नहीं है । शक, सिथियन, हूण आदि विदेशी जातियाँ हिन्दू समाज में स्थान पा चुके थे और देश रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे । अत: उन्हें महाभारत तथा रामायण काल के क्षत्रियों से सम्बन्धित कर दिया गया और सूर्य तथा चन्द्रवंशी माना गया ।

डॉ० गौ० ही० ओझा ने विदेशी उत्पत्ति को स्वीकार नहीं किया है । जिन रीति-रिवाजों के आधार पर राजपूतों और शकों का साम्य किया गया है वे रीति-रिवाज वैदिक तथा पौराणिक काल में भी भारत में विद्यमान थे । डॉ० ओझा ने अभिलेखों के आधार पर भी यह तथ्य प्रकट किया है कि मौर्य और नन्द वंश के

1. टाड : राजस्थान, भाग 1 (पृ० 73-97)

पतन के बाद भी सातवीं शताब्दी तक क्षत्रियों का अस्तित्व था। दूसरी शताब्दी के राजा खारवेल के उदयगिरि—लेख में 'कुसंब जाति के क्षत्रियों' का उल्लेख है, इसी अवधि के नासिक पाण्डव गुहा—लेख में 'उत्तमभाद्र क्षत्रियों' का वर्णन है, गिरिनार पर्वत लेख में 'यौधेयों' को क्षत्रीय कहा गया है तथा तीसरी सदी के नागार्जुन कोंड लेख में इक्ष्वाकुवशीय राजाओं का उल्लेख है।

यद्यपि डॉ० ओझा के विदेशी मत के विपक्ष में ये तर्क महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु जो विदेशी भारत में आकर बस गए उनका भारतीय समाज में विलीनीकरण कैसे हुआ, यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। डॉ० गोपीनाथ शर्मा का मत है—"इस प्रश्न को हल करने में हमें यही युक्ति सहायक होगी कि इन विदेशियों के यहाँ आने पर पुरानी सामाजिक व्यवस्था में अवश्य हेर-फेर हुआ।"

डॉ० स्मिथ[1] श्री क्रुक से सहमत होते हुए यह मानते हैं कि पृथ्वीराज रासो में जिन चार राजपूत वंशों की अग्निकुण्ड से उत्पत्ति बतलाई गई है, वे सभी विदेशी थे जिनको अग्नि द्वारा पवित्र कर राजपूत बनाया गया। दक्षिण के राजपूतों की उत्पत्ति वे गौड, भार, कोल आदि जनजातियों से मानते हैं। श्री डी. आर. भण्डारकर प्रतिहारों की गुर्जरों से उत्पत्ति मानते हुए अन्य अग्निवंशी राजपूतों को भी विदेशी उत्पत्ति का कहते हैं। नीलकण्ठ शास्त्री विदेशियों के अग्नि द्वारा पवित्रीकरण के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं क्योंकि पृथ्वीराज रासो से पूर्व भी इसका प्रमाण तमिल काव्य "पुरनानूरु" में मिलता है। श्री बागची गुर्जरों को मध्य एशिया की जाति 'वुसुन' अथवा 'गुसुर' मानते हैं क्योंकि तीसरी शताब्दी के अबोटाबाद लेख में 'गशुर' जाति का उल्लेख है। जैक्सन ने सर्वप्रथम गुर्जरों से अग्निवंशी राजपूतों की उत्पत्ति बतलाई थी। पजाब तथा खानदेश के गुर्जरों के उपनाम पँवार तथा चौहान पाये जाते हैं। यदि प्रतिहार व सोलंकी स्वयं गुर्जर न भी हों तो वे उस विदेशी दल में भारत आए जिसका नेतृत्व गुर्जर कर रहे थे। श्री कैंपबैल ने इस मत से सहमत होते हुए एक तत्कालीन अरब यात्री के लेख के आधार पर यह तथ्य प्रकट किया है कि 'खजर' जाति जॉर्जियन थी जो दक्षिण अर्नभिनियनों के साथ पाँचवीं शताब्दी के अन्त में अपने राजा बखतंग के नेतृत्व में पूर्व की ओर अभियान को गई। यह खजर जाति ही गुर्जर थी। कनिंघम गुर्जरों को यूची तथा होनरले उन्हें तुर्क मानते हैं। श्री भगवानलाल इन्द्रजी का मत है कि सम्भवतः कनिस्क के समय में गुर्जरों ने भारत में प्रवेश किया।

श्री सी० वी० वैद्य[2] विदेशी उत्पत्ति को अस्वीकार करते हुए राजपूतों की वैदिक आर्यों से उत्पत्ति मानते हैं। इसके लिए वे पहला तर्क यह देते हैं कि केवल वैदिक आर्यों की सन्तान ही अपने धर्म की रक्षार्थ विदेशी आक्रान्ताओं से युद्ध कर

1. *Dr. Vincent Smith* : Early History of India (p. 228–29)
2. *C. V. Vaidya* : History of Medieval India, Vol. II (p. 7)

सकते थे। दूसरा तर्क यह है कि राजपूतों की सूर्य एवं चंद्रवंशी क्षत्रीय होने की परम्परा उन्हें उन दो आर्यो के दलों का वंशज सिद्ध करता है जिन्होने मध्य एशिया से भारत में प्रवेश किया। तीसरा तर्क 1901 में हुई भारत की जनगणना से राजपूतों का आर्य वंशज होना प्रकट होता है।

डॉ० गौ० ही० ओझा[1] ने राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी उपरोक्त देशी व विदेशी मतों में सामञ्जस्य स्थापित करते हुए कहा कि राजपूत वैदिक क्षत्रियों के वंशज थे तथा जिन विदेशी जातियों—सिथियन, कुशान, हूण आदि का भारतीयकरण हुआ, वे भी मध्य एशिया की आर्य जाति के ही वंशज थे। यह मत टॉड तथा श्री वैद्य के विरोधी मतों में सामञ्जस्य कर देता है। डॉ० दशरथ शर्मा भी[2] इसी मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि भारत की समस्त युद्ध-प्रिय जातियाँ स्वयं को क्षत्रिय होने का अधिकार रखती थीं। जब समाज में जन्मना जाति ही केवल किसी जाति का होना पर्याप्त नही होता तब गुण तथा कर्म के आधार पर वर्ण की संकल्पना प्रबल हो जाती है। यही तत्कालीन मान्यता देशी तथा विदेशी युद्ध-प्रिय लोगों का राजपूत जाति के रूप में विलियन होने का आधार था। श्री आसोपा ने भी इसी मत का समर्थन किया है जो तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

(4) **गुर्जर वंश का मत (Gurjar Origin)**—विदेशी वंश के मत के संदर्भ में यह व्यक्त किया जा चुका है कि कुछ विद्वान राजपूतों की उत्पत्ति विदेशी जाति गुर्जर से होना मानते है। डॉ० भण्डारकर की मान्यता है कि गुर्जर जाति जो भारत के पश्चिमोत्तर भाग में फैली हुई थी उसका श्वेत हूणों से निकट का सम्बन्ध था और ये दोनों जातियाँ विदेशी थीं। इसका प्रमाण पुराणों में गुर्जर और हूणों का विदेशी के रूप में उल्लेख है। राजोर शिलालेख में प्रतिहारों को गूजर कहा गया है। गुर्जर कनिष्क के समय भारत आए और गुप्तकाल में सामन्त के रूप में रहे। इसी आधार पर अन्य अग्नि-वंशीय राजपूत वंश परमार, चालुक्य तथा चौहान को भी गुर्जर माना है। जैक्सन महोदय ने भी गुर्जरों को 'हूणों' के साथ भारत अभियान पर आये 'खजर' जाति माना है।

श्री आसोपा का मत है कि गुर्जरों ने छठी शताब्दी में राजस्थान तथा गुजरात में राज्य स्थापित कर लिये थे। ह्वेनसांग ने इस प्रदेश को 'कु-चे-लो' अर्थात गुजरात कहा है। पंचतंत्र (पाँचवीं शताब्दी) तथा बाणभट्ट के ग्रन्थ 'हर्षचरित' (सातवीं शताब्दी) में गुर्जर देश का उल्लेख है। अरब यात्री गुर्जरों को 'जुर्ज' कहते थे। नागौर जिले में दधिमाता मन्दिर के शिलालेख में गुर्जर प्रदेश का उल्लेख है जो वहाँ

1. *G. H. Ojha* : राजपूताना का इतिहास, Vol. I (p. 43)
2. *Dr. Dasarath Sharma* : Rajasthan Through the Ages, Vol. I (p. 105)

स्थित 'जोजरी' नदी के कारण इस नाम से पुकारा गया। इन साक्ष्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि गुर्जर राजस्थान तथा गुजरात में निवास करते थे।

डॉ० गोपीनाथ शर्मा तथा डॉ० ओझा 'गुर्जर' शब्द का अर्थ प्रदेश विशेष मानते हैं। आहोल, नवसारी आदि शिलालेखों में जहाँ 'गुर्जरेश्वर' या 'गुर्जर' शब्दों का प्रयोग गुर्जर देश के शासक तथा गुर्जर जाति दोनों हो सकता है। उद्योतन सूरि के ग्रन्थ 'कुवलयमाला', 'स्कन्ध पुराण' तथा 'वंशस्तिलक चम्पू' में गुर्जर शब्द का प्रयोग प्राय: देश से ही है।[1]

डॉ० सत्यप्रकाश[2] राजपूतो की उत्पत्ति विदेशी जाति गुर्जरों से मानना स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि गुर्जर विदेशी नहीं थे। ह्वेनसाँग चीनी यात्री गुर्जर शासक को क्षत्रिय बतलाता है और हूणों का कोई उल्लेख नहीं करता। अतः गुर्जरों का हूणों से सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। गुर्जरों का समीकरण 'खुर्जरों' से केवल अन्तिम जर शब्द के आधार पर करना तर्कसंगत नहीं है। इसके अतिरिक्त यवन, शक तथा हूणों जैसी विदेशी जातियों के साथ ब्राह्मण शब्द का न मिलना किन्तु गुर्जर-ब्राह्मण शब्द मिलना इस बात का प्रमाण है कि गुर्जर विदेशी नहीं थे। तमिल महाकाव्य 'मणिमेखले' में एक मन्दिर को गुर्जर वस्तुकला का उल्लेख (छठी शताब्दी) भी गुर्जरों को भारतीय सिद्ध करता है। डॉ० बी० एन० पुरी ने भी यह निष्कर्ष निकाला है कि गुर्जर भारतीय अन्य कबीलों की तरह राजपूताने में कहीं रहते थे किन्तु बाद में अपनी शक्ति के आधार पर गुर्जर साम्राज्य की स्थापना की। गुर्जर-प्रतिहारों के शिलालेखों में उन्हें भारतीय आर्यो की सन्तान माना है। भोज के ग्वालियर शिलालेख में प्रतिहारों को लक्ष्मण का वंशज बताया गया है। जोधपुर लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। राजशेखर अपने आश्रयदाता गुर्जर-प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल को 'रघुकुल तिलक' कहता है।

उपर्युक्त विवरण की समीक्षा से यह तथ्य प्रकट होता है कि गुर्जर भारतीय थे और वे भारतीय क्षत्रिय वंश से सम्बन्धित थे।

(5) **ब्राह्मणवंशीय मत** (Brahman Origin)—डॉ० भण्डारकर जहाँ कुछ राजपूत वंशों की उत्पत्ति विदेशी गुर्जरों से मानते हैं, वहाँ वे यह भी स्वीकार करते हैं कि कुछ राजपूत वंश भारतीय धार्मिक वर्ग से सम्बन्धित थे। बिजोलिया शिलालेख में वासुदेव (चहमान) के उत्तराधिकारी सामन्त को वत्स गोत्रीय ब्राह्मण कहा गया है। राजशेखर ब्राह्मण का विवाह चौहान राजकुमारी अवन्ति सुन्दरी से होना भी चौहानों का ब्राह्मणवंशीय होना प्रकट करता है। 'कायमखां रासो' में भी चौहानों की उत्पत्ति वत्स से बतलाई गई है जो जमदग्नि गोत्र में था। इस तथ्य का साक्ष्य

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास (पृ 61-62)
2. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 38-40)

सुण्डा तथा आबू अभिलेख हैं। डॉ० भण्डारकर का मत है कि गुहिल राजपूतों की उत्पत्ति नागर ब्राह्मणों से थी।[1]

डॉ० ओझा तथा श्री वैद्य इस ब्राह्मणवंशीय मत को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि 'द्विज', 'ब्रह्मक्षत्री', 'विप्र' आदि शब्दों का प्रयोग राजपूतों को क्षत्रिय जाति की अभिव्यक्ति के लिए हुआ न कि ब्राह्मण जाति के लिए। डॉ० गोपीनाथ शर्मा कुम्भलगढ़ प्रशस्ति के आधार पर गुहिलवंशीय राजपूतों को ब्राह्मणवंशीय माना है। चाटसू अभिलेख में गुहिल भर्तृभट्ट को 'ब्रह्मक्षत्री' इसलिए कहा गया कि उसे ब्राह्मण संज्ञा से क्षत्रीत्व प्राप्त हुआ। पहले भी कण्व तथा शुंग ब्राह्मणवंशीय क्षत्रिय शासक हुए हैं।

(6) वैदिक आर्य वंश का मत (Aryan Origin)—सूर्य तथा चंद्रवंशीय मत के संदर्भ में यह विवेचन किया जा चुका है कि राजपूत वैदिक आर्यो की दो शाखाओं ने भारत में कुछ कालान्तर से प्रवेश किया। डॉ० आसोपा का मत है कि आर्यों की ये दो शाखायें मध्य एशिया से भारत आईं। मध्य एशिया में इनका निवास-स्थल दो नदियों जैक्सटॉज (इक्षुवाक) तथा इली के तट पर स्थित थे। इक्षुवाक से आने वाले आर्य भारत में सूर्यवंशी क्षत्रिय तथा इली से आने वाले आर्य चंद्रवंशी क्षत्रिय कहलाये। रामायण, महाभारत, हरिवंश तथा विष्णु पुराण के आधार पर यह तथ्य प्रकट होता है। चीनी स्रोतों तथा रूस में उत्खनन द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है।

इस मत के आधार पर पश्चिमोत्तर प्रदेश से भारत में प्रवेश करने वाले आर्यों के समान अन्य विदेशी भी मूलतः आर्यवंशी प्रतीत होते हैं। भारत में ये विदेशी जातियाँ भी राज्य स्थापित कर राजपूत जाति के रूप में संगठित हो वैदिक आर्यों के क्षत्रिय वंश से अपना सम्बन्ध सूर्य या चन्द्रवंशी बनकर स्थापित करने लगे।

निष्कर्ष—राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी उपरोक्त मतों के विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजपूत जाति में देशी क्षत्रिय तथा विदेशी शक, पल्हव, हूण आदि भी भारत में राज्य स्थापित कर 'राजपुत्र' बन सम्मिलित हो गए। डॉ० गोपीनाथ शर्मा के शब्दों में[2]—"जिस तरह शक, पल्हव, हूण आदि विदेशी यहाँ आए और जिस तरह उनका विलीनीकरण भारतीय समाज में हुआ, इसका साक्षी इतिहास है। ये लोग लाखों की संख्या में थे। पराजित होने पर इनका यहाँ बस जाना प्रामाणिक है। ऐसी अवस्था में उनका किसी न किसी जाति से मिलना स्वाभाविक था। उस समय की युद्धोपजीवी जाति ही ऐसी थी जिसने इन्हें दबाया और उन्हें समानशील होने से अपने में मिलाया। इसी तरह छठी व सातवीं शताब्दी में क्षत्रियों और राजपूतों का समानार्थ में प्रयुक्त होना भी यह संकेत करता है कि इन विदेशियों के रक्त से मिश्रित जाति ही राजपूत जाति थी जो यकायक क्षात्र-धर्म से

1. *Dr. Bhandarkar* : Indian Antiquiry, Vol. XI (p. 30–31)
2. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास (पृ. 34–35)

सुसज्जित होकर प्रकाश में आ गई और शकादिकों का अस्तित्व समाप्त हो गया। यह स्थिति सामाजिक उथल-पुथल की पोषक है। हरियादेवी नामक हूण कन्या का विवाह गुहिलवंशीय अल्लट के साथ होना, जो कि सं० 1034 के शक्तिकुमार के शिलालेख से स्पष्ट है, इस सामञ्जस्य का अकाट्य प्रमाण है। जब सभी राजसत्ता ऐसी जाति के हाथ आ गई तो ब्राह्मणों ने भी उन्हें क्षत्रियों की संज्ञा दी। उनकी राजनैतिक स्थिति ने उन्हें राजपुत्र की प्रतिष्ठा प्रदान की जिसे लौकिक भाषा में राजपूत कहने लगे। इस सम्बन्ध में इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि सम्भवतः सभी क्षत्रियों का विदेशियों से सम्पर्क न हुआ हो और कुछ एक वंशों ने अपना स्वतन्त्र स्थान बनाए रखा हो।

विभिन्न राजपूत वंशों की उत्पत्ति सम्बन्धी मतों का विवेचन
(Critical Evaluation of the origin of Different Rajput Sectors)

650 ई. से 1200 ई. के मध्य जिन राजपूत वंशों में उत्तरी भारत में अपने राज्य स्थापित किये, उनकी स्थिति मानचित्र में देखी जा सकती है।

(1) गुर्जर–प्रतिहारों की उत्पत्ति (Origin of Gurjar–Pratiharas)

गुर्जर प्रतिहार वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहासकारों में विवाद है। जैसा कि पूर्व मे राजपूतों की उत्पत्ति के गुर्जर वंशीय मत के संदर्भ में देखा जा चुका है कि कुछ विद्वान, जिनमें डॉ. भण्डारकर, श्री भगवानलाल इन्द्रजी, कैम्पवैल, कनिंघम, वैडेन पौवेल, विलियम क्रुक, स्मिथ आदि प्रमुख हैं, प्रतिहारों की उत्पत्ति विदेशी जाति गुर्जरों से मानते हैं। किन्तु श्री जे. एन. आसोपा, डॉ. गोपीनाथ शर्मा, डॉ. ओझा, डॉ. सत्य प्रकाश आदि इतिहासकार प्रतिहारों को विदेशी उत्पत्ति को स्वीकार न कर उन्हें भारतीय उत्पत्ति का मानते हैं।

चीनी यात्री ह्वेनसाँग, वाणभट्ट ('हर्षचरित'), स्कन्ध पुराण आदि ने 'गुर्जर' शब्द का उपयोग जाति के रूप में न कर प्रदेश विशेष के रूप में किया है। डॉ. ओझा का मत है कि प्रतिहारों का प्रारंभिक शासन गुजरात से सम्बन्धित था, अतः उन्हें गुर्जर-प्रतिहार कहते हैं। डॉ. गोपीनाथ शर्मा का भी यही मत है कि जैसे गुर्जर शब्द की व्युत्पत्ति का सम्बन्ध देश विशेष से या जाति विशेष से है उसी प्रकार प्रतिहार शब्द का सम्बन्ध भी उनके वंश प्रवर्तक से नहीं है बल्कि प्रतिहार शब्द राजाधिकार के पद से बना हुआ है। यह पद राजा के बैठने के स्थान या महल के प्रतिहार (रक्षक) का सूचक है। प्राचीन शिलालेखों में भी ब्राह्मण प्रतिहार, क्षत्रिय प्रतिहार, गुर्जर प्रतिहार आदि का उल्लेख इसी तथ्य को प्रकट करता है। नागभट्ट को राम का प्रतिहार व विशुद्ध क्षत्रिय बताया गया है, कवि राजशेखर ने महेन्द्रपाल प्रतिहार को रघुकुल तिलक अर्थात सूर्यवंशी क्षत्रिय माना है। नैणसी ने प्रतिहारों की 26 शाखाओं का वर्णन किया है। इनके राज्य राजपूताना के अधिकांश भाग ही नहीं बल्कि गुजरात, काठियावाड़, मध्य भारत एवं सतलज से लगाकर बिहार

के प्रदेशों में भी स्थित थे। इनमें प्रमुख मण्डोर, जालोर, राजागढ़, कन्नोज, उज्जैन और भड़ौंच के प्रतिहार राज्य वंश थे। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है—

मण्डोर के प्रतिहार—श्री आसोपा ने नागौर जिले के दधिमती माता के शिलालेख (608 ई.) के आधार पर प्रतिहारों के मूल स्थान को वह प्रदेश माना है जहाँ 'जोज़री' नदी बहती थी। इसी नदी के नाम पर प्रतिहारों को अरब यात्री 'जुर्ज' या 'जुज्र' अर्थात् गुर्जर मानते प्रतीत होते हैं। जोधपुर शिलालेख (836 ई.) तथा घटियाले के लेख (837 तथा 861 ई.) में प्रतिहारों के एक ब्राह्मण गुरु हरिश्चंद्र का उल्लेख है जिसकी दो पत्नियाँ थी—एक ब्राह्मण जिससे उत्पन्न संतान, ब्राह्मण, प्रतिहार तथा दूसरी क्षत्रिय रानी भद्रा से उत्पन्न संतान क्षत्रिय परिहार हुए। क्षत्रिय स्त्री से विवाह करना हरिश्चंद्र का प्रतिहारों का सामंत होना भी प्रकट करता है। क्षत्रिय रानी से उत्पन्न चार पुत्रों ने मण्डोर (माण्डव्यपुर) जीता तथा उसे अपने राज्य की राजधानी बना कर वहाँ एक किला बनाया। इन में से तीसरे पुत्र रज्जिल से मण्डोर के प्रतिहार शासकों की वंशावली प्रारंभ होती है। रज्जिल का पोता नागभट्ट प्रथम प्रतापी शासक हुआ जिसने राज्य विस्तार कर अपनी राजधानी मेड़ता स्थापित की जो मण्डोर से 60 मील दूर है। इस वंश के शासकों का विस्तृत विवरण आगे दिया जायेगा।

भड़ौंच के गुर्जर-प्रतिहार—गुर्जर-प्रतिहारों की एक शाखा का उदय मृगुकच्छ (भड़ौंच) में हुआ। इस शाखा का सस्थापक नौसेरी ताम्रपट के लेख के अनुसार दद्द प्रथम था जिसे कर्ण का वंशज कहा गया है। पौराणिक कुंती पुत्र कर्ण से वंश सम्बन्धित करना तत्कालीन प्रवृत्ति का द्योतक है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा की मान्यता है कि मण्डोर के प्रतिहार वंश के संस्थापक हरिश्चंद्र के दूसरे पुत्र ही दद्द थे जिसने भड़ौंच में राज्य स्थापित किया। डॉ. ओझा का मत है कि भीनमाल के गुर्जरों का राज्य ही भड़ौंच तक विस्तृत हो गया था अतः यह संभावना प्रतीत होती है कि या तो मण्डोर से या भीनमाल से अलग हो कर भड़ौंच के गुर्जर प्रतिहार शाखा ने राज्य स्थापित किया। नान्दीपुरी के एक दानपत्र (629-641 ई.) में गुर्जर-प्रतिहार सामन्तों का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रतिहार मण्डोर के प्रतिहारों अथवा चालुक्यों की अधीनता में सामन्त रहे थे। भड़ौंच का स्वतन्त्र प्रतिहार राज्य सम्भवतः 735 ई. तक रहा क्योंकि अवन्ति के प्रतिहारों ने इन्हें इनकी राजधानी नान्दीपुरी से निकाल दिया था।

श्री आसोपा[1] मण्डोर, भड़ौंच तथा जालोर के गुर्जर प्रतिहारों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट करते हैं। वे गुर्जर प्रतिहारों की विदेशी उत्पत्ति को अस्वीकार करते हुए उन्हें भारतीय गुर्जर प्रदेश के क्षत्रिय मानते हैं। इसके लिए उन्होंने दो तर्क दिए हैं। पहला यह कि विदेशी उत्पत्ति मानने वालों के अनुसार 'खजर' जाति हूणों के साथ मध्य एशिया से भारत आई, यह तथ्य अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं होता।

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (p. 69)

दूसरा यह कि गुर्जर प्रतिहार अपना मूल निवास-स्थान जोधपुर संभाग के नागौर जिले में स्थित 'जुज्र' 'जोजरी' नदी का तट मानते हैं। यह नदी लूनी नदी की सहायक है। इस नदी 'जुज्र' या 'गुर्जर' अथवा इसके निकटवर्ती प्रदेश 'जोजरी' या गुर्जरी के निवासी होने के कारण प्रतिहार गुर्जर कहलाए। राजस्थान का यह प्रदेश ही प्राचीन गुर्जरत्रा या गुजरात था।

गुर्जर प्रतिहार–जालौर, उज्जैन और कन्नौज

प्रतिहारों की इस शाखा की उत्पत्ति भी मण्डौर के गुर्जर प्रतिहारों से हुई। प्रमाण स्वरूप मण्डौर के प्रतिहारों के पूर्वज हरिश्चंद्र तथा इस वंश के पूर्वज नागभट्ट के शिलालेखों में हरिश्चंद्र को ब्राह्मण किंतु राम का प्रतिहार और नागभट्ट को भी राम का प्रतिहार किंतु क्षत्रिय बतलाया गया है। गुर्जर-प्रतिहारों की एक शाखा ने मालवा पर अधिकार कर लिया था तथा अवन्ति (उज्जैन) को राजधानी बनाया था। डॉ. गोपीनाथ शर्मा की मान्यता है कि इन प्रतिहारों ने सर्वप्रथम चावडों से भीनमाल जीता और इसके बाद आबू, जालौर आदि स्थानों पर अधिकार कर उज्जैन को राजधानी बनाया। इसके बाद उन्होंने साम्राज्य विस्तार कर कन्नौज को राजधानी बनाया। नागभट्ट के वंशज गुर्जर-प्रतिहारों की राजधानियों के विषय में अनेक मत हैं—डॉ. दशरथ शर्मा जालौर तथा अन्य मतानुसार उज्जैन तथा कन्नौज राजधानी है। इसके स्पष्टीकरण में डॉ. गोपीनाथ शर्मा की मान्यता है कि 'गुर्जर-प्रतिहार जिनका उद्भव मण्डौर से था, हरिश्चंद्र के समय से ही उसके वंशज राजस्थान, गुजरात, मालवा, कन्नौज आदि पड़ौसी प्रांतों में जा बसे और जब-जब उन्हें सुविधा हुई इधर-उधर राज्य-स्थापन में लग गए। जितने समय एक स्थान में बने रहे तब तक वह स्थान राजधानी के रूप में चलता रहा।"[1]

मालवा तथा कन्नौज (कान्य कुब्ज) के गुर्जर-प्रतिहारों के पूर्वजों का पता जैन ग्रंथ हरिवंश तथा ग्वालियर (सगरताल) अभिलेख से लगता है। इनमें वत्सराज को पूर्वज माना गया है। ग्वालियर अभिलेख में वत्सराज के पिता का नाम देवराज या देवशक्ति तथा देवराज के पिता को नागभट्ट का भाई बताया गया है। डॉ. सत्य प्रकाश[2] की मान्यता है कि यह नागभट्ट ही वह प्रथम ऐतिहासिक शासक था जिसने मालवा में गुर्जर-प्रतिहार शाखा को स्थापित किया।

जालौर-कन्नौज-उज्जैन प्रतिहारों की नामावली नागभट्ट से आरंभ होती है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने भी यही निष्कर्ष निकाला है कि इस वंश का प्रवर्तक नागभट्ट था जिसे चौहान राजा भर्तृभट्ट द्वितीय के ताम्रपत्र (756 ई.) में नागावलोक के नाम से भी पुकारा गया है। नागभट्ट का राज्य उत्तर में मारवाड़ से लगाकर दक्षिण में भड़ौंच की सीमा तक विस्तृत था जिसमें लाट, जालौर, आबू और मालवा के कुछ

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास (पृ. 66)
2. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 51)

भाग सम्मिलित थे। उसके समय सिंध होकर विलोचों तथा अरबों ने आक्रमण किया किंतु नागभट्ट ने उन्हें अपनी सीमा में नहीं घुसने दिया। ग्वालियर प्रशस्ति से इस तथ्य की पुष्टि होती है। इसी नागभट्ट के वंशजों ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। 1093 ई. में गहड़वालों ने प्रतिहारों से कन्नोज छीन कर उनका अस्तित्व समाप्त कर दिया किंतु प्रतिहार गहड़वाल, राठौड़ तथा चौहानों के सामन्त के रूप में बने रहे।

(2) पाल राजपूत वंश की उत्पत्ति (Origin of Palas)

पाल राजपूतों का बंगाल में आठवीं शताब्दी के मध्य उदय होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। खलीमपुर अभिलेख से विदित होता है कि बंगाल में व्याप्त मत्स्य न्याय को समाप्त करने के लिए प्रजा ने पालों के प्रवर्तक गोपाल के हाथों सत्ता सौंप दी थी। इतिहासकारों का मत है कि शशांक की मृत्यु के बाद बंगाल (गौढ प्रदेश) में अराजकता फैल गई थी, राजनैतिक शक्ति के रूप में छोटे-छोटे सामन्त शासन करने लगे तब वहाँ के लोगों में राजनैतिक चेतना का जन्म हुआ और उन्होंने वहाँ का शासक गोपाल नामक वीर पुरुष को बना दिया।[1] शिलालेख के अनुसार गोपाल को 'प्रकृति' ने राजा बनाया। 'प्रकृति' अर्थ 'प्रजा' होता है किन्तु श्री पी. एल. पोल का मत है कि प्रकृति शब्द तकनीकी अर्थ में ग्रहण कर उससे प्रजा के मुख्य अधिकारियों का बोध होता है।[2]

पालों की उत्पत्ति के विषय में डॉ. सत्यप्रकाश[3] ने चार मतों का उल्लेख किया है जिनका विवरण निम्नांकित है—

1. खड़गों से उत्पत्ति—श्री हरप्रसाद शास्त्री की मान्यता है कि पालों की उत्पत्ति खड़गों से हुई। इसकी पुष्टि में वे धर्मपाल राजा के समय में हरिभद्र द्वारा रचित ग्रंथ 'अष्ट सहस्त्रिका-प्रजन्यपारमिता' के उस अंश को उद्धृत करते हैं जिसमें धर्मपाल को 'राज भट्टादि वंश पतिता' कहा गया है जिसका अर्थ 'किसी राजा के सेनापति का पुत्र' है। राजभट्ट को देवखड़क को उत्तराधिकारी माना गया है। अतः पालों को खड़गों से सम्बन्धित माना है। किन्तु 'पतिता' अर्थात् गिरा हुआ या जातिच्युत के अर्थ में यह मान्यता तर्क सम्मत नहीं है।

2. सूर्य से उत्पत्ति—प्रायः सभी राजपूत राजवंशों ने पौराणिक काल में अपना सम्बन्ध देवी-देवताओं से जोड़ने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया था। पालों के सम्बन्ध में भी यह मत इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। कमौली अभिलेख में पालो का सूर्यवंशी होना इस कारण स्वीकार्य नहीं क्योंकि यह अभिलेख काफी बाद के समय का है।

1. *Dr. R. C. Majumdar* : The History of Bengal (Page 96)
2. *Dr. R. C. Majumdar* : The Early History of Bengal (Page 112)
3. डॉ० सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास-राजपूत काल (पृ. 314-317)

3. समुद्र से उत्पत्ति का मत—रामचरित की टीका में धर्मपाल को 'समुद्र-कुलदीप' तथा तारानाथ के अनुसार गोपाल के पुत्र नागराज को 'सगरपाल' कहा गया है। यह मत भी उपरोक्त पौराणिक प्रवृत्ति का परिचायक है तथा ये अभिलेख भी परवर्त्ती समय के हैं। अतः समुद्र से उत्पत्ति की मान्यता निराधार है।

4. क्षत्रियवंशी मत—रामचरित की टीका में एक स्थान पर रामपाल को क्षत्रियवंशी कहा गया है तथा तारानाथ ने भी गोपाल की माता को क्षत्रियवंशी बतलाया है। पालों के अभिलेखों में स्वयं को क्षत्रिय न बतलाना डॉ० आर० सी० मजूमदार के मत से इस कारण है कि पालों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था, अतः वे ब्राह्मण परम्परा के अनुसार स्वयं को क्षत्रिय नहीं बतलाते थे। क्षत्रियवंशी मत ही तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

पालों का मूल स्थान - डॉ० सत्यप्रकाश का मत है कि पालों का मूल स्थान बंगाल था और यहीं से उन्होने अपने साम्राज्य का विकास किया। प्रारम्भ के 200 वर्षों के पाल शासकों के ताम्र दान-पत्र यद्यपि मगध से प्राप्त हुए हैं किन्तु अन्य साक्ष्यों के आधार पर मगध उनका मूल स्थान प्रमाणित नहीं होता। रामचरित में वरेन्द्री (उत्तरी बंगाल) को पालो का मूल स्थान कहा गया है। ग्वालियर अभिलेख तथा तारानाथ ने पाल शासकों को क्रमशः बंगपति तथा बंगाल का क्षत्रिय वंश कहा है।

श्री जयनरायन आसोपा[1] ने पाल शासकों को गौड़ प्रदेश के अधिपति मानते हुए गौड़ प्रदेश की स्थिति का विवेचन विभिन्न स्रोतों के आधार पर किया है। प्राचीन स्रोत-ग्रन्थों में सर्वप्रथम पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' में गौड़पुर का उल्लेख हुआ है। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में गौड़ की वस्तुओं का वर्णन किया है। वाल्मीकि रामायण में गौड़ देश को कौशल राज्य में माना है। छोटी सादड़ी (मेवाड़) के भ्रमर माता लेख (490 ई.) में मेवाड़ के दक्षिण-उत्तर भाग पर एक गौड़ क्षत्रिय का अधिकार प्रकट किया है। हर्ष के शिलालेख (554 ई.) में उल्लेख है कि कन्नौज के राजा मौखरी ईशान वर्मन ने गौड़ के लोगों को भगा कर समुद्र में शरण लेने पर विवश किया। इसके आधार पर श्री रे चौधरी ने गौड़ प्रदेश समुद्र-तट पर माना है। बाणभट्ट तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग ने गौड़ नरेश शशांक के विषय में लिखा है कि उसकी राजधानी कर्णसुवर्ण (वर्तमान मुर्शिदाबाद के निकट रांगामाटी स्थान) थी। भविष्य पुराण में बर्दवान के उत्तर तथा पद्मा नदी के दक्षिण में स्थित प्रदेश को गौड़ कहा है। इन साक्ष्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि पालों ने प्रतिहार तथा राष्ट्रकूटों से संघर्ष होने के पूर्व बंगाल (दक्षिणी-पूर्वी बंगाल) तथा गौड़ (पश्चिमी बंगाल) पर अधिकार कर लिया था।

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (Pages 123–130)

वात्सायन के कामसूत्र में (13वीं शताब्दी) कहा गया है कि गौढ़ देश दक्षिण में कलिंग तक विस्तृत था। कल्हण की राजतरंगिणी तथा मत्स्य पुराण के आधार पर ह्वेनसाँग ने हर्ष के साम्राज्य में पंच-गौढ़ का उल्लेख किया है। मेरुतुंग के ग्रन्थ 'प्रवन्ध चिन्तामणि' में पंचगौढ़ का अर्थ उत्तरी भारत माना है। मुस्लिम-काल में लक्ष्मणावती (माल्दा जिला) को मुख्य गौढ़ प्रदेश समझा जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य स्थान भी गौढ़ के नाम से जाने जाते थे जैसे खानदेश व उड़ीसा का मध्य भाग, मध्य प्रदेश के कुछ भाग, मत्स्य प्रदेश, राजस्थान के नागौर जिले में गौढ़ाती प्रदेश, पाली जिले का गौढ़वाड़ा, मेवाड़ का दक्षिणी-पूर्वी भाग आदि। अतः प्रश्न उठता है कि किस प्रदेश को मूल गौढ़ प्रदेश माना जाये।

श्री आसोपा ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गौढ़ शब्द की व्युत्पत्ति का विवेचन किया है। वाल्मीकि रामायण में जिस नदी 'इक्षुमती' का वर्णन किया है वह 'गौढ़िका' तथा उसका निकटवर्ती क्षेत्र इक्ष्वावर्त या गौढ़ कहलाता था। इक्षुमती से इक्ष्वाक क्षत्रियों ने अवध होते हुए गौढ़ देश में सरस्वती नगर स्थापित किया। ये गौढ़ प्रदेश से आये थे, अतः उन्होंने अपने प्रदेश का नाम भी गौढ़ रखा। परवर्ती गुप्त शासको के समय गौढ़ देश के क्षत्रियों ने बंगाल की ओर अभियान किया जिसका उल्लेख हर्ष शिलालेख (554 ई.) में किया गया है। श्री आसोपा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि गौढ़ क्षत्रिय उत्तरी बंगाल के मालदा जिले में गुप्त शासकों के अधीन रहते थे। क्रमशः उन्होंने राढ़ प्रदेश, वर्धमान तथा ताम्रलिप्ति तक अपना अधिकार कर लिया। शशांक इसी वंश का था जो स्वतन्त्र शासक बना। अतः बंगाल के गौढ़ अपने पूर्व मूल स्थान गौढ़ के नाम से विख्यात हुए। मूल स्थान इक्षुमती अथवा गौढ़ प्रदेश से जो भी लोग भारत के विभिन्न स्थानों में जाकर बसे वे गौढ़ कहलाये।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर श्री आसोपा की मान्यता है कि मूल गौढ़ देश हरियाना था जिसका नाम इक्षुमती अर्थात् गौढ़ के कारण कहलाया।

(3) चन्देल राजपूत वंश की उत्पत्ति (Origin of Chandellas)

चन्देल राजपूत वंश की उत्पत्ति भी विवादास्पद रही है। जनश्रुतियों तथा शिलालेखों के आधार पर कुछ विद्वान इन्हें चन्द्रवंशी क्षत्रिय मानते हैं तथा कुछ इतिहासकार इन्हें अनार्यों से उत्पन्न समझते हैं। डॉ० सत्य प्रकाश[1] ने इन मतों का विवरण इस प्रकार दिया है :—

(1) चन्द्रवंशी मत—चन्दवरदाई ने अपने ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' के महोबा खण्ड अथवा 'परमाल रासो' में एक अंश "चन्द्र-ब्रह्म उत्पत्ति खण्ड" लिखा है। इसमें एक कथन में चन्द ने कहा है कि बनारस के गहड़वाल राजा के पुरोहित इन्द्रजीत की पुत्री हेमवती से चन्देलों का जन्म हुआ। हेमवती सुन्दरी थी जो 16 वर्ष की आयु में ही विधवा हो गई थी। ग्रीष्मकाल की एक रात्रि में वह एक सरोवर में स्नान करने

1. डॉ० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूतकाल (पृ० 182-185)

गई। चन्द्रमा उस पर मोहित हो आकाश से उतर कर उसका आलिंगन करने लगा। चन्द्रमा जब जाने लगा तो उसने हेमवती को धैर्य दिलाते हुए कहा—'तुम्हारा पुत्र पृथ्वी का राजा होगा जिससे हजारों शाखाओं का जन्म होगा। तुम्हें प्रसव कर्णावती नदी के तट पर होगा, वहाँ से तुम खुजरया जाना तथा पुत्र को देवता के अर्पण कर यज्ञ करना। वह महोवा पर शासन करेगा और बहुत बड़ा राजा बनेगा। उसे एक दार्शनिक पत्थर मिलेगा जिससे वह लोहे से स्वर्ण का निर्माण करेगा तथा कालिंजर में एक दुर्ग का निर्माण करेगा। जब तुम्हारा पुत्र 16 वर्ष का हो जाये तब तुम अपनी अपकीर्ति धोने के लिये एक यज्ञ करना और बनारस छोड़कर कालिंजर में रहने के लिये आ जाना।" इस जनश्रुति के अनुसार 'चन्द्रब्रह्म' नामक बालक का हेमवती से जन्म हुआ जिसने कालिंजर को जीत कर गहड़वालों को काशी से बाहर निकाल दिया। कालिंजर में उसने एक दुर्ग बनवाया और अपनी रानी चन्द्रावती के साथ महोवा में रहने लगा। उसने खजुरपुर (खजुराहो) में यज्ञ कर माता की अपकीर्ति को मिटाने के लिए 85 मन्दिरों का निर्माण कराया।

क्रुक महोदय ने एक अन्य जनश्रुति का इस प्रकार उल्लेख किया है—एक दिन कालिन्जर के राजा ने अपने पुरोहित से तिथि पूछी। उस पुरोहित ने अमावस्या होते हुए भी पूर्णिमा बतला दी। जब उसे अपनी त्रुटि का ज्ञान हुआ तो वह बहुत दुखी हुआ। घर पर जब उसकी पुत्री को पिता की चिन्ता का कारण ज्ञात हुआ तो उसने चन्द्रमा से प्रार्थना की। आकाश में पूर्ण चन्द्रमा उदित हुआ और उसके पिता का कथन सत्य हुआ किन्तु इसके बदले में चन्द्रमा ने उस पुत्री के साथ संभोग किया। पिता को जब इस रहस्य का पता चला तो उसने पुत्री को घर से निकाल दिया। जंगल में पुत्री के एक पुत्र का जन्म हुआ। एक बनाफर राजपूत ने उसे उसके घर पहुँचा दिया। पिता पुत्री की गोद में शिशु को देखकर इतना लज्जित हुआ कि उसने स्वयं को पत्थर में परिणत कर लिया। उसका नाम मनीराम था किन्तु अब वह 'मनिय देव' के नाम से पूजा जाता है।[1] यह शिशु ही चन्देल वंश का पूर्वज हुआ।

बगदी (बटेश्वर) शिलालेख (1195 ई०) में एक अन्य कथा इस प्रकार उत्कीर्ण है—"अत्रि ऋषि के कमलनयन से एक देवता का जन्म हुआ जो पर्वतों की राजकुमारी पार्वती के पतिशिव का अलंकरण बना। चन्द्रमा से उत्पन्न चन्द्रात्रेय ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्ति की तथा बाद में इसी से चन्देल वंश की उत्पत्ति हुई।"

एक अन्य शिलालेख में दूसरी ही कथा है—"ब्रह्मा ने बहुत से ऋषियों को जन्म दिया। उनमें सबसे प्रमुख अत्रि थे। इन्हीं से ऋषि चन्द्रात्रेय हुए जो महान वंश के संस्थापक थे। यह वंश पृथ्वी पर उस दिन तक शासन करेगा जब तक चन्द्रमा आकाश पर चमकता है।"

विंसेन्ट स्मिथ चन्द्रवरदायी तथा इन शिलालेखों में बतलाई गई चन्देलों की चन्द्रवंशी उत्पत्ति की कथा को मूर्खतापूर्ण कपोल-कल्पित मिथक मानते हैं। उनकी

1. The Tribes and Castes of the North Western Provinces and Oudh, Vol. II, pages 96–97.

मान्यता है कि चन्देल हूणों के साथ भारत आए हुए उन विदेशियों में नहीं थे जिन्हें अग्नि द्वारा पवित्र कर अग्निवंशी माना गया था किन्तु चन्देल स्थानीय जनजातियों—गौंड, भील, भार, कोल, चमार आदि—से उत्पन्न हुए। तत्कालीन पौराणिक परम्परानुसार अपनी जाति को श्रेष्ठ बनाने के लिए उन्होंने उपरोक्त कथाओं के माध्यम से चन्द्रवंशी बनने का प्रयास किया।

(2) अनार्यों से उत्पत्ति का मत—जैसी कि डॉ० स्मिथ की मान्यता थी श्री आर. वी. रसल भी चन्देलों की उत्पत्ति अनार्यों से मानते हैं। इसके समर्थन में वे निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करते हैं :—

(1) जिन प्रदेशों पर चन्देलों का उदय हुआ वहाँ के मूल निवासी अनार्य जनजातियाँ—गौंड, कोल, भील, भार, चमार आदि—थीं। चन्देल भी इन्हीं की भाँति एक छोटा कबीला था जो उस प्रदेश का शासक वर्ग बना किन्तु अन्य जातियों को कभी नष्ट नहीं किया।

(2) महोबा में चन्देल वंश के आदि देवता मनियदेव का मन्दिर है। इस देवता की आकृति गौंडों के देवताओं की भाँति है।

(3) चन्दवरदायी चन्देलों के मूल निवास स्थान मनियागढ़ को एक गौंड सरदार से सम्बन्धित बताता है।

(4) गढ़ मण्डल के एक गौंड राजा का एक चन्देल राजकुमारी दुर्गावती से विवाह होना भी यह प्रमाणित करता है कि 16वीं शताब्दी तक चन्देल तथा गौंडों में परस्पर विवाह होते थे।

डॉ० स्मिथ तथा श्री आर. सी. मजूमदार का मत है कि गहड़वाल तथा स्थानीय निम्न जाति गौंड तथा भारों के परस्पर विवाह सम्बन्ध से चन्देलों की उत्पत्ति हुई। उनकी यह मान्यता है कि गौंडों की हिन्दूकरण प्रक्रिया से चन्देलों का उदय हुआ। इसके विपरीत श्री रसल का मत है कि चन्देले गहड़वाल राजपूतों की ही एक स्थानीय शाखा थी जिनका नाम चन्देरी स्थान के कारण पड़ा। श्री वैनेट की मान्यता है कि भार जाति के शासकों के वंशज हैं जो कायस्थ बनकर हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में प्रविष्ट हुए। ये वंशज 'छत्तरी' के पद पर प्रतिष्ठित हो चन्देल कहलाए।

श्री सी. वी. वैद्य ने स्मिथ के मत का खण्डन करते हुए कहा है कि वंश-उत्पत्ति की कथाएँ वेदों के समय से ही प्रचलित थीं। चन्देलों को निम्न जाति का नहीं माना जा सकता क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'कुमारपाल चरित' में उनकी 36 राजपूत वंशों में गणना की गई है। दूसरा तर्क यह है कि राजपूतों में सदैव जनजातियों के प्रदेशों में राज्य स्थापित करने की प्रवृत्ति रही है। आर्यावर्त में कुषाण या हूणों के दबाव के कारण चन्देले इस प्रदेश में आकर स्थापित हुए।

श्री आसोपा[1] ने 'चन्देला' शब्द के लिए प्रयुक्त अन्य शब्दों 'चन्द्रात्रेय' तथा

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs, p. 212–215.

'चन्द्रेला' की व्युत्पत्ति की व्याख्या करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि चन्द्रात्रेय तथा चन्द्रेला शब्द. चन्देल वंश के लिए ही प्रयुक्त हुए किन्तु दोनों का अर्थ भिन्न है। 'चन्द्रेला' का अर्थ उन लोगों से है जो 'चन्द्र' प्रदेश के हों क्योंकि चन्द्र में 'इला' उपसर्ग जोड़ने से चन्द्र प्रदेश के निवासी से तात्पर्य होता है। इसी प्रकार 'चन्द्रात्रेय' 'चन्द्र+अत्रि' शब्द से बना है जिसमें 'अत्रि' गोत्र का सूचक है। अतः चन्देले आरम्भ में ब्राह्मण थे जिसकी पुष्टि 'पृथ्वीराज रासो' तथा अन्य जनश्रुतियों की कथाओं से होती है।

चन्देलों का मूल स्थान—श्री आसोपा ने चन्देलों का मूल स्थान 'चन्द्रेला' तथा 'चन्द्रात्रेय' शब्दों के आधार पर 'चन्द्र' प्रदेश माना है। इस चन्द्र प्रदेश का समीकरण, ह्वेनसांग द्वारा वर्णित 'चि-कि-तो' के स्थान के आधार पर तथा श्री शिशिर कुमार मित्रा के तर्क के अनुसार, 'जैजाक भुक्ति' अथवा वर्तमान 'चन्देरी' स्थान से किया है।

डॉ. सत्य प्रकाश ने भी प्रारम्भिक चन्देल राज्य का नाम 'जैजाक मुक्ति' बताया था। मदनपुर लेख में पृथ्वीराज चौहान द्वारा इसी जैजाक भुक्ति प्रदेश पर विजय करने का उल्लेख किया है। एक मन्दिर-लेख में भी जैजाक भुक्ति मण्डल का नाम मिलता है। इतिहासकारों का कथन है कि चन्देलों के राज्य बुन्देलखण्ड के लिए जैजाक भुक्ति नाम का प्रयोग किया जाता था। जनश्रुतियों के आधार पर भी चन्देलों का मूल स्थान छतरपुर राज्य के मनियागढ़ में था। चन्देलों ने आठ दुर्गों का निर्माण कराया जिनकी पुष्टि शिलालेखों से होती है जिनमें कालिंजर व अजयगढ़ दुर्गों का उल्लेख है। खजुराहो सहित यह प्रदेश ही चन्देलों का मूल स्थान था।

श्री आसोपा की मान्यता है कि 'चन्द्रात्रेय' अथवा चन्देले प्रतिहार, चहमान, परमार, चालुक्य तथा गुहिकों की भाँति ब्राह्मण थे जिन्होंने तत्कालीन आवश्यकतानुसार लोगों की रक्षार्थ क्षात्र धर्म अपना लिया। चन्देरी स्थान के कारण इनका चन्देला नाम पड़ा। राज्याधिपति बनने के बाद उनके वैवाहिक सम्बन्ध चहमान, कलचुरि आदि अन्य राजपूत वंशों के साथ होने लगे। अतः नवीं शताब्दी तक उनका स्थान राजपूत वंशों में प्रतिष्ठित हो गया और 'चन्द्रात्रेय' या चन्देल नाम ही उनके मूल स्थान तथा ब्राह्मण गोत्र होने का सूचक मात्र रह गया।

(4) चहमान (चौहान) राजपूत वंश की उत्पत्ति
(Origin of Chahmans)

राजपूतों की उत्पत्ति के विभिन्न मतों की समीक्षा करते समय पूर्व में प्रसंगतः चहमानों की उत्पत्ति का भी विवेचन किया जा चुका है। अतः अधिक विस्तार में न जा कर केवल सक्षेप में चहमानों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मतों का श्री आसोपा[1] के अनुसार विवरण निम्नांकित हैं:—

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs, p. 87–98

(1) सूर्यवंशी मत—जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' (1200 ई.) तथा 'हम्मीर काव्य' (1425 ई.) ग्रन्थो मे कहा गया है कि जब ब्रह्मा ने सूर्य मण्डल की सहस्त्र किरणो पर ध्यान केन्द्रित किया तो सूर्य मण्डल से चहमानो की उत्पत्ति हुई। चौहान शासक रणथम्भोर के सुर्जन राव के दरबारी बगाली कवि चन्द्रशेखर द्वारा रचित ग्रन्थ 'सुर्जन चरित' मे भी यह कहा गया है कि जब ब्रह्मा पुष्कर मे यज्ञ कर रहे थे तो सूर्य मण्डल से चहमानो की उत्पत्ति हुई। अजमेर के अढाई दिन के झोपड़े तथा बेदला के शिलालेखो मे चौहानो को सूर्य वशी कहा गया है। श्री ओझा ने इस मत की पुष्टि की है किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा[1] ने इस मत को अस्वीकार करते हुए कहा है कि यह मत नवीन खोजो के आधार पर मान्य नही क्योकि इससे प्राचीन इक्षवाकु के सूर्य वश का कोई तारतम्य नही बैठता। श्री आर० बी० चौहान का मत है कि चौहानो की उत्पत्ति कलियुग मे हुई जब बुद्ध को अवतार मान लिया गया तथा म्लेच्छो ने भारत पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। बाद के शिलालेखो मे चौहानो को क्षत्रिय कहा गया है।

(2) चन्द्रवंशी मत—इस मत का आधार लुगतिब देव के आबू शिलालेख (1320 ई०) पर आधारित है जिसमे कहा गया है कि 'वत्स' ने चन्द्रमा की सहायता से चौहानो की उत्पत्ति की। पृथ्वीराज द्वितीय के हाँसी शिलालेख मे चौहानो का चन्द्र वशी होना उत्कीर्ण है। किन्तु वत्स ब्राह्मण का उल्लेख चौहानो को चन्द्रवशी मानने मे बाधक है। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराज रासो' का अग्निवशी मत भी इसका खण्डन करता है।

(3) इन्द्रवंशी मत—मेवाडी ताम्र-पत्र (1119 ई०) पर उत्कीर्ण लेख मे चौहानो की उत्पत्ति इन्द्र से मानी गई है। डॉ० दशरथ शर्मा इस लेख मे 'प्राचीधिकापति' शब्द का अर्थ इन्द्र होना स्वीकार नही करते बल्कि इसका अर्थ सूर्य होना मानते है। श्री आर० बी० सिह ने इस लेख के आधार पर चौहानो को सूर्य वंशी माना है क्योकि इन्द्र की बारह आदित्यो (सूर्यो) मे गणना की जाती है। अत: यह मत इतिहासकारो को मान्य नही है।

(4) अग्निवंशी मत—चन्द्रबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' मे उल्लिखित कथा के आधार पर प्रतिहार, चालुक्य, परमार तथा चौहानो की उत्पत्ति आबू के अग्नि कुण्ड मे मानी गई है। जैसा कि पूर्व मे इस मत के विपक्ष मे तर्क दिये जा चुके है, यह मत केवल पौराणिक परम्परानुसार भाटो की कपोल-कल्पना मात्र है।

(5) विदेशी उत्पत्ति का मत—टॉड का मत है कि चौहान तक्षक विदेशी जाति के वंशज है। तक्षको की एक शाखा सिथियन लोगो ने भारत पर आरम्भिक आक्रमण किये। श्री जैक्सन के मत मे सभी अग्निवंशी राजपूत 'गुर्जर' विदेशी जाति के थे। श्री कैम्पबैल तथा श्री भण्डारकर अन्य लेखो के आधार पर इन्हे 'गुर्जर'

1. *Dr Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p 5)

(जोर्जियन) जाति से उत्पन्न मानते हैं जिन्होंने 500 ई० के लगभग भारत पर आक्रमण किया। वेडन पौवेल की मान्यता है कि सभी राजपूत तथा जाट पश्चिमोत्तर प्रदेश से भारत में आकर बसने वाली विदेशी जातियाँ—इन्डोसिथियन, गुर्जर, हूण आदि थे जो कालान्तर में राजपूत बन गये। श्री विलियम क्रुक तथा स्मिथ दोनों ही इस बात से सहमत हैं कि सभी राजपूत उन विदेशी जातियों से उत्पन्न हैं जिन्हें अग्नि कुण्ड में पवित्र कर भारतीय बनाया गया। श्री डॉ० आर० मनकड चहमान शब्द में 'वान' के आधार पर उसे समउच्चारित 'नहपान' (हूण) के 'पान' शब्द से सम्बन्धित कर चहमानों को विदेशी उत्पत्ति का मानते हैं।

(6) **ब्राह्मणवंशी मत**—यह मत तीन शिलालेखों पर आधारित है। बिजोलिया लेख (1170 ई०) में प्रारंभिक चौहान राजा सामन्त को वत्स गोत्र का ब्राह्मण कहा गया है। कालक्रम के अनुसार यह साक्ष्य सूर्यवंशी मत के साक्ष्यों से पूर्व समय की है। सूंडा पहाड़ी के शिलालेख में चहमान वीर के नेत्रों में वत्स का प्रकाश बतलाया गया है। आबू पर्वत लुंतिगदेव के लेख (1320 ई०) में भी चन्द्रमा की सहायता से वत्स द्वारा चौहानों की उत्पत्ति बतलाई गई है। श्री आसोपा इस मत को स्वीकार करते हैं। इस मत की पुष्टि मुसलमान चौहान 'जान' नामक लेखक के ग्रन्थ 'कायमखान रासो' से होती है जिसमें चौहानों को जमदग्न गोत्रीय वत्स ब्राह्मण का वंशज कहा गया है डॉ० दशरथ शर्मा भी इस मत से सहमत हैं। डॉ० गोपीनाथ शर्मा भी चौहानों की उत्पत्ति सम्बन्धी निष्कर्ष निकालते समय कहते हैं कि—"जैसा हम पहले कह चुके हैं कि क्षत्रिय अपने पुरोहितों का गोत्र धारण कर लेते थे, महत्त्वपूर्ण है, परन्तु इस सम्भावना को भी नहीं ठुकराया जा सकता है कि अन्य क्षत्रिय वंशों की तरह प्रारम्भ में वे भी ब्राह्मण रहे हों तथा किसी परिस्थितिवश अथवा स्वेच्छा से क्षत्रिय वर्ण स्वीकार कर लिया हो।"[1]

चौहानों का मूल स्थान—चौहानों के मूल स्थान के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। जनश्रुतियों तथा शिलालेखों में जंगल देश तथा सपादलक्ष को चौहानों का मूल स्थान माना गया है। 'पृथ्वीराज विजय' में चौहानों की राजधानी साम्भर बतलाई गई है। हर्ष शिलालेख (973 ई०) में सीकर क्षेत्र (अनन्त प्रांत) चौहानों का उद्गम स्थल माना है। बिजोलिया शिलालेख में अहिच्छत्रपुर, (नागौर) को मूल स्थान कहा गया है। 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर महाकाव्य', 'सुर्जन चरित', 'शब्द कल्पद्रुम कोष' तथा लाडनूं लेखों में चहमानों के निवास-स्थान के सम्बन्ध में जांगल देश (बीकानेर, जयपुर और उत्तरी मारवाड़) का विवरण मिलता है जिसमें सपादलक्ष (सांभर) तथा पुष्कर प्रमुख भाग थे और अहिछत्रपुर (नागौर) इनके राज्य की राजधानी थी। डॉ० गोपीनाथ शर्मा तथा डॉ० दशरथ शर्मा का भी यही मत है।

1. डा० गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग-1 (पृ० 89)

श्री आसोपा[1] ने मूल स्थान सम्बन्धी उक्त मतों का निष्कर्ष निकालते हुए कहा है कि—"शाकम्भरी के चारों पार्श्वों पर चहमानों का अधिकार था और चारों दिशाओं में रहने के कारण शाकम्भरी के 'चहमान' या 'चहमान' कहलाये। चहमान एक भौगोलिक नाम था जो शाकम्भरी झील की चारों दिशाओं पर बसने वाले लोगों के लिये प्रयुक्त होता था।"

(5) गहड़वाल राजपूतों की उत्पत्ति (Origin of Gahadwals)

गहड़वाल राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मत हैं। श्री जयनारायन आसोपा[2] की मान्यता विभिन्न मतों की समीक्षा के पश्चात यह है कि गहड़वालों की दक्षिण के राष्ट्रकूट क्षत्रियों से उत्पत्ति हुई तथा वे वाराणसी–अयोध्या क्षेत्र में स्थित 'गाधिपुरा' स्थान में मूलतः निवास करते थे जिसके कारण उनका वंश गहड़वाल कहलाया। मिर्जापुर के जिला गजेटियर में यह उल्लेख है कि कान्तित का राजा गहड़वाल वंशी है। इस राजा का मत है कि गहड़वाल 'ग्रहवार' शब्द का अपभ्रंश है जिसका आधार एक जनश्रुति है जिसमें उल्लेख है कि ययात्ति के पुत्र देवदास ने अपने सत्कार्यों से पथ भ्रष्ट करने वाले शनिग्रह पर विजय प्राप्त की जिसके कारण वह 'ग्रहवार' अर्थात ग्रहों का विजेता कहलाया। यह 'ग्रहवार' ही बाद में गहड़वाल शब्द में परिवर्तित हो गया'। विलियम क्रुक ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि गहड़वाल शब्द की व्युत्पत्ति 'गह्वर' या 'गिरिगह्वर' से हुई है जिसका अर्थ विष्णुपुराण में उन लोगों से है जो जंगल तथा गुफाओं में निवास करते थे। श्री बी० एन० रेऊ गहड़वाल का अर्थ 'बलवान' मानते हैं। श्री सी० वी० वैध गहड़वालों का सम्बन्ध दक्षिण के 'गहड़' स्थान से स्थापित करते हैं। श्री आर० सी० मजूमदार एक कन्नड़ शिलालेख (994 शक स०) के आधार पर गहड़वालों को कर्नाटक का मूल निवासी कहते हैं। श्री विन्सैंट स्मिथ गोरखपुर-परम्परा के अनुसार गहड़वालों को ग्वालियर के निकट नरवर के राजा नल का वंशज मानते हैं।

गहड़वाल शब्द की व्युत्पत्ति सम्बन्धी उपरोक्त विभिन्न मतों के संदर्भ में गहड़वालों की उत्पत्ति के निम्नांकित प्रमुख सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं।

1. **अनार्यो से उत्पत्ति**—श्री आर. वी. रसल गहड़वाल को 'भार' जनजाति का एक अभिजात्य वर्ग मानते हैं। इसके समर्थन में उन्होंने ईलियट का यह मत प्रकट किया है कि भार जाति का पहले गोरखपुर से बुन्देलखण्ड और सागर तक के क्षेत्र पर अधिकार था जिसके कारण इस क्षेत्र के तत्कालीन दुर्ग तथा भवन उसी शैली के निर्मित हैं। इस सिद्धान्त का समर्थन अन्य कोई इतिहासकार नहीं करता।

2. **पालवंशी मत**—डॉ. हार्नले महोदय ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि गहड़वाल वंश पालों की एक शाखा मात्र था। उनका मत है कि गौढ़ देश के

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (p. 97–98)
2. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (p. 184–185)

पाल अर्थात 'गौढ़-पाल' ही आगे चलकर गहड़वाल कहलाये। इस मत की पुष्टि भी अन्य कोई विद्वान नहीं करता।

3. **राष्टकूटवंशी मत**—इस सिद्धान्त के प्रतिपादक पं. रामकरण आसोपा थे। उन्होंने 1920 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय में राजपूत-इतिहास पर दिए गए भाषणों में यह सिद्धान्त प्रकट किया कि गहड़वाल वंश का चन्द्रदेव वही था जो वदायूँ शिलालेख में वर्णित राष्ट्रकूट चन्द्र था। श्री वी. एन. रेऊ तथा श्री जगदीश गहलौत इतिहासकारों ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। इस मत के समर्थन में निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं—

1. गहड़वाल राजपूत अब भी स्वयं को राठौड़ वंश का कहते हैं। मिर्जापुर जिले के वीजापुर माँढा के राजा गहड़वाल हैं और स्वयं को राठौड़ों के वंशज मानते हैं।

2. यह तथ्य सर्वमान्य है कि कन्नौज के जयचंद राठौडवंशी थे।

3. चंदवरदायी ने 'पृथवीराज रासो' में जयचंद को राठौड़ तथा 'कामधज' उपाधि से विभूपित किया है। दोनों शब्द समानार्थक हैं।

4. लखनपाल के वदायूँ लेख (1223 ई.) तथा चंद्रावती के ताम्रपत्र (1196 ई.) में उत्कीर्ण है कि प्रथम राठौड़ शासक चन्द्र ने पांचालदेश को विजित किया।

उपरोक्त तर्कों का खण्डन करते हुए श्री भारद्वाज ने निम्नांकित तथ्य प्रकट किए हैं—

1. वीजापुर माँढा के राजा का राठौड़ वंशज होने का दावा परवर्ती काल में गहड़वालों को राष्ट्रकूटों से सम्बन्धित करने की परम्परा प्रचलित होने के बाद किया गया है। इससे पूर्व इस तथ्य के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं मिलता।

2. चंदवरदायी द्वारा जयचंद को राठौड़ कहा जाना इस कारण मान्य नहीं हो सकता क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' का वर्तमान स्वरूप 16वीं शताब्दी में संकलित हुआ था।

3. 'पृथ्वीराज रासो' 'राजतरंगिणी' तथा 'कुमारपाल चरित' में वर्णित 36 राजपूत वंशों में गहडवालों के उल्लेख न होने का कारण यह है कि इनमें केवल परम्परागत राजपूत वंशों की संख्या दी गई है।

श्री आर. एस. त्रिपाठी ने निम्नांकित तथ्य प्रकट किए हैं—

4. गहड़वालों के दान-पत्रों में कहीं भी उन्हें राठौर या राष्ट्रकूट नहीं कहा गया है।

5. गहड़वाल तथा राठौड़ राजपूत वंशों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध हुए हैं। यह तथ्य भी गहड़वालों को राठौड़वंशी मानने के विपरीत है।

6. गहड़वाल तथा राठौड़ों के गोत्र भिन्न हैं। ये गोत्र क्रमश: कश्यप तथा गौतम हैं।

7. मारवाड़ के प्रथम राठौड़ शासक राव सिहा की मृत्यु 1273 ई. में हुई जबकि गहड़वाल जयचंद की मृत्यु 1193 ई. में हुई। यह समयान्तर 80 वर्ष का है।

8. मारवाड़ में राष्ट्रकूटों का प्रवेश इस अवधि के पूर्व हो गया था। इसका प्रमाण हथूंडी शिलालेख (997 ई.) है।

9. 'पृथ्वीराज रासो' में 36 राजपूत वंशों में 'गहड़वालों' का उल्लेख न होना किन्तु उसी के 'आल्हा खण्ड' में गहड़वालों का वर्णन किया जाना।

10. ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रकूट राजाओं का निकटवर्ती क्षेत्रों में राज्य करना भी यह प्रकट करता है कि गहड़वाल व राष्ट्रकूट एक वंश के नहीं थे।

11. वंशावलियों तथा काल-क्रम के आधार पर यह सिद्ध नहीं होता कि राष्ट्रकूट चंद्र तथा गहड़वाल चंद्र एक ही व्यक्ति थे।

श्री रोमानियोगी[1] ने भी इस मत के विपक्ष में निम्नांकित तर्क दिए हैं—

12. गहड़वालों के आरम्भिक शिलालेखों व दान-पत्रों में गहड़वालों को सूर्यवंशी मानकर उन्हें राठौड़ों से सम्बन्धित करना त्रुटिपूर्ण है। इन अभिलेखों का सही अर्थ इसके विपरीत है जिसके आधार पर गहड़वालों का उदय सूर्यवंशी क्षत्रियों के विनाश के बाद हुआ।

13. महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र के भूमि दान-पत्र में यह स्पष्ट अंकित है कि सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रियों के विनिष्ट होने के बाद गहड़वालों को राजसत्ता प्राप्त हुई।

14. चन्द्रावती दान-पत्रों में भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि देवपाल प्रतिहार शासक (948 ई.) के पतन के पश्चात गहड़वाल क्षत्रिय वंश ने कान्यकुब्ज पर अधिकार किया।

15. टॉड द्वारा निर्मित वंशावलियों में से केवल एक वंशावली (जो खीची भाट मोधजी द्वारा 19वीं शताब्दी में प्राप्त हुई) में ही गहड़वालों को राठौड़वंशी बतलाया गया है। टॉड ने स्पष्ट किया है कि काशी के गहड़वालों से राजपूताना के राजपूत वंशों का परिचय नहीं था।

16. गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी के सारनाथ शिलालेख में यह अंकित है कि गोविन्दचन्द्र गहड़वाल वंश के हैं तथा कुमारदेवी की माता राष्ट्रकूट वंश की थी। यह तथ्य भी गहड़वाल तथा राष्ट्रकूट वंश की पृथकता सूचित करता है।

उपरोक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि गहड़वाल क्षत्रिय थे क्योंकि उनके वैवाहिक सम्बन्ध राष्ट्रकूटों से हुए और वे राष्ट्रकूट वंशी नहीं थे।

गहड़वालों का मूल स्थान—श्री जयनरायण आसोपा ने 'गहड़वाल' शब्द

1. *Roma Niyogi* : History of the Gaharwal Dynasty (p. 31–33)

को मूल निवास-स्थान का सूचक माना है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर गहड़वालों का प्रारम्भ में वाराणसी, अयोध्या, इन्द्रप्रस्थ तथा गाधिपुर स्थानों पर अधिकार था। गाधिपुर ही उनका मूल स्थान था जिसके कारण वे गहड़वाल कहलाये। यह तथ्य इस बात से भी पुष्ट होता है कि अधिकाँश गहड़वाल शिलालेख वाराणसी अयोध्या क्षेत्र से ही उपलब्ध हुए हैं। 'गाधिपुर' शब्द प्राकृत में 'गाहिडरा' तथा अपभ्रंश में 'गाहड़' बना और इसी से 'गहड़वाल' शब्द बन कर इस राजपूत वंश का द्योतक हो गया।

(6) चालुक्यों (सोलंकियों) की उत्पत्ति (Origin of Chalukyas or Solankis)

'चालुक्य' शब्द की व्युत्पत्ति—प्राचीन शिलालेखों तथा अभिलेखों में 'चालुक्य' शब्द के विभिन्न रूपान्तर दिए गए हैं—'चौलुक्य', 'चालुक्य', 'चुलुक्य', 'चालुक्का', 'चलक्या', 'चौलकिक', 'चुलुक्क', 'चुलुग' आदि। कुछ विद्वान 'चालुक्य' तथा 'चौलुक्य' में विभेद करते हैं। श्री वैध अन्हिलवाड़ा तथा बादामी के चालुक्यों को भिन्न मानते हैं। किन्तु श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इस विभेद को अस्वीकार करते हैं[1]। इसका प्रमाण यह है कि सोलंकियों के अनेक ताम्र-पत्रों तथा सोमेश्वर की 'कीर्तिकौमुदी' तथा हेमचन्द के 'द्वियाश्रम महाकाव्य' में चालुक्य शब्द के उपरोक्त सभी रूपान्तरों का समानार्थक प्रयोग किया है। श्री आसोपा[2] की भी यही मान्यता है कि ये सभी रूपान्तर एक ही चालुक्य वंश के सूचक है। 'चालुक्य' शब्द संस्कृत का रूप है जो हिन्दी में 'सोलंकी' या 'सोलंखी' के रूप में परिवर्तित हो गया।

चालुक्य (सोलंकी) राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी मत—चालुक्यो की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत प्रचलित हैं जिनमें से प्रमुख मतों का विवरण निम्नांकित है—

1. ब्रह्मा के चलुक से उत्पत्ति—बड़नगर प्रशस्ति में उल्लेख है कि—"राक्षसों के उत्पात मचाने पर देवताओं ने ब्रह्मा से रक्षा करने की प्रार्थना की। उस समय वे संध्यावंदन करने जा रहे थे, उन्होंने अपने चुलुक में गंगा का पानी लेकर एक वीर की उत्पत्ति की तथा उसका नाम चौलुक्य रखा।" यहाँ चुलुक का अर्थ हथेली है। इस मत की पुष्टि अभयतिलक जानी, मेरुतुंग तथा बालचन्द अपने ग्रंथों क्रमशः 'द्वयाश्रम काव्य', 'प्रबन्ध चिंतामणि' तथा 'वसन्तविलास' में की है। विल्हन ने अपने ग्रंथ 'विक्रमांकदेवचरित' में भी ऐसी ही एक कथा कही है—"एक दिन ब्रह्मा संध्या कर रहे थे तब इन्द्र उनके पास आए और कहा कि पृथ्वी पर नास्तिकों तथा म्लेच्छों का बाहुल्य हो गया है। ब्रह्मा ने गंगा जल अपने चुलुक (हथेली) में लिया जिससे सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करने योग्य एक वीर चालुका उत्पन्न हुआ। इसी से चालुक्य वंश की उत्पत्ति हुई। इस वंश में हारीत तथा

1. गौ० ही० ओझा : सोलंकियों का प्राचीन इतिहास (पृ० 1)

मानव्य हुए जिन्होंने पहले अयोध्या में राज्य किया फिर वे दक्षिण की ओर चले गए।" एक कलचुरी शिलालेख में अंकित है कि महाभारत में प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर द्रौण भारद्वाज ने अपने चुलुक के जल से चालुक्य की उत्पत्ति की। गुजरात के चालुक्यों के लेखों में भी चुलुक-उत्पत्ति का उल्लेख है। इस प्रकार इस मत के अनुसार चालुक्य मूलत: ब्राह्मण थे जिसकी पुष्टि शिलालेखों से होती है। श्री आसोपा[1] भी चालुक्यों को आग्नेय कुल में ब्राह्मण वर्ण का मानते हैं।

2. **सूर्य वंशी मत**—राष्ट्रकूटों के सामन्त चालुक्य अरिकेसरी के एक ताम्रपत्र में, जो उत्तरी अर्कट के मेलवादी स्थान से प्राप्त हुआ है, यह उल्लेख है कि चालुक्य की उत्पत्ति सूर्य से हुई। श्री सी. वी. वैध का भी मत है कि चालुक्यों का मानव्य गोत्र उन्हें सूर्य वंशी सिद्ध करता है। श्री आसोपा इस मत से सहमत नही हैं।

3. **क्षत्रिय वंशी**—श्री डी० सी० सरकार की मान्यता है कि चालुक्यों ने यह नाम अपने पूर्व 'चलुका' से प्राप्त किया तथा वादामी के चालुक्य मूलत: कन्नड़ थे जो स्वयं को क्षत्रिय कहते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय को जन्म से क्षत्रिय कहा है। श्री सरकार ऐपिग्राफिया इन्डिया के आधार पर कहते हैं कि—"वादामी के चालुक्यों को विश्वास है कि वे हरित पुत्र हैं और मानव्य गोत्र के हैं। उनका पालन-पोपण मानव मात्र की सात माताओं द्वारा हुआ। उन्होंने कार्तिकेय देवता की कृपा से विष्णु द्वारा अपना राज्यचिह्न वाराह प्राप्त किया जिससे वे निरन्तर विजय प्राप्त करते रहे।" किन्तु इस मत की पुष्टि अन्य स्रोतों से नहीं होती।

4. **विदेशी उत्पत्ति का मत**—श्री जैक्सन तथा श्री डी० आर० भण्डारकर चालुक्यो को विदेशी जाति गुर्जर के वंश का बतलाते हैं। इनके मतानुसार अग्निकुल की चार शाखाएँ जो गुर्जरों के नेतृत्व में भारत में आई। उन्हें आबू के अग्निकुण्ड द्वारा पवित्र किया गया ताकि वे ब्राह्मणों की रक्षा बौद्धों तथा उनके विदेशी मित्रों से कर सकें। जेम्स कैम्पवैल ने इस मत की पुष्टि की है। श्री भण्डारकर ने यह भी सम्भावना व्यक्त की है कि कदम्बों की भाँति चालुक्य भी मानव्य गोत्र के हरितपुत्र थे जिससे प्रतीत होता है कि वे विदेशी जाति के पुरोहित या ब्राह्मण वर्ग के थे। उनका मत है कि गुर्जरों का एक दल भारत में दक्षिण की ओर मद्रास तक चला गया और चालुक्य कहलाया तथा दूसरा दल कन्नौज से गुजरात तक ही जा पाया। श्री आसोपा का मत है कि चालुक्य गुर्जर नहीं थे तथा गुर्जर भी विदेशी न होकर भारतीय ही थे।

5. **निम्नवर्गीय मत**—एक मत जिसके प्रवर्तक श्री एम० लैकोटे हैं जो चालुक्यों को निम्न वर्ग के चुल्लु-क्षुद्र से सम्बन्धित करते हैं। उनका कहना है कि 'चुलिका' शब्द पाली भाषा का 'चुल्ल' है जिसकी व्युत्पत्ति 'क्षुद्र' से हुई है।

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (P. 54)

श्री आसोपा का कथन है कि चालुक्य जैसे प्रतापी शासकों को मिश्रित वर्ग से सम्बन्धित करना निराधार है।

6. **अग्निवंशीय मत**—टॉड ने अनेक भाटों के कथन तथा चंदबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर आबू पर्वत के अग्नि कुण्ड से चालुक्य, प्रतिहार, परमार तथा चहमानों की उत्पत्ति मानी है। इस कथा का उल्लेख पहले किया जा चुका है। श्री आसोपा का मत है कि यह कथा इन राजपूत वंशों के राजसत्ता प्राप्त करने के काल-क्रम का द्योतक है। प्रतिहार, चालुक्य, परमार तथा चौहान क्रमशः सत्तारूढ़ होकर प्रसिद्ध हुए, किन्तु चालुक्यों का अधिकार सर्वप्रथम प्रमाणित होता है तथा उनकी राज्य सीमा भी सबसे बड़ी थी। टॉड का कथन है कि परमार, प्रतिहार, चालुक्य तथा चौहान अग्निवंशी थे किन्तु ब्राह्मणों ने उन्हें अपनी रक्षार्थ युद्ध करने हेतु क्षत्रिय बनाया। 'पृथ्वीराज रासो' में अग्निकुण्ड से उत्पत्ति की कथा पद्मगुप्त के 'नवसाहसाँक चरित' ग्रन्थ के आधार पर अपनाई गई है। टॉड, क्रुक तथा स्मिथ सभी का यह मत है कि अग्नि द्वारा विदेशी जातियों को पवित्र कर क्षत्रिय बनाया गया। श्री वी० एन० रेऊ की मान्यता है कि जिन क्षत्रियों के पूर्वज बौद्ध बन गए थे, उन्हें ब्राह्मणों ने अग्नि द्वारा पवित्र किया। श्री आसोपा भी यह मानते है कि प्राचीन काल मे सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रिय तो थे किन्तु अग्निवंशी क्षत्रियों का परिचय आरम्भिक साहित्य में आग्नेय, अग्निजया, अग्निवैश्य तथा अग्नि-स्तम्भ के रूप में सर्वप्रथम मिलता है।

चालुक्य (सोलंकियों) का मूल स्थान—डॉ० सत्यप्रकाश[1] ने गुजरात के चालुक्य वंश के संस्थापक मूलराज के मूल स्थान के सम्बन्ध में कविकृष्ण के ग्रन्थ 'रत्नमाला', 'कुमारपाल चरित', 'नौसरी दानपत्र' आदि के आधार पर यह तथ्य प्रकट किया है कि गुजरात के चालुक्यों का मूल स्थान उत्तरी भारत में सम्भवतः कन्नौज था।

श्री आसोपा[2] ने राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग के शिलालेख के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि 'चालुक्य' भौगोलिक विशेषण है जो चालुक्यों के मूल स्थान का सूचक है। उड़ीसा में खोण्डमाल पर्वत श्रेणी से निकलने वाली नदी सल्की (जो चुलुक अर्थात हथेली की आकृति की होने के कारण 'चुलुकी' कहलाई) के निकटवर्ती क्षेत्र में चालुक्य निवास करते थे। यहाँ से वे अपना विजय अभियान करते हुए गुजरात में स्थापित हुए। चालुक्य का दूसरा नाम सोलंकी भी भौगोलिक विशेषण है क्योंकि राजपूतों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ भी यह उपनाम लगाती हैं। अतः श्री आसोपा की मान्यता है कि चालुक्य (सोलंकी) राजपूत आग्नेय कुल के ब्राह्मण वर्ण से सम्बन्धित थे जिनका मूल स्थान उड़ीसा में था। कदम्बों की भाँति चालुक्य भी आरम्भ में ब्राह्मण

1. डा० सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ० 256–257)
2. पूर्वोल्लिखित (पृ० 52–54)

थे किन्तु कालान्तर में गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उन्होंने शास्त्र छोड़ कर शस्त्र धारण कर लिए तथा राजपूत वर्ग में सम्मिलित हो गए।

(7) परमार राजपूतों की उत्पत्ति (Origin of Parmaras)

परमारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी अन्य राजपूत वंशों की भाँति अनेक मत प्रचलित हैं। श्री डी० सी० गांगुली[1] ने निम्नांकित मतों का विवेचन करते हुए स्वयं की मान्यता भी व्यक्त की है कि परमार राष्ट्रकूटवंशी थे—

1. अग्निवंशी मत—चालुक्य, चौहान तथा प्रतिहारों के साथ परमारों की भी उत्पत्ति अग्निकुण्ड से मानने की पौराणिक परम्परा रही है। सर्वप्रथम पद्मगुप्त के "नवसाहसांक-चरित" में यह कथा मिलती है—"आबू पर्वत पर वशिष्ठ रहते थे। एक दिन विश्वामित्र उनकी कामधेनु गाय चुराकर ले गए, जिससे वशिष्ठ अत्यन्त कुपित हुए। उन्होने एक अग्निकुण्ड बनाकर उसमें आहुति दी, जिससे मुकुट व स्वर्ण-कवच पहिने हुए एक वीर का जन्म हुआ। इस वीर ने विश्वामित्र से कामधेनु छीनकर वशिष्ठ को लाकर दी। वशिष्ठ ने प्रसन्न होकर इस वीर का नाम परमार अर्थात 'शत्रुसंहारक' रखा। इसी वीर के वंशज परमार कहलाये।"

चदबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' में ऐसी ही कथा का उल्लेख किया है जिसका विस्तार से विवेचन किया जा चुका है। टॉड ने भी भाटों के आधार पर अग्निकुण्ड से उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी है—"एक बार देवताओं के यज्ञ में दैत्यों ने उत्पात किया और वे मांस, मज्जा, विष्ठा, रक्त आदि फैंककर पूजा स्थल को अपवित्र करने लगे। देवताओं ने दुःखी होकर महादेव से रक्षार्थ प्रार्थना की। महादेव ने अग्निकुण्ड से चार वीर उत्पन्न किए। प्रथम में सामरिक गुणों का अभाव होने से उसे द्वार पर नियुक्त किया और उसका नाम प्रतिहार रखा। दूसरे का नाम चालुक्य तथा तीसरे का नाम परमार रखा। जब ये तीनों दैत्यों को पराजित न कर सके तो चौहान नामक चौथे वीर को उत्पन्न किया जिसने दैत्यों से देवताओं की रक्षा की।" एक चारण मूकजी ने खार (परमार) की उत्पत्ति शिव तत्त्व से हुई।

'आईन-ए-अकबरी' ग्रन्थ में भी परमारों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से बतलाई गई है। परमारों के एक शिलालेख उदयपुर प्रशस्ति (1072 ई०) में उत्कीर्ण है कि—"आबू पर्वत पर वशिष्ठ से विश्वामित्र ने कामधेनु छीन ली। वशिष्ठ ने अग्निकुण्ड से एक वीर की उत्पत्ति की जो अपने पराक्रम से कामधेनु को लौटा लाया। वशिष्ठ ने उसे परमार (शत्रु को मारने वाला) नाम दिया।" नागपुर शिलालेख, पूर्णपाल के वसन्तगढ़ शिलालेख तथा आबू पर्वत शिलालेख (1230 ई.) से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। आबू शिलालेख में परमार 'धूम्रराज' की उत्पत्ति का उल्लेख होने से श्री ओझा की मान्यता है कि 'धूम्र' अथवा धुआँ के आधार पर पद्मगुप्त ने उसे अग्निवंशी मान लिया था।

1. *D. C. Ganguli* : History of Parmar Dynasty (P. 1–5)

अग्निवंशी मत को सर्वथा काल्पनिक मानना उचित नहीं होगा क्योंकि इससे परमार तथा अग्निवंशी राजपूतों के मूलवंश का संकेत अवश्य है। टॉड, कुक तथा स्मिथ की मान्यता है कि विदेशी जातियों को अग्नि द्वारा पवित्र कर उन्हें राजपूत बनाया गया। श्री वी० एन० रेऊ का मत है कि इन क्षत्रिय वंशों के पूर्वजों ने बौद्ध धर्म अपना लिया था, अतः ब्राह्मणों ने इन्हें अग्नि द्वारा पवित्र कर पुनः क्षत्रिय (राजपूत) बनाया। श्री आसोपा[1] की मान्यता है कि प्राचीन काल में सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रिय होते थे किन्तु अब अग्निवंशी क्षत्रिय हुए जिनमें परमार भी थे। परमार अर्बुद (आबू) क्षेत्र के अग्निपूजक वशिष्ठ ब्राह्मण थे जिन्होंने शत्रुओं से युद्ध करने हेतु शस्त्र धारण किए और राजपूत कहलाये।

(2) **विदेशी उत्पत्ति का मत**—विदेशी उत्पत्ति मानने वालों में श्री कैम्पबैल ने सर्वप्रथम यह बतलाया कि परमार 'गुर्जर' थे। श्री वाटसन चावड़ा राजपूतों को परमार वंशी मानते हैं और चावड़ों को बम्बई गजेटियर (1896) में गुर्जर कहा गया है। श्री भण्डारकर कैम्पबैल का समर्थन करते हुए कहते हैं कि सभी अग्निवंशी राजपूत गुर्जर थे। राजोर शिलालेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है। श्री हौर्नले का भी यही मत है।

श्री आसोपा 'गुर्जर' से विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त को केवल एक मिथक मानते हुए कहते हैं कि गुर्जर या जुज्र मारवाड़ में जोज्री नदी का निकटवर्ती प्रदेश है। इस प्रकार 'गुर्जर' उत्पत्ति का मत केवल भौगोलिक तथ्य का सूचक है, किसी वंश का नहीं।

विदेशी उत्पत्ति का दूसरा सिद्धान्त, जिसके प्रतिपादक टॉड हैं, के अनुसार परमार हूणों के वंशज हैं। इस सिद्धान्त का खण्डन स्वयं टॉड द्वारा दी गई 36 राजपूत राजवंशों की सूची से होता है जिसमें हूण और परमारों को पृथक दिखलाया गया है।

(3) **दैवी उत्पत्ति का मत**—भाटों के आधार पर कैम्पबैल ने एक कथा का उल्लेख किया है—"एक बार इन्द्र ने दुर्वा (घास) का पुतला बनाया और उसे अमृत अभिसिंचित कर अग्निकुण्ड में डाल दिया। संजीवन मंत्र का उच्चारण करते ही अग्निशिखा से एक वीर उत्पन्न हुआ जो 'मार-मार' (संहार करो) चिल्लाने लगा। इसीलिये उसका नाम परमार (शत्रु का संहारक) रखा गया।" इस वीर को आबू, धार व उज्जैन विरासत में मिले। किन्तु इस सिद्धान्त की अन्य स्रोतों से पुष्टि नहीं होती।

(4) **राष्ट्रकूटवंशी मत**—गुजरात के अहमदाबाद जिले में हरसोला स्थान पर प्राप्त एक शिलालेख (948 ई०) के आधार पर श्री डी० सी० गांगुली परमारों को राष्ट्रकूटों से उत्पन्न मानते हैं। इस लेख में अकालवर्ष का वंशज वप्पयराज

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (p.—37)

बतलाया गया है। अकालवर्ष मान्य खेत का राष्ट्रकूट शासक (951 ई०) था। वाक्पति मुंज परमार ने अमोघवर्ष की श्रीवल्लभ तथा पृथ्वीवल्लभ उपाधियाँ धारण कीं जो राष्ट्रकूटों का वंशज होना सिद्ध करती हैं। 'आइने-अकबरी' में परमार वंश के संस्थापक को दक्षिण से सम्बन्धित बतलाना भी इस मत की पुष्टि करता है।

डॉ० दशरथ शर्मा उपरोक्त मत को अस्वीकार करते हुए परमारों का सामन्त होना स्वीकार करते हैं। इसकी पुष्टि में उनका कथन है कि मान्यखेत के राष्ट्रकूटों के लेख कन्नड़ भाषा में अंकित हैं जब कि परमारों के संस्कृत भाषा में। दूसरा तर्क यह देते हैं कि परमारों के पूर्वज ब्राह्मण या ब्रह्म-क्षत्र थे। तीसरा तर्क यह है कि परमारों व राष्ट्रकूटों (राठौरों) में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध होना उन्हें राष्ट्रकूटवंशी सिद्ध नहीं करता। अतः यह मत मान्य नहीं है। डॉ० सत्य प्रकाश[1] का यह कथन कि "जब तक कोई साक्ष्य प्रकाश में नहीं आ जाता तब तक परमारों को राष्ट्रकूटों से जोड़ा जा सकता है" उचित नहीं है।

(5) **'पुरुरई' वंशी मत**—श्री आसोपा ने श्री गांगुली के आधार पर एक अन्य मत का उल्लेख किया है जिसके प्रतिपादक श्री लासेन हैं। श्री लासेन की मान्यता है कि 'पटोलमी' यूनानी लेखक द्वारा उल्लिखित 'पुरुरई' जाति से परमारों की उत्पत्ति हुई। किन्तु श्री बर्गेस ने इसे खंडन करते हुए कहा है कि पुरुरई एक स्थान विशेष के निवासी थे, न कि कोई जाति विशेष के थे। श्री गांगुली का भी यही मत है। पाटनरायण लेख (1287 ई०) तथा वसंतगढ़ लेख (1022 ई०) द्वारा भी इस मत का खंडन होता है क्योंकि इन लेखों में परमारों को सिरोही जिले के वटपुर स्थान का निवासी बतलाया गया है। श्री आसोपा ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि संस्कृत लेख में 'प्रागवाट' स्थान ही पटोलमी द्वारा उल्लिखित स्थान पुरुरई हो शकता है।

(6) **ब्रह्मक्षत्र कुलवंशी मत**—पद्मगुप्त के समकालीन लेखक हलामुध ने अपने ग्रंथ 'पिंगल सूत्रवृत्ति' में परमार राजा मुंज को ब्रह्मक्षत्र कुल (ब्राह्मण व क्षत्रिय परिवार) का वंशज बतलाया है। श्री बी. एन. रेउ ने इस कुल के क्षत्रियों के पूर्वजों द्वारा बौद्ध धर्म अपनाया जाना माना है। श्री ओझा[2] का मत है कि प्राचीन काल में ब्रह्मक्षत्र शब्द का प्रयोग उन राजवंशों के लिए किया जाता था जिनमें ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनों के गुण विद्यमान हों या जो क्षत्रिय से ब्राह्मण बने हों। शुंग, शातवाहन, कदम्ब तथा पल्लव भी प्राचीन काल में ब्राह्मण होते हुए भी क्षात्र धर्म अपना कर क्षत्रिय कहलाए थे। श्री आसोपा का भी यही मत है कि परमार अग्निपूजक वशिष्ठ ब्राह्मण थे जो बाद में क्षत्रिय बने।

परमारों का मूल स्थान—श्री आसोपा ने यह संभावना व्यक्त की है कि

1. डा० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास, राजपूत काल (पृष्ठ 223)
2. श्री जी० एच० ओझा : राजपूताना का इतिहास, भाग-1 (पृष्ठ 66)

परमार 'प्रागवाट' क्षेत्र के मूल निवासी थे। इस क्षेत्र के पूर्व में अरावली पर्वत श्रेणी रक्षा की प्राचीर थी। पूर्व अर्थात् 'प्राक' तथा रक्षा अर्थात् 'वाट' से मिलकर प्राकवाट शब्द बना है। इस क्षेत्र का केन्द्र अर्बुद (आबू) पर्वत था। प्रागवाट के निवासी होने के कारण परमार 'पौरव' कहलाये। परमार का प्रथम पुरुष वशिष्ठ के अग्निकुंड से उत्पन्न धूम्रराज था। यह मान्यता उन्हें अग्नि से सम्बन्धित करती है। इस मत के साथ ब्रह्मक्षत्र कुल का सामंजस्य करने से परमार अग्निपूजक वशिष्ठ ब्राह्मण थे जिन्होंने क्षात्र धर्म अपना लिया। श्री आसोपा[1] का मत है कि वशिष्ठ गण आग्नेय या अग्निरस थे जो पुराणों के अनुसार अग्नि पुत्र कहे गए हैं। 'पवार' भौगोलिक नाम है जो इस प्रदेश में रहने वाली सभी जातियों में प्रचलित है। अत: परमार भौगोलिक दृष्टि से पुरुरई या पवार थे। इनमें से वशिष्ठ गोत्री ब्राह्मणों ने परमार्थ प्राप्त कर राजा का पद प्राप्त किया और उनके वंशज राजपूतों के 36 वंशों में सम्मिलित कर लिए गए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (1977)
   Examine critically the various theories regarding the origin of Rajputs.
2. राजपूतों की उत्पत्ति के प्रमुख कितने मत प्रचलित है ? अग्निवंशी मत के पक्ष तथा विपक्ष के साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष निकालिए।
   How many theories are prevelent regarding the origin of Rajputs ? Evaluate the theory of Fire-origin examining the evidences in favour of and against this theory.
3. "तथाकथित सूर्य तथा चन्द्र वंश हमारे मत से आर्यों के दो दल थे जो मध्य एशिया से भारत आए"—जे. एन. आसोपा। उपरोक्त कथन की समीक्षा कीजिए।
   "The socalled Solar and Lunar sectors were in our view two hordes who came to India from Central Asia."
   —J. N. Asopa.

   Discuss the above statement.
4. राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति सम्बन्धी कौन से मत हैं ? इनकी पुष्टि में दिये गये तर्कों से आप कहाँ तक सहमत हैं ? सकारण उत्तर दीजिए।
   What are the theories of the foreign origin of Rajputs ? How far do you agree with the arguments given to support it ? Discuss critically.
5. गुर्जर-प्रतिहार, चहमान तथा परमार राजपूतों की उत्पत्ति का कौन से मत तर्कसम्मत हैं ? संक्षेप में उत्तर दीजिए।

1. पूर्वोक्त (पृष्ठ 39)

Which theories of the origin of Gurjar Pratihars, Chahmans and Parmaras are supported with arguments ? Answer in brief.

6. पाल, चन्देल, गहड़वाल, चालुक्य तथा परमार राजपूतों के मूल स्थान के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
   Discuss in brief the original home of Pal, Chandela, Gahadwala, Chalukya and Parmar Rajputs.
7. राजपूतों की उत्पत्ति का विवेचन कीजिए। (1978)
   Discuss the origin of Rajputs.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ ग्रन्थ

1. J. N. Asopa : Origin of Rajputs.
2. Majumdar, R. C. : History of Ancient Bengal.
3. Bose, N. S. : History of Chandellas.
4. Sharma, Dashrath : Early Chauhan Dynasties.
5. Ganguli, D. C. : History of Parmar Dynasty.
6. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूतकाल
7. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग–1
8. डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास
9. James Tod : Annals and Antiquities of Rajasthan.
10. Roma Niyogi : History of the Gahadavals.

2 प्रतिहारों का उत्कर्ष तथा पतन

(Rise and Fall of Pratiharas)

गुर्जर-प्रतिहारों की उत्पत्ति
(Origin of Gurjar-Pratiharas)

राजपूतों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में प्रथम अध्याय में गुर्जर-प्रतिहारों की उत्पत्ति सम्बन्धी समस्त मतों का विवेचन कर हम इस तथ्य का निरूपण कर चुके हैं कि गुर्जर-प्रतिहार भारतीय थे। 'गुर्जर' उपाधि प्रतिहारों के भौगोलिक सम्बन्ध का सूचक है न कि किसी जाति विशेष का। विदेशी उत्पत्ति सम्बन्धी मत का खण्डन करते हुए विश्वसनीय साक्ष्यों के आधार पर अधिकांश इतिहासकार प्रतिहारों को भारतीय उत्पत्ति के क्षत्रियवंश का स्वीकार करते हैं। डॉ० दशरथ शर्मा[1] का मत है कि—"भिल्लमाल (भीनमाल) तथा जालौर अनेक शताब्दियों तक गुर्जर प्रदेश माना जाता था और यह प्रदेश ही प्रतिहारों का मूल निवास-स्थान था।" डॉ० सत्यप्रकाश[2] भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि—"प्रतिहार वंश गुर्जरों की शाखा थी और वे भारतीय क्षत्रिय वंश से सम्बन्धित थे।" श्री आसोपा[3] की भी मान्यता है कि—"प्रतिहारों के नाम के साथ जो 'गुर्जर' विशेषण बाद के इतिहासकारों ने जोड़ा, वह भौगोलिक महत्त्व का सूचक है।" श्री आसोपा ने प्रतिहारों को अरब यात्रियों द्वारा 'जुर्ज' कहे जाने की व्याख्या करते हुए उन्होंने जोधपुर मण्डल में मेड़ता से निकलने वाली नदी 'जोजरी' के निकटवर्ती प्रदेश को गुर्जरों का मूल प्रदेश माना है। अतः गुर्जर-प्रतिहार विदेशी उत्पत्ति के न होकर भारतीय क्षत्रियवंशी थे।

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Rajasthan Through the Ages (p. 119).
2. *Dr. Satya Prakash* : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (p. 41).
3. *Jai Narayan Asopa* : Origin of Rajputs (p. 70)

गुर्जर-प्रतिहारों का मूल निवास-स्थान
(Original Home of Gurjar-Pratiharas)

गुर्जर-प्रतिहारों के मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध में भी उपलब्ध लक्ष्यों के आधार पर विचार किया जा चुका है। प्रतिहारों का विशेषण 'गुर्जर' किसी जाति-विशेष का सूचक न होकर उस प्रदेश का द्योतक है जिसमें प्रतिहार मूलतः निवास करते थे तथा जहाँ उन्होंने अपना प्रारम्भिक राज्य स्थापित किया। राजस्थान का वह भाग जिसमें प्रतिहारों ने प्रथम राज्य स्थापित किया वह 'गुर्जरत्रा' या गुर्जर प्रदेश कहलाता था। डॉ० गोपीनाथ शर्मा[1] ने विश्वसनीय साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है—"जोधपुर के शिलालेखों से प्रमाणित होता है कि प्रतिहारों का अधिवासन मारवाड़ में लगभग छठी शताब्दी के द्वितीय चरण में हो चुका था। चूँकि उस समय राजस्थान का भाग गुर्जरत्रा कहलाता था। इसीलिए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने गुर्जर राज्य की राजधानी का नाम 'पीलो मोलो' (भीनमाल) या बाड़मेर बताया है। चूँकि प्रतिहारों का उल्लेख गुर्जर शब्द या गुर्जरत्रा अथवा गुर्जरेश्वर के सम्बन्ध में प्राचीन आधारों में मिलता है, इनको गुर्जर-प्रतिहार कहते हैं।" श्री आसोपा की भी मान्यता है कि जोधपुर मण्डल की नदी जोज्री का निकट-वर्ती प्रदेश प्रतिहारों का मूल स्थान था। इसीलिए अरब यात्रियों ने प्रतिहारों को जुज्र या गुर्जर कहा है।

प्रतिहारों की प्रमुख शाखाओं द्वारा उत्तरी भारत में स्थापित राज्यों का विवरण देने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि हर्ष के साम्राज्य से भी बड़ा साम्राज्य स्थापित करने वाले प्रतिहारों के उत्कर्ष के पूर्व तथा हर्ष की मृत्यु के उपरांत उत्तरी भारत की राजनैतिक दशा कैसी थी। हर्ष की राजधानी कन्नौज थी तथा प्रतिहारों ने भी कन्नौज को अधिकृत कर उसे अपने विशाल साम्राज्य की राजधानी बनाया। अतः हर्ष की मृत्यु से प्रतिहारों के आविर्भाव तक कन्नौज राज्य के इतिहास का संक्षिप्त अवलोकन किया जाना वांछनीय है।

हर्ष की मृत्यु से प्रतिहारों के आविर्भाव तक कन्नौज राज्य का इतिहास
(History of Kanauj from the death of Harsha to the advent of Pratiharas)

हर्ष की 648 ई. में मृत्यु के बाद की भारतीय राजनैतिक दशा का विवरण केवल चीनी सूत्रों के आधार पर ज्ञात होता है। डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी[2] ने चीनी लेखक

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास–प्रथम भाग (पृष्ठ 60)
2. *Dr. R. S. Tripathi* : History of Kanauj (p. 187).

मत्वान-लिन (13वीं शताब्दी) के आधार पर तत्कालीन भारत की अराजकता की दशा का चित्रण किया है।

हर्ष की मृत्यु के बाद कन्नौज की राज्यगद्दी को हर्ष के एक मन्त्री अ-ला-ना-शुन अर्थात् अर्जुन ने छीन लिया था। 648 ई. में इसी अर्जुन के राज्यकाल में चीनी सम्राट ने अपने दूत वांगहुयेन्तसी की अध्यक्षता में एक शिष्टमण्डल भारत भेजा। किन्तु हर्ष की मृत्यु होने के कारण कन्नौज में क्रांति हो गई थी। इस क्रांति के नेता हर्ष के मन्त्री अर्जुन ने राज्य बलपूर्वक हथिया लिया था। अर्जुन ने इस चीनी दूत को अपने राज्य में प्रविष्ट होने से रोकने के लिए एक सेना भेजी जिसने चीनी दूत के 30 अंगरक्षक मार डाले तथा भारतीय राजाओं द्वारा उसे दिये गए समस्त उपहार छीन लिए। वांगहुयेन्तसी भाग कर तिब्बत सहायता के लिए गया क्योंकि वह इसका प्रतिशोध लेना चाहता था। तिब्बत के राजा स्रांग-सांग गोम्पो ने 1200 सैनिक तथा नेपाल के राजा अमांशुवर्मन ने 7000 सैनिक वांगहुयेन्तसी को सहायतार्थ दिये। वांगहुयेन्तसी ने पुनः इस सेना के साथ भारत आकर अर्जुन से युद्ध किया। अर्जुन के साथ तीन दिन के घमासान युद्ध में तीन हजार भारतीय सैनिक मारे गए तथा 10 हजार सैनिक नदी में डूब गये। अर्जुन ने भाग कर दूसरे राज्य में शरण ली। अर्जुन ने अपनी बिखरी सेना को पुनः व्यवस्थित कर चीनी दूत से युद्ध किया किन्तु उसके एक हजार सैनिक मारे गये तथा अनेक सैनिकों के साथ वह पराजित हो बन्दी बना लिया गया। चीनी दूत ने तो-पो-हो-लो (चम्पारन या छपरा) पर अधिकार कर लिया। अर्जुन के बाद उसकी रानी ने चीनी राजदूत से युद्ध जारी रखा किन्तु खियेन तो-वी (मण्डक) नदी के तट पर वह पराजित हुई। रानी अन्य स्त्रियों तथा हजारों सैनिकों व पशुओं के साथ बन्दी बना ली गई। चीनी सैनिकों ने उत्तरी भारत में आतंक मचा दिया और 580 प्राचीर युक्त बड़े नगरों को ध्वस्त कर दिया। पूर्वी भारत के राजकुमार भास्कर वर्मन ने चीनी दूत को अनेक बहुमूल्य उपहार दिये। चीनी दूत अर्जुन को लेकर चीन वापस लौट गया। अर्जुन वहाँ मृत्यु पर्यन्त रहा तथा उसकी मृत्यु के बाद चीनी सम्राट ताई-सांग ने उसकी मूर्ति बनवाकर उसे मुख्य मार्ग पर स्थापित कर सम्मानित किया।

चीनी स्रोत पर आधारित उपरोक्त विवरण को इतिहासकार संदिग्ध मानते हैं क्योंकि इसकी पुष्टि तिब्बती व नैपाली साक्ष्यों से नहीं होती। सी. वी. वैद्य इसे अस्वीकार करते हैं किन्तु डॉ. आर. सी. मजूमदार की मान्यता है कि चीनी राजदूत का युद्ध हिमालय के निकटवर्ती प्रदेश के किसी सरदार से हुआ होगा। डॉ. सत्यप्रकाश[1] इस सम्भावना को प्रकट करते हैं कि हर्ष की मृत्यु के बाद कोई उत्तराधिकारी न होने तथा चीनी दूत द्वारा किसी एक राज्य के लिए प्रतिद्वन्दी में रुचि दिखाने के कारण अन्य उसके शत्रु बन गये होंगे। किन्तु, यह तथ्य स्पष्ट होता है कि

1 डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूत काल (पृष्ठ 3)

चीनी आक्रमण से हर्ष की प्रभुसत्ता का अन्तिम चिह्न नष्ट हो गया तथा अधीनस्थ सभी राज्य स्वतन्त्र हो गये जिसके कारण केन्द्रीय सत्ता के अभाव में भारत में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। स्वाधीन हुए प्रदेशों तथा उत्तरी भारत की राजनैतिक दशा का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है—

(1) मगध के गुप्तवंशी शासक

मगध में उत्तरवर्ती गुप्त शासक राज्य करते आ रहे थे। 'हर्षचरित' से विदित होता है कि मगध का शासक माधवगुप्त तथा उसका भाई कुमारगुप्त हर्ष के दरबार में मित्र के रूप में रहते थे। माधवगुप्त की मृत्यु के बाद 672 ई. में उसका पुत्र आदित्यसेन मगध का शासक बना। शाहपुर तथा मन्दर अभिलेखों से आदित्यसेन को 'महाराजाधिराज' तथा 'परमभट्टारक' उपाधियों से विभूषित पाते हैं। अन्य तथ्य जो प्रकट होते हैं उनमें उसे अश्वमेध यज्ञ करने वाला तथा उसकी पुत्री का विवाह मौखरी भोगवर्मन से तथा इनसे उत्पन्न पुत्री का विवाह नैपाल के सम्राट अंशुवर्मन की बहिन के पुत्र से होना, प्रमुख हैं। इन वैवाहिक सम्बन्धों से आदित्यसेन ने अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ कर ली थी। देवगढ़ (संथाल परगना) के एक शिलालेख में आदित्यसेन द्वारा चोल साम्राज्य पर विजय प्राप्त कर अश्वमेध यज्ञ करना बतलाया गया है। नैपाल के अभिलेखों में उसे 'आदित्यसेन महान् मगध का उत्कृष्ट शासक' कहा गया है। इससे प्रकट होता है कि हर्ष की मृत्यु के उपरान्त अराजकता की स्थिति का लाभ उठा कर मगध स्वतन्त्र राज्य बन गया था। आदित्यसेन के उत्तराधिकारी क्रमशः देवगुप्त, विष्णुगुप्त तथा जीवितगुप्त थे। आठवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में कन्नौज के शासक यशोवर्मन ने गौड़ और मगध के शासकों को पराजित कर मार डाला। यह तथ्य 'गौंड़वहो' काव्य से भी प्रमाणित होता है। डॉ. सत्यप्रकाश की मान्यता है कि मगध का अन्तिम शासक जीवितगुप्त ही था जो या तो गौड़ नरेश अथवा यशोवर्मन के हाथों पराजित हुआ।

(2) कन्नौज का शासक यशोवर्मन

डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार हर्ष की मृत्यु के बाद कन्नौज की गद्दी पर बलपूर्वक अधिकार करने वाले अर्जुन के पतन के उपरान्त यशोवर्मन के उत्कर्ष तक लगभग 75 वर्ष की अवधि इतिहास में अंधयुग की भाँति है क्योंकि कोई साक्ष्य इस अवधि के तथ्यों को प्रकट नहीं करते। श्री कनिंघम का विचार है कि 700 ई. में रणमल कन्नौज का शासक था जिसने सिंध पर आक्रमण किया था। अबुलफजल ने 'आयने-अकबरी' में लिखा है कि 715 ई. में मुहम्मद बिन कासिम का समकालीन हरचन्द कन्नौज का शासक बना, किन्तु साक्ष्यों से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती। यदि यह तथ्य ठीक हो तो हरचन्द यशोवर्मन का पूर्वगामी शासक सिद्ध होता है।

यशोवर्मन के सम्बन्ध में तथ्य उसके राजकवि वाक्पति द्वारा रचित प्राकृत भाषा के काव्य ग्रन्थ 'गौड़वहो' से प्रकट होते हैं। इस ग्रन्थ में यशोवर्मन की 'विजय-

यात्रा' का विवरण मिलता है। यशोवर्मन ने सूर्यघाटी को पार कर विन्ध्य पर्वत में स्थित विन्ध्यवासिनी देवी की स्तुति की। इसके बाद उसने मगध के राजा को युद्ध में पराजित कर मार डाला। फिर वह सागर तट की ओर बढ़ा और उसने वंग के राजा को पराजित किया। यशोवर्मन ने दक्षिण के राजा से उपहार लिये। वह मलय पर्वत पार कर पश्चिमी घाट के किनारे होता हुआ नर्मदा तट पर पहुँचा और उसे पार कर वह मरुदेश (राजस्थान) होता हुआ श्रीकंठ (थानेश्वर) गया। वहाँ से वह कुरुक्षेत्र होता हुआ अयोध्या आया और फिर मन्दार पर्वत के निवासियों को हटाता हुआ वह हिमालय की ओर चला गया। इसके बाद कन्नौज लौटने पर उसने सभी विजित राजाओं को मुक्त कर दिया।

नालन्दा से प्राप्त एक शिलालेख में यशोवर्मन को सार्वभौम सत्ता सम्पन्न सम्राट कहा गया है। इससे प्रकट होता है कि यशोवर्मन ने मगध पर अधिकार कर अपना राज्य गौड़ (बंगाल) तक विस्तृत किया। चालुक्य सम्राट पुलकेशिन द्वितीय के प्रपौत्र सम्राट विजयादित्य के शिलालेख में विजयादित्य द्वारा एक राजा 'सकलोत्तरापथनाथ' को युद्ध में पराजित होना बतलाया गया है किन्तु अन्य प्रमाणों के आधार पर विजयादित्य को बन्दी बनाया जाना प्रकट होता है। डॉ. सत्यप्रकाश का मत है कि यह राजा यशोवर्मन ही था जिसने दक्षिण में विजय प्राप्त की।

चीनी स्रोतों के आधार पर मध्य भारत में यी-सा-फू-मो नामक राजा राज्य करता था जिसने 731 ई. मे चीनी सम्राट के दरबार में अपना बौद्ध मन्त्री पू-रा-सिम (बुद्धसेन) भेजा था। यी-सा-फू-मो का समीकरण यशोवर्मन से किया जा सकता है। डॉ. आर. सी. मजूमदार का मत है कि यशोवर्मन तथा कश्मीर के राजा ललितादित्य, मुक्तपीड़ दोनों मित्र थे तथा वे अरबों तथा तिब्बत वालों के विरुद्ध चीनी सहायता पाने के इच्छुक थे। इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि यशोवर्मन ने पश्चिमी भारत को भी विजित कर अपने साम्राज्य में मिलाया था। यशोवर्मन तथा ललितादित्य दोनों ने मिलकर अरबों को पराजित किया किन्तु अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के कारण वे परस्पर शत्रु बन गये। 'गौड़वहो' तथा 'राजतरंगिणी' से यह तथ्य प्रमाणित होता है। एक बार सन्धि हो जाने पर भी कश्मीर के शासक ने पुनः युद्ध की घोषणा कर दी। राजतरंगिणी में कहा गया है कि कान्यकुब्ज (कन्नौज) की राज्य सीमा जो जमुना से लेकर कालिका नदी तक विस्तृत थी, ललितादित्य के भवन के आंगन के समान थी और उसको धूलधूसरित कर दिया गया था। इससे विदित होता है कि कन्नौज पर ललितादित्य का अधिकार हो गया था और यशोवर्मन को मार डाला गया।

यशोवर्मन के राज्यकाल की तिथियाँ 700 से 740 ई. तक मानी जा सकती हैं। यशोवर्मन एक महान् विजेता तथा शासक ही नहीं था, वह विद्वानों का आश्रय-दाता भी था। उसके आश्रम में 'मालती माधव', 'महावीर चरित' तथा 'उत्तर राम चरित' संस्कृत नाटकों का रचयिता भवभूति तथा 'माहु-माह वियाय' तथा 'गौड़वहो'

हर्ष में कुछ मन-मुटाव हो गया था किन्तु शीघ्र ही समझौता हो गया। हर्ष की प्रयाग-सभा में भास्करवर्मन उपस्थित था। शशांक की पराज्य के वाद भास्करवर्मन का वंगाल के कुछ भाग पर अधिकार हो गया था।

हर्ष की मृत्यु के वाद चीनी राजदूत द्वारा कन्नौज पर विजय प्राप्त करने के पश्चात भास्करवर्मन ने चीनी राजदूत को अनेक उपहार दिए। जनश्रुति के आधार पर विदित होता है कि तिब्वत के राजा ने असम पर अधिकार कर लिया। भास्कर-वर्मन के उत्तराधिकारियों के विषय में कोई तथ्य ज्ञात नहीं हो सके हैं।

(7) वंगाल

शशांक की मृत्यु के वाद वंगाल अनेक भागों में विभक्त हो गया था। ह्वेनसांग ने इन भागों के नाम काजांगल (राजमहल), पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी वंगाल), कर्ण-सुवर्ण (पश्चिमी वंगाल), ताम्रलिप्ति तथा समतट (पूर्वी वंगाल) वतलाये हैं। कर्ण-सुवर्ण में भास्करवर्मन का अधिकार रहा किन्तु शीघ्र ही जयनाग नामक शासक ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। सम्भवत: जयनाग के उत्तराधिकारियों से उत्तरवर्ती गुप्त शासको ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया। ह्वेनसांग के विवरण से विदित होता है कि समतट में ब्राह्मण शासकों को हटाकर वौद्ध शासकों ने राज्य किया। ये खड़गवंशी शासक पूर्वी, मध्य तथा दक्षिणी वंगाल पर सातवीं शताब्दी में शासन कर रहे थे। इनके वाद यशोवर्मन ने उत्तरी तथा पश्चिमी वंगाल पर विजय प्राप्त की। कश्मीर के शासक ललितादित्य मुक्तापीड़ ने वंगाल पर कुछ समय तक अधिकार वनाए रखा। इसके वाद वंगाल में 650 से 750 ई. तक अराजकता वनी रही।

(8) गुर्जरत्रा

दसवीं शताब्दी तक राजस्थान के अधिकांश भाग गुर्जरत्रा के नाम से जाने जाते थे। ह्वेनसांग ने इस प्रदेश को क्रू-ची-लो (गुर्जरा) के नाम से पुकारा है। इस प्रदेश में गुर्जर-प्रतिहार, गुहिल, चपोतक तथा चहमान राजपूत वंशों के राज्य थे। इन वंशों का विस्तृत विवरण यथास्थान आगे किया जायेगा। इनमें से सर्वाधिक शक्तिशाली गुर्जर-प्रतिहार थ जिन्होने हर्ष के वाद उत्तरी भारत में साम्राज्य स्थापित किया।

(9) सिन्ध तथा पश्चिमी सीमावर्ती राज्य

सिन्ध के शासकों का विवरण 'चचनामा' नामक ग्रन्थ में मिलता है। सिन्ध के शासक साहिरास की राज्य सीमा कश्मीर से मुल्तान तक थी। सिन्ध के उत्तर में कपिशा (कावुल) तथा कावुल के दक्षिण में जावुलिस्तान था। सातवीं शताव्दी में ये दोनों राज्य भारत के भाग थे। कपिशा के शासक क्षत्रिय तथा जावुलिस्तान के राजा शाही वंश के थे। सिन्ध के शासक साहिरास की राज्य सीमा उत्तर में कश्मीर, पूर्व में कन्नौज तथा पश्चिम में मकरान तक थी। अलोर उसकी राजधानी थी। साहिरास के पुत्र रायसहासी द्वितीय के शासन काल में चच नामक ब्राह्मण शक्तिशाली हो गया था तथा रायसहासी के वाद शासक वन गया। उसने मकरान का एक भाग अपने

राज्य में मिलाया। वह 640 से 708 ई. के मध्य शासक रहा। चच ने रायसहासी की विधवा रानी से विवाह किया जिससे उसके दो पुत्र दाहरशाह तथा दाहर हुए। चच के वाद उसके भाई चन्द्र ने राज्य किया किन्तु चन्द्र की मृत्यु के बाद राज्य दाहरशाह तथा दाहर में विभक्त हो गया। दाहरशाह की मृत्यु के पश्चात् 700 ई. में दाहर ही सम्पूर्ण राज्य का अधिपति वना। दाहर के समय ही सिन्ध पर अरवों का आक्रमण हुआ।

अरव आक्रमण—मोहम्मद साहव की 632 ई. में मृत्यु के वाद मुसलमानों ने अरव साम्राज्य के अन्तर्गत सीरिया, मिश्र, स्पेन, फ्रांस आदि देशों को सम्मिलित कर लिया था। पूर्व में 650 ई. तक इनकी साम्राज्य-सीमा हिन्दुकुश पर्वत तक पहुँच गई थी। अतः अरवों की दृष्टि भारत पर आक्रमण करने की ओर गई। खलीफा उमर (634-644 ई.) के समय अरवों ने जलमार्ग द्वारा भारत पर आक्रमण के असफल प्रयास किये। अरवों ने कावुल तथा जावुलिस्तान पर अधिकार करने में लगभग 50 वर्ष तक संघर्ष करने के वाद सफलता प्राप्त की।

'चचनामा' से विदित होता है कि अरवों ने सिन्ध पर जल मार्ग द्वारा 643 ई. में आक्रमण किया किन्तु देवल वन्दरगाह के युद्ध में अरव पराजित हुए। खलीफा अली के समय 660 ई. में अरवों ने स्थल-मार्ग से सिन्ध पर हमला किया किन्तु पुनः वे पराजित हुए। 708 ई. में ईराक के गवर्नर हज्जाज ने सिन्ध पर स्थल मार्ग से आक्रमण की तैयारी की। युद्ध का कारण यह था कि देवल के निकट समुद्री डाकुओं ने लंका से अरव जाती हुई मुस्लिम स्त्रियों का अपहरण कर लिया तथा दाहर ने इन डाकुओं से स्त्रियों को मुक्त करने में अपनी असमर्थता दिखलाई। अव्दुल्ला तथा वान्दडील के सेनापतित्व में अरवों की सेना को दाहर के पुत्र जयसिंह ने दोनों वार पराजित कर सेनापतियों को मार डाला। तीसरी वार हज्जाज ने अपने भतीजे व दामाद मुहम्मद विन कासिम के नेतृत्व में सिन्ध पर आक्रमण किया। कासिम नीरुन (हैदरावाद सिन्ध) की ओर वढ़ा जहाँ के वौद्धों ने उसकी सहायता की। कासिम सिन्धु नदी के किनारे आगे बढ़ा तथा मार्ग के छोटे शासकों से सन्धि कर उन्हें प्रलोभन देता हुआ दाहर की सेना के समक्ष पहुँच गया। भयंकर युद्ध हुआ किन्तु दाहर की मृत्यु से अरवों की विजय हो गई। दाहर का पुत्र जयसिंह ब्राह्मणावाद गया तथा रोर के दुर्ग की रक्षा विधवा रानी ने की किन्तु अन्त में उसने दुर्ग की समस्त स्त्रियों के साथ जौहर किया। अरवो ने जयसिंह को हराकर ब्राह्मणा-वाद पर भी अधिकार कर लिया। हज्जाज की 714 ई. में मृत्यु होने पर मुहम्मद विन कासिम को वापस वुला कर उसे मार डाला गया। अरव सेना के वापस जाते ही जयसिंह ने पुनः ब्राह्मणावाद पर अधिकार कर लिया। 717 ई. में खलीफा उमर द्वितीय ने सिन्ध शासको को इस शर्त पर स्वाधीन कर दिया कि वे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें। जयसिंह व अन्य शासकों ने इसे स्वीकार कर लिया। 724 ई. में खलीफा हिशाम ने सिन्ध के गवर्नर जुनैद पर धर्मद्रोही होने का आरोप लगा कर

आक्रमण किया किन्तु जुनैद ने उसे हरा कर बन्दी बनाया। जयसिंह सिन्ध के हिन्दू राजवंश का अन्तिम शासक था।

अरबों का पश्चिमी भारत पर आक्रमण—मुहम्मद बिन कासिम की भाँति जुनैद ने भारत के पश्चिमी प्रदेश पर आक्रमण किये। वह बेलामान, जुर्ज, मरुप्रदेश, भड़ौंच तथा उज्जैन तक बढ़ते गए। अन्य साक्ष्यों से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि अरबों ने राजस्थान के सैन्धव, कच्छिल, सूरक्षेत्र, चवोत्क, मौर्य तथा गुर्जरों को पराजित कर वे दक्षिण में नवसारी तक गए। किन्तु सफलता स्थायी न हो सकी क्योंकि गुर्जर-प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय तथा चालुक्य नरेश पुलकेशी ने अरबों को पराजित कर पीछे खदेड़ दिया।

उत्तरी भारत में जुनैद ने किराज पर विजय प्राप्त की तथा कश्मीर व कन्नौज पर आक्रमण किया। कन्नौज के शासक यशोवर्मन तथा कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तपीड़ ने अरबों को अपने प्रदेश में आने से रोक दिया। अतः आठवीं शताब्दी तक अरबों का प्रभाव सिन्ध पर भी नाममात्र का रह गया। उनका अधिकार केवल मुल्तान तक ही रह गया। उत्तरी भारत में गुर्जर-प्रतिहारों तथा चालुक्यों के आविर्भाव से अरबों का भारत-प्रवेश का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

हर्ष की मृत्योपरान्त भारत की राजनैतिक स्थिति तथा कन्नौज का इतिहास का जो विवेचन अभी किया जा चुका है, वह गुर्जर-प्रतिहारों के आविर्भाव व उत्कर्ष को समझने के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है।

गुर्जर–प्रतिहारों का आविर्भाव
(The Advent of Gurjar-Pratiharas)

गुर्जर-प्रतिहारों के प्राचीनतम शिलालेख जोधपुर तथा घटियाला स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इनके आधार पर गुर्जर-प्रतिहारों का आविर्भाव गुर्जरत्रा (राजस्थान) प्रदेश में हुआ। गुर्जरत्रा का समीकरण डॉ. बूलर के अनुसार गुजरात से नहीं किया जा सकता क्योंकि गुजरात के लिए 'गुर्जर-भूमि' का नाम 12वीं शताब्दी में प्रथम बार चालुक्यों ने दिया। प्राचीन काल में राजस्थान ही 'गुर्जरत्रा' कहलाता था। राजस्थान के माण्डव्यपुर (मण्डोर) स्थान गुर्जर-प्रतिहारों का प्रारम्भिक शक्ति केन्द्र था। एच० सी० रे का भी यही मत है। श्री आसोपा भी जोधपुर मण्डल की नदी 'जोजरी' के निकटवर्ती प्रदेश में निवास करने वाले प्रतिहारों को 'जुज्र' या गुर्जर मानते हैं। मण्डोर वंश के चौथे शासक नागभट्ट (625–650 ई.) ने मेदान्तक (मेड़ता) को राजधानी बनाया। ह्वेनसाँग ने भिल्लमल (भीनमाल) को गुर्जर-प्रतिहारों की राजधानी माना है। गुर्जर-प्रतिहारों की एक शाखा के राज्य की राजधानी भृगुकच्छ (भड़ौंच) थी। इसी शाखा के प्रतिहारों ने उत्तरी भारत में साम्राज्य निर्माण कर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि गुर्जर-प्रतिहारों का मूल शक्ति केन्द्र राजस्थान में था तथा उनकी विभिन्न शाखाओं द्वारा पृथक राज्य स्थापित कर

भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपनी राजधानियाँ बनाईं। गुर्जर-प्रतिहारों की चार प्रमुख शाखाएँ निम्नांकित थीं—

1. मण्डौर के गुर्जर-प्रतिहार,
2. भृगुकच्छ (भड़ौंच) के गुर्जर-प्रतिहार,
3. राजोगढ़ के गुर्जर-प्रतिहार,
4. जालौर, उज्जैन तथा कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार।

इनका विस्तृत विवरण निम्नांकित है—

(1) मण्डौर के गुर्जर-प्रतिहार

गुर्जर-प्रतिहारों की मण्डोर शाखा के प्रमुख शासकों का विवरण ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर निम्नांकित है—

1. **हरिश्चन्द्र** (550 ई.)—मण्डौर की गुर्जर-प्रतिहार शाखा का संस्थापक हरिश्चन्द्र नामक एक ब्राह्मण था जिसे रोहिलद्धि भी कहते हैं। जोधपुर शिलालेख (836 ई.) तथा घटियाला के दो शिलालेख (837 तथा 861 ई.) में इस शाखा के 12 शासकों की वंशावली दी गई है। हरिश्चन्द्र को उत्कृष्ट कोटि का विद्वान, वेद-शास्त्रों का ज्ञाता तथा प्रजापति के समान माना गया है। इसे प्रतिहारों का गुरु भी कहा गया है। हरिश्चन्द्र ने दो विवाह किये—एक ब्राह्मण कन्या से तथा दूसरा एक क्षत्रिय कन्या भद्रा से। भद्रा से उत्पन्न संतान क्षत्रिय प्रतिहार तथा ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न ब्राह्मण प्रतिहार कहलाये। भद्रा से चार पुत्र हुए—भोगभट्ट, कक्क, रज्जिल और दद्द। इन पुत्रों ने माण्डव्यपुर (मंडौर) पर अधिकार कर उसके चारों ओर एक प्राचीर बनवाई। शिलालेखों में इन्हें राम के भाई लक्ष्मण से सम्बन्धित बतलाया गया है क्योंकि राम के वनवास के समय लक्ष्मण ने प्रतिहार का कार्य किया था। तीसरे पुत्र रज्जिल से प्रतिहार-वंशावली आरम्भ होती है।

2. **नरभट्ट** (600 ई.)—रज्जिल के बाद उसका पुत्र नरभट्ट गद्दी पर बैठा। नरभट्ट की रण-कुशलता के कारण उसे शिलालेखों में पिल्लापल्ली की उपाधि दी गई है।

3. **नागभट्ट** (625 ई.)—घटियाला शिलालेख के अनुसार रज्जिल का पुत्र नागभट्ट (नाहड़) ने अपनी राज्य सीमा का विस्तार कर अपनी राजधानी मेदान्तकपुरा (मेड़ता) बना ली। ह्वेनसाँग ने अपनी गुर्जरत्रा-यात्रा इसी शासक के समय की थी। ह्वेनसाँग राजा को क्षत्रिय वंशी किन्तु बौद्ध धर्म का उपासक कहता है। किन्तु जोधपुर शिलालेख का आरम्भ "ओम नमो वैष्णव:" से होना नागभट्ट के बौद्ध होने की पुष्टि नहीं करता। सम्भवत: उसकी धर्म-सहिष्णुता के कारण ह्वेनसाँग को उसके बौद्ध होने का भ्रम हो गया।

4. **तट तथा भोज** (650 ई.)—नागभट्ट की रानी जाज्जिका देवी से तट तथा भोज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। नागभट्ट के बाद तट गद्दी पर बैठा किन्तु वह जीवन को क्षणभंगुर समझ कर मण्डोर के पवित्र आश्रम में जाकर धार्मिक क्रियाओं

में संलग्न हो गया तथा अपने छोटे भाई भोज को राज्य सौंप दिया। डॉ. आर. सी. मजूमदार का मत है कि भोज के राज्य-काल में ही ह्वेनसांग ने गुर्जरत्रा (राजस्थान) की यात्रा की थी किन्तु इस मत की पुष्टि शिलालेखों से नहीं होती।

5. यशोवर्धन (675 ई.)—भोज की मृत्यु के बाद तट का पुत्र यशोवर्धन गद्दी पर बैठा। उसके समय शालवंश के शासक पृथुवर्धन ने गुर्जर राज्य पर आक्रमण किया। राबोली ताम्रपत्र में पृथुवर्धन को विजेता बतलाया गया है किन्तु यह विजय स्थायी नहीं थी। जोधपुर शिलालेख से यशोवर्धन द्वारा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना उत्कीर्ण है।

6. कन्दूक (700 ई.) तथा शिलूका (725 ई.)—यशोवर्धन के बाद के शासक कन्दूक के समय कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। कन्दूक के पुत्र शिलूका ने अपनी राज्य-सीमा स्त्रवाणी (पंजाब) तथा वल्ल (जैसलमेर) राज्यों तक विस्तृत की। जोधपुर शिलालेख में उसे मही जाति का विजेता बताया गया है। उसने त्रेता नामक स्थान पर सिद्धेश्वर महादेव का मन्दिर तथा एक नगर का निर्माण भी किया। अरब लेखक अल-बिलादुरी ने लिखा है कि जुनैद ने मरमद, मण्डल, बेलमन तथा जर्ज स्थानों पर विजय प्राप्त की। ये स्थान गुर्जरत्रा (राजस्थान) में थे। खलीफा हाशम के सेनापति जुनैद ने यह आक्रमण 724–743 ई. के मध्य किया था। सम्भवत: शिलूका ने इस आक्रमण के बाद राज्य में पुन: व्यवस्था की। घटियाला शिलालेख के आधार पर शिलूका ने वल्ल मण्डल के शासक भाटी देवराज को पराजित कर उसका छत्र छीना।

7. झोट्टा (750 ई.) तथा भिल्लादित्य (775 ई.)—शिलालेख के अनुसार शिलूका के उत्तराधिकारी झोट्टा ने कुछ समय के शासन के उपरान्त अपने पुत्र भिल्लादित्य को राज्य सौंप दिया और स्वयं ने भागीरथी की शरण ली। भिल्ला-दित्य ने भी युवावस्था में ही 18 वर्ष राज्य किया और अपने उत्तराधिकारी कक्क को गद्दी सौंप दी तथा व्रत धारण कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

8. कक्क (800 ई.)—कक्क ने मुद्गगिरि (मुंगेर) स्थान पर गौड़ नरेश धर्मपाल को पराजित कर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। यह युद्ध उसने अकेले ही गौड़ों से नहीं किया क्योंकि गुर्जरत्रा और मुंगेर के मध्य साम्राज्यवादी गुर्जर-प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय की राजधानी कन्नौज थी। अत: यह मान्यता उचित जान पड़ती है कि कक्क ने नागभट्ट द्वितीय के सामन्त के रूप में गौड़ों से युद्ध किया। डॉ० सत्य प्रकाश का भी यही मत है कि "इस समय गुर्जरत्रा के गुर्जर-प्रतिहारों ने कान्यकुब्ज के गुर्जर-प्रतिहारों की दासता स्वीकार कर ली थी और कक्क सामन्तीय स्तर पर वहाँ शासन कर रहा था।"[1] दौलतपुर (जोधपुर) ताम्रपत्र से भी इस मत का समर्थन होता है कि गुर्जरत्रा प्रदेश से वत्सराज के समय से ही कर वसूल किया जाता

1. पूर्वोक्त (पृ० 44)

था। कक्क ने अपने ब्राह्मणवंशी परम्परा का निर्वाह किया। वह व्याकरण, तर्क-शास्त्र, खगोल-शास्त्र, विभिन्न कलाओं आदि में पारंगत था। वह अनेक भाषाओं में उत्कृष्ट काव्य-रचना करता था। यह तथ्य बाउक के शिलालेख से प्रकट होता है।

9. **बाउक** (825-837 ई.)—कक्क के पश्चात् उसकी भाटीवंशी रानी पद्मिनी से उत्पन्न पुत्र बाउक गद्दी पर बैठा। बाउक के शिलालेख (837 ई.) से उसके राज्यकाल की घटनाओं का पता चलता है। जोधपुर शिलालेख से विदित होता है कि राज्यारोहण के समय बाउक संकटों से ग्रस्त था किन्तु उसने शीघ्र ही इनका निवारण कर लिया। साम्राज्यवादी गुर्जर-प्रतिहार शासक रामभद्र का वह समकालीन शासक था। एक मौर्य शासक ने मण्डौर पर आक्रमण कर बाउक के ब्राह्मण प्रतिहार सम्बन्धी को पराजित किया किन्तु बाउक ने भूअकूप नामक स्थान पर घमासन युद्ध में मौर्य आक्रमणकारी को पराजित कर भगा दिया। यह मौर्य शासक सम्भवतः राजस्थान के किसी भाग का शासक रहा होगा। जोधपुर शिलालेख से विदित होता है कि बाउक के विरुद्ध बनाए गए एक संघ का यह मौर्य शासक नेता था। बाउक ने इस संघ को नष्ट कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। दौलतपुर प्लेट से यह ज्ञात होता है कि उसने अपने राज्य को कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों की अधीनता से स्वतन्त्र करा लिया गया था। रामभद्र के समय स्वाधीन हुए मंडौर गुर्जर-प्रतिहारों को भोज प्रथम ने पुनः अपने अधीन किया।

10. **कक्कुका** (861 ई.)—घटियाला शिलालेख में दी गई वंशावली के आधार पर बाउक के बाद उसका सौतेला भाई कक्कुका शासक बना जो कक्क की रानी दुर्लभ देवी से उत्पन्न था। घटियाला से पाँच शिलालेख प्राप्त हुए हैं—चार संस्कृत तथा एक प्राकृत भाषा में। एक शिलालेख में उसे त्रवणी, वल्ल, माढ़, आर्य, गुर्जरत्रा, लाट तथा पर्यंत का विजेता कहा गया है। उसने कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार शासक भोज प्रथम के सेनानायक अथवा तन्त्रपाल के रूप में इन स्थानों पर विजय प्राप्त की होगी। कक्कुका एक न्यायप्रिय शासक था। उसने मण्डौर तथा रोहिंसकूप स्थानों पर दो स्तम्भ बनवाए तथा रोहिंसकूप में व्यापारियों की सुविधा के लिए मकान तथा बाजार बनवाए। एक शिलालेख में छः वस्तुओं में उसका अनुराग प्रकट किया गया है—बाँसुरी, मधुर कंठ संगीत, पतझड़ का चन्द्र, मालती पुष्प, सदाचारी स्त्री तथा अच्छे व्यक्तियों से वार्तालाप।

कक्कुक के उत्तराधिकारियों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। संभवतः उनका अधिकार मण्डौर पर दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश के समय तक बना रहा।

(2) भृगुकच्छ (भड़ौंच) के गुर्जर–प्रतिहार

गुर्जर-प्रतिहारों की एक शाखा ने भृगुकच्छ (भड़ौंच) में राज्य स्थापित

किया। डॉ. गोपीनाथ शर्मा[1] का मत है कि भड़ौंच तथा मण्डौर के गुर्जर-प्रतिहारों का घनिष्ठ सम्बन्ध था। मण्डौर के गुर्जर-प्रतिहार राज्य का संस्थापक हरिश्चन्द्र का भाई या पुत्र दद्द प्रथम ने दक्षिण की ओर जा कर भड़ौंच में राज्य स्थापित किया। नान्दीपुर से 629 ई. से 641 ई. तक के दानपत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें प्रतिहारों को महासामन्त कहा गया है जो यह प्रकट करता है कि भड़ौंच के गुर्जर-प्रतिहार मण्डौर के प्रतिहार या चालुक्यों के सामन्त थे। डॉ. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा[2] की मान्यता है कि भीनमाल के गुर्जर-प्रतिहारों का राज्य ही भड़ौंच तक विस्तृत हो गया था किन्तु भीनमाल का राज्य उनके हाथ से निकल जाने के वाद केवल भड़ौंच पर ही उनका अधिकार बना रहा। अतः यह तथ्य उचित माना जा सकता है कि मण्डौर या भीनमाल से अलग होकर इस गुर्जर-प्रतिहार शाखा ने भड़ौंच में राज्य स्थापित किया। इस शाखा के प्रमुख शासकों का विवरण निम्नांकित है—

1. **दद्द प्रथम** (580–605 ई.)—इस शाखा के तीसरे शासक की ज्ञात *तिथि के आधार पर डॉ. सत्य प्रकाश ने दद्द के सत्ता सम्भालने की तिथि 580 ई.* निर्धारित की है। दद्द प्रथम की राज्य सीमा मध्य तथा उत्तरी गुजरात में फैली हुई थी—उत्तर में माही नदी तथा दक्षिण में अम्बिका नदी सीमाएँ थी। ह्वेनसांग द्वारा दी गई सीमा 400 मील के वृत्त में बताना उचित नहीं जान पड़ता। हरिश्चन्द्र के तृतीय पुत्र दद्द की तिथि भड़ौंच राज्य के संस्थापक दद्द के समकक्ष है। अतः यह संभावना ठीक प्रतीत होती है कि रज्जिल ने अपने भाई दद्द के नेतृत्व में दक्षिण में अपने सामन्त के रूप में इस राज्य की स्थापना कराई थी। बाद में संभवतः भड़ौंच के प्रतिहारों ने चालुक्यों का सामन्त बनना स्वीकार कर लिया हो। दद्द ने नागों तथा विंध्य के चारों ओर के प्रदेश (मालवा सहित) को जीतकर अपने राज्य में मिलाया। वह सूर्य का उपासक था।

2. **जयभट्ट प्रथम** (605–629 ई.)—दद्द प्रथम के बाद जयभट्ट प्रथम भड़ौंच राज्य का शासक बना। खेर दानपत्रों में उसके द्वारा शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करना उत्कीर्ण है। उमेता, बागुमरा तथा ललुओं के शिलालेखों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जयभट्ट प्रथम ने गुजरात तथा काठियावाड़ में वल्लभी की सेनाओं को पराजित किया। उसने कलचुरियों को भी हराया तथा गुजरात राज्य की सीमा माही नदी तक विस्तृत कर दी।

3. **दद्द द्वितीय** (629–654 ई.)—अगला शासक दद्द द्वितीय जयभट्ट प्रथम का पुत्र था। उसे पुलकेशिन् द्वितीय की सेना के आक्रमण का सामना करना पड़ा था। नौसरी दानपत्र से विदित होता है कि उसने वल्लभी के सम्राट ध्रुवसेन

1. पूर्वोक्त (पृ० 65)
2. डा० गौ० ही० ओझा : राजपूताने का इतिहास (पृ० 149–150)

द्वितीय तथा धारासेन चतुर्थ को हर्ष से पराजित होने के बाद अपने यहाँ शरण दी थी। 648 ई. में धारासेन चतुर्थ द्वारा दान देने का विवरण भृगुकच्छ से प्राप्त होता है। संभवतः ध्रुवसेन तथा धारासेन से दद्द मित्रतापूर्ण द्वितीय के सम्बन्ध रहे थे। दद्द के दानपत्रों में उसे सूर्य का उपासक कहा गया है।

4. जयभट्ट द्वितीय (544–579 ई.)—दद्द द्वितीय के पुत्र जयभट्ट द्वितीय के शासन-काल का नौसेरी दान-पत्र से यह तथ्य प्रकट होता है कि वह युद्ध-कौशल में निपुण था। संभवतः चालुक्य जयसिंह वर्मन ने इसके शासन-काल में गुजरात पर आक्रमण किया तथा गुजरात के दक्षिणी भाग पर अधिकार कर जयभट्ट द्वितीय को ताप्ती नदी के उत्तर की ओर जाने पर विवश कर दिया।

5. दद्द तृतीय (679–704 ई.)—आगामी शासक दद्द तृतीय जयभट्ट द्वितीय का पुत्र था। शिलालेखों से विदित होता है कि वह शिव का उपासक था और उसके राज्य में वर्णव्यवस्था का पालन होता था। उसने पूर्व तथा पश्चिम के शत्रुओं से युद्ध कर 'बाहुसहाय' की उपाधि धारण की। ये शत्रु बादामी के चालुक्य, मालवा का शासक तथा वल्लभी नरेश हो सकते हैं।

6. जयभट्ट तृतीय (705–736 ई.)—दद्द तृतीय का पुत्र जयभट्ट तृतीय इस वंश का अंतिम शासक था। उसने वल्लभी नरेश शिलादित्य पंचम अथवा षष्ठ पर आक्रमण किया और गुजरात के चालुक्यों की सहायता से कच्छ घाटी के प्रदेश को छीनने का प्रयास किया। उसने 'सामन्ददधिपति' का विरुद धारण किया। वह शिव का उपासक तथा विद्वानों एवं कलाकारों का आश्रयदाता था। इसके समय की सबसे निर्णायक घटना जुनैद के नेतृत्व में भडौंच पर अरबों का आक्रमण था। 743 ई. में अरबों ने भडौंच के गुर्जर-प्रतिहारों का अस्तित्व समाप्त कर दिया।

(3) राजोगढ़ के गुर्जर प्रतिहार

डॉ० गोपीनाथ शर्मा[1] ने अलवर राज्य के एक स्थान राज्यपुर (राजोगढ) से प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर एक गुर्जर-प्रतिहार शाखा के शासक मदनदेव का उल्लेख किया है। मदनदेव प्रतिहार गोत्र का महाराजाधिराज सावट का पुत्र था। उसकी उपाधि 'महाराजाधिराज परमेश्वर' से विदित होता है कि वह कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार शासक महीपाल का बड़ा सामन्त था। उसके समय में इस प्रदेश में गूजर जाति के किसान भी रहते थे। इस लेख से प्रमाणित होता है कि सुल्तान बहलोल लोदी के समय तक बड़गूजर राजोगढ़ में रहते थे। बाद कछवाहों ने उनकी जागीरें छीन कर उन्हें निकाल दिया। फीरोज तुगलक के समय माचेड़ी में गोगादेव बड़गूजर का राज्य तथा बहलोल लोदी के समय राजपालदेव का राज्य इसी प्रदेश में होना शिलालेख से प्रकट होता है। राजोगढ़ के गुर्जर-प्रतिहार सामन्तीय स्थिति में राज्य करते थे।

1. पूर्वोक्त (पृ० 69)

(4) जालौर, उज्जैन तथा कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार

गुर्जर-प्रतिहारों की इस शाखा का भी उद्भव स्थल मण्डौर प्रतीत होता है क्योंकि इनके शिलालेखों में भी मण्डौर के संस्थापक हरिश्चन्द्र की भाँति अपने राज्य के संस्थापक नागभट्ट को राम का प्रतिहार कहा गया है। हरिश्चन्द्र को ब्राह्मण तथा नागभट्ट को क्षत्रिय कहा गया है। इसीलिए इस शाखा को रघुवंशी प्रतिहार भी कहते हैं। डॉ. ओझा[1] का मत है कि "इन प्रतिहारों ने चावड़ों से सर्वप्रथम भीनमाल पर अधिकार किया और इसके बाद उन्होंने आबू, जालौर तथा उज्जैन को जीत कर उन्हें राजधानी बनाया। अन्त में साम्राज्य का और अधिक विस्तार कर उन्होंने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया।" डॉ. गोपीनाथ शर्मा की मान्यता भी यही है—"वास्तविकता यह है कि गुर्जर-प्रतिहार जिनका उद्भव मण्डौर से था, हरिश्चन्द्र के समय से ही उसके वंशज राजस्थान, गुजरात, मालवा, कन्नौज आदि पड़ौसी प्रान्तों में जा बसे और जब-जब उन्हें सुविधा हुई इधर-उधर राज्य-स्थापना में लग गए। जितने समय एक स्थान में बने रहे तब तक वह स्थान राजधानी के रूप में चलता रहा।"[2]

गुर्जर प्रतिहारों का उत्कर्ष (Rise of Gurjara Pratiharas)

ग्वालियर (सगर-ताल) अभिलेख में कान्य कुब्ज (कन्नौज) के शासक भोज प्रथम की वंशावली दी गई है जिसमें वत्सराज को उसका पूर्वज बतलाया गया है। जैन ग्रंथ हरिवंश से भी 783–784 ई. में अवन्ति (उज्जैन) का शासक वत्सराज कहा गया है। डॉ. सत्य प्रकाश की मान्यता है कि ये दोनों वत्सराज एक ही थे। ग्वालियर शिलालेख में वत्सराज के पिता का नाम देवराज या देव शक्ति तथा देवराज के पिता का नाम नहीं मिलता किन्तु उसका पिता पूर्व शासक नागभट्ट का भाई बतलाया गया है। अतः गुर्जर-प्रतिहारों की इस शाखा का संस्थापक नाग भट्ट ही था।

इस शाखा के प्रमुख शासकों का वर्णन निम्नांकित है :—

(1) नागभट्ट प्रथम (733–756 ई०)
(Nagbhatta I)

इस शाखा के चौथे शासक वत्सराज की ज्ञात तिथि 783–784 ई. के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नागभट्ट प्रथम की तिथि 733 ई. हो सकती है। यह इस शाखा का प्रवर्त्तक था। डॉ. दशरथ ओझा[3] ने नागभट्ट प्रथम द्वारा प्रतिहार—साम्राज्य की स्थापना करने के सन्दर्भ में कहा है कि—"नागभट्ट ने सम्भवतः भिल्लमाल (भीनमाल) के चाप शासकों के सामन्त के रूप में अरबों के

1. पूर्वोक्त (पृ० 172)
2. पूर्वोक्त (पृ० 66)
3. *Dr. Dashrath Sharma* : Rajasthan Through Ages (p. 121)

विरुद्ध संघर्ष की योजना बनाई और चापों के अस्तित्व समाप्त होने के बाद वह उनके राज्य पर अधिकार कर स्वतन्त्र शासक बन गया।" उसकी राजधानी जालौर थी। नागभट्ट को नागावलोक के नाम से भी पुकारा जाता था। यह तथ्य हांसोट ताम्रपत्र (756 ई.) से प्रकट होता है जिसमें चौहान राजा भर्तृभट्ट द्वितीय को नागावलोक का सामन्त कहा गया है। इसके आधार पर नागभट्ट प्रथम का राज्य उत्तर में मारवाड़ से लगाकर दक्षिण में भड़ौंच की सीमा तक प्रसारित था जिसमें लाट, जालौर, आबू और मालवा के कुछ भाग सम्मिलित थे। उसके समय सिन्ध की दिशा से बिलोचों तथा अरबों ने आक्रमण किये जिनका वीरतापूर्वक सामना किया गया और उन्हें अपनी राज्य-सीमा में प्रविष्ट नहीं होने दिया।

ग्वालियर अभिलेख में नागभट्ट प्रथम को म्लेच्छों का दमनकारक तथा दीनों का उद्धारक होने के कारण 'नारायण' की उपाधि से विभूषित किया गया है। ये म्लेच्छ आक्रमणकारी बिलोच तथा अरब ही थे। अरब लेखक अल–बिलादुरी भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। उसने लिखा है कि खलीफा हाशम का सेनापति अनेक प्रदेशों का विजेता था किन्तु वह उज्जैन को न जीत सका। पुलकेशी राजा अवनिजनाश्रय (738–739 ई.) के नौसरी पत्रों में अरबों द्वारा पराजित राजाओं के नाम दिए गए हैं किन्तु इस सूची में अवन्तिराज (उज्जैन नरेश) नागभट्ट प्रथम का नाम न होना उपरोक्त तथ्य को प्रमाणित करता है।

राष्ट्रकूटों से संघर्ष—हंसलोट प्लेट से विदित होता है कि नागभट्ट प्रथम का सामन्त भड़ौंच का चौहान शासक भर्तृभट्ट द्वितीय था। इसके पूर्व भड़ौंच लाट के गुर्जर शासकों की राजधानी थी। अतः भड़ौंच का नागभट्ट प्रथम के सामन्त भर्तृभट्ट के अधिकार में आना इस बात का द्योतक है कि गुर्जर-प्रतिहारों ने न केवल राजस्थान का प्रदेश ही अरबों से मुक्त कराया बल्कि राजस्थान के निकटवर्ती प्रदेश लाट पर भी अधिकार कर लिया था। लाट प्रदेश दक्षिण के राष्ट्रकूट शासकों की राज्यसीमा के निकट तथा राष्ट्रकूट भी प्रतिहारों की भाँति साम्राज्य विस्तार के महत्त्वाकांक्षी थे। ऐसी स्थिति में दोनों में संघर्ष होना अवश्यमभावी था। इस संघर्ष के साथ आगे गौड़-प्रदेश के पाल शासकों की साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकाँक्षा के कारण यह संघर्ष प्रतिहार-राष्ट्रकूट-पाल त्रिशक्ति संघर्ष में परिणित हो गया जो अनेक वर्षों तक चलता रहा।

अरबों के विरुद्ध संघर्ष में यद्यपि नागभट्ट प्रथम ने भारतीय सघ का नेतृत्व किया था और राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग ने भी सहयोग दिया था किन्तु राष्ट्रकूट अभिलेख संजन प्लेट में नागभट्ट का योगदान नगण्य तथा राष्ट्रकूटों का प्रमुख बताकर अतिशयोक्ति का प्रदर्शन किया गया है। इस लेख के आधार पर दंतिदुर्ग तथा नागभट्ट द्वारा उज्जयनी में सम्पन्न किए गए 'हिरण्यगर्भ महादान' समारोह में गुर्जरवंश नागभट्ट ने प्रतिहार (द्वारपाल) का कार्य किया। इस समारोह में लिंग-पुराण के अनुसार दानदाता स्वर्ण के अण्डे में प्रवेश करता है तथा पुनः बाहर आने पर उसका नया जन्म होना माना जाता है। अण्डे का स्वर्ण बाद में ब्राह्मणों को दान

में दे दिया जाता है। इस समारोह का वर्णन यह सूचित करता है कि राष्ट्रकूट नरेश दंतिदुर्ग ने लाट पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया था। सामानगढ़ तथा दशावतार मन्दिर के शिलालेखों में दंतिदुर्ग द्वारा लाट तथा मालवा को विजित करने का उल्लेख है। इनमें लिखा गया है कि दंतिदुर्ग ने 'तीर क्षति' (समुन्द्रतटवर्ती प्रदेश) में गुर्जर नरेश के सुन्दर महल पर अधिकार किया। यह प्रदेश दक्षिणी गुजरात का भाग था किन्तु इन लेखों पर तिथि अंकित न होने तथा नागभट्ट प्रथम की मृत्यु-तिथि भी अज्ञात होने के कारण यह निश्चितपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि राष्ट्रकूटों ने नागभट्ट प्रथम के शासन-काल में ही लाट प्रदेश पर अधिकार किया अथवा नागभट्ट के दुर्बल उत्तराधिकारियों (कक्कुक तथा देवराज) के समय में किया। दंतिदुर्ग की अन्तिम ज्ञात तिथि 758 ई. के पूर्व ही यह घटना घटित हुई होगी। डॉ० आर. सी. मजूमदार[1] का मत है कि—"यह लगभग निश्चितपूर्वक कहा जा सकता है कि राष्ट्र-कूटों से पराजय जिस गुर्जर-प्रतिहार सम्राट की हुई, वह नागभट्ट प्रथम ही था।" किन्तु हंसलोट प्लेट के आधार पर यह विजय स्थायी नहीं थी क्योंकि लाट पर पुनः नागभट्ट प्रथम को सामन्त राज्य करता हुआ कहा गया है। इस प्रकार गुर्जर-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूटों के संघर्ष का आरम्भ हो गया।

नागभट्ट प्रथम का मूल्यांकन—नागभट्ट प्रथम अत्यन्त वीर तथा महत्त्वाकांक्षी था। उसने जालौर, उज्जैन व कन्नौज की प्रतिहार शाखा की स्थापना ही नहीं की बल्कि राजस्थान, मालवा व गुजरात के एक भाग पर अधिकार कर प्रतिहार साम्राज्य की नींव डाली। म्लेच्छों (अरबों) को पराजित कर तथा उनके अत्याचार से पीड़ित लोगों की रक्षा कर हिन्दुओं के धर्म की रक्षार्थ अपनी शक्ति तथा पराक्रम का परिचय दिया। इसी कारण ग्वालियर प्रशस्ति में उसे 'नारायण' की उपाधि से विभूषित किया गया। पश्चिमोत्तर दिशा से भारत पर आक्रमण करने वालों से सफलतापूर्वक सामना कर उसने अपने उत्तराधिकारियों के समक्ष हिन्दू-भारत का प्रबल प्रहरी बनने का आदर्श प्रस्तुत किया। इस नीति पर चलकर भोज प्रथम तथा विनायकपाल शासकों ने 'आदिवाराह' की उपाधि धारण की। अपने पड़ोसी महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रकूट शासक दंतिदुर्ग की राज्यसीमा के निकट लाट प्रदेश पर अधिकार कर तथा राष्ट्रकूट सेना का दृढ़ता से सामना कर उसने अपूर्व साहस तथा वीरता का परिचय दिया। इसी के समय से प्रतिहार-राष्ट्रकूट तथा आगे चल कर पालों के मध्य त्रिशक्ति संघर्ष का सूत्रपात हुआ। नागभट्ट द्वितीय अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था। उसने अनेक मन्दिरों का निर्माण कर तथा उज्जैन के हिरण्यगर्भ-महादान में भाग लेकर इस प्रवृत्ति का परिचय दिया। वह धर्मसहिष्णु तथा साहित्य-प्रेमी भी था। उसके आश्रय में 'कुवलयमाला' ग्रन्थ का प्रणेता यक्षदेव (क्षमाश्रवण यक्षदत्त) रहता था। डॉ. आर. सी. मजूमदार का कथन है—'इसमें कोई सन्देह नहीं

1. *Dr. R. C. Majumdar* : The Age of Imperial Kanauj (p. 20)

कि नागभट्ट प्रथम ने अरबों को पराजित कर एक राष्ट्रीय स्तर का नेता होने की ख्याति अर्जित की।"

ककुस्थ

नागभट्ट प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई का पुत्र ककुस्थ गद्दी पर बैठा। ग्वालियर अभिलेख में इसके विषय में कुछ तथ्य मिलते हैं। ककुस्थ को विनोदप्रिय शासक कहा गया है। उसका नाम ककुस्थ इसलिये पड़ा क्योंकि वह विनोद की बातें वक्रोक्ति के रूप में कहा करता था।

देवराज या देवशक्ति

ककुस्थ के बाद उसका छोटा भाई देवराज या देवशक्ति शासक बना। ग्वालियर की भोज प्रशस्ति से पता लगता है कि उसने अपने वेग से अनेक राजाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने अपने साम्राज्य-सीमा को क्षीण न होने दिया। उसे अपने सामन्तों के विरुद्ध युद्ध करने को विवश होना पड़ा था। डॉ. दशरथ शर्मा का यह कथन उचित है कि देवराज का समीकरण बाडक के शिलालेख में वर्णित उस भट्टिक देवराज से करना त्रुटिपूर्ण है जिसने कि मण्डोर के शासक शिलूका को पराजित किया था।

(2) वत्सराज (778–794)
(Vatsraj)

ककुस्थ तथा देवराज ने 756 से 783 ई. के मध्य शासन किया था क्योंकि देवराज की रानी भूयिका देवी से उत्पन्न उसके उत्तराधिकारी पुत्र वत्सराज के शासन-काल की प्रथम ज्ञात तिथि 778 ई. है। जैन ग्रन्थ 'कुवलयमाला' में उल्लेख है कि इसकी रचना 778 ई. में जालौर में इसके शासक रणहस्तिन वत्सराज के समय हुई थी। रणहस्तिन की उपाधि उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा सौराष्ट्र से प्राप्त प्रतिहार मुद्राओं (सिक्कों) पर भी अंकित है। वत्सराज की प्रथम ज्ञात तिथि का उल्लेख एक दूसरे जैन ग्रन्थ जिनसेन द्वारा रचित 'हरिवंश पुराण' में किया गया है। जिनसेन ने इस ग्रन्थ की रचना 778 ई. में वर्धमानपुर में की। इस ग्रन्थ से विदित होता है कि उत्तर में इन्द्रायुध, श्री वल्लभ दक्षिण में तथा अवन्ति (उज्जैन) का शासक वत्सराज पूर्व में शासन कर रहा था। इन दो जैन ग्रन्थों के आधार पर डॉ. आर. सी. मजूमदार ने निष्कर्ष निकाला है कि 778 ई. में वत्सराज का राज्यारोहण हुआ तथा उसके राज्य में मध्य तथा पूर्व राजपूताना एवं मालवा सम्मिलित थे।

वत्सराज की विजयें

(1) **भाण्डि पर विजय**–ग्वालियर अभिलेख से विदित होता है कि "वत्सराज ने अपने तीक्ष तीरों से बलपूर्वक युद्ध में भाण्डिवंश को पराजित किया जिसे उसके शक्तिशाली हाथियों से निर्मित प्राचीर के कारण पराजित करना कठिन था।" यह भाण्डि कौन था ? इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। वाणभट्ट के 'हर्षचरित' में उल्लिखित हर्ष के मामा भाण्डि को कुछ इतिहासकार वत्सराज द्वारा

पराजित शासक मानते हैं किन्तु इसकी पुष्टि अन्य साक्ष्यों से नहीं होती। अधिकांश इतिहासकारों की मान्यता है कि भाण्डि नाम भट्टीवंश के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसकी पुष्टि जोधपुर शिलालेख से भी होती है जिसमें यह कहा गया है कि मण्डोर के गुर्जर प्रतिहार शासक बाडक की माता पद्मिनी जेसलमेर के भाटीवंशी शासक की राजकुमारी थी।[1] डॉ. सत्य प्रकाश[2] ने भी इस मत का समर्थन करते हुए इसकी पुष्टि में जोधपुर शिलालेख तथा वत्सराज के ओसिया शिलालेख का उल्लेख किया है। दौलतपुर अभिलेख से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वत्सराज ने गुर्जरत्रा भूमि के दण्डवानक विषय से एक ग्रामदान किया था :

(2) **गौड़ (बंगाल) पर विजय**—वत्सराज गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के विस्तार के लिए महत्त्वाकांक्षी था। अतः पूर्व की ओर गौढ़ (बंगाल) पर उसने विजय प्राप्त की। राष्ट्रकूटों के वनी–डिनडौरी तथा रधनपुर दानपत्रों से ज्ञात होता है कि वत्सराज ने विजय के उन्माद में गौड़ों की प्रभुसत्ता को हर लिया तथा उसकी प्रसिद्धि और यश चारों ओर फैल गया। 'पृथ्वीराज विजय' ग्रन्थ से पता चलता है कि वत्सराज के शाकंभरी के चौहान सामन्त दुर्लभराज ने गौड़ भूमि पर अधिकार प्राप्त किया। दुर्लभराज के पुत्र गूवक ने नागावलोक के दरबार में आदर प्राप्त किया। यह नागावलोक वत्सराज का पुत्र व उत्तराधिकारी नागभट्ट द्वितीय था। : यह प्रकट होता है कि वत्सराज के समय गूवक के पिता दुर्लभराज ने गौड़ों के विरुद्ध गुर्जर नरेश के साथ युद्ध किया था। गौड़ शब्द का प्रयोग बंगाल प्रदेश के लिये किया जाता था तथा इस प्रदेश के पाल शासकों को 'गौड़ेश्वर' कहा जाता था। इसकी पुष्टि हरहा शिलालेख से भी होती है जिसमें गौड़ों द्वारा पराजित होकर समुद्र की शरण में जाने का उल्लेख है। क्योंकि बंगाल की सीमा समुद्र तट तक विस्तीर्ण थी, अतः बंगाल ही गौड़ प्रदेश था।

गौड़ प्रदेश के शासक पालों पर गुर्जर–प्रतिहार नरेश वत्सराज के आक्रमण करने का प्रमुख कारण दोनों की उत्तरी भारत में साम्राज्य विस्तार करने तथा कन्नोज को राजधानी बनाने की महत्वाकांक्षा थी। हर्ष के समय से ही कन्नौज की स्थिति तथा उस पर अधिकार किया जाना गौरवपूर्ण समझा जाता था। उधर दक्षिण के राष्ट्रकूट भी उत्तरी भारत की ओर अपने साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा रखते थे। अतः प्रतिहार-पाल-राष्ट्रकूट त्रिशक्ति संघर्ष होना स्वाभाविक था। गुर्जर-प्रतिहार नरेश वत्सराज द्वारा गौड़ नरेश धर्मपाल पर जिस विजय का उल्लेख अभी किया गया है, वह गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य को उत्तरी भारत में विस्तृत करने तथा कन्नौज पर अधिकार करने का एक प्रयास था। यह युद्ध किस स्थान पर हुआ, इस सम्बन्ध

1. *Dr. R. S. Tripathi* : History of Kanauj (p. 229)
2. डा. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (p. 53)

में डॉ० आर.सी० मजूमदार[1] का मत है कि वह दोआब में हुआ था। यह वत्सराज की अभूतपूर्व विजय थी।

(3) **राष्ट्रकूटों से संघर्ष**—जब वत्सराज गौड़ों को पराजित कर लूट के सामान के साथ लौट रहा था तो मार्ग में गंगा तथा यमुना नदी के मध्य दोआब क्षेत्र में सहसा राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव की सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। यह युद्ध 786 ई० से 793 ई० के मध्य कभी हुआ होगा क्योंकि जेठवा प्लेट (786 ई०) में इसका उल्लेख नहीं है और ध्रुव की मृत्यु 793 ई० में हुई थी। युद्ध में वत्सराज पराजित हो भाग कर राजस्थान के मरु प्रदेश में शरण लेने को विवश हो गया। इस पराजय से गुर्जर-प्रतिहारों की शक्ति को बड़ा आघात लगा तथा उनकी राज्य सीमा मध्य राजस्थान तक ही सीमित रह गई थी जैसाकि जैन ग्रन्थ 'केवलयमाला' से विदित होता है कि वत्सराज ज्वालापुर (जालौर) में शासन कर रहा था।

वत्सराज को पराजित करने के बाद राष्ट्रकूट ध्रुव ने गौड़ नरेश धर्मपाल पर आक्रमण किया और उसे दोआब प्रदेश में पराजित कर इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। बड़ौदा अभिलेख से प्रतिहार तथा पालों पर राष्ट्रकूटों की इस विजय का पता चलता है। किन्तु राष्ट्रकूटों की यह विजय स्थायी न हो सकी क्योंकि राष्ट्रकूटों के राज्य से यह प्रदेश इतना दूर था कि इस पर शासन करना कठिन था। अतः ध्रुव इस विजय के बाद दक्षिण लौट गया। वत्सराज की पराजय तथा राष्ट्रकूटों के पलायन की स्थिति का लाभ उठाते हुए पाल नरेश धर्मपाल ने उत्तरी भारत पर अभियान किया।

(4) **पाल शासकों से कूटनीतिक सम्बन्ध**—भागलपुर अभिलेख से पता चलता है कि धर्मपाल ने महोदया (कन्नौज) की प्रभुसत्ता को छीन लिया इन्द्रराज तथा अन्य शत्रुओं को पराजित कर चक्रायुध को वहाँ का शासक बनाया। कन्नौज के शासक इन्द्रायुद्ध (इन्द्रराज) ने वत्सराज की गौड़ विजय के पश्चात् उसकी अधीनता स्वीकार करली थी। अतः धर्मपाल ने इन्द्रायुध को हटाकर उसके स्थान पर चक्रायुध को कन्नौज का शासक बनाया। चक्रायुध का अपने संरक्षण में राज्यारोहण करने के लिये कन्नौज में एक समारोह किया गया। खलीमपुर प्लेट के आधार पर इस समारोह में भोज, मतस्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, गांधार तथा कीट के शासकों के अतिरिक्त अवन्ती (उज्जैन) नरेश वत्सराज भी सम्मिलित हुए। धर्मपाल से शत्रुता होते हुए भी वत्सराज ने अन्य नरेशों के साथ इस समारोह में भाग लेकर धर्मपाल के संरक्षण में कन्नौज के शासक चक्रायुध को मान्यता देने का कारण डॉ० सत्यप्रकाश[2] के अनुसार यह हो सकता है कि राष्ट्रकूटों की बढ़ती हुई शक्ति देखकर तथा उसकी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति की आशंका से भयभीत हो वत्सराज ने धर्मपाल से मित्रता कर अपनी कूटनीतिक प्रतिभा का परिचय दिया।

1. *Dr. R. C. Majumdar* : History of Bengal (p. 105)
2. डा. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (पृष्ठ 319)

खलीमपुर अभिलेख के आधार पर डॉ० आर० सी० मजूमदार की मान्यता है कि उत्तरी भारत के सभी राजाओं ने धर्मपाल की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस तथ्य की पुष्टि उदयनसुन्दरी कथा से होती है जिसमें धर्मपाल को 'उत्तरापथ-स्वामिन' कहा गया है। किन्तु यह तथ्य इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि गुर्जर-प्रतिहार नरेश वत्सराज धर्मपाल के अधीन था क्योंकि उदयनसुन्दरी कथा मात्र काव्य प्रशस्ति है जिसमें अतिशयोक्ति का सहारा लिया गया है। जहाँ तक वत्सराज का कन्नौज सभा में उपस्थित होकर कन्नौज नरेश चक्रायुध को मान्यता देने का प्रश्न है, वह तो वत्सराज की कूटनीतिक प्रतिभा का द्योतक है।

वत्सराज का मूल्यांकन—वत्सराज एक वीर, साहसी तथा महत्वाकांक्षी शासक था जिसने अपनी शक्ति से गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य में वृद्धि करने का प्रयास किया तथा कन्नौज व गौड़ नरेश को भी युद्ध में पराजित किया। राष्ट्रकूटों से पराजय होने पर अवश्य गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य को आघात लगा किन्तु पाल नरेश धर्मपाल से मित्रता स्थापित कर उसने अपनी कूटनीतिक प्रतिभा तथा दूरदर्शिता का परिचय दिया। उसकी महत्वाकांक्षा के कारण प्रतिहार-पाल-राष्ट्रकूट त्रिशक्ति संघर्ष का आरम्भ उसके शासन-काल में हो गया जिसमें उसका योगदान महत्त्वपूर्ण था। पालों से मैत्रीसम्वन्ध स्थापित कर उसने राष्ट्रकूटों की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा पर अंकुश लगाने में सफलता प्राप्त की। इस प्रकार वत्सराज ने गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का विस्तार करने में अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। उसके बाद उसके पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने त्रिशक्ति संघर्ष में सफलता प्राप्त कर साम्राज्य का विस्तार किया।

(3) नागभट्ट द्वितीय (795–833 ई०) (Nagbhatta II)

राज्यारोहण—गुर्जर-प्रतिहारों की ग्वालियर की भोज-प्रशस्ति पर आधारित वंशावली के अनुसार वत्सराज के पश्चात् उसकी रानी सुन्दरदेवी से उत्पन्न पुत्र नागभट्ट द्वितीय का राज्यारोहण हुआ। नागभट्ट द्वितीय के राज्यारोहण की तिथि के विषय में इतिहासकारों में मतभेद रहा है। उसकी प्रथम ज्ञात तिथि वकुला (जोधपुर) शिलालेख के आधार पर 815 ई० है। माने पत्रों के आधार पर उसका राष्ट्रकूटों से संघर्ष 802 ई० में हुआ जिसमें राष्ट्रकूटों को विजय मिली। किन्तु इसके पूर्व भी राष्ट्रकूटों से संघर्ष वड़ोदा ताम्रपत्र के आधार पर नागभट्ट द्वितीय राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ था जिसमें गुर्जर-प्रतिहारों की विजय हुई थी। इस घटना की अनुमानित तिथि डॉ० आर० सी० मजूमदार[1] तथा डॉ० सत्य प्रकाश[2] ने 795 ई० निश्चित की है। अत: राज्यारोहण की तिथि भी यही निर्धारित की है। चन्द्रप्रभसूरि द्वारा रचित 'प्रभावक चरित' ग्रन्थ के अनुसार नागभट्ट द्वितीय

1. *Dr. R. C. Majumdar* : The Age of Imperial Kanauj (p. 26)
2. पूर्वोक्त (पृष्ठ 56)

की मृत्यु 833 ई० है। इस प्रकार नागभट्ट द्वितीय ने 795 से 833 ई० के मध्य लगभग 38 वर्षों तक राज्य किया। वह गुर्जर-प्रतिहार वंश का प्रतापी एवं महत्वाकांक्षी शासक था। उसने प्रतिहार साम्राज्य की सीमा का काफी विस्तार किया और कन्नौज को राजधानी बनाया था। उसकी उपलब्धियों की समीक्षा करते हुए इतिहासकारों ने उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ—नागभट्ट द्वितीय को अपने पिता वत्सराज की मृत्यु के पश्चात् गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य राष्ट्रकूटों से पराजय तथा पालों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण संकुचित परिधि में परिसीमित तथा साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा विफलता के रूप में मिली। राष्ट्रकूटों द्वारा उसके पिता को पराजित कर मरुप्रदेश में शरण लेने को वाध्य करने तथा कन्नौज के राजा इन्द्रायुध की गुर्जर-प्रतिहारों की अधीनता समाप्त कर पाल शासक धर्मपाल द्वारा अपने संरक्षण में चक्रायुद्ध को कन्नौज का शासक बनाना एवं वत्सराज द्वारा अनुमोदन कराने से जो प्रतिष्ठा गुर्जर-प्रतिहारों की कम हुई थी, उसका प्रतिशोध लेने के विकट कार्य को भी नागभट्ट द्वितीय द्वारा सम्पन्न किया जाना था। अपने पड़ोसी वंशानुगत शत्रु दो प्रवल साम्राज्यवादी शक्तियों—राष्ट्रकूट तथा पाल—से न केवल शक्ति-संतुलन बनाये रखने वल्कि इस त्रिशक्ति संघर्ष में गुर्जर-प्रतिहारों की प्रमुख भूमिका निभाते हुए प्रतिहार साम्राज्य के विस्तार करने की समस्या भी नागभट्ट द्वितीय के समक्ष एक चुनौती के रूप में प्रस्तुत थी। इसके अतिरिक्त पश्चिमोत्तर दिशा से मुस्लिम आक्रमणकारियों तथा अपने सामन्तों एवं अधीनस्थ प्रदेशों की विघटनकारी प्रवृत्ति से साम्राज्य की सुरक्षा करना भी अपेक्षित था। नागभट्ट द्वितीय ने जिस धैर्य, साहस तथा कूटनीतिक चातुर्य से अपनी बिखरी हुई राजनैतिक तथा सैनिक शक्ति का पुनर्गठन किया तथा अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा की पूर्ति की, उसका विवेचन किया जा रहा है।

नागभट्ट द्वितीय के समय के स्रोत—नागभट्ट द्वितीय के शासन-काल की घटनाओं एवं उनके काल-क्रम से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करने के लिये प्रमुख स्रोत निम्नांकित अभिलेख तथा साहित्य ग्रन्थ हैं :

(1) वुकला (विलाड़ा–जोधपुर) शिलालेख—यह नागभट्ट द्वितीय के समय का शिलालेख है जिसमें नागभट्ट द्वितीय को 815 ई० में शासन करता हुआ उत्कीर्ण है।

(2) ग्वालियर (सगरताल) शिलालेख—इसमें नागभट्ट द्वितीय को वंशावली, उसकी विजयों तथा अन्य तथ्यों का विवरण है। यह मिहिर भोज के समय का है। इसे भोज-प्रशस्ति भी कहते हैं।

(3) माने लेख—इन लेखों में नागभट्ट द्वितीय तथा राष्ट्रकूटों के संघर्ष का विवरण है तथा इसकी तिथि 802 ई० के पूर्व की प्रकट होती है।

(4) संजन ताम्रपत्र लेख (871 ई०)—अमोघवर्ष के इस लेख से प्रकट

होता है कि राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ने युद्ध में नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया तथा धर्मपाल व चक्रायुध ने आत्मसमर्पण किया।

(5) नौसेरी पत्र (805 ई०)—उपरोक्त विवरण दिया है।

(6) सिसवाई दान पत्र (807 ई०)— ,, ,, ,,

(7) रधनपुर लेख (808 ई०)— ,, ,, ,,

(8) नीलगढ़ शिलालेख (866 ई०)— ,, ,, ,,

(9) पठारी शिलालेख— इससे विदित होता है कि गोविन्द तृतीय के सामन्त कर्कराज ने नागा व लोक (नागभट्ट द्वितीय) को हराया।

(10) जोधपुर शिलालेख—बाउक के इस लेख में नागभट्ट द्वितीय के सामन्त कक्क द्वारा गोड़ों को मुद्गिरि (मुंगेर) स्थान पर पराजित करने का उल्लेख है।

(11) चाटसु शिलालेख—बालादित्य के इस लेख में गुहिल शंकरगण का नागभट्ट द्वितीय का सामन्त होना तथा गौड़ों को पराजित करना प्रकट होता है।

(12) बड़ौदा ताम्रपत्र—यह कर्कराज का लेख है जिसमें नागभट्ट की बंगाल विजय मालवा के सम्राट की पराजय का विवरण है।

(13) चन्द्रप्रभा सूरि का 'प्रभावक चरित' ग्रन्थ—इसमें नागभट्ट द्वितीय द्वारा 833 ई० में गंगा में डूबकर आत्म हत्या करने का उल्लेख है।

नागभट्ट द्वितीय की उपलब्धियाँ—

उपरोक्त स्रोतों के आधार पर नागभट्ट द्वितीय के शासन-काल की घटनाओं तथा उपलब्धियो का पता चलता है किन्तु डॉ० आर० सी० मजूमदार[1] के शब्दों मे—"नागभट्ट द्वितीय के शासन-काल की घटनाओ को काल-क्रम से व्यवस्थित करना तथा उसे उचित परिप्रेक्ष में देखना सरल नहीं है। उदाहरणार्थ हमें यह ज्ञात नहीं है कि राष्ट्रकूटों द्वारा नागभट्ट द्वितीय की पराजय तथा नागभट्ट द्वितीय की विजयों में से कौन सी घटना पहले हुई—दूसरे शब्दों में क्या नागभट्ट द्वितीय का शासनकाल पराजय से आरम्भ हुआ और उसका अन्त विजयों से हुआ अथवा इसके विपरीत हुआ।" अतः इतिहासकारों के मत भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु डॉ० दशरथ ओझा, डॉ० आर० एस० त्रिपाठी तथा डॉ० सत्यप्रकाश की मान्यता है कि राष्ट्रकूटों से पराजय उसके शासन-काल की प्रथम प्रमुख घटना थी। यह तथ्य अभिलेखों के आधार पर भी प्रमाणित होता है। राष्ट्रकूटों से संघर्ष का मुख्य कारण तो राष्ट्रकूट-प्रतिहार का वंशानुगत वैमनस्य ही था किन्तु तत्कालिक कारण यह था कि नागभट्ट द्वितीय ने आपने शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षो में निकटवर्ती छोटे राज्यों पर विजय प्राप्त कर अपनी राज्य-सीमा राष्ट्रकूटों की सीमा के निकट लादी थी। अतः परस्पर संघर्ष होना स्वाभाविक था। यही मत डॉ० दशरथ शर्मा[2] का है।

1. पूर्वोक्त (पृष्ठ 24)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Rajasthan Through the Ages(p. 135-38)

नागभट्ट द्वितीय की प्रारम्भिक विजयें—ग्वालियर (सगर-ताल) प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि नागभट्ट द्वितीय ने निम्नांकित राज्यों को पराजित कर अपने अधीन किया—

1. आंध्र, सिंधु, विदर्भ तथा कलिंग के नरेशों ने उसकी युवाशक्ति के समक्ष इस प्रकार समर्पण किया जिस प्रकार पतंगे अग्नि में करते हैं। (श्लोक सं. 8)

2. उसकी महान विशेषताओं की ख्याति सभी में फैल गई जबकि उसने आनर्त, मालव, मत्सय, किरात, तुरुष्क तथा वत्स के पर्वतीय-दुर्गों के राजाओं पर बलपूर्वक विजय प्राप्त की। (श्लोक सं. 11)। इस तथ्य की पुष्टि राष्ट्रकूट के तथा नागभट्ट द्वितीय के प्रतिहार सामन्तों के अभिलेखों से होती है।

उपरोक्त विजयों की प्रेरणा नागभट्ट द्वितीय को अपने खोये हुए प्रदेशों को जीतने तथा इन प्रदेशों के शासकों द्वारा उसके पिता का विरोध करने से मिली थी। ये विजित स्थान उसकी राज्य-सीमा के निकट थे। इनका समीकरण इतिहासकारों ने इस प्रकार किया है। मत्स्य अर्थात विराट राज्य का शासक हर्ष के समय स्वतन्त्र था। वत्सराज ने इसे अपने अधीन किया था किन्तु उसकी पराजय के समय मत्सय नरेश ने धर्मपाल का साथ दिया था। नागभट्ट द्वितीय ने इसी कारण उसे विजित कर पुनः अपने अधीन किया। इसी प्रकार मालवा पर भी पुनः अधिकार किया गया। इसके पश्चात नागभट्ट ने पश्चिम की ओर अभियान किया। तुरुष्कों का समीकरण सिंध के अरबों से किया गया है। अरब प्रतिहारों के वंशानुगत शत्रु थे, अतः उन्हें परास्त किया गया। आनर्त द्वारिका के समीप उत्तरी काठियावाड़ प्रदेश था। यद्यपि नागभट्ट द्वारा इस प्रदेश को जीत लिया किन्तु यह जीत राष्ट्रकूटों की प्रतिद्वंदिता के कारण स्थायी नहीं थी। पश्चिम के बाद नागभट्ट ने आर्यावर्त के चारों ओर के समीपवर्ती प्रदेशों आन्ध्र, सिंधु, विदर्भ तथा कलिंग पर अभियान किया जिसका उद्देश्य अपनी शक्ति बढ़ाना तथा अपने पिता की पराजय का प्रतिशोध लेना था। इन विजयों के कारण प्रतिहार राज्य सीमा राष्ट्रकूटों की सीमा के निकट हो गई। अतः राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय ने प्रतिहारों पर आक्रमण किया।

राष्ट्रकूटों से संघर्ष—नागभट्ट द्वितीय का राष्ट्रकूटों से संघर्ष उसके शासन-काल में दो बार हुआ प्रतीत होता है। एक तो प्रारम्भिक वर्षों में जो नागभट्ट द्वितीय ने राष्ट्रकूटों से अपने पिता की पराजय का बदला लेने के उद्देश्य से किया था। अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र (871 ई.) से पता चलता है कि गोविन्द तृतीय ने युद्ध-क्षेत्र में नागभट्ट के अचल यश और गौरव को हर लिया। यह नागभट्ट वत्सराज का ही पुत्र था। किन्तु एक अन्य शिलालेख से ज्ञात होता है कि नागभट्ट के सामन्त बाहुकधवल ने राष्ट्रकूट सेना के किसी भाग को पराजित किया। इन परस्पर विरोधी साक्ष्यों से विदित होता है कि राष्ट्रकूटों की विजय कोई स्थायी विजय नहीं थी।

किन्तु प्रवाल के पठारी स्तम्भलेख (861 ई.) से पता चलता है कि कर्कराज ने नागावलोक को युद्ध-क्षेत्र से भगा दिया। कर्कराज प्रवाल का पिता था जिसने गोविन्द तृतीय के सामन्त के रूप में राष्ट्रकूटों की सहायता कर नागावलोक को पराजित किया। डॉ. डी. आर. भण्डारकर नागावलोक का समीकरण नागभट्ट द्वितीय से करते हैं। इसकी पुष्टि रधनपुर अभिलेख (808 ई.) से भी होती है जिसमें अंकित है कि—"गोविन्द तृतीय से भयभीत हो इस प्रकार अदृश्य हो गए कि कोई ज्ञात न कर सका तथा स्वप्न में भी गुर्जर (प्रतिहार) युद्ध का नाम नहीं ले सकेंगे।" माने पत्र (802 ई.), नौसेरी पत्र (805 ई.), सिसवाई दानपत्र (807 ई.) तथा नीलगढ़ अभिलेख (866 ई.) से भी प्रतिहार-राष्ट्रकूट संघर्ष का पता चलता है। इन अभिलेखों से निश्चित हो जाता है कि गोविन्द तृतीय ने नागभट्ट द्वितीय को युद्ध में पराजित किया था। यह युद्ध 802 ई. के पूर्व हुआ था।

प्रतिहारों को पराजित कर गोविन्द तृतीय उत्तर की ओर हिमालय तक गया। संजन ताम्रपत्र के आधार पर यह विदित होता है कि इस अभियान में पाल नरेश धर्मपाल तथा कन्नौज नरेश चक्रायुध ने राष्ट्रकूटों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। इस विजय अभियान में गोविन्द तृतीय ने मालवा, कौशल, वेंगी तथा दाहल पर अधिकार किया। ये विजित प्रदेश नागभट्ट द्वितीय के प्रारम्भिक नवीन विजित प्रदेश थे। अतः डॉ. दशरथ शर्मा के मत से यह पराजय नागभट्ट द्वितीय के लिए अधिक हानिकारक सिद्ध नहीं हुई क्योंकि इन प्रदेशों का शासन गुर्जर-प्रतिहार की सुदूर राजधानी से किया जाना सम्भव नहीं था। नागभट्ट की अन्य विजयें अक्षुण्ण बनी रहीं।

गोविन्द तृतीय कुछ समय आर्यावर्त में रह कर दक्षिण वापस चला गया। गोविन्द तृतीय को अपने पुत्र अमोघवर्ष को उत्तराधिकारी बनाने सम्बन्धी आन्तरिक संघर्ष के कारण दक्षिण में अपनी राजधानी को शीघ्र जाना पड़ा था। गोविन्द तृतीय के इस पलायन से नागभट्ट द्वितीय को अपनी शक्ति संगठित कर अपने पूर्व अभियान की तैयारी करने का अच्छा अवसर मिल गया।

कान्यकुब्ज (कन्नौज) विजय—ग्वालियर (सगर-ताल) शिलालेख से विदित होता है कि नागभट्ट द्वितीय ने चक्रायुध को पराजित कर दिया और कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इस अभिलेख के श्लोक संख्या 9 में अंकित है—"नागभट्ट द्वितीय ने दूसरों पर आश्रित रहने वाले निकृष्ट कोटि के चक्रायुध को परास्त कर ख्याति अर्जित की।" इस प्रकार नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज विजय कर अपने पिता के समय हुई पराजय का बदला लिया तथा कन्नौज को अपने साम्राज्य की नवीन राजधानी बनाया। बुकला शिलालेख (815 ई.) से ज्ञात होता है कि इस समय उत्तर भारत में नागभट्ट परम प्रतापी सम्राट बन गया था क्योंकि उसको 'परम भट्टारक', 'महाराजाधिराज' तथा 'परमेश्वर' उपाधियों से विभूपित किया गया था।

कान्यकुब्ज़ (कन्नौज) विजय गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है।

पालों से युद्ध तथा विजय—राष्ट्रकूटों के आन्तरिक संघर्ष के कारण नागभट्ट द्वितीय अपनी शक्ति-संवर्धन में संलग्न था। प्रतिहारों की कन्नौज विजय तथा अपने सामंत चक्रायुध को सदैव के लिये राज्यच्युत किये जाने पर गौड़ नरेश धर्मपाल ने नागभट्ट द्वितीय पर आक्रमण कर दिया। ग्वालियर अभिलेख के श्लोक संख्या 10 में अंकित है कि—"वंग नरेश को, जिसके हाथियों, घोड़ों तथा रथों के कारण गहन अंधकार छा गया था, पराजित कर नागभट्ट द्वितीय नवोदित सूर्य के समान प्रकट हुआ जिससे तीनों विश्व में प्रकाश फैल गया।" अत: यह स्पष्ट होता है कि नागभट्ट द्वितीय पालों के विरुद्ध विजयी हो अपने पिता की पराजय का बदला ले सका।

जोधपुर शिलालेख से विदित होता है कि यह युद्ध मद्‌गगिरि (मुंगेर) नामक स्थान पर हुआ क्योंकि लेख में यह अंकित है कि नागभट्ट द्वितीय के सामन्त कक्क ने गौड़ नरेश धर्मपाल से युद्ध किया। कक्क मण्डौर (जोधपुर) की गुर्जर-प्रतिहार शाखा का शासक था। दूसरा सहायक सामंत दक्षिणी काठियावाड़ का चालुक्य नरेश था जिसने धर्मपाल को पराजित किया। तीसरा गुलिलवंशी सामन्त शंकरगण था जिसने गौढ़ों को पराजित कर समस्त संसार को युद्ध में जीत कर अपने सम्राट (नागभट्ट द्वितीय) के अधीन किया। इसका उल्लेख चाटसु अभिलेख में किया गया है। अत: यह प्रमाणित होता है कि नागभट्ट द्वितीय ने पालों को युद्ध में पराजित किया था।

नागभट्ट द्वितीय की साम्राज्य-सीमा—उपरोक्त विजयों के आधार पर नागभट्ट द्वितीय की साम्राज्य-सीमा का निश्चयन किया जा सकता है। डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी[1] ने इस सीमा के अन्तर्गत राजपूताना, उत्तर प्रदेश तथा मध्य भारत के अधिकांश भाग, उत्तरी काठियावाड़ तथा कौशाम्बी का निकटवर्ती प्रदेश सम्मिलित थे जिसकी राजधानी कन्नौज थी। किन्तु यदि ग्वालियर अभिलेख का आधार माना जाये तो नागभट्ट के साम्राज्य में पूर्व से लेकर पश्चिम तक के प्रदेश तथा हिमालय से लेकर नर्मदा तक का क्षेत्र सम्मिलित था तथा साथ में उत्तरी-पश्चिमी भाग एवं पाल साम्राज्य के क्षेत्र थे। विग्रहराज के हरहा शिलालेख में चहमान गूंवक प्रथम को नागभट्ट (नागावलोक) के दरबार में सम्मान देना लिखा है। इससे प्रकट होता है कि शाकम्भरी (साँभर) के चौहान भी नागभट्ट के सामन्त थे। इससे ज्ञात होता है कि गुर्जर साम्राज्य हर्ष के साम्राज्य से भी विशाल था।

नागभट्ट द्वितीय की मृत्यु—चन्द्रप्रभा सूरि के ग्रन्थ "प्रभावक चरित" के आधार पर नागभट्ट द्वितीय ने 833 ई. में गंगा में डूब कर आत्महत्या कर ली थी।

1. *Dr. R. S. Tripathi* : History of Kanauj (p. 235)

सम्भवतः यह आत्महत्या न होकर पूर्व के कुछ शासकों द्वारा किये गये अन्तिम धार्मिक कृत्य के रूप में मृत्यु को वरण करने के समान था।

नागभट्ट द्वितीय की उपलब्धियों का मूल्यांकन—डॉ. दशरथ ओझा[1] का यह कथन उपयुक्त है कि वत्सराज तक का समय प्रतिहारों की साम्राज्यवादी आकांक्षाओं तथा निराशा का आरम्भ था किन्तु नागभट्ट द्वितीय ने इन आकांक्षाओं को परिपक्वता प्रदान की यद्यपि गुर्जर-प्रतिहारों के शासन-काल का कोई ऐसा समय नहीं आया जबकि उनकी सत्ता में उतार-चढ़ाव न आया हो तथा उन्हें अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये अपने शक्तिशाली प्रतिद्वन्दियों से संघर्ष न करना पड़ा हो। श्री ओझा ने कहा है—"नागभट्ट द्वितीय अपने वंश के सबसे अधिक योग्य तथा सफल शासकों में से एक था। उसमें शौर्य, नेतृत्व तथा दृढ़ निश्चय के गुण विद्यमान थे। राष्ट्रकूटों तथा पालों की तुलना में न्यून साधनों के होते हुए भी वह एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ जिसके कारण उसके प्रतिद्वन्दियों को अपनी सुरक्षा की चिन्ता रही। उसकी शक्ति के कारण ही सिन्ध के अरब भयभीत थे और इसके होते हुए भी उसने अपने शासन में अत्याचार नहीं किये क्योंकि प्रजा तथा अपने सामन्तों में वह लोकप्रिय था। विद्वान तथा कवियों का आश्रयदाता था जिसके कारण वह कन्नौज के नरेश कविराज यशोवर्मन, हर्ष तथा मौखरी अवन्तिवर्मन का एक योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुआ।"

डॉ. आर. सी. मजूमदार[2] ने कहा है कि—"वत्सराज तथा नागभट्ट द्वितीय के शासन-काल भारत के तत्कालीन इतिहास में प्रमुख स्थान रखते हैं। दोनों का व्यक्तित्व उल्लेखनीय है क्योंकि उनमें उच्चकोटि की रण-कुशलता थी तथा क्योंकि राष्ट्रकूटों से पराजय के बावजूद उत्तरी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक उनकी सैनिक सफलताओं का महत्व कम नहीं होता। उन्होंने एक प्रादेशिक राज्य को प्रथम श्रेणी के सैनिक तथा राजनैतिक शक्ति के रूप में उन्नत किया। यद्यपि एक स्थायी साम्राज्य की स्थापना का उनका स्वप्न पूरा नहीं हो सका किन्तु उन्होंने इसकी नींव इतनी सुदृढ़ की थी कि मिहिर भोज ने अपने वंशानुगत शत्रुओं—राष्ट्रकूट तथा पाल—के कट्टर विरोध के होते हुए भी साम्राज्य-वृद्धि के महान् कार्य में सफल रहा।"

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने नागभट्ट द्वितीय के धार्मिक पक्ष को अभिलेखों के आधार पर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उसने अनेक यज्ञ व दान कर डीडवाना तथा कालिंजर मण्डल के लोगों को सन्तुष्ट किया तथा वह भगवती देवी का उपासक था।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यदि हम नागभट्ट द्वितीय की उपलब्धियों का मूल्यांकन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह एक वीर, साहसी, महत्त्वाकांक्षी पराक्रमी, कूटनीतिज्ञ, साहित्य प्रेमी व धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था।

1. पूर्वोक्त (पृ० 134–144)
2. पूर्वोक्त (पृ० 28)

(4) रामभद्र (833–836 ई.)

833 ई. में नागभट्ट द्वितीय की मृत्यु के बाद उसकी रानी इष्टादेवी से उत्पन्न पुत्र रामभद्र या राम अथवा रामदेव गद्दी पर बैठा। 'प्रभावक चरित' ग्रंथ से उसके विषय में कुछ तथ्य उपलब्ध होते हैं। ग्वालियर शिलालेख से हमें विदित होता है कि रामभद्र के समय साम्राज्य पर संकट आया था क्योंकि लेख में अंकित है कि "रामभद्र के अधीन सामंतों ने अपनी दुर्भेय सेना के बल पर क्रोधित और क्रूर शत्रुओं को पराजित किया।" ये शत्रु कौन थे? बादल स्तम्भ लेख से पता चलता है कि गौढ़ नरेश देवपाल ने गुर्जरत्रा (प्रतिहारों) के अभिमान को चूर-चूर कर दिया। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भिक संघर्ष में प्रतिहारों को पालों से पराजित होना पड़ा किन्तु बाद में रामभद्र ने अपने सामन्तों की सहायता से पालों को पराजित किया। वराह ताम्रपत्र में प्रतिहारों की अधीनता से बुन्देलखण्ड स्वतन्त्र होना तथा दौलतपुर दानपत्र से गुर्जरत्रा का स्वाधीन होना अन्य साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित होता है। डॉ. दशरथ शर्मा ने इन तथ्यों को गलत बतलाया है।

पालों के बाह्य संकट के अतिरिक्त रामभद्र को सामन्तों की ओर से आन्तरिक संकट का भी सामना करना पड़ा। दौलतपुर दानपत्र से पता चलता है कि जिस दानक्रम को वत्सराज ने गुर्जरत्रा भूमि में प्रारम्भ किया था तथा नागभट्ट द्वितीय ने सक्रम रखा, वह रामभद्र के समय रुक गया किन्तु भोज प्रथम ने इसे पुनः सक्रम किया। एक अन्य दानपत्र से ज्ञात होता है कि कालिंजर मण्डल में जिस दानपत्र को नागभट्ट द्वितीय ने प्रारम्भ किया वह भी रामभद्र के समय रुक गया जिसे पुनः सक्रम करने का श्रेय भोज प्रथम ने किया। इससे यह प्रकट होता है कि रामभद्र के पालों के साथ संघर्ष में व्यस्त होने के कारण उसका अधिकार गुर्जरत्रा तथा कालिजर मण्डलों में अधिकार समाप्त हो गया था और यहाँ के सामन्त स्वतन्त्र हो गए थे।

'प्रभावक चरित' से ज्ञात होता है कि रामभद्र एक साधारण चरित्र का शासक था जो कंटिका नामक सुन्दरी के साथ अपना समय व्यतीत करता था। उसके इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसके पुत्र मिहिर भोज ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। 'प्रभावक चरित' की इस घटना का अन्य साक्ष्यों से पुष्टि नहीं होती। ग्वालियर (सगरताल) शिलालेख में रामभद्र को सूर्य का परम भक्त कहा गया है। सूर्य की उपासना के फलस्वरूप ही उसके पुत्र भोज का जन्म हुआ। अतः भोज को 'मिहिर' नाम से पुकारा गया।

इस प्रकार रामभद्र के तीन वर्ष के शासन-काल को गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के इतिहास में डॉ. आर. सी. मजूमदार ने गौरवहीन बतलाया है।

(5) मिहिर भोज प्रथम (836–889 ई.)
(Mibir Bhoj I)

राज्यारोहण—रामभद्र के तीन वर्ष के गौरवहीन शासनकाल के पश्चात् उसकी रानी अपादेवी से उत्पन्न पुत्र मिहिर भोज प्रथम शासक बना। मिहिर भोज

की प्रथम ज्ञात तिथि वराह ताम्रपत्र के आधार पर 836 ई. है। यह ताम्रपत्र भोज ने महोदय स्कंधावार (युद्ध-शिविर) से कान्यकुब्ज (कन्नौज) क्षेत्र के कालिंजर मण्डल में दान हेतु उत्कीर्ण कराया था। इससे स्पष्ट होता है कि मिहिर भोज प्रथम 836 ई. में गद्दी पर बैठा तथा कन्नौज उसकी राजधानी थी एवं कालिंजर उसके अधिकार क्षेत्र में था।

ग्वालियर अभिलेख, दौलतपुर अभिलेख तथा मुद्राओं (सिक्कों) में उसके विरुद्ध 'आदिवाराह', 'प्रभास' तथा 'मिहिर' (सूर्य) उत्कीर्ण हैं। डॉ. दशरथ ओझा तथा अन्य विद्वानों ने उसे प्रतिहार वंश का ही महानतम शासक नहीं बतलाया बल्कि उसे नवीं शताब्दी में भारत का सर्वोत्कृष्ठ शासक कहा है।

जिस समय वह गद्दी पर बैठा गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य को पड़ौसी राज्यों, पश्चिम में सिंध के अरब, दक्षिण में राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष तथा पूर्व में पाल शासक देवपाल —से खतरा बना हुआ था। सर्वप्रथम भोज ने अपने पिता रामभद्र के समय स्वाधीन हुए कालिंजर तथा गुर्जरत्रा प्रदेशों को पुनः हस्तगत करना चाहा यद्यपि कुछ इतिहासकार जैसे डॉ. ओझा प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह मान्यता रखते हैं कि ये प्रदेश गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य से स्वाधीन नहीं हुए थे।

मिहिर भोज की विजयें—अपने प्रबल प्रतिद्वंदी राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष को अपने आन्तरिक मामलों में व्यस्त देखकर सर्वप्रथम मिहिर भोज ने अपने उन सामन्तों को अपने अधीन करने का प्रयास किया जो उसके पिता समय स्वाधीन हो गए थे। उसकी विजयों का विवरण निम्नांकित है—

1. **कालिंजर तथा गुर्जरत्रा पर अधिकार**—जैसा कि वराह ताम्रपत्र (836 ई.) से विदित होता है भोज ने सर्वप्रथम बुन्देलखण्ड पर पुनः अपनी सत्ता स्थापित की क्योंकि यह दान-पत्र कालिंजर मण्डल के उदम्बरा विषय में बलाकाग्रहार दान को सक्रम करने हेतु उत्कीर्ण कराया था। इसके अतिरिक्त स्थानीय जनश्रुतियों से भी इसकी पुष्टि होती है कि चंदेलों के उत्कर्ष के पूर्व बुन्देलखण्ड (कालिंजर) कन्नौज के अधीन प्रतिहारों की राज्य सीमा में था। चंदेल यशोवर्मन के समय भी चंदेल प्रतिहारों के सामंत थे। चंदेला नरेशों के शिलालेखों में उन्हें नृप, महिपति या क्षितिप कहा गया है जो उनकी अधीनता का ही सूचक है।

इसके पश्चात् मिहिर भोज ने गुर्जरत्रा भूमि (जोधपुर या मारवाड़) में वत्सराज द्वारा प्रारम्भ दान को, जो रामभद्र के समय रुक गया था, सक्रम किया। मंडोर के प्रतिहारवंशी नरेशों को भोज ने पुनः अपने अधीन किया। यह तथ्य जोधपुर शिलालेख (837 ई.) द्वारा ज्ञात होता है जिसमें मंडोर के प्रतिहार बाउक द्वारा असफल सैनिक अभियान करने का उल्लेख है।

2. **गुहिल तथा कलचुरियों पर विजय**—चाटसू शिलालेख से ज्ञात होता है कि शंकरगण का पुत्र गुहिल नरेश हर्षराज ने उत्तरी भारत के राजाओं को पराजित कर भोज को अश्व उपहार में दिये। इस भोज का समीकरण मिहिर भोज से किया

गया है क्योंकि गुहिल जैसा छोटा नरेश स्वयं की शक्ति से उत्तरी भारत का अभियान करने में असमर्थ था, अतः उसका यह अभियान मिहिर भोज के सामंत के रूप में उसकी सेना के साथ किया गया था। इस प्रकार भोज ने उत्तरी भारत पर पुनः अधिकार कर अपने साम्राज्य को सुसंगठित किया।

उत्तरी भारत की विजय का दूसरा साक्ष्य कहला ताम्रपत्र (1077 ई.) से प्रकट होता है जो उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के घुरियापुर परगने से प्राप्त हुआ है। इसमें उत्कीर्ण है कि कलचुरिवंशी सामन्त गुणाम्बोधिदेव ने भोजदेव से कुछ भूमि प्राप्त की। डॉ० कीलहार्न इस भोज का समीकरण कन्नौज नरेश प्रतिहार मिहिर भोज से करते हैं। इस तथ्य की पुष्टि इस दानपत्र में वर्णित कलचुरि नरेश सोढ़ादेव दानदाता है जिसकी तिथि 1077 ई. से इसका पूर्वज गुणाम्बोधिदेव मिहिर भोज का समकालीन सिद्ध होता है। अत प्रकट होता है कि कलचुरि वंशी नरेश भोज के सामत थे। उन पर पुनः सत्ता स्थापित करने का श्रेय मिहिर भोज को था।

3. **गौड़ (बंगाल) के पालों से संघर्ष**—उत्तरी भारत (मध्य देश) में अपनी सत्ता पुनः स्थापित कर भोज ने बंगाल के पाल नरेश देवपाल पर आक्रमण करने की योजना बनाई। बदल स्तम्भ लेख में अत्यन्त काव्यात्मक शैली में पाल नरेश देवपाल की 'दिग्विजय' का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—"देवपाल ने अपने मन्त्री केदार मिश्र के परामर्श से उत्कलों के वंश का नाश किया, हूणों के गर्व का दमन किया तथा द्रविड़ एवं गुर्जरों के दर्प को चूर किया।" इस में वर्णित गुर्जर नरेश का समीकरण मिहिर भोज से किया गया है। मुंगेर दानपत्र के श्लोक संख्या 15 में उल्लेख है कि—"उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में राम के सेतु तथा वरुण एवं लक्ष्मी (सागर) के निवास के मध्य का सम्पूर्ण क्षेत्र का अधिपति देवपाल था।" इतिहासकारों ने इन वर्णनों को कपोलकल्पित तथा अतिशयोक्तिपूर्ण माना है। किन्तु इतना तथ्य अवश्य प्रकट होता है कि देवपाल ने उत्तरी भारत में कुछ सैनिक अभियान किये किन्तु जैसा कि कहला ताम्रपत्र से विदित होता है कि मिहिर भोज ने गुहिल सामंत गुणाम्बोधिदेव की सहायता से गौड़ नरेश के ऐश्वर्य को हर लिया अर्थात उसे पराजित किया।

ग्वालियर (सगरताल) शिलालेख से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है जिसमें उत्कीर्ण है कि—"धर्मपाल के पुत्र (देवपाल) की ख्याति का स्रोत लक्ष्मी को भोज ने पुनः अपनी पत्नी बनाया।" किन्तु डॉ० दशरथ ओझा[1] डॉ० आर. सी. मजूमदार ने उपरोक्त निष्कर्ष पर शंका प्रकट करते हुए कहते हैं कि इसका अर्थ देवपाल की पराजय बतलाना अनुचित है। भोज के शिलालेख उत्तरप्रदेश की पूर्वी सीमा के उस पार न मिलना भी भोज की देवपाल पर विजय को संदिग्ध बनाता है। अतः

1. *Dr. Dashrath Ojha* : Rajasthan Through the Ages (p. 151-152)

डॉ. सत्यप्रकाश[1] का मत है कि पराजित राजा भोज प्रथम ही हो सकता है। देवपाल की 850 ई. में मृत्यु के पश्चात् उसके तीन उत्तराधिकारी सूर्यपाल, विग्रहपाल प्रथम तथा नारायणपाल की सैनिक दुर्बलता का लाभ मिहिर भोज ने उठाया।

4. दक्षिण-पश्चिमी प्रदेशों पर विजय—उत्तरी तथा पूर्वी दिशा की ओर पाल नरेश देवपाल के प्रतिरोध के कारण मिहिर भोज के अभियानों को विशेष सफलता नहीं मिली। अतः भोज ने दक्षिण-पश्चिमी प्रदेशों पर अभियान किया। प्रतापगढ़ अभिलेख से विदित होता है कि भोज चौहान वंश से बहुत प्रसन्न थे क्योंकि उनकी सहायता से भोज ने दक्षिण राजपूताना तथा अवन्ति के निकटवर्ती प्रदेशों पर नर्मदा नदी तक अधिकार किया। ये चहमान शाखम्भरी के चौहान थे क्योंकि नागभट्ट द्वितीय के समय चहमान नरेश गूवक का भोज के दरबार में सामन्त के रूप में काफी सम्मान था। 'पृथ्वीराज विजय' ग्रन्थ से पता चलता है कि चहमान गूवक की बहिन कलावती का विवाह कन्नौज नरेश मिहिर भोज से हुआ था। इस वैवाहिक सम्बन्ध के कारण शाखम्भरी के चौहानों ने प्रतिहार-साम्राज्य के विस्तार में योगदान किया था।

स्कन्दपुराण तथा ऊना अभिलेख से ज्ञात होता है कि मिहिर भोज ने आनर्त (उत्तरी काठियावाड़) के निकटवर्ती प्रदेश सूरक्षेत्र को विजित किया। स्कन्दपुराण के वस्त्रापथ महात्म्य की एक कथा के अनुसार वनपाल (वन अधिकारी) ने एक बार भोज को सूचना दी कि गिरनार के वन में एक अत्यन्त सुन्दरी हरिणमुखी नारी निवास करती है। भोज ने दैवतक वन से उसको सेना द्वारा कन्नौज बुलवा लिया। यह वन सूर क्षेत्र (उत्तरी काठियावाड़) के प्रदेश में था। इस तथ्य का प्रमाण ऊना शिलालेख से भी होता है।

5. उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों पर विजय—मिहिर भोज ने अपने साम्राज्य-विस्तार हेतु उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश में सैनिक अभियान किये। पहेवा (करनाल-पंजाब) के 882 ई. के शिलालेख में कुछ अश्व-विक्रेताओं का उल्लेख है जिन्होंने स्थानीय बाजार में कुछ घोड़ों का व्यापार किया था जो भोजदेव के शुभ एवं विजयी शासन में हुआ। गुर्जर-प्रतिहार नरेशों की अश्व-सेना शक्तिशाली थी तथा वे सेना के लिए अश्वों को खुले बाजार से भी खरीदते थे। अतः पहेवा अधीनस्थ प्रदेश प्रतीत होता है। यह प्रदेश सतलज नदी के पूर्व की ओर का क्षेत्र था जिस पर भोज ने अधिकार किया। राजतरंगिणी के श्लोक संख्या 151 से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है जिसमें भोज द्वारा थक्कय वंश के राज्य के कुछ भागों पर अधिकार करने का उल्लेख है। ये भाग पंजाब के पूर्व या हरियाणा के मध्य स्थित थे।

6. राष्ट्रकूटों से संघर्ष—राष्ट्रकूट गुर्जर-प्रतिहारों के परम्परागत शत्रु थे। जब मिहिर भोज की दक्षिणी-पश्चिमी अभियानों से प्रतिहार राज्य सीमा राष्ट्रकूट राज्य के

1. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूत काल (पृ. 63)

समीप पहुँच गई तो परस्पर युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्ध की पहल भोज ने की किन्तु प्रारम्भ में उसे सफलता नहीं मिली जैसा कि राष्ट्रकूट लेखों से विदित होता है। राष्ट्रकूटों की गुजरात शाखा के नरेश ध्रुव के बगुश्रा शिलालेख से ज्ञात होता है कि ध्रुव ने गुर्जरों की शक्तिशाली सेना को सरलता से पराजित कर दिया। डॉ. बूलर तथा हुल्स ने इन गुर्जरों का समीकरण गौड़ अथवा कपीतकों से किया है किन्तु बगुश्रा लेख की 41वीं पंक्ति से विदित होता है कि यद्यपि मिहिर भोज के भाग्य से ईर्षा करने वाले अनेक शासक उसके चरों ओर घिरे रहते थे और उसने संसार पर विजय प्राप्त की थी किन्तु धारावर्ष की शक्ति के समक्ष वह पराजय की कालिमा से ढक गया। ग्वालियर लेख के अनुसार मिहिर भोज की राष्ट्रकूटों से यह पराजय 867 ई. में हुई होगी।

मिहिर भोज ने इस पराजय का प्रतिशोध अपने शासन-काल के अन्तिम वर्षों में लिया प्रतीत होता है। ग्वालियर लेख में अंकित है कि भोज ने कृष्णराज (राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय) को अपनी राज्य सीमा में जाने को विवश किया। इसके विपरीत राष्ट्रकूट अभिलेखों में राष्ट्रकूटों की विजय अंकित की गई है। बगुश्रा अभिलेख (888 ई.) में राष्ट्रकूटों के गुजरात के सामन्त ने उज्जैन में शत्रु को पराजित किया किन्तु कृष्ण द्वितीय की सैनिक गतिविधियों में व्यस्त रहते हुए इस विजय का तथ्य संदिग्ध प्रतीत होता है। डॉ दशरथ शर्मा[1] ने बर्टन म्यूजियम में रखे एक शिलालेख का उल्लेख किया है जिसके अनुसार वाराह नामक राजा ने रेवा (नर्मदा) नदी तक पहुँच कर कृष्ण को बन्दी बनाया। यद्यपि पहले वाराह (मिहिर भोज) की सेना को कुछ पराजय मिली किन्तु गुजरात का राष्ट्रकूट सामन्त कृष्ण तथा राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय की सेनाओं को पराजित कर पीछे भगा दिया। इस प्रकार भोज ने लाट प्रदेश पर अधिकार किया। गुजरात के राष्ट्रकूटों का 888 ई. के बाद कोई उल्लेख न होना इसी तथ्य का सूचक है। इन्द्र तृतीय के बगुआ अभिलेख (914 ई.) में भी अकित है कि राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय के महान कार्यों को गुर्जरों से सगोनरी के युद्ध के सन्दर्भ में स्मरण किया जाता था। अतः इन परस्पर विरोधी साक्ष्यों के आधार पर कोई निश्चित तथ्य प्रकट नहीं होता। ऐसी स्थिति में यह निष्कर्ष निकालना अधिक उचित होगा कि गुर्जर-प्रतिहारों की सुदृढ़ सेना तथा राष्ट्रकूट-प्रतिहारों की राज्य-सीमाएँ परस्पर स्पर्श करने के कारण सीमा पर तनाव उत्पन्न होता रहता था जिसके फलस्वरूप दोनों में संघर्ष होता था और किसी की निर्णायक विजय नहीं होती थी।

7. मिहिर भोज की साम्राज्य-सीमा—नागभट्ट द्वितीय के साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए मिहिर भोज ने इसमें अपनी विजयों के द्वारा कुछ अभिवृद्धि भी

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Rajasthan Through the Ages (p 157–158)

की। मिहिर भोज के समय साम्राज्य-विस्तार अपने चरमशिखर पर पहुँच गया था। उत्तर में उसका साम्राज्य हिमालय से लेकर पूर्व में पाल साम्राज्य की पश्चिमी सीमा तक तथा दक्षिण पूर्व में कौशाम्बी एवं दक्षिण में बुन्देलखण्ड तथा सूरक्षेत्र (उत्तरी काठियावाड) से लेकर पश्चिम में राजपुताने के बहुत बड़े भू-भाग पर विस्तृत था। पश्चिमोत्तर दिशा में सतलज नदी के पूर्व में पंजाब या हरियाणा का प्रदेश भी साम्राज्य में सम्मिलित था। तत्कालीन अन्य दो प्रबल शक्तियों—पाल तथा राष्ट्रकूट—की राज्य सीमाएँ गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य की सीमा से क्रमशः पूर्व तथा दक्षिणी-पश्चिमी भाग में स्पर्श करती थी। डॉ. ओझा ने मिहिर भोज के साम्राज्य में उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, मालवा, राजस्थान, दक्षिणी-पूर्वी पंजाब, पश्चिमी पंजाब व बिहार के कुछ भाग तथा लाट सम्मिलित थे। अतः इन परम्परागत शत्रुओं की महत्वाकांक्षा के कारण प्रतिहार-पाल-राष्ट्रकूट त्रिशक्ति संघर्ष में मिहिर भोज की भूमिका उल्लेखनीय रही। वह प्रबल प्रतिरोध के होते हुए भी अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखने में सफल रहा तथा उसने उपयुक्त अवसर का लाभ उठाते हुए पश्चिमोत्तर सीमावर्ती प्रदेशों को अपने अधिकार में कर साम्राज्य-विस्तार किया।

8. मिहिर भोज का अन्तिम समय—अहर शिलालेख में भोज को 904-905 ई. में शासन करता हुआ बतलाया गया है किन्तु भोज के उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल की प्रथम ज्ञात तिथि 893 ई. है। भोज की मृत्यु के पूर्व ही महेन्द्रपाल के शासन करने का रहस्य स्कंदपुराण के वस्त्र महात्म्य की उस कथा से प्रकट होता है जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। सूरक्षेत्र से लाई गई सुन्दरी के मुख से भोज ने सुवर्णरेखा के पवित्र जल का महात्म्य सुन कर तीर्थयात्रा की इच्छा व्यक्त की तथा कुछ वर्षों तक भोज अपना राज्य अपने पुत्र महेन्द्रपाल को सौंपकर तीर्थयात्रा पर चला गया था। इसी कारण उक्त तिथियों में अन्तर है। सम्भवतः 889 ई. के लगभग मिहिर भोज ने अपने पुत्र के पक्ष में राज्य त्याग दिया था।

9. मिहिर भोज की उपलब्धियों का मूल्यांकन—डॉ. ओझा[1] मिहिर भोज का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं—"नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मिहिर भोज भारत का सबसे महान शासक था। उसने अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों पर ही विजय प्राप्त नहीं की बल्कि उसने एक ऐसे साम्राज्य का निर्माण किया जो अपने आकार, सुव्यवस्थित प्रशासन तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से गुप्त शासकों के स्वर्णयुग के बाद सर्वोत्कृष्ट था। भोज को केवल अपनी महत्वाकांक्षा से ही प्रेरणा नहीं मिली थी। उसकी उपाधि 'आदिवाराह' जो उसके अभिलेखों तथा मुद्राओं पर अंकित है, वह विष्णु के उस वाराह अवतार का प्रतीक थी जिसने पृथ्वी

1. पूर्वोक्त (पृ० 159)

को राक्षसों से मुक्त कराया। यद्यपि वह भगवती का उपासक था किन्तु उसका यह दृढ़ विश्वास था कि उसे भारतीय संस्कृति के शत्रु म्लेच्छों को दण्ड देकर उनसे भारत को मुक्त कराना है।"

अरब यात्री सुलेमान ने 851 ई. में भारतीय सम्राट जुर्ज (गुर्जर) के विषय में लिखा है कि "उसके पास असंख्य सेना है। उसके समान उत्कृष्ट अश्व-सेना किसी अन्य भारतीय शासक के पास नहीं है। वह अरबों का शत्रु था किन्तु फिर भी वह अरब शासक को सबसे शक्तिशाली मानता था। भारतीय शासकों में इस्लाम धर्म का सबसे बड़ा शत्रु वही था। उसका साम्राज्य विशाल था। उसके पास धन, ऊँट व अश्व काफी मात्रा में थे। व्यापार में लेन-देन का माध्यम चाँदी तथा स्वर्ण का चूर्ण था और उसके राज्य में चाँदी व स्वर्ण की खानें थी। भारत में केवल उसका साम्राज्य ही डाकुओं से मुक्त था।" अरब यात्री के इस विवरण से स्पष्ट होता है कि मिहिर भोज का साम्राज्य प्रचुर साधन सम्पन्न था तथा भारत में उसकी राजनैतिक प्रभुता स्थापित थी। भारतीय संस्कृति का वह रक्षक था तथा वाह्य तथा आन्तरिक संकटों से सुरक्षा हेतु उसके पास एक सुव्यवस्थित विशाल सेना थी। डॉ. आर. एस. त्रिपाठी[1] ने अरब यात्री के विवरण पर टिप्पणी देते हुए लिखा है कि—"भोज का साम्राज्य डाकुओं से मुक्त होना भोज के प्रशासन की कुशलता का सूचक है क्योंकि हर्ष के साम्राज्य में भी चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार डाकुओं का भय था तथा ह्वेनसाँग स्वयं एक बार डाकुओं द्वारा लूट लिया गया था।"

मिहिर भोज की मुद्राएँ (सिक्के) 'आदिवाराह' प्रकार के थे जो मिश्रित चाँदी के बने थे। इससे यह प्रकट होता है कि भोज के युद्ध व अभियानों के कारण उस समय वित्तीय संकट था। मुद्राओं के एक ओर ब्राह्मी लिपि में "श्रीमद आदि वाराह" अंकित था तथा उसके नीचे ससेनियन अग्निकुण्ड की आकृति है। मुद्राओं के दूसरी ओर एक मानव आकृति है जिसका मुख वाराह का है जो विष्णु के वाराह-अवतार का सूचक है। इसके सामने एक सूर्य-चक्र है। इन मुद्राओं से भी मिहिर भोज के धर्म, पराक्रम तथा म्लेच्छों से भारत भूमि को मुक्त कराने की पूर्वोक्त विशेषताओं का पता चलता है।

गुर्जर-प्रतिहारों का पतन
(Fall of Gurjar-Pratihars)

(1) महेन्द्रपाल प्रथम (890–907 ई.)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है मिहिर भोज ने अपने पुत्र महेन्द्रपाल के पक्ष में राज्य त्याग कर तीर्थयात्रा पर चला गया था। यह घटना 889–90 ई. में हुई जो महेन्द्रपाल के राज्यारोहण की तिथि मानी जा सकती है। उसकी माता का नाम चन्द्रभट्टारिका देवी था।

1. *R. S. Tripathi* : History of Kanauj (p. 247)

पश्चिमोत्तर प्रदेश—महेन्द्रपाल ने पंजाब के थक्कियवंश को पराजित कर उसके राज्य पर अधिकार किया था किन्तु कल्हण की 'राजतरंगिणी' से विदित होता है कि कश्मीर के राजा शंकरवर्मन की सहायता से थक्किय वंश ने अपने राज्य को प्राप्त करने हेतु संघर्ष किया। इस संघर्ष के फलस्वरूप शंकरवर्मन कुछ भाग पर थक्किय वंश के अधिकार को बनाये रखने में सफल रहा किन्तु करनाल जिले के अधिकांश भाग पर महेन्द्रपाल का अधिकार बना रहा।

पूर्वी प्रदेश—विहार तथा बंगाल के राजशाही जिले के उत्तरी भाग में महेन्द्र पाल के अनेक शिलालेख मिले हैं जो इस तथ्य का सूचक हैं कि बिहार के अधिकांश भाग पर महेन्द्रपाल का अधिकार हो गया था। हजारी बाग के इराखोरी अभिलेख तथा गुनेरिया अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि महेन्द्रपाल ने प्रारम्भिक नौ वर्षों तक अभियान कर समस्त विहार तथा बंगाल के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। चाटसु अभिलेख से पता चलता है कि गुहिल द्वितीय ने महेन्द्रपाल की पूर्वी अभियानों में सहायता की।

पश्चिमी क्षेत्र—ऊना शिलालेख में उल्लेख है कि सूरक्षेत्र का शासक बलवर्मन तथा उसका पुत्र अवनिवर्मन द्वितीय महेन्द्रपाल के सामन्त थे। अतः सूरक्षेत्र पर महेन्द्रपाल का अधिकार बना रहा।

उपरोक्त विवरण से यह प्रकट होता है कि मिहिर भोज के साम्राज्य में महेन्द्रपाल ने पश्चिमोत्तर प्रदेश में कुछ भाग खोया किन्तु पूर्वी प्रदेश में बंगाल तथा बिहार के कुछ प्रदेशों को जीत कर साम्राज्य में मिलाया।

(2) भोज द्वितीय (903–913 ई०)

महेन्द्रपाल की अंतिम ज्ञात तिथि 907 ई० है। अतः 908 ई० के लगभग उसका पुत्र भोज द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने 913 ई० तक राज्य किया। भोज द्वितीय एक निर्बल शासक सिद्ध हुआ क्योंकि पूर्वी प्रदेश उसकी साम्राज्य सीमा से विलग हो गये।

पालों से संघर्ष—पाल शासक नारायण पाल के 54वें वर्ष का बिहार में उद्धान्तपुर नामक स्थान पर एक शिलालेख से पता चलता है कि उत्तरी बंगाल के जिस भू-भाग पर महेन्द्रपाल ने अधिकार किया था उस पर नारायण पाल ने पुनः अधिकार कर लिया। यह घटना भोज द्वितीय के समय की है। अतः प्रतिहार साम्राज्य की सीमा उत्तर प्रदेश तक सीमित रह गई।

कलचुरियों से संघर्ष—कलचुरि नरेश कोक्कल ने भोज पर आक्रमण कर उसके कोष को लूट लिया। बिल्हरी शिलालेख से कोक्कल द्वारा भोज तथा राष्ट्रकूट कृष्णराज को पराजित करने का तथ्य प्रकट होता है। एक अन्य शिलालेख से ज्ञात होता है कि कोक्कल ने भोज, वल्लभ, चित्रकूट नरेश, श्रीहर्ष तथा शंकरगण को अभयदान दिया। इन अभिलेखों में उल्लिखित भोज द्वितीय ही प्रतिहार शासक था।

(3) महीपाल प्रथम (913–943 ई०)

भोज द्वितीय के बाद उसका सौतेला भाई महीपाल 913 ई० में शासक बना। यद्यपि राष्ट्रकूटों से उसे पराजय मिली किन्तु अपने अभियानों के कारण उसने भोज द्वितीय गौरवहीन शासन के बाद पराक्रम प्रदर्शित किया। डॉ० ओझा भोज द्वितीय के शासन-काल से महेन्द्रपाल द्वितीय तक की अवधि को गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के चरमोत्कर्ष काल का अवसान तथा मध्यान्ह काल मानते हैं। भोज द्वितीय के समय से ही साम्राज्य संकुचित होने लगा था। अतः महीपाल प्रथम को शासन सम्भालते ही वाह्य एवं आन्तरिक संकटों का सामना करना पड़ा। खजुराहो अभिलेख से विदित होता है कि भौज द्वितीय के बाद वह चन्देल नरेश हर्षदेव की सहायता से गद्दी पर बैठा।

राष्ट्रकूटों से संघर्ष तथा पराजय—महीपाल को सर्वप्रथम अपने परम्परागत शत्रु राष्ट्रकूटों के भीषण आक्रमण का सामना करना पड़ा। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ के काम्बे ताम्रपत्र के आधार पर पता चलता है कि राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय ने "महोदय शत्रु-नगर को उन्मूलित कर निर्मूल कर दिया जो नगर कुशस्थल के नाम से विख्यात था।" महोदय गुर्जर-प्रतिहार की राजधानी कन्नौज ही थी। आगे इस लेख में कहा गया है कि आक्रमणकारी के मार्ग में उज्जैन नगर पड़ा जहाँ पर "कालप्रिय के मंदिर का प्रांगण उन्मत्त हाथियों की सूंडों के प्रहार से ध्वस्त हो गया।"

कन्नौज के इस अभियान में इन्द्र तृतीय का सहायक उसका सामन्त नरसिम्ह चालुक्य था। कन्नड़ कवि पम्पा के ग्रन्थ "विक्रमार्जुनविजय" अथवा "पम्पा भारत" में लिखा है कि, "नरसिम्ह ने गुर्जरों के हाथ से विजय-देवी को छीन लिया तथा महीपाल वज्र-पात से घायल व्यक्ति समान भयभीत हो, बिना खाये-पीये, आराम किये तथा अपने को सम्भाले भाग गया जबकि नरसिम्ह ने उसका पीछा करते हुए गंगा-संगम पर पहुँच कर अपने अश्वों को स्नान कराया।" नौसरी ताम्रपत्र डण्डपुर शिलालेख से इस युद्ध की तिथि 916 ई० निर्धारित की जाती है। यह घटना उस समय घटित हुई होगी जिस समय महीपाल प्रथम अपने राज्यारोहण सम्बन्धी आन्तरिक संकट से घिरा हुआ था। उज्जैन के कालप्रिय मंदिर को महाकाल मंदिर से समीकरण किया गया है जिसका उल्लेख काम्बे ताम्रपत्र में हुआ है। इस विवरण से यह तथ्य प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण के लिये अपना अभियान-मार्ग उज्जैन, झाँसी तथा कालपी को चुना था। इस अभियान में उसके सामन्त नरसिम्ह चालुक्य ने साथ दिया था।

महीपाल के अंतिम वर्षों में भी राष्ट्रकूटों ने उत्तरी भारत में अभियान किया। देवली तथा कर्हद लेखों से ज्ञात होता है कि कृष्ण तृतीय ने 940 ई० में यह अभियान किया जिससे महीपाल कालिंजर तथा चित्रकूट की रक्षा न कर सका।

विजय अभियान—राष्ट्रकूटों से पराजय के बाद महीपाल ने अपनी शक्ति का

संगठन किया और विजय अभियान अन्य प्रदेशों की ओर किये। राजशेखर महीपाल प्रथम का राज कवि था। उसके रचित ग्रन्थ 'प्रचण्ड पांडव' या 'वाल भारत' में महीपाल द्वारा विजित प्रदेशों में मुरल, कलिंग, केरल, कुन्तल, रमठ और कुलूत का उल्लेख है। डॉ० आर० एस० त्रिपाठी[1] ने इनका समीकरण करते हुए कहा है कि मुरल नर्मदा तट के या केरला के निकटवर्ती प्रदेश के निवासी थे जिन्होंने मेखला (अमरकन्टक पहाड़ी जहाँ से नर्मदा निकलती है) के लोगों को सताया था; कलिंग उड़ीसा तट के निवासी थे, केरला, पश्चिमी घाट तथा समुद्र तट के मध्य के निवासी थे; कुलूत पंजाव में व्यास नदी-तट के काँगड़ा जिले के निवासी थे; कुन्तल पश्चिमी-दक्षिणी भारत के लोग थे तथा रमठ उत्तरी भारत में कुलूतों के निकट वसते थे।

राजशेखर द्वारा दिये गये महीपाल की उक्त विजयों की शिलालेखों से पुष्टि नहीं होती। डॉ० सत्य प्रकाश[2] का कथन है—"इन सभी भौगोलिक इकाइयों एवं जातियों के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि महीपाल ने वहुत वड़े भू-भाग पर अधिकार किया था, परन्तु राजशेखर के विवरण के आधार पर विजय-क्रम और मार्ग दोनों में से कोई भी निश्चित नहीं किया जा सकता।" परतावगढ़ शिलालेख से ज्ञात होता है कि 946 ई० में महेन्द्रपाल द्वितीय (महीपाल प्रथम का पुत्र) का सामन्त उज्जैन में राज्य कर रहा था। डॉ० त्रिपाठी का मत है कि उज्जैन को पुन: हस्तगत महीपाल प्रथम ने ही किया। कहला ताम्रपत्र से भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें उल्लेख है कि महीपाल प्रथम के सामन्त गोरखपुर के कलचुरि शासक गुण वोधिदेव के प्रपौत्र मामान ने धार को जीतने का यश प्राप्त किया। दूसरा सामन्त जिसने महीपाल के साथ दक्षिण में अभियान किया, वह चाटसु लेख के अनुसार गुहिल वंशी भट्ट था।

इन विजयों तथा राजशेखर द्वारा वर्णित विजयों का राष्ट्रकूटों द्वारा प्रतिरोध न करने का कारण राष्ट्रकूटों की तात्कालिक संकटमय अन्तरिक स्थिति थी। महीपाल के इन अभियानों की सफलता के लिये अनुकूल स्थिति थी। करहद ताम्रपत्र से विदित होता है कि राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय का उत्तराधिकारी गोविन्द चतुर्थ प्रशासन के कार्यो पर ध्यान देने की अपेक्षा भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर रहा था। गोविन्द चतुर्थ की दुर्वलता पम्प कवि के कन्नड़ काव्य-ग्रन्थ 'विक्रमार्जुन विजय' से भी स्पष्ट होती है जिसमें गोविन्द का अपने सामन्त अरिकेसरिन द्वितीय द्वारा पराजय का उल्लेख है।

उसकी साम्राज्य सीमा—इस प्रकार महीपाल प्रथम ने राष्ट्रकूटों से पराजय के वाद अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण वनाये रखने का प्रयास किया। नये सुदूर दक्षिणी स्थानों को विजित कर उन्हें अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया क्योंकि उन पर शासन

1. पूर्वोक्त (पृ. 163)
2. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूत काल (पृ. 72)

करना कठिन था। उत्तर पश्चिम में सिंध के कुछ प्रदेश (जिनकी पुष्टि अरब यात्री अलमसूदी करता है), पंजाब का भाग व्यास नदी की सीमा तक, दक्षिण में बुन्देलखंड, पूर्व में उत्तर प्रदेश की पूर्वी सीमा तक तथा पश्चिम में सूर क्षेत्र (उत्तरी काठियावाड़) तक के प्रदेश उसकी साम्राज्य-सीमा में सम्मिलित थे।

(4) **महेन्द्रपाल द्वितीय** (942–948 ई०)

प्रतापगढ़ शिलालेख से ज्ञात होता है कि महेन्द्रपाल द्वितीय के पिता का नाम विनायकपालदेव तथा माता का नाम प्रसाधना देवी था तथा वह 946 ई० में शासन कर रहा था। विनायकपाल महिपाल प्रथम का ही दूसरा नाम था। उज्जैन के एक दानपत्र (942 ई०) में उज्जैन के सामन्त माधव तथा तत्कालीन गुर्जर-सम्राट श्री विदग्ध का नाम अंकित है। डॉ० ओझा का मत है कि श्री विदग्ध महेन्द्रपाल प्रथम की उपाधि थी जो उसके कवि होने तथा कवियों का आश्रयदाता होने के कारण धारण की गई थी। यह लेख इस बात का भी प्रमाण है कि मालवा साम्राज्य का अंग था। डॉ० ओझा कहते हैं कि महेन्द्रपाल के पश्चात गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य मध्यान्ह से संध्या काल की ओर अग्रसर हो रहा था।

(5) **देवपाल** (948–954 ई०)

सियोडोनी (ग्वालियर) शिलालेख (948 ई०) के अनुसार किस्तीपाल (महीपाल) के बाद उसका उत्तराधिकारी देवपाल हुआ। इस लेख में महेन्द्रपाल द्वितीय का नाम न आना, इस तथ्य का सूचक हो सकता है कि देवपाल तथा उसके भाई महेन्द्रपाल द्वितीय में परस्पर कटु सम्बन्ध रहे होंगे। देवपाल के समय कुछ सामन्तों ने स्वाधीन होने का प्रयास किया।

बुन्देलखण्ड के चन्देल सामन्त—बुन्देलखण्ड के चन्देल सामन्तों ने क्षेत्रीय स्वाधीनता स्थापित कर ली थी। खजुराहो शिलालेख चन्देल धन्गदेव के समय उत्कीर्ण कराया गया था। इसमें चन्देल यशोवर्मन को गुर्जरों के लिये प्रचण्ड अग्नि के समान बतलाया गया है। यह चंदेल-प्रतिहार वैमनस्य का सूचक है। इस लेख के आधार पर ही यह ज्ञात होता है कि यशोवर्मन ने कालिंजर पर अधिकार कर लिया तथा उसने वैकुण्ठ की वह प्रतिमा, जो उसने हेरम्बपाल महीपाल के पुत्र हयपति देवपाल से प्राप्त की थी, अपने द्वारा निर्मित मंदिर में स्थापित की।

मेवाड़ के गुहिल सामन्त—उदयपुर के निकट आहाड़ से डॉ० ओझा को प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर यह पता चलता है कि गुहिल शासक ऊल्लट ने अपने शत्रु देवपाल को मौत के घाट उतार दिया।

उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से न होने के कारण केवल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देवपाल के समय गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होती जा रही थी तथा सामन्तों की स्वाधीनता प्रयासों के कारण साम्राज्य संकुचित होता जा रहा था।

(6) विनायकपाल द्वितीय (954–959 ई०)

चंदेल धंग के खजुराहो शिलालेख (954 ई०) में सर्वप्रथम विनायकपाल का नाम मिलता है जिसमें अंकित है कि, "विनायकपाल पृथ्वी की रक्षा कर रहा है और शत्रु उस पर अधिकार करने में विवश है।" अतः देवपाल के बाद महेन्द्रपाल द्वितीय का पुत्र विनायकपाल द्वितीय गद्दी पर आसीन हुआ।

खजुराहो लेख में उल्लेख है कि "विनायकपाल शत्रु को पथ-भ्रमित करने वाला था" जब कि चंदेलों के पूर्व लेखों में उन्हें गुर्जरों के लिये अग्निपुंज के समान माना है। यह तथ्य इस बात का सूचक है कि विनायकपाल ने शत्रुओं का प्रतिरोध सफलता से किया था। इसके अतिरिक्त उसके समय के अन्य कोई तथ्य ज्ञात नहीं हैं।

(7) विजयपाल (959–989 ई०)

विनायकपाल द्वितीय के बाद राजोर शिलालेख के अनुसार उसका भाई विजयपाल 959 ई० में शासक बना। ग्वालियर अभिलेख के आधार पर वह महीपाल प्रथम का पुत्र था। उसके समय साम्राज्य का विघटन तीव्र गति से हुआ।

कलचुरियों से संघर्ष—कृष्ण के गोहरवा अभिलेख से विदित होता है कि त्रिपुरी के कलचुरि नरेश लक्ष्मणराज ने जांगल, पांडिय, लाट, गुर्जर तथा कश्मीर पर विजय प्राप्त की। लक्ष्मणराज लगभग 965 ई० में विजयपाल का समकालीन शासक था। गुर्जर की पराजय का विजयपाल की पराजय से समीकरण किया जाता है।

अनहिल पट्टम के चालुक्यों (सोलंकियों) से संघर्ष—प्रतिहार साम्राज्य के दक्षिण में अनहिल पट्टम को राजधानी बना कर मूलराज ने चालुक्य (सोलंकी) राज्य की स्थापना की। खादी ताम्रपत्र तथा गुजरात के इतिहासकार मूलराज को महाराजाधिराज राजी का पुत्र बतलाते हैं जिसने बलपूर्वक सारस्वत मण्डल पर अधिकार किया। बड़नगर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि मूलराज ने चपोत्कर नरेश को पराजित कर बन्दी बनाया। इस प्रकार सौराष्ट्र, गुजरात तथा दक्षिणी गुजरात प्रतिहारों के हाथ से निकल गया।

जैजाक भुक्ति के चन्देलों से संघर्ष—950 से 1000 ई० की अवधि में धंग के शासन काल में जैजाक भुक्ति राज्य शक्ति सम्पन्न हो गया तथा महू अभिलेख के अनुसार उसने कान्यकुब्ज के सम्राट (प्रतिहार विजयपाल) को परास्त कर वह स्वतन्त्र शासक बन गया। धंग की राज्य सीमा में कालिंजर, भास्वत व यमुना नदी का मध्य क्षेत्र तथा चेदि राज्य सीमा से लेकर गोपाद्रि पर्वत तक का भू-भाग सम्मिलित था। सासबाहु अभिलेख से विदित होता है कि चन्देलों का सामन्त कच्छपघाट नरेश ने ग्वालियर पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार इतने बड़े भू-भाग का गुर्जर साम्राज्य से निकल जाने पर प्रतिहारों की शक्ति को बड़ा आघात लगा। धंग ने 998 ई. में एक ताम्रपत्र के अनुसार बनारस पर भी अधिकार किया था।

राजपूताने के स्वाधीन सामन्त—(1) राजौर का मथनदेव—विजयपाल का सामन्त प्रतिहार मथनदेव राजौर (अलवर जिला) में महाराजाधिराज तथा परमेश्वर जैसे विरुद धारण कर स्वतन्त्र शासक बन गया। अतः उत्तरी राजपूताना प्रदेश प्रतिहार साम्राज्य से विलग हो गया।

(2) **शाकम्भरी के चहमान**—मध्य राजपूताने में शाकम्भरी (साम्भर) के चहमान शासक प्रतिहारों के सामन्त थे। प्रतिहार साम्राज्य के अन्तर्गत इस समय व्याप्त विघटन का लाभ इन्होंने भी उठाया। हर्ष शिलालेख (973 ई०) में चहमान नरेश विग्रहराज द्वितीय द्वारा चहमानों के संकट को दूर करने वाला, उसके उत्तराधिकारी सिंहराज द्वारा तोमर नायक सालवाण को पराजित कर बन्दी बनाया जाना तथा उसे उस समय तक मुक्त न किया जाना बतलाया है जब तक कि रघुवंशी नरेश (प्रतिहार सम्राट विजयपाल) ने स्वयं आकर उन्हें मुक्त कराया। धंग के खजुराहो लेख से भी यह तथ्य प्रमाणित होता है। इससे स्पष्ट है कि चहमान भी प्रतिहारों की अधीनता से मुक्त हो गये थे।

(3) **मेवाड़ के गुहिल**—मेदपाट (मेवाड़) के गुहिल शासक प्रतिहारों के परम्परागत शत्रु राष्ट्रकूटों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। गुहिल नरेश भृत्रिपट्ट द्वितीय ने राष्ट्रकूट राजकुमारी महालक्ष्मी से विवाह किया था। उसके पुत्र अल्लट ने प्रतिहार नरेश देवपाल की हत्या की थी। अटपुर शिलालेख से ज्ञात होता है कि अल्लट के पुत्र जीजय ने चहमान पुत्री से विवाह किया। इस प्रकार मेवाड़ के गुहिल प्रतिहारों के शत्रुओं से सम्बन्ध स्थापित कर विजयपाल के विरुद्ध संघ बना रहे थे।

पंजाब का स्वतन्त्र राज्य—पंजाब में प्रतिहारों द्वारा विजित प्रदेश वहाँ के शाही शासक के अधिकार में आ गये। पंजाब का राज्य सरहिन्द से लमघान तथा कश्मीर सीमा से मुल्तान तक विस्तृत हो गया था। उनकी राजधानी भटिंडा हो गई थी।

राष्ट्रकूटों का अभियान—राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय का उत्तरी भारत पर अभियान 963 ई० के लगभग हुआ। गंगा के नायक मारसिंह के कुदुलपुर अभिलेख में अंकित है कि राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय ने स्वयं अपने हाथों से मारसिंह को गंगाधिपति बनाया। प्रतीत होता है कि मारसिंह ने उत्तरी अभियान में कृष्ण तृतीय का साथ दिया था। इसका प्रमाण श्रवणबेलगोला अभिलेख से भी होता है कि मारसिंह ने कृष्ण तृतीय के लिए उत्तर भारत का क्षेत्र विजित किया। मध्य भारत के जूर लेख से कृष्ण तृतीय के दूसरे अभियान का पता चलता है। इसमें कृष्ण के लिए परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि है। अतः पहले अभियान के समय कृष्ण तृतीय युवराज के रूप में रहा होगा। 972 ई० के कर्द दानपत्र में राष्ट्रकूट सम्राट कर्क द्वितीय के अभियान का उल्लेख है जिसमें चोल और गुर्जर सेना परास्त हुई। इन

अभियानों से तथा आंतरिक विघटन की प्रक्रिया से गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य धराशाही होता गया।

(8) राज्यपाल (989–1019 ई०)

विजयपाल के पश्चात् राज्यपाल गुर्जर प्रतिहारों के संकुचित एवं विघटित साम्राज्य की राजधानी कन्नौज की गद्दी पर बैठा। जब वह शासक बना उस समय वह ऐसी स्थिति में नहीं था कि अपने वंश की खोई हुई राज्य-लक्ष्मी को पुनः प्राप्त कर सके क्योंकि उसके संकुचित राज्य की सीमा न केवल चारों ओर से शक्तिशाली राज्यों से घिरी हुई थी वल्कि गजनी के मुसलमानों की भारत आक्रमण की योजना, भारतीय राजनैतिक स्थिति को और भी जटिल बना रही थी। डॉ० ओझा[1] का कथन है कि—"प्रतिहार साम्राज्य के सिंहासन पर बैठने वाले सम्राटों में राज्यपाल अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण शासकों में से एक था। यद्यपि नाम से वह 'राज्य' का 'पाल' अर्थात् राज्य का रक्षक होना चाहिए था किन्तु वह दुर्भाग्य से राज्य को खोने वाला सिद्ध हुआ।

सुवक्तगीन का भारत-अभियान—गजनी के शासक सुवक्तगीन ने भारत पर पश्चिमोत्तर दिशा से अपने आक्रमण की योजना बनाई। उसके आक्रमण से सर्वप्रथम काबुल तथा उद्भाण्डपुर का शाही शासक जयपाल प्रभावित हुआ। 986 ई० में सुवुक्तगीन ने जयपाल को पराजित कर उसके राज्य को लूटा तथा अनेक लोगों को बन्दी कर गजनी ले गया। दो वर्ष बाद सुवुक्तगीन ने पुनः जयपाल पर आक्रमण कर काबुल पर अधिकार कर लिया। सन्धि की शर्तों का पालन न करने पर जयपाल के विरुद्ध सुवुक्तगीन ने पुनः अभियान किया। जयपाल ने अपनी रक्षार्थ सभी हिन्दू नरेशों से प्रार्थना की। दिल्ली, अजमेर, कालिंजर तथा कन्नौज के राजाओं ने धन तथा सेना से उसकी सहायता की। इतिहासकार फरिश्ता ने इस तथ्य की पुष्टि की है। लमघान के युद्ध-क्षेत्र में विशाल सेना के होते हुए भी जयपाल पराजित हुआ तथा सुवुक्तगीन पुनः लूट-मारकर वापस चला गया। इस युद्ध में कन्नौज नरेश राज्यपाल ने सहायता अवश्य की थी किन्तु साक्ष्य के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने स्वयं भी इस युद्ध में भाग लिया था।

महमूद गजनवी के अभियान—सुवुक्तगीन की 997 ई० में मृत्यु के बाद गजनी का शासक उसका पुत्र महमूद बना। उसने 1000 से 1026 ई० तक भारत पर 17 वार आक्रमण किये। 1001 ई० में जब महमूद गजनवी ने जयपाल पर आक्रमण किया तो जयपाल ने पराजय की ग्लानि से बचने के लिए अपने पुत्र आनन्दपाल को राज्य सौंप कर अग्नि में जल कर आत्महत्या कर ली।

1008 ई० में पुनः महमूद गजनवी ने आनन्दपाल पर आक्रमण की योजना

1. पूर्वोक्त (पृ० 200)

बनाई। आनन्दपाल ने भारत के सभी शासकों से सहायता लेने हेतु अपने राजदूत भेजे। फरिश्ता का कथन है कि म्लेच्छों को भारत भूमि से भगाने हेतु अपने पूर्वजों की भाँति प्रतिहार नरेश राज्यपाल ने भी आनन्दपाल की तत्काल सहायता की। उसकी भाँति अन्य उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, दिल्ली तथा अजमेर के राजाओं ने भी अपनी सेनाएँ आनन्दपाल की सहायतार्थ भेजी। पेशावर के निकट भारतीय संघ की सेना ने महमूद गजनवी की सेना का सामना किया। देश-रक्षा की लहर इतनी प्रबल थी कि स्त्रियों ने अपने स्वर्ण आभूषण उतार कर युद्ध की सहायतार्थ दिये। खोखर जाति के लोग भी भारत की रक्षार्थ आये। युद्ध का भारतीय पक्ष में निर्णय होने ही वाला था कि आनन्दपाल का हाथी बिगड़ कर रण-क्षेत्र से भाग गया। सेना-नायक को भागता देखकर भारतीय सेना का मनोबल टूट गया और वह पराजित हो पीछे भाग खड़ी हुई। महमूद की विजय हुई तथा उसने लूट-पाट तथा नरसंहार किया।

डॉ. आर. एस. त्रिपाठी[1] का कथन है कि—"मुसलमानों के भारत-प्रवेश का प्रतिरोध करने का उत्तरी भारत के राजाओं द्वारा किया गया यह अन्तिम प्रयास था। इसके पश्चात् प्रत्येक भारतीय राजा को स्वयं ही महमूद गजनवी के अनवरत आक्रमणों के प्रहारों को सहना पड़ा।"

महमूद गजनवी की कन्नौज पर विजय—1018 ई० में महमूद गजवनी कन्नौज पर आक्रमण के उद्देश्य से बारन अर्थात् बुलन्दशहर आ पहुँचा। बारन के स्थानीय राजा हरदत्त ने भयभीत होकर अपने 10 हजार अनुयाइयों के साथ इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद महमूद ने महावन (मथुरा) के राजा कुलचन्द्र पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। कुनचन्द्र ने अपनी पत्नी तथा स्वयं की तलवार द्वारा हत्या करना उचित समझा क्योंकि उसे बन्दी बनकर अपमानजनक जीवन व्यतीत करना स्वीकार नहीं था।

मथुरा से महमूद ने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। इतिहासकार उत्वी लिखता है कि महमूद के अचानक आक्रमण से भयभीत हो राज्यपाल गंगापार भाग कर बारन या बुलन्दशहर चला गया। महमूद काफी लूटपाट तथा नरसंहार कर व मन्दिरों को नष्ट कर गजनी लौट गया।

राज्यपाल की इस कायरता से स्थानीय राजा बड़े क्षुब्ध हुए और उन्होंने राज्यपाल को दण्ड देने के लिए एक संघ बनाया जिसका प्रमुख चन्देल नरेश गंड बना। संघ की सेना का संचालन चन्देल युवराज विद्याधर ने किया। कच्छप घाट विक्रमसिंह के दूबकुण्ड शिलालेख से पता चलता है कि युद्ध में अर्जुन ने राज्यपाल को तीरों से मार डाला। महोबा शिलालेख से भी इसकी पुष्टि होती है जिसके अनुसार विद्याधर

1. *Dr. R. S. Tripathi* : History of Kanauj (p. 284)

ने कान्यकुब्ज नरेश को नष्ट कर दिया। इब्न-अल-असिर के ग्रन्थ "कमिल-उत-तवारीख" से भी इसका प्रमाण मिलता है।

जब महमूद गजनवी को राज्यपाल की हत्या की सूचना मिली तो वह 1019 ई. में चन्देल राजा गंड को दण्ड देने के लिए भारत-आक्रमण पर चल पड़ा। सर्वप्रथम महमूद का सामना राज्यपाल के पुत्र त्रिलोचनपाल ने किया जो गंड के संरक्षण में कन्नौज का शासक था। त्रिलोचनपाल पराजित हुआ तथा महमूद ने बुलन्दशहर तथा कन्नौज पर अधिकार कर गंड पर आक्रमण किया। गंड भयभीत हो रात्रि के समय सब कुछ छोड़कर भाग गया। अलबरूनी ने इन तथ्यों की पुष्टि की है।

डॉ० त्रिपाठी के शब्दों में[1]—'इस प्रकार प्रतिहार शक्ति को, जो काफी समय से पतन की ओर लड़खड़ा रही थी। निरन्तर विजयी महमूद की सेना से अन्तिम आघात लगा और यद्यपि त्रिलोचनपाल जान बचाकर चला गया था किन्तु साक्ष्यों के अभाव में उसके तथा उसके उत्तराधिकारियों के विषय में तथ्य ज्ञात नहीं हैं।"

(9) त्रिलोचनपाल (1027 ई०)

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि महमूद के आक्रमण के बाद त्रिलोचनपाल सम्बन्धी तथ्य अज्ञात है। झूसी दानपत्र (1027 ई०) से ज्ञात होता है कि एक गाँव दान में दिया तथा उसकी उपाधि परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था। यह प्रकट करता है कि वह प्रयाग में एक स्वतन्त्र शासक रहा था।

एक अन्य प्रतिहार शासक यशपाल का पता कड़ा अभिलेख से चलता है जिसकी तिथि 1036 ई० है। साहेर-माहेर अभिलेख (1118 ई०) से विदित होता है कि यशपाल के बाद गोपाल नामक शासक गाधिपुर में राज्य कर रहा था। चन्द्रदेव गहड़वाल द्वारा कन्नौज पर अधिकार करने के समय गोपाल सम्भवतः वहाँ का शासक था।

त्रिलोचनपाल के बाद गुर्जर-प्रतिहारों के उत्तराधिकारियों का कोई विश्वस्त विवरण नहीं मिलता। अतः यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि महमूद गजनवी के कन्नौज आक्रमण के बाद प्रतिहार वंश का अवसान हो गया।

प्रतिहार-राष्ट्रकूट-पाल त्रिशक्ति संघर्ष में गुर्जर-प्रतिहारों की भूमिका

(The Role of Gurjara Pratibaras in the Three Cornered Contest of Pratihara-Rashtrakut-Pala)

भारत में साम्राज्य विस्तार हेतु आठवीं तथा नवीं शताब्दी में तत्कालीन तीन प्रमुख शक्तियों—गुर्जर-प्रतिहार-पाल में परस्पर त्रिशक्ति संघर्ष की अनवरत शृंखला भारतीय इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। ये तीनों शक्तियाँ इस काल

1. पूर्वोक्त (पृ० 288)

में अपने विशाल साम्राज्य की स्थापना कर उत्तरी भारत में हर्षकालीन गौरवपूर्ण राजधानी कान्यकुब्ज (कन्नौज) पर अधिकार करने को उत्सुक थे। कन्नौज पर अधिकार किये बिना उत्तरी भारत का अधिपति बनना तथा चक्रवर्ती सम्राट कहलाना सम्भव नहीं था। ये तीनों शक्तियाँ भारत में सार्वभौम साम्राज्य स्थापित करने के लिए महत्त्वाकांक्षी थे। अतः तीनों में त्रिशक्ति संघर्ष होना स्वाभाविक था। इन तीनों के साम्राज्यों की सीमाएँ भी परस्पर एक दूसरे से स्पर्श करती थी। एक यदि दूसरे की सीमोलंघन कर विजय-अभियान करता तो पराजित शक्ति अपनी शक्ति संगठित कर प्रतिशोध के लिए सन्नद्ध होता था। यही आक्रमण तथा प्रत्याक्रमण की शृंखला त्रिशक्ति संघर्ष में शक्ति-परीक्षण तथा शक्ति-संतुलन के उद्देश्य से अनवरत चलती रही।

इस त्रिशक्ति संघर्ष में गुर्जर-प्रतिहार सम्राटों का योगदान पहले यथास्थान प्रसंगोनुकूल विस्तार से किया जा चुका है। यहाँ हम उन विवरणों की पुनरावृत्ति न कर इस त्रिशक्ति संघर्ष में गुर्जर-प्रतिहारों के योगदान का सिंहावलोकन करेंगे।

सर्वप्रथम हम अरबों के आक्रमण के समय प्रथम प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम द्वारा अरबों को पराजित कर भारतीय संस्कृति के रक्षक के रूप में उसे नारायण की उपाधि से विभूषित पाते हैं। राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग ने भी अरबों के विरुद्ध इस अभियान में नागभट्ट का साथ दिया था। किन्तु उज्जयिनी के हिरण्यगर्भ महादान समारोह में राष्ट्रकूट अभिलेख दंतिदुर्ग को प्रतिष्ठित स्थान देते हुए नागभट्ट को प्रतिहार या द्वारपाल के रूप में निकृष्ठ कोटि का मानते हैं। यह मनोवृत्ति साम्राज्य-वादी तथा राष्ट्रकूटों के अहं का परिचायक थी। नागभट्ट ने जब दक्षिण में अपनी साम्राज्य-सीमा का विस्तार लाट प्रदेश को जीत कर किया तो राष्ट्रकूटों ने उसके प्रतिकारस्वरूप प्रतिहारों पर आक्रमण कर दिया। दंतिदुर्ग ने लाट तथा मालवा को जीत लिया। इससे प्रतिहार-राष्ट्रकूट संघर्ष आरम्भ हो गया जो अनवरत चलता रहा। अभी तीसरी शक्ति पालों से प्रतिहारों का संघर्ष आरम्भ नहीं हुआ था क्योंकि उनकी सीमाएँ परस्पर स्पर्श नहीं करती थी। कन्नौज का राज्य उनके मध्य में था।

राष्ट्रकूटों की यह विजय स्थायी न हो सकी। वत्सराज मालवा में उज्जैन राजधानी से अपने राज्य का शासन कर रहा था। वत्सराज ने अपने चौहान सामन्त दुर्लभराज की सहायता से पाल नरेश धर्मपाल को दोआब के क्षेत्र में पराजित किया। यह संघर्ष उत्तर भारत में प्रभुसत्ता स्थापित कर कन्नौज को हस्तगत करने की प्रतिहारों तथा पालों की साम्राज्यवादी नीति का परिणाम था। प्रतिहारो के इस संघर्ष से अब त्रिशक्ति संघर्ष का सूत्रपात हुआ।

राष्ट्रकूट इन दोनो शक्तियो का प्रभुत्व उत्तरी भारत में सहन नहीं कर सकते थे। अतः जब वत्सराज गौड़ों पर विजय प्राप्त कर लौट रहा था तो राष्ट्रकूट नरेश

ध्रुव ने वत्सराज को बुरी तरह पराजित कर मरुप्रदेश में भाग जाने पर विवश कर दिया। इस पराजय से प्रतिहार-शक्ति को काफी आघात लगा और उसकी राज्य-सीमा राजस्थान तक सीमित हो गई। जालौर राजधानी से वत्सराज शासन कर सका। प्रतिहारों को पराजित कर ध्रुव ने पाल नरेश धर्मपाल को हराया और दोआव क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इस समय त्रिशक्ति-संघर्ष में राष्ट्रकूटों का पलड़ा भारी रहा किन्तु ध्रुव के दक्षिण जाते ही प्रतिहार फिर अपनी शक्ति का संगठन कर साम्राज्य विस्तार के सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे। सुदूर उत्तरी क्षेत्र पर स्थायी अधिकार बनाये रखना राष्ट्रकूटों के लिए सम्भव भी नहीं था। वत्सराज ने राष्ट्रकूटों को प्रवल जान कर पाल शासक धर्मपाल से कूटनीतिज्ञ सम्बन्ध स्थापित कर लिए। चूंकि कन्नौज नरेश इन्द्रायुध गौड़ विजय के समय वत्सराज की अधीनता स्वीकार कर चुका था, अतः धर्मपाल ने इन्द्रायुध को हरा कर अपने संरक्षण में चक्रायुद्ध को कन्नौज की गद्दी पर बैठाया। इस व्यवस्था की मान्यता वत्सराज ने कन्नौज के राज्यारोहण समारोह में उपस्थित होकर दी जो उसकी कूटनीतिक प्रतिभा का परिचायक है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं था कि वत्सराज धर्मपाल के अधीन हो गया था। यह तो शक्ति-संतुलन का प्रयास था क्योंकि पाल तथा प्रतिहार दोनों राष्ट्रकूटों से पराजित हुए थे।

आगामी शासक नागभट्ट द्वितीय ने अपने पिता की पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए राष्ट्रकूटों पर आक्रमण किया। किन्तु राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय ने वत्सराज को पराजित कर दिया और उसने उत्तर की ओर हिमालय तक अभियान किया। इस अभियान में पाल नरेश धर्मपाल तथा कन्नौज नरेश चक्रायुद्ध दोनों ने गोविन्द तृतीय के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। राष्ट्रकूटों ने प्रतिहारों के नव-विजित प्रदेश मालवा, कौशल आदि छीन लिए। किन्तु जैसे ही राष्ट्रकूट नरेश दक्षिण को पलायन कर गया नागभट्ट द्वितीय ने शक्ति-संचय कर कन्नौज पर आक्रमण कर दिया और चक्रायुद्ध को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार किया तथा उसे अपनी राजधानी बना लिया। यह प्रतिहारों की त्रिशक्ति संघर्ष में चरम विजय का प्रतीक है। कन्नौज पर अधिकार आर्यावर्त को अधिकृत करने के लिए सामरिक महत्व का गौरवशाली नगर था। राष्ट्रकूट आंतरिक संकट के कारण इसका प्रतिरोध न कर सके।

पाल नरेश धर्मपाल नागभट्ट की इस सफलता को सहन नहीं कर सका क्योंकि कन्नौज का शासक चक्रायुद्ध उसका संरक्षित शासक था। अतः धर्मपाल ने नागभट्ट पर आक्रमण कर दिया। नागभट्ट द्वितीय ने अपने सामन्त कक्क, चालुक्य नरेश तथा गुहिल शंकरगण की सहायता से धर्मपाल को मुंगेर नामक स्थान पर पराजित किया। इस प्रकार त्रिशक्ति-संघर्ष में गुर्जर-प्रतिहारों का सर्वोत्कृष्ट योगदान तथा प्रदर्शन रहा।

आगामी प्रमुख प्रतिहार सम्राट मिहिर भोज तथा पाल नरेश देवपाल का संघर्ष हुआ। यद्यपि पाल अभिलेख देवपाल की विजय बतलाते हैं, किन्तु ग्वालियर

(सगरताल) अभिलेख के आधार पर मिहिर भोज ने अपने गुहिल सामन्त गुणाम्वोधिदेव की सहायता से देवपाल को पराजित किया। मिहिर भोज के दक्षिणी-पश्चिमी अभियानों में सूरक्षेत्र (उत्तरी काठियावाड़) पर अपना अधिकार करने के कारण उसका संघर्ष राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव से हुआ। पहले तो मिहिर भोज को सफलता नहीं मिली किन्तु बाद में उसने राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय तथा उसके गुजरात के राष्ट्रकूट सामन्त कृष्णराज की सम्मिलित सेनाओं को हरा कर पीछे भगा दिया और लाट प्रदेश पर अधिकार कर लिया। गुर्जर-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट साम्राज्यों की सीमाएँ परस्पर स्पर्श करती थीं, अत: सीमा पर तनाव तथा संघर्ष बने रहते थे जिसमें किसी की निर्णायक विजय नहीं हो पाती थी।

पूर्व में प्रतिहार सम्राट महेन्द्रपाल ने उत्तरी बंगाल को अपने साम्राज्य में मिलाया था किन्तु भोज द्वितीय के समय पाल नरेश नारायण पाल ने पुनः इस प्रदेश को हस्तगत कर लिया। प्रतिहार शासक महीपाल प्रथम के समय परम्परागत शत्रु राष्ट्रकूटों ने आक्रमण किया। राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय ने अपने सैनिक अभियान में उज्जैन के महाकाल मन्दिर को क्षति पहुँचाई। आगे झाँसी व कालपी होते हुए इन्द्रपाल तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण किया तथा महीपाल को रण-क्षेत्र से भाग जाने को विवश किया। महीपाल के अन्तिम वर्षो में राष्ट्रकूटों ने एक बार फिर उत्तरी भारत में अभियान किया जिसका सामना प्रतिहार न कर सके। किन्तु जब राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ एक दुर्वल शासक सिद्ध हुआ तो महीपाल ने सुदूर क्षेत्रों में अपने विजय अभियान किये।

परवर्ती प्रतिहार नरेशों के समय साम्राज्य का विघटन होता रहा तथा राज्यपाल के समय महमूद गजनवी के आक्रमणों से गुर्जर-प्रतिहार राज्य का अन्त हो गया। त्रिशक्ति संघर्ष के कारण दुर्बल हुई शक्तियाँ अन्ततः विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं का कोप-भाजन बनीं।

डॉ. आर. सी. मजूमदार[1] ने त्रिशक्ति-संघर्ष का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि—"लगभग एक शताब्दी (750–850 ई.) तक चलने वाले त्रिशक्ति-संघर्ष का समुचित परिणाम प्रतिहार साम्राज्य था। ध्रुव तथा गोविन्द तृतीय के साथ-साथ धर्मपाल तथा देवपाल ने साम्राज्यवादी भूमिका निभाई जिसके वाद प्रतिहार भोज तथा महेन्द्रपाल ने यह भूमिका अदा की। यद्यपि इनमें से प्रत्येक के साम्राज्य समुद्र की लहरों के समान सर्वोच्च विन्दु तक पहुँच कर विघटित हो जाते थे किन्तु प्रतिहारों का साम्राज्य अपने प्रतिद्वन्दियों की अपेक्षा अधिक समय तक अपनी सफलताओं का प्रदर्शन कर सका।" अरब यात्रियों ने भी प्रतिहार सम्राटों की शक्ति, साधनों तथा समृद्धि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

गुर्जर–प्रतिहारों का प्रशासन
(The Administration of Gurjar-Pratiharas)

गुर्जर-प्रतिहार सम्राटों के विगत विवरण से उनकी राजनैतिक उपलब्धियों

1. *Dr. R. C. Majumdar* : The Age of Imperial Kanauj (p. 39–40)

के अतिरिक्त उनकी प्रशासन-व्यवस्था का स्वरूप कुछ अंशों में प्रकट होता है। तत्कालीन अभिलेखों एवं ग्रन्थों के आधार पर गुर्जर-प्रतिहारों की प्रशासनिक व्यवस्था का जो स्वरूप ज्ञात होता है, उसका विवरण निम्नांकित है—

राज्य का आदर्श

गुर्जर-प्रतिहारों का राज्य राजसत्तात्मक था। मध्यकालीन 'राजा के दैवी अधिकार' के सिद्धान्त में शासक विश्वास करते थे तथा प्रजा भी तदनुकूल राजा को देवता के समान अपना रक्षक तथा कल्याणकारी मानती थी। गुर्जर-प्रतिहारों के समय राजा निरंकुश तथा स्वच्छन्द होते हुए भी प्रजा के कल्याण-कार्य में संलग्न रहते थे, धार्मिक कृत्यों को बड़ी श्रद्धा से करते थे, धर्मसहिष्णु थे तथा सामन्तों के परामर्श का उचित सम्मान करते थे। वे भारतीय संस्कृति तथा देश की रक्षा को अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने पश्चिमोत्तर सीमा की ओर से भारत-प्रवेश करने वाले म्लेच्छों (अरबों) का सदैव डटकर मुकाबला किया तथा उन्हें अपनी राज्य-सीमा में नहीं घुसने दिया। बड़े-बड़े सामन्तों ने गुर्जर-प्रतिहार शासकों की साम्राज्य-वृद्धि में सहायता की तथा अनेक सैनिक अभियानों में विजय प्राप्त कर यश अर्जित किया। इस प्रकार राज्य का आदर्श राज्य सत्तात्मक होते हुए भी उसका स्वरूप लोक-कल्याणकारी था।

केन्द्रीय प्रशासन

राजा का पद—राजा का पद वंशानुगत था। राजा की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ही गद्दी पर बैठता था। अरब लेखक अल-मसूदी का कथन है कि राजा का पद उस वंश के उत्तराधिकारियों तक ही सीमित था और वह कभी दूसरे को नहीं दिया जाता था। राजा स्वयं अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करता था। ज्येष्ठ पुत्र युवराज कहलाता था। अरब यात्री सुलेमान, जिसने गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का वर्णन किया है, इस तथ्य की पुष्टि करता है।

राजा की प्रभुसत्ता तथा उसके दैवी अधिकार उसके विरुदों तथा उपाधियों से प्रकट होते हैं। गुर्जर-प्रतिहार सम्राट 'परम भट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' आदि विरुद धारण करते थे। राजा मुख्यतः तीन कर्त्तव्य पूरा करते थे—कार्यकारिणी, न्यायिक तथा सैनिक कर्त्तव्य। प्राचीन प्रशासनिक परिपाटी व नियमों का पालन किया जाता था। कौटिल्य द्वारा वर्णित मौर्यकाल में प्रचलित प्रशासन-प्रक्रिया को आदर्श मानकर तदनुकूल कार्य किया जाता था।

कार्यकारिणी के अध्यक्ष के नाते राजा बड़े अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं करता था, आर्थिक व्यवस्था की रीति-नीति निर्धारित करता था, राजदूत नियुक्त करता था तथा गुप्तचर विभाग का नियन्त्रण करता था। न्याय के क्षेत्र में राज्य का वह सर्वोच्च न्यायाधीश था। वह अधीनस्थ न्यायालयों की अपीलें सुन कर निर्णय देता था। उसका कर्त्तव्य अविलम्ब न्याय करना था। सैनिक दृष्टि से राजा का कर्त्तव्य अपनी प्रजा की रक्षा करना था। मेधातिथि (नवीं शताब्दी) ने लिखा है

कि " देश पर यदि आक्रमण होता हो, नरसंहार हो रहा हो और सैनिक मर रहे हों तब यदि राजा युद्ध द्वारा उसका प्रतिकार न करता हो तो उसका सारा गौरव अंधकार की गहरी घाटियों में खो जाता है।" इसी आदर्श को लेकर गुर्जर-प्रतिहार सम्राट अपनी सेना के सर्वोच्च सेनाध्यक्ष होते थे तथा स्वयं प्रमुख सैनिक अभियानों का नेतृत्व कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। युद्ध तथा सन्धि करने का अधिकार केवल राजा को ही प्राप्त था।

राजमहिषी—राजा की प्रमुख रानी को सबसे अधिक सम्मान प्राप्त था। राजा की मृत्यु के बाद उसे अपने जीवन-यापन हेतु पर्याप्त राशि मिलती थी। युवराज की अल्पआयु की अवधि पर्यन्त वह संरक्षिका के रूप में राज्य-कार्य करती थी। वह भूमिदान भी राजा की स्वीकृति से करती थी।

प्रशासनिक अधिकारी—प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने हेतु गुर्जर-प्रतिहार राज्य में निम्नांकित प्रमुख अधिकारी थे—

1. **महामन्त्रिन्**—यह मुख्य मन्त्री होता था जो राजा को आवश्यकतानुकूल परामर्श देता था।
2. **महापुरोहित**—महापुरोहित का कार्य यज्ञ करना तथा दान लेना था।
3. **अमात्य**—यह राजस्व सम्बन्धी मामलों का मन्त्री था।
4. **महासन्धिविग्रहिक**—यह विदेश मन्त्री था जो युद्ध तथा सन्धि के लिए राजा की सहायता करता था।
5. **महासेनाधिपति**—यह मुख्य सेनापति था।
6. **महादण्डनायक**—यह मुख्य सैनिक परामर्शक था।
7. **महाप्रतिहार**—यह राजा का मुख्य अंग-रक्षक था।
8. **महासामन्त**—सामन्तों में प्रमुख महासामन्त कहलाते थे।
9. **महालक्षपटलिक**—यह राज्य का मुख्य लेखाधिकारी था।
10. **महाधर्माध्यक्ष**—धर्म तथा न्याय के मामलों का मुख्य व्यवस्थापक था।
11. **महामुद्राधिकारी**—यह कोपाध्यक्ष था।
12. **महाभोगिक**—यह प्रमुख राजस्व अधिकारी था।

इसके अतिरिक्त अन्य छोटे अधिकारी भी थे जैसे—(1) दण्डपोलिक (पुलिस अधिकारी), (2) दण्डोधार्णिक (न्यायालय अधिकारी), (3) चौरोधार्णिक, (4) दण्डिक (जेलर), (5) दशापराधिक (अपराधों का जाँच-कर्त्ता), (6) दूत प्रेषनिक (गुप्तचर), (7) वलाधिकृत (सेनापति), (8) वलाध्यक्ष (सेना-प्रमुख), (9) गोलमिक (30 सैनिकों का प्रमुख), (10) महा कुमारामात्य (युवराज का परामर्शदाता), (11) युक्तक (एकाउन्टैंट), (12) तन्त्रपाल, (13) कामस्थ (लेखक), (14) भण्डागारिक (कोपाधिकारी) (15) अन्तःपुरिक, (16) दूत, (17) नौकाध्यक्ष, (18) आकराधिकारी (खानों का अधिकारी) आदि।

प्रान्तीय प्रशासन

राज्य युक्तियों (प्रांतों) या मण्डलों में विभाजित था, युक्ति विषयों (जिलों) मे, विषय अग्रहारों (तहसीलों में) तथा अग्रहार ग्रामों में विभक्त थे । ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी ।

युक्ति – प्रान्त को युक्ति के नाम से पुकारा जाता था । शिलालेखों में गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य की कुछ युक्तियों के नाम मिलते हैं जैसे श्रावस्ती, कान्यकुब्ज तथा गुर्जरत्रा युक्ति । युक्ति के सर्वोच्च अधिकारी को राष्ट्रपति, राजा स्थानीय, उपरिक महाराज आदि कहा जाता था । राजा इनकी नियुक्ति करता था । ये अधिकारी या तो राजवंश के होते थे या राजा के अत्यन्त विश्वस्त सामन्त हुआ करते थे । इनकी उपाधि महासामन्त या राजा होती थी । केन्द्रीय नीति के अनुसार युक्ति का प्रशासन होता था । युक्ति के न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश का कार्य करना एवं राजस्व निर्धारित करना तथा वसूल करना राजा स्थानीय का कर्त्तव्य था । वे राजा के उन ग्रामों में हस्तक्षेप नहीं करते थे जो दान में दिए हुए होते थे । केन्द्र की भांति ही प्रत्येक विभाग के छोटे अधिकारी व कर्मचारी होते थे जो राजा स्थानीय की सहायता करते थे ।

मण्डल—युक्तियों की भांति मण्डल भी एक पृथक इकाई थी जिसके प्रमुख अधिकारी को मण्डलेश्वर अथवा माण्डलिक कहा जाता था । वराह ताम्रपत्र में युक्ति तथा मण्डल का पृथक प्रयोग किया गया है ।

विषय—युक्ति अर्थात प्रान्त विषयों (जिलों) में विभक्त थे । शिलालेखों में असुरामक, वाल्यिका, वाराणसी आदि विषयों का उल्लेख है । विषय का प्रमुख अधिकारी 'विषयपति' या 'भोगपति' कहलाता था क्योंकि विषय के लिए कहीं 'भोग' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है । विषयपति की नियुक्ति या तो राजा स्वयं अथवा प्रान्त का अधिपति करता था । विषयपति के परामर्श हेतु 'विषयमहत्तर' नामक एक सामन्तों की समिति होती थी । विषय के अधिकारियों में दशापराधिक, दूत, चौरोधारणिक, दण्डिक, दण्डपाशिक, दण्डनायक, शौल्किक, क्षेत्रप आदि होते थे जो विषयपति की शासन-व्यवस्था में सहायता करते थे । विषयपति का प्रमुख कर्त्तव्य राजस्व सम्बन्धी था ।

अग्रहार—विषय (जिलों) को अग्रहारों (तहसीलों) में विभक्त किया गया था । अग्रहार के प्रमुख अधिकारी की नियुक्ति प्रान्तपति की स्वकृति से विषयपति करता था ।

ग्राम—प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी 'जिसका प्रमुख 'ग्रामपति' या 'ग्रामगमिक' होता था । इनके सहायक अधिकारी 'महत्तर या 'महत्तम' होते थे जिनका उल्लेख शिलालेखों में हुआ है । ग्राम की सुरक्षा ग्रामपति का प्रमुख कर्त्तव्य था । उसकी सहायतार्थ ग्राम के वयोवृद्ध व्यक्तियों की एक ग्रामसभा या 'पंचकुल' (वर्तमान पंचायत) थी जो राजस्व वसूली करने, छोटे अपराधों का निर्णय करने व

दण्ड देने में ग्रामपति की सहायता करती थी। ग्रामपति ग्राम के समस्त अभिलेख भी रखता था।

नगरपालिका और श्रेणियाँ—ग्रामों की भाँति प्रत्येक नगर में उसके प्रशासन हेतु एक सभा 'मण्डापिका' होती थी। व्यापार एवं व्यवसाय के नियन्त्रण हेतु श्रेठियों के संघ थे। ग्वालियर शिलालेख में विभिन्न व्यवसायों के इन संघों का उल्लेख है। दुर्गों में कोट्टपाल तथा बलाधिकृत अधिकारी थे।

सामन्त प्रशासित क्षेत्र—सम्राट द्वारा सीधे प्रशासित क्षेत्रों के अतिरिक्त साम्राज्य में ऐसे क्षेत्र भी थे जिन पर चहमान, तोमर, चाप, चालुक्य, गुहिल, प्रतिहार आदि सामन्त सम्राट की अधीनता में स्वयं शासन करते थे। सामन्त युद्ध-अभियानों में सम्राट की सहायता करते थे। दान-पत्रों से विदित होता है कि सामंतों के प्रशासन में यद्यपि राज्य के अधिकारी हस्तक्षेप नहीं करते थे किन्तु उनके क्षेत्र की सूचना संबंधित युक्तिपति द्वारा सम्राट के पास नियमित रूप से भेजी जाती थी। सामंतों पर नियंत्रण हेतु तन्त्रपाल नामक अधिकारी की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी। तन्त्रपाल ब्रिटिशकाल में भारतीय राज्यों में रहने वाले पोलिटिकल एजेंट का कार्य करता था। गुर्जर प्रतिहार सम्राटों के दुर्बल तथा अयोग्य होने पर ये सामन्त क्रमश: स्वाधीन हो गये।

राज्य की आय के स्रोत (Sources of Revenue)

मुखयतः कृषि तथा विभिन्न करों से राजस्व प्राप्त होता था। अलबरूनी के कथनानुसार तत्कालीन राजस्व, उपज तथा पशुधन की आय का $\frac{1}{6}$ भाग था जो 'भाग' या 'उदरंग' कहलाता था। इसका व्यय राज्य की ओर से कल्याणकारी तथा सुरक्षात्मक कार्यो में किया जाता था। इनके अतिरिक्त अन्य करों में प्रमुख थे—उदरंग कर (भूमिकर), उपरिकर (भूमिविहीन लोगों से कृषि कर), भोग (भूमि व किराये पर कर या उपहार), धार्मिक कर, आयात तथा निर्यात कर, खान एवं जंगलों से आय पर कर, न्यायालय शुल्क, दण्ड तथा वैश्याओं पर कर। इनके अतिरिक्त सामन्तों से प्राप्त राज्य-कर तथा विजित प्रदेशों से लूटी हुई सम्पति भी राजस्व का भाग थे। इन सभी स्रोतों से राजस्व की प्राप्ति होती थी। राजस्व के सर्वोच्च अधिकारी को महाभोगिक कहा जाता था।

गुर्जर-प्रतिहारों के समय सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक प्रगति का निम्नांकित विवरण तत्कालीन कुशल प्रशासन का परिचायक है :

सामाजिक दशा (Social Condition)

समाज वर्ण-व्यवस्था पर आधारित था। प्रमुख चार वर्णो के अतिरिक्त व्यवसाय के आधार पर अनेक नवीन जातियों का निर्माण हो चुका था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। उनका प्रमुख कर्त्तव्य पूजा-पाठ, अध्ययन, दान, यज्ञ आदि करना था। किन्तु शिलालेखों से ऐसे विवरण भी मिले हैं कि कुछ ब्राह्मण उच्च सैनिक पदों पर भी आसीन थे। इनमें से अधिकांश राज पुरोहित, राज क

ज्योतिषी आदि का कार्य करते थे। क्षत्रियों का मुख्य कर्त्तव्य शस्त्र और युद्ध था। वैश्यों ने कृषि करना छोड़ दिया था तथा वे व्यापार-व्यवसाय ही करते थे। अलबरूनी के अनुसार शूद्रों का स्थान समाज में निम्न था। उनका कार्य अन्य वर्णों की सेवा करना था। अरब यात्री इब्न खुर्दादल के विवरण से विभिन्न जातियों का वास्तविक ज्ञान नहीं होता। उसने केवल कार्य के आधार पर कुछ वर्गों का उल्लेख किया है। अरब यात्री सुलेमान ने भी नग्न साधुओं का वर्णन कर उसे भ्रमवश एक जाति मान लिया है।

समाज में विवाह की अनुलोम प्रथा प्रचलित थी अर्थात् उच्च जाति का पुरुष उससे निम्न जाति की स्त्री से विवाह कर सकता था। प्रतिहार वंश का संस्थापक हरिशचन्द्र ब्राह्मण था जिसने क्षत्रिय जाति की स्त्री से विवाह किया था। प्रायः विवाह अल्प आयु में ही कर दिये जाते थे। अलबरूनी ने इसकी पुष्टि की है। बहुविवाह का प्रचलन उच्च वर्गों में ही था। विवाह विच्छेद तथा विधवा विवाह का प्रचलन नहीं था। सती प्रथा इस काल में लोकप्रिय नहीं थी। पर्दाप्रथा कठोर नहीं थी। वेषभूषा साधारण थी। स्त्री तथा पुरुष आभूषणप्रिय थे।

धार्मिक दशा (Religious Condition)

गुर्जर-प्रतिहार हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक थे। विष्णु के विभिन्न अवतारों—मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि देवताओं की पूजा प्रचलित थी। प्रतिहार सम्राटों ने अनेक विष्णु मंदिरों का निर्माण कराया। शिलालेखों से इसकी पुष्टि होती है। शिव की उपासना के भी प्रमाण अभिलेखों से प्राप्त होते हैं जिनके विभिन्न नाम—पशुपति, शम्भु, सिद्धेश्वर, महाकाल, कालप्रिय आदि प्रचलित थे। मेवाड़ के गुहिल एकलिंग महादेव की पूजा करते थे। उज्जयनी में महाकाल का मंदिर प्राचीन काल से प्रतिष्ठित है। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं तथा देवियों में सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, दुर्गा (भगवती), चण्डिका, लक्ष्मी, गौरी आदि की पूजा भी लोकप्रिय थी।

धार्मिक क्रियाओं में व्रत, दान, यात्राएँ आदि सम्पन्न होती थी। दान चंद्र या सूर्य ग्रहण, श्राद्ध, जन्मदिन आदि के अवसर पर दिया जाता था। अरब यात्री अल उतबी का कथन है कि राजा दान में अपना सारा कोष तक मूर्ति के चरणों में समर्पित कर देते थे। प्रमुख तीर्थ-स्थलों में वाराणसी, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, मथुरा, मुल्तान, उज्जायिनी आदि थे।

प्रतिहार नरेश धर्मसहिष्णु थे। वे विष्णु तथा शिव दोनों पर समान श्रद्धा रखते थे। बौद्ध तथा जैन धर्म वालों को धार्मिक स्वतन्त्रता थी तथा राजा की ओर से उन्हें उचित आर्थिक सहायता दी जाती थी। जैन धर्म ग्रन्थों में प्रतिहारों की प्रशंसा की गई है। वत्सराज ने कन्नौज में महावीर स्वामी का एक विशाल मंदिर बनवाया तथा ग्वालियर में महावीर की एक मूर्ति स्थापित की थी। उसके द्वारा मथुरा, अन्हिलवाड़ आदि स्थानों पर भी मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है।

नागभट्ट द्वितीय के विषय में यह मान्यता है कि उसने जैन धर्म अपना लिया था उसका प्रपोत्र मिहिर भोज जैन धर्म का संरक्षक था।

साहित्यिक प्रगति

गुर्जर प्रतिहार सम्राटों ने अनेक कवि, लेखक तथा साहित्यकारों को आश्रय दिया था। उनमें से अनेक सम्राट स्वयं भी कवि तथा साहित्य-प्रेमी थे। भीनमाल में व्याघ्रमुख के आश्रम में भिल्लमलकाचार्य ने 'ब्रह्मस्फूत' ग्रन्थ की रचना की थी। नागभट्ट प्रथम के समय जैन आचार्य क्षमाश्रवण, यक्षदत्त तथा नागभट्ट द्वितीय के समय बप्पभट्टि ने उत्कृष्ट रचनाएँ की। प्रतिहार सम्राटों के आश्रम में राजशेखर, क्षेमेश्वर तथा बलभद्र जैसे साहित्यकार थे। मिहिर भोज के समय स्कन्द-पुराण का वस्त्रापथ महात्मा की रचना हुई। महीपाल के आश्रम में राजशेखर कवि ने 'प्रचण्ड पांडव' ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसके अतिरिक्त प्रतिहार शासकों के अनेक शिलालेख व ताम्रपत्रों में उच्चकोटि को साहित्यिक भाषा व शैली अभिलक्षित होती है। ग्वालियर प्रशस्ति बलादित्य की रचना है।

गुर्जर-प्रतिहारों का मूल्यांकन
(Evaluation of Gurjara Pratiharas)

आठवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक लगभग 200 वर्षों तक गुर्जर प्रतिहारों ने उत्तरी भारत में एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर राजनैतिक तथा प्रशासकीय कुशलता का परिचय दिया। डॉ० गोपीनाथ शर्मा[1] प्रतिहार साम्राज्य के विषय में कहते हैं कि, "उत्तरी भारत में मौर्यो, गुप्ताओं और मोखरियों को छोड़कर किसी वंश ने एक लम्बे काल तक इस प्रकार का विस्तारित राज्य स्थापित नहीं किया था।" डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा[2] का कथन है—"प्रतिहारों ने अपने राज्य का इतना विस्तार किया कि जो प्राचीन भारतीय राज्य की होड़ कर सकता है। जहाँ तक इनकी राज्य व्यवस्था का प्रश्न है वह वर्धन साम्राज्य से अधिक व्यवस्थित थी। उन आक्रमण और प्रत्याक्रमण के दिनों में उन्होंने देश को शांति प्रदान कर अपने राज्य को संस्कृति का केन्द्र बना दिया, जिसमें उत्तर तथा दक्षिण भागों के कवि तथा विद्वान आश्रय पाते थे। उनके समय में कला ने भी इतनी उन्नति कर ली थी कि जिसकी तुलना किसी भी सुन्दर कलाकृति से की जा सकती है।"

राष्ट्रकूटों तथा पालों के साथ त्रिशक्ति संघर्ष में वे एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर सफल रहे। अरब यात्री सुलेमान, अबूजीद, अलमसूदी और अलगर्दीजी प्रतिहारों के शत्रु होते हुए भी उन्होंने गुर्जर प्रतिहार सम्राटों की शक्ति, देश भक्ति, वीरता तथा उनके प्रशासन में सुव्यवस्था एवं स्मृद्धि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। भारतीय संस्कृति के रक्षक के रूप में ग्वालियर अभिलेख में अंकित उनका

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग-1 (पृष्ठ 70-71)
2. *Dr. G. H. Ojha* : Rajasthan Through Ages (p. 209)

विरुद 'नारायण' सर्वथा उचित है। वस्तुतः गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य तथा उसके सम्राट ही भारत के क्रमशः अंतिम साम्राज्य तथा सम्राट थे।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. हर्ष की मृत्यु से गुर्जर-प्रतिहारों के आगमन तक कन्नौज के इतिहास का रेखांकन कीजिये। (1974)
   Give an outline the History of Kanauj from the death of Harsha to the advent of the Gurjara-Pratiharas.
2. हर्ष की मृत्यु से गुर्जर-प्रतिहारों के आविर्भाव तक कन्नौज राज्य का इतिहास लिखिए। (1976)
   Trace the History of the Kingdom of Kanauj from the death of Harsha to the advent of the Gurjara Pratiharas.
3. गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के विकास का महेन्द्रपाल प्रथम तक का इतिहास लिखिए। (1975)
   Describe the History of the development of Gurjara-Pratihar Empire upto Mahendrapal I.
4. प्रतिहार कौन थे ? नागभट्ट द्वितीय की उपलब्धियों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये। (1976)
   Who were Pratiharas ? Give a critical estimate of the achievements of Nagbhatta II.
5. "गुर्जर प्रतिहार सम्राटों में मिहिर भोज को न्यायतः महानतम सम्राट स्वीकार किया जा सकता है।" समीक्षा कीजिए। (1976)
   "Mihirbhoja can legitimately be regarded as the greatest of the Gurjara-Pratihara emperors." Discuss.
6. 8वीं और 9वीं शताब्दियों में पालों, प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के बीच राजनैतिक और सैनिक प्रभुत्व के लिए चलने वाले संघर्षों के स्वरूप और इतिहास का विवेचन कीजिए। (1974)
   Discuss the nature and history of the conflict of Palas, Pratiharas and Rashtrakutas for the political and military supermacy during the 8th and 9th centuries.
7. प्रतिहारों के काल में कन्नौज साम्राज्य के प्रशासन का वर्णन कीजिए। (1976)
   Describe the administration of the empire of Kanauj under the Pratiharas.
8. गुर्जर-प्रतिहार प्रशासन का विवरण दीजिए। (1975)
   Describe the Gurjara-Pratihara administration.
9. त्रिशक्ति संघर्ष में साम्राज्यिक प्रतिहारों की भूमिका की समीक्षा कीजिए। (1977)

Assess the role of the Imperial Pratiharas in the Tripartate struggle.

10. प्रथम महीपाल प्रतिहार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (1975)
Write short note on I Mahipal Pratihar.
11. मण्डोर तथा भृगुकच्छ के प्रतिहार शासकों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
Describe in brief the Pratihar rulers of Mandaur and Bhragukachha.
12. गुर्जर-प्रतिहार सम्राट वत्सराज की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।
Evaluate the achievements of the Gurjara-Pratihara emperor Vatsraj.
13. गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का पतन किस प्रकार हुआ ? इस पतन के कौन से कारण प्रमुख थे ?
How was Gurjara-Pratihara empire met its downfall ? What were its reasons ?
14. नागभट्ट द्वितीय की उपलब्धियों का वर्णन कीजिये। (1978)
Give the achievements of Nagbhatt II.
15. प्रतिहारों के विकास की परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए। (1978)
Discuss the circumstances leading to the rise of the Pratiharas.
16. राज्यपाल प्रतिहार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (1978)
Write short note on Rajyapal Pratihar.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Dr. Dashrath Sharma : Rajasthan Through Ages.
2. R. S. Tripathi : History of Kanauj.
3. Dr. R. C. Majumdar : The Age of Imperial Kanauj.
4. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग–1
5. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूतकाल
6. J. N. Asopa : Origin of Rajputs.
7. डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास
8. डॉ. वी. एस. भार्गव : राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण
9. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास
10. वी. एस. पाठक : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास
11. डॉ. मनराल व डॉ. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास

3 पालवंश तथा धर्मपाल के विशेष संदर्भ में उनका शासन-प्रबन्ध

(Palas with special reference to Dharmapala and their administration)

श्री आर. सी. मजूमदार[1] के शब्दों में —"आठवीं शताब्दी के मध्य में पालवंश की स्थापना से बंगाल के इतिहास मे एक नवीन युग का सूत्रपात होता है ।" शशांक की मृत्यु (630 ई.) के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक बंगाल में अव्यवस्था एवं अराजकता व्याप्त रही जिससे दु:खी होकर वहाँ की जनता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया-स्वरूप गोपाल नामक एक वीर तथा साहसी व्यक्ति ने पाल वंश के राज्य की स्थापना कर व्यवस्था स्थापित की । अतः पालो के पूर्व बंगाल की राजनैतिक दशा का संक्षिप्त विवेचन कर लेना उपयोगी रहेगा ।

पालों से पूर्व बंगाल की राजनैतिक दशा
(Political Condition of Bengal before the advent of Palas)

शशांक की मृत्यु के बाद कोई केन्द्रीय सत्ता न रहने से बंगाल में उसका साम्राज्य अनेक भागों मे विभाजित हो गया । ह्वेनसांग ने 638 ई. में बंगाल की यात्रा की थी । उसने तत्कालीन बंगाल को निम्नांकित पांच भागों में विभक्त हुआ पाया—

(1) काजांगल (राजमहल के निकटवर्ती प्रदेश),
(2) पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल),
(3) कर्ण-सुवर्ण (पश्चिमी बंगाल),
(4) ताम्रलिप्ति (पश्चिमी बंगाल),
(5) समतट (पूर्वी बंगाल) ।

'मंजुश्रीमूलकल्प' ग्रन्थ से विदित होता है कि शशांक की मृत्यु के बाद बंगाल में अराजकता फैल गई । शशांक का पुत्र थोड़े समय तक राज्य कर सका क्योंकि हर्ष तथा कामरूप (आसाम) के शासक भास्करवर्मन ने आक्रमण कर कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया । पश्चिमी बंगाल के कर्ण-सुवर्ण प्रदेश में जयनाग ने एक नये राजवंश की स्थापना की । श्री आर. सी. मजूमदार का मत है कि

1. *Dr. R. C. Majumdar* : The History of Bengal

भास्करवर्मन की अधीनता से जयनाग स्वतन्त्र शासक बना। जयनाग के बाद डॉ० आर. सी. बसाक के अनुसार उत्तरवर्ती गुप्त शासकों ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया। ह्वेनसांग के अनुसार समतट (पूर्वी बंगाल) में सातवीं शताब्दी के मध्य तक ब्राह्मण शासक रहे जिनसे यह प्रदेश बौद्ध धर्मावलम्वी शासकों ने अधिकृत कर लिया। बौद्ध शासको में खड़गोदयाम, जातखड़ग, देवखड़ग तथा राजभट्ट नामक राजाओं ने क्रमश: शासन किया। चीनी यात्री इत्सिंग ने समतट के राजा का नाम राजभट्ट बतलाया है जिसका समीकरण खड़ग वंश के राजभट्ट से हो सकता है।

आठवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बंगाल पर विदेशी लोगों ने आक्रमण किये। उत्तरी बंगाल पर शैलवंश के शासकों ने अधिकार कर लिया। कन्नौज के शासक यशोवर्मन ने 735 ई. तक उत्तरी तथा पश्चिमी बंगाल पर विजय प्राप्त की। "गौड़वहो" प्राकृत काव्य ग्रन्थ से इसकी पुष्टि होती है। कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तपीड़ ने बंगाल पर कुछ समय के लिये अधिकार किया किन्तु वह स्थायी न रह सका। 'राजतरंगिणी' से विदित होता है कि ललितादित्य का प्रपौत्र जयपीड़ काश्मीर का राज्य खोकर उत्तरी बंगाल के पुण्ड्रवर्धन राज्य में पहुँचा और वहाँ के राजा जयन्त गौड़ की पुत्री से विवाह कर उसके राज्य को सुदृढ़ बनाया।

नैपाल के शिलालेख से पता चलता है कि इस समय बंगाल में विश्रृंखलता थी तथा कामरूप के हर्षदेव ने गौड़ प्रदेश पर आक्रमण किया। अन्य शिलालेखों से समतट प्रदेश पर शतवंशी राजाओं का अधिकार प्रकट होता है। तिब्बती लेखक तारानाथ के अनुसार पूर्वी बंगाल में चन्द्रवंश के शासक आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राज्य कर रहे थे।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि शशांक की मृत्यु के पश्चात् किसी केन्द्रीय सत्ता के अभाव में 650 से 750 ई. तक बंगाल में अराजकता का युग था। अत: मत्स्य न्याय के अनुसार राजनैतिक स्थिरता लाने हेतु पाल वंश का उदय हुआ।

पालों की उत्पत्ति
(The Origin of Palas)

खलीमपुर ताम्रपत्र (धर्मपाल द्वारा उत्कीर्ण) से पता चलता है कि गोपाल के हाथों में लोगों ने सत्ता सौंप दी ताकि वहाँ फैला मत्स्य-न्याय समाप्त हो सके। श्री कीलहोर्न ने इस अभिलेख के आधार पर कहा है कि—"जनता ने गोपाल को राजा बनाया ताकि उस अराजकता की स्थिति का अन्त हो सके जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी का कोप-भाजन बन जाता था।" श्री आर. सी. मजूमदार[1] ने इस घटना की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—"दीर्घ समय तक अनेक यातनाएँ सहने के कारण लोगों में राजनैतिक चेतना तथा आत्म-त्याग की ऐसी भावना विकसित हुई जो बंगाल के इतिहास में अनुपम है।....आठवीं शताब्दी में भारत में राष्ट्रीय भावना

1. पूर्वोक्त (पृष्ठ 96-97)

से प्रेरित हो व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग देने की भावना इतनी लोकप्रिय नहीं थी जितनी कि यूरोप में हजारों वर्षों बाद हुई थी। यह घटना इसलिए भी प्रशंसनीय है कि बिना किसी संघर्ष के स्वतन्त्र राजनैतिक अधिपतियों ने गोपाल नामक एक वीर पुरुष की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार एक रक्तहीन क्रान्ति सम्पन्न हुई जो अपने लक्ष्य एवं प्रतिफल की दृष्टि से हमें 1870 ई. में जापान में हुई घटना का स्मरण दिलाती है।"

खलीमपुर ताम्र-पत्र के अनुसार गोपाल को 'प्रकृति' ने राजा बनाया था। प्रकृति का अर्थ प्रजा होता है किन्तु श्री पी. एल. पोल का मत है कि प्रकृति का तकनीकी अर्थ 'मुख्य अधिकारी' होता है। अतः बंगाल की प्रजा ने अपने मुख्य अधिकारियो के माध्यम से गोपाल नामक योग्य वीर को अपना राजा निर्वाचित किया। बिना रक्तपात के गोपाल का राजा बनना यद्यपि आश्चर्यजनक है किन्तु डॉ. सत्यप्रकाश[1] का मत है कि "सम्भवतः उसकी वीरता, कूटनीतिक मेधा तथा साहस ने भी उसे सहयोग दिया।"

पालों की उत्पत्ति के विषय में निम्नांकित मत प्रचलित हैं—

1. **खड़गों से उत्पत्ति**—श्री हरप्रसाद शास्त्री पालों की उत्पत्ति धर्मपाल के समय हरिभद्र द्वारा रचित ग्रन्थ "अष्टसहस्त्रिका-प्रजन्यपारमिता" के अंश राजभट्टादि वंश पतिता" के आधार पर खड़ग वंश से मानते है। श्री शास्त्री इस अंश का अर्थ "किसी राजा के सेनापति का पुत्र" कहते हैं। श्री नगेन्द्र वसु इसे समतट के राजा का नाम मानते हैं। उनकी मान्यता है कि देवखड़ग का उत्तराधिकारी राजभट्ट था। किन्तु इस मत को मानने में यह बाधा है कि 'पतिता' शब्द का अर्थ पतित या गिरा हुआ निम्न कोटि का माना जाये तो यह किसी राजवंश से सम्बद्ध नहीं हो सकता।

2. **सूर्य से उत्पत्ति**—कमोली अभिलेख में विग्रहपाल तृतीय को सूर्यवंशी माना गया है। यह अभिलेख काफी समय बाद का होने तथा तत्कालीन राजाओं की दैवी उत्पत्ति सम्बन्धी प्रवृत्ति के कारण इस मत में ऐतिहासिक तथ्य नहीं है।

3. **समुद्र से उत्पत्ति**—'रामचरित' की टीका में धर्मपाल को समुद्र कुलदीप कहा गया है। तारानाथ का कथन है कि गोपाल के बाद उसका पुत्र नागराज सगरपाल गद्दी पर बैठा। अन्य साक्ष्यों से पुष्टि न होने तथा दैवी उत्पत्ति की सारहीनता की दृष्टि से यह मत भी मान्य नहीं हो सकता।

4. **निम्नकुल से उत्पत्ति**—'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' ग्रन्थ से गोपाल को दासकुल का व्यक्ति होना प्रकट होता है। तिब्बती जनश्रुतियों में भी पालों की उत्पत्ति किसी वृक्ष देवता अथवा नाग से जोड़ी गई है। 'बल्लालचरित' ग्रन्थ के व्यास पुराण में पालों को सबसे हीन क्षत्रिय माना गया है। डॉ. विशुद्धानन्द पाठक[2] का मत है कि,

1. डॉ० सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास-राजपूत काल (पृ० 315)
2. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास

"किसी उच्च कुल से सम्बन्धित न होने के कारण पाल शासक बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हुए हों, जो जन्म से नहीं, कर्म से किसी को बड़ा अथवा छोटा मानता था। बाद में जब पाल शासक एक शक्तिशाली और विस्तृत भू-भाग के स्वामी बन गए, तो उन्हें क्षत्रिय मान लिया गया और राष्ट्रकूट तथा हैहय जैसे तत्कालीन शक्तिशाली और ख्याति प्राप्त राजपरिवारों से उनके विवाह-सम्बन्ध होने लगे।"

5. **क्षत्रिय कुल से उत्पत्ति**—'रामचरित' ग्रन्थ की टीका में पालों को क्षत्रिय राजा की सन्तान बताया गया है। तिब्बती लेखक तारानाथ भी गोपाल को क्षत्रिय माता से उत्पन्न मानता है। बुस्तोन तिब्बती इतिहासकार भी इस मत की पुष्टि करता है। राष्ट्रकूटों और कलचुरि राजाओं से पालों के वैवाहिक सम्बन्ध भी उन्हें क्षत्रिय कुलोत्पन्न सिद्ध करते हैं। खलीमपुर ताम्रपत्र में गोपाल के पिता का नाम वप्पट तथा पितामह का नाम दवितविष्णु और धर्मपाल की माता का नाम दिद्दादेवी (गोपाल की पत्नी) बतलाया गया है। माता दिद्दादेवी को 'भद्रात्मजा' अर्थात भद्र शासक की पुत्री कहा गया है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर पालों को क्षत्रिय कुल से उत्पन्न माना जा सकता है। श्री आर. सी. मजूमदार[1] का कथन है कि—"पालों के अभिलेखों में उनकी जाति और उत्पत्ति के विषय में कोई उल्लेख न होने का कारण सम्भवतः यह रहा है कि वे बौद्ध धर्मावलम्वी थे और वे ब्राह्मण परम्परा तथा रीतिरिवाजों को मानने की चिन्ता नहीं करते थे।" डॉ. मनराल तथा डॉ. मित्तल[2] तथा डॉ. सत्य प्रकाश[3] का भी यही मत है कि पाल क्षत्रियों से उत्पन्न थे किन्तु बौद्ध होने के कारण वे अपनी उत्पत्ति का उल्लेख अपने अभिलेखों में नहीं करते थे।

6. **पालों का मूल स्थान**—पालों के अधिकांश आरम्भिक ताम्रपत्र मगध से प्राप्त हुए हैं। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पालों का मूल स्थान मगध था और बाद में उन्होंने बंगाल पर विजय प्राप्त की। सन्ध्या कर नन्दी ने अपने ग्रंथ 'रामपाल चरित' में पालों की 'जनकभू' (पितृभूमि) 'वारेन्द्रि' बतलाई है। वैधदेव के कमौली-अभिलेख से विदित होता है कि रामपाल ने कैवर्त्तो पर विजय प्राप्त कर अपनी जनकभू पर पुनः अधिकार किया। वारेन्द्रि उत्तरी बंगाल का नाम था। ग्वालियर शिलालेख में नागभट्ट द्वितीय के शत्रु को 'वंगपति' कहा गया है। 'वंग' बंगाल के पूर्वी तथा दक्षिणी भाग का नाम था। बादल स्तम्भ लेख में धर्मपाल का प्रारम्भिक राज्य पूर्वी बंगाल में बतलाया गया है। तारानाथ का कथन है कि गोपाल का जन्म पुण्ड्रवर्धन के निकट एक क्षत्रिय वंश में हुआ और वह बंगाल का शासक चुना गया। इस प्रकार उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर पालों का मूल स्थान बंगाल में था।

1. पूर्वोक्त (पृ० 101)
2. डा. धर्मपालसिंह तथा डा. अरुण मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ० 44)
3. पूर्वोक्त (पृ० 316)

पाल शासक
(The Pala Rulers)

पाल वंश के शासकों का धर्मपाल के विशेष सन्दर्भ में विवरण निम्नांकित है—

(1) गोपाल (750–770 ई.)

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है गोपाल पाल वंश का संस्थापक था जिसे अपना शासक बंगाल की जनता ने निर्वाचित किया था। खलीमपुर ताम्रपत्र के आधार पर गोपाल 750 ई. में शासक बना। उसका पिता वप्पट तथा पितामह दयित विष्णु था। तत्कालीन राजनैतिक अव्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए प्रकृतियों ने गोपाल को लक्ष्मी की भुजा पकड़ाई अर्थात उसे राजा चुना। इसकी पुष्टि तारानाथ भी करता है।

गोपाल के साम्राज्य विस्तार का पता मुंगेर ताम्रपत्र से चलता है जिसके अनुसार उसने समुद्रतट तक विजय प्राप्त की। गोपाल द्वारा समस्त बंगाल पर अधिकार करने के कारण ही उसका पुत्र धर्मपाल पंजाब तक आक्रमण करने का साहस कर सकता था। गोपाल ने बंगाल की अराजकता दूर कर सुदृढ़ शासन स्थापित किया।

राज्य विस्तार के अतिरिक्त गोपाल ने बौद्ध धर्म तथा शिक्षा सुविधाओं के विस्तार का कार्य भी किया। तारानाथ का कथन है कि गोपाल ने ओदन्तपुरी (आधुनिक विहार शरीफ) के निकट नालन्दा-विहार की स्थापना की। बुस्तोन तिब्बती लेखक के अनुसार गोपाल ने नलेन्द्र-विहार की स्थापना की जिससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि गोपाल ने मगध पर अधिकार कर लिया था किन्तु इसकी पुष्टि अन्य साक्ष्यों से नहीं होती। 'मंजुश्रीमूलकल्प' में गोपाल द्वारा 27 वर्ष शासन किया जाना अंकित है जब कि तारानाथ 45 वर्ष शासन-अवधि मानता है। श्री मजूमदार मंजुश्रीमूलकल्प को विश्वसनीय मानते हुए गोपाल की शासन-अवधि को 750 से 770 ई. के मध्य मानते हैं।

(2) धर्मपाल (770–810 ई०)

गोपाल की मृत्यु के बाद 770 ई. में उसका पुत्र धर्मपाल बंगाल का शासक बना। धर्मपाल पालवंश का सबसे प्रतापी शासक था। वह गुर्जर-प्रतिहार शासक वत्सराज तथा नागभट्ट द्वितीय और राष्ट्रकूट शासक ध्रुव एवं गोविन्द तृतीय का समकालीन था। गुर्जर-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट शासकों की साम्राज्यवादी नीति तथा अपने साम्राज्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा के कारण धर्मपाल को पाल-प्रतिहार-राष्ट्रकूट त्रिशक्ति संघर्ष में अपनी सक्रिय भूमिका अदा करने के लिए विवश होना पड़ा। इस त्रिशक्ति संघर्ष में वह उत्तरी भारत की सर्वोत्कृष्ट शक्ति बन गया।

धर्मपाल द्वारा अन्य शक्तियों से संघर्ष तथा साम्राज्य विस्तार के लिए किये गये अभियानों का विवरण निम्नांकित है—

1. **गुर्जर-प्रतिहारों से संघर्ष**—गुर्जर-प्रतिहार शासक वत्सराज ने ग्वालियर अभिलेख के अनुसार भण्डी जाति को पराजित कर मध्य राजपूजाना जीत लिया था। इसके पश्चात वत्सराज ने कन्नौज के शासक इन्द्रायुध को पराजित कर अपने अधीन किया। धर्मपाल इस समय पूर्व में साम्राज्य विस्तार में व्यस्त था। जब कन्नौज पर वत्सराज की विजय हुई तो धर्मपाल से उसका संघर्ष होना आवश्यक था। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय के राधनपुर अभिलेख से विदित होता है कि वत्सराज ने गौढ़राज के दो श्वेत छत्र जीत लिए थे। वनी-डिण्डारी अभिलेख से भी वत्सराज की गौढ़ नरेश पर विजय की पुष्टि होती है। वह गौढ़राज धर्मपाल ही था। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार चहमान नरेश दुर्लभराज ने गौढ़ देश की विजय कर अपनी तलवार को गंगासागर के जल से पवित्र किया। दुर्लभराज प्रतिहार सम्राट वत्सराज का सामन्त था। उसका पुत्र गूवक वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय का सामन्त था। अत: यह स्पष्ट होता है कि चौहान सामन्त दुर्लभराज की सहायता से वत्सराज ने धर्मपाल को पराजित किया। डॉ. मजूमदार का मत है कि यह युद्ध दोआब में हुआ था। श्री वि. प्र. सिन्हा के अनुसार यह युद्ध 785-786 ई. में हुआ। किन्तु राष्ट्रकूटों के हस्तक्षेप से धर्मपाल का संकट टल गया।

2. **राष्ट्रकूटों का प्रथम आक्रमण**—वड़ौदा अभिलेख से विदित होता है कि ठीक उसी समय जब वत्सराज धर्मपाल को पराजित कर लूट का माल लेकर दोआब से लौट रहा था, राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव ने तीव्र गति से वत्सराज पर आक्रमण कर उसकी शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वत्सराज को भागकर मरुस्थल में शरण लेनी पड़ी। गोविन्द तृतीय के वनी-डिण्डोरी और राधनपुर अभिलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

वत्सराज को पराजित करने के बाद ध्रुव ने धर्मपाल पर आक्रमण किया। अमोघ वर्ष के संजन-अभिलेख से पता चलता है कि इस युद्ध में गंगा-यमुना के दोआब में ध्रुव ने धर्मपाल को पराजित किया। बड़ौदा अभिलेख में भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है कि—'अपनी तरंगों से सुन्दर लगने वाली गंगा और यमुना को अपने शत्रुओं से जीतकर यश: मूर्ति ध्रुव ने वह अधिराज्य प्राप्त किया जो उन नदियों द्वारा दृश्य रूप में प्रकट होता था।"

किन्तु राष्ट्रकूटों की यह विजय स्थायी न रह सकी क्योंकि दूरस्थ प्रदेश होने के कारण ध्रुव इसे राष्ट्रकूट साम्राज्य में नहीं मिला सका। यह विजय राष्ट्रकूटों की उत्तरी भारत पर एक छापा मात्र थी। शीघ्र ही ध्रुव को दक्षिण लौट जाना पड़ा। इधर गुर्जर-प्रतिहार नरेश वत्सराज की स्थिति भी काफी दयनीय हो गई थी। वह केवल मध्य राजपूताने पर ही राज्य करने पर विवश हो गया था। अतः इन

परिस्थितियों का धर्मपाल ने लाभ उठाया और अपने साम्राज्य विस्तार हेतु उसने उत्तरी भारत का अभियान किया।

3. धर्मपाल की दिग्विजय—धर्मपाल के खलीमपुर अभिलेख में अंकित है कि, "धर्मपाल ने कान्य-कुब्ज के सम्राट रूप में स्वयं को अभिषिक्त कराने का अधिकार प्राप्त करते हुए भी पंचाल देश के प्रसन्न वृद्धों द्वारा उठाये गये अभिषेक कलश से कान्य-कुब्ज के राजा का राज्याभिषेक कराया, जिसे भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गान्धार और कीट के राजाओं ने अपना सिर झुकाकर साधुवाद करते हुए स्वीकार किया।" नारायण पाल के भागलपुर अभिलेख से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—"धर्मपाल ने इन्द्रराज (इन्द्रायुध) और अन्य शत्रुओं को हराकर महोदय (कन्नौज) नगर का अधिकार प्राप्त करते हुए भी उस याचक चक्रायुध को वैसे ही वापस कर दिया जैसे बलि ने इन्द्र आदि शत्रुओं को जीत कर भी वामन रूप विष्णु को तीन लोकों का दान कर दिया था।" इन्द्र तथा विष्णु का अर्थ क्रमशः कन्नौज शासक इन्द्रायुध तथा चक्रायुध है। मुंगेर ताम्र-पत्र से विदित होता है कि धर्मपाल ने इस अभियान के समय केदार गोकर्ण तथा गंगा और समुद्र के संगम पर तथा अन्य धार्मिक स्थानों पर धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न की। इस लेख में वर्णित केदार का समीकरण हिमालय पर्वत में स्थित केदारनाथ स्थल से किया जाता है किन्तु गोकर्ण का समीकरण संदिग्ध है।

उपरोक्त अभिलेखों से यह तथ्य प्रकट होता है कि धर्मपाल ने प्रतिहार नरेश वत्सराज की अधीनता स्वीकार करने वाले कन्नौज नरेश को गद्दी से हटा कर चक्रायुध को अपनी अधीनता में कन्नौज का शासक बनाया तथा उसके अभिषेक के अवसर पर उत्तरी भारत के अनेक राजाओं ने (जिसमें अवन्ति नरेश प्रतिहार वत्सराज भी था) स्वयं उपस्थित हो इसका समर्थन किया। प्रतिहार शासक वत्सराज ने धर्मपाल की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उससे कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने की दृष्टि से ही कन्नौज के अभिषेक समारोह में भाग लिया था। इससे वत्सराज द्वारा धर्मपाल की अधीनता स्वीकार कर लेने की मान्यता प्रकट नहीं होती। किन्तु इतना अवश्य प्रकट होता है कि धर्मपाल इस दिग्विजय तथा कन्नौज पर अपनी प्रभु-सत्ता स्थापित करने के कारण उत्तरी भारत की सर्वोच्च शक्ति बन गया था। यह धर्मपाल की सैनिक तथा कूटनीतिक प्रतिभा का परिचायक है। 'उदयनसुन्दरी' कथा में धर्मपाल को 'उत्तरापथस्वामिन' कहा गया है किन्तु यह काव्यात्मक अतिरंजना मात्र है। श्री मजूमदार के मत का खण्डन करते हुए डॉ० सत्य प्रकाश[1] का कथन है कि, "जहाँ तक खलीमपुर अभिलेख का प्रश्न है उससे वत्सराज की सभा में उपस्थित उसकी कूटनीतिक मेधा की परिचायक है, प्रभुसत्ता खोकर अधीन बनाने की नहीं।"

1. पूर्वोक्त (पृ 320)

धर्मपाल अपनी इस विजय का उपभोग अधिक समय तक नहीं कर सका क्योंकि प्रतिहार नरेश वत्सराज का उत्तराधिकारी नागभट्ट तथा राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव का पुत्र गोविन्द तृतीय अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण पुनः सक्रिय हो गये और त्रिशक्ति संघर्ष पुनः भड़क उठा।

4. राष्ट्रकूटों का द्वितीय आक्रमण—राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय ने 807 ई० के लगभग प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। इसके पश्चात् उसने पाल नरेश धर्मपाल तथा कन्नौज नरेश चक्रायुध पर आक्रमण किया जिन्होंने गोविन्द तृतीय की अधीनता स्वीकार कर ली। संजन ताम्र-पत्र तथा पटारी स्तम्भ लेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है। राष्ट्रकूटों की यह उत्तरी भारत की विजय केवल एक छाया मात्र बन कर रह गई क्योंकि शीघ्र ही गोविन्द तृतीय को आन्तरिक संघर्ष से निपटने के लिए दक्षिण जाना पड़ा। जिस प्रकार पूर्व में ध्रुव की विजय के पश्चात् उसके दक्षिण चले जाने पर धर्मपाल ने अवसर का लाभ उठाकर कन्नौज पर अपने आश्रित राजा चक्रायुध को अभिषिक्त किया था उसी प्रकार इस बार प्रतिहार नागभट्ट द्वितीय ने अवसर का लाभ उठाया।

5. प्रतिहारों से पुनः संघर्ष—गुर्जर-प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय ने धर्मपाल द्वारा संरक्षित कन्नौज नरेश चक्रायुध को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया तथा उसे अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया। ग्वालियर (सगरताल) अभिलेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है जिसमें अंकित है कि, "वंग का राजा (धर्मपाल) अपने हाथियों, घोड़ों और रथों के साथ काले घने बादलों की तरह युद्ध में आ डटा किन्तु त्रिलोकों को प्रसन्न करने वाला नागभट्ट उगते हुए सूर्य की तरह उस अन्धकार को काटने में सफल रहा।"

धर्मपाल कन्नौज पर प्रतिहारों का आधिपत्य सहन नहीं कर सका तथा उसने नागभट्ट द्वितीय पर आक्रमण कर दिया। ग्वालियर अभिलेख से विदित होता है कि इस संघर्ष में नागभट्ट द्वितीय विजयी रहा। जोधपुर शिलालेख से इस युद्ध का स्थान मुद्गगिरि (मुंगेर) प्रकट होता है। मण्डोर की प्रतिहार शाखा के सामन्त कक्क की सहायता से नागभट्ट द्वितीय ने धर्मपाल को मुंगेर स्थान पर पराजित किया। बालादित्य के चाटसु अभिलेख से विदित होता है कि इस युद्ध में नागभट्ट द्वितीय के एक अन्य गुहिल सामन्त शंकरगण ने भी भाग लिया था। अभिलेख में अंकित है कि, "गौड़ों को पराजित कर नागभट्ट तलवार के बल पर समस्त संसार का स्वामी बन गया।" डॉ० दशरथ शर्मा का मत है कि यह युद्ध गोविन्द तृतीय के दक्षिण 803 ई. में लौट जाने तथा बड़ौदा अभिलेख के 812 ई. में लिखे जाने के बीच की अवधि में हुआ होगा।

धर्मपाल की मृत्यु—अपने 40 वर्ष के दीर्घ शासन के पश्चात् 810 ई० के लगभग धर्मपाल की मृत्यु हो गई।

धर्मपाल की साम्राज्य-सीमा—प्रतिहारों द्वारा कन्नौज विजय के पूर्व तक

धर्मपाल ने अपने साम्राज्य की सीमा काफी विस्तृत कर ली थी । यद्यपि धर्मपाल की दिग्विजय में वर्णित सभी प्रदेश उसकी राज्य-सीमा में सम्मिलित नहीं थे क्योंकि इतने दूरगामी प्रदेशों पर वह सीधे शासन करना सम्भव भी नहीं था । प्रत्यक्ष रूप में बंगाल तथा बिहार उसके सीधे प्रशासन के अन्तर्गत थे और बिहार से पंजाब तक का क्षेत्र उसके आश्रित कन्नौज नरेश चक्रायुध द्वारा प्रशासित होता था । अन्य क्षेत्र उसके प्रभाव के अन्तर्गत थे । धर्मपाल ने विशाल साम्राज्य स्थापित कर "परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज" का विरुद धारण किया था ।

बौद्ध धर्मावलम्बी—तिब्बती लेखक तारानाथ के अनुसार धर्मपाल बौद्ध धर्म का प्रबल समर्थक था । उसका पिता गोपाल भी बौद्ध धर्मावलम्बी था । धर्मपाल ने मगध में 'विक्रमशीला' विहार का निर्माण कराया । वस्तन के अनुसार उसने उदन्तपुरी में भी एक बौद्ध मठ का निर्माण कराया । उसने वारेन्द्री (पश्चिमी तथा उत्तरी बंगाल) में सोमपुर राजशाही जिले में पहाड़पुर नामक विहार भी बनवाया था । बौद्ध धर्मावलम्बी होते हुए भी वह अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति धर्मसहिष्णु था । उसने ब्राह्मण गर्ग को अपना मन्त्री बनाया था ।

शिक्षा एवं साहित्य प्रेमी—धर्मपाल ने विक्रमशीला, उदन्तपुरी तथा सोमपुर के विहार शिक्षा केन्द्रों के रूप में विकसित किये जिनके लिए पर्याप्त राजकीय आर्थिक सहायता दी जाती थी । विक्रमशिला तो नालन्दा के समान एक विश्वविद्यालय के रूप में ख्यातिप्राप्त था । इसमें बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी पठन-पाठन होता था । धर्मपाल विद्वानों व साहित्यकारों का आश्रयदाता था । उसके आश्रय में प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् हरिभद्र रहता था जिसने 'प्रजनपारमिता-सूत्र' की टीका लिखी है तथा वह योगाचार दर्शन का प्राख्याता था । हरिभद्र की मृत्यु के बाद उसका शिष्य बुद्ध जानपाद धर्मपाल का गुरु बना जिसके प्रभाव से गुह्य समाज (क्रिया तथा योग-तन्त्र) के अध्ययन को प्रोत्साहन मिला । बुद्ध ज्ञानपाद विक्रमशीला विहार का मुख्याधिकारी 'वज्राचार्य' बनाया गया ।

धर्मपाल का मूल्यांकन—धर्मपाल एक महत्त्वाकांक्षी, वीर, साहसी तथा कूटनीतिज्ञ शासक था । पाल-राष्ट्रकूट-प्रतिहार त्रिशक्ति संघर्ष में उसने अपनी प्रतिभा के बल पर अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की । अपनी दिग्विजय के पश्चात् वह उत्तरी भारत का सर्व-शक्ति-सम्पन्न शासक बन गया था । कन्नौज में चक्रायुध नरेश के अभिषेक समारोह में अनेक उत्तरी भारत के नरेशों की उपस्थिति उसके बल-पराक्रम का परिचायक है । उसने अपने पिता से एक छोटा-सा राज्य प्राप्त कर उसे अपने साहस, वीरता तथा दूरदृष्टि से एक विशाल साम्राज्य में परिणित कर दिया था । "परमभट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज" विरुद धारण कर उसने अपनी साम्राज्य-वादी शक्ति का परिचय दिया था । अनेक अभियानों तथा सैनिक संघर्षों में उसने अपनी सैनिक दक्षता प्रदर्शित की थी । उसके छोटे भाई वाक्पाल ने उसके अभियानों में सहायता की थी ।

वह एक विजेता तथा साम्राज्य निर्माता ही नहीं था अपितु वह परम बौद्ध

धर्मावलम्बी भी था। विक्रमशीला, उदन्तपुरी व सोमपुर के विहार उसकी धर्म-निष्ठता एवं विद्या-प्रेम के सूचक हैं। उसके आश्रय में हरिभद्र बुद्धज्ञानपाद जैसे विद्वान् रहते थे। वह धर्म-सहिष्णु भी था। उसने बौद्ध होते हुए भी एक ब्राह्मण गर्ग को अपना मन्त्री बनाया था। राष्ट्रकूटों से वैवाहिक सम्बन्ध करना कूटनीतिज्ञता का परिचायक है। त्रिशक्ति संघर्ष में असफलता मिलने पर भी वह निराश नहीं होता था। उपयुक्त अवसर मिलने पर वह उसका भरपूर लाभ उठाता था जिसके कारण उसकी साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति काफी सीमा तक हुई।

डॉ० आर० सी० मजूमदार[1] के शब्दों में—"धर्मपाल ने अपने अपरिमेय साहस के कारण सभी बाधाओं पर विजय प्राप्त की और उसने बंगाल के साम्राज्य के गौरव तथा सैनिक ख्याति को ऐसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया जो अभूतपूर्व तथा अनुपम है।"

(3) देवपाल (810–850 ई०)

धर्मपाल की मृत्यु के बाद उसकी रानी रण्णादेवी से उत्पन्न उसका पुत्र देवपाल गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के समान ही वीर, साहसी तथा महत्त्वाकांक्षी था। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह विदित होता है कि उसने अपने पूर्वजों का साम्राज्य अक्षुण्ण ही नहीं रखा अपितु उसकी सीमा में भी वृद्धि की। खलीमपुर अभिलेख में धर्मपाल के ज्येष्ठ पुत्र त्रिभुवनपाल अपने पिता के जीवित रहने के समय ही मृत्यु को प्राप्त हो गया था। अतः धर्मपाल का दूसरा पुत्र देवपाल शासक बना। देवपाल ने अपने पिता की भाँति 'परमेश्वर', 'परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' के विरुद धारण किये थे।

देवपाल की विजयों का उल्लेख मुंगेर अभिलेख तथा नारायणपाल के बदल तथा भागलपुर अभिलेखों में हुआ है। इनका विवरण निम्नांकित है—

देवपाल की विजयें—बदल अभिलेख से विदित होता है कि देवपाल ने समस्त उत्तरी भारत पर सैनिक अभियान किया और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक और पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक के प्रदेशों से उपहार प्राप्त किये। इसी अभिलेख में अंकित है कि देवपाल ने उत्कलों, हूणों, द्राविड़ों तथा गुर्जरों को भी पराजित किया। मुंगेर अभिलेख से इसकी पुष्टि होती है तथा यह ज्ञात होता है कि देवपाल के भाई जयपाल के आक्रमण से उत्कल का राजा भाग खड़ा हुआ तथा प्राग्ज्योतिष के नृप ने बिना लड़े ही आत्मसमर्पण कर दिया। भागलपुर शिलालेख में इस विजय का श्रेय देवपाल को दिया गया है। बदल अभिलेख में देवपाल के मन्त्री दर्भपाणि की कूटनीति के कारण ही समस्त उत्तरी भारत से कर वसूल करने में सफलता मिलने का उल्लेख है। उत्कल, हूण, द्रविड़ तथा गुर्जरों को पराजित करने का श्रेय देवपाल के मन्त्री दर्भपाणि के प्रपौत्र केदारमिश्र को दिया गया है।

1. पूर्वोक्त (पृष्ठ 116-117)

डॉ० आर० सी० मजूमदार[1] ने उपरोक्त विजयों का समर्थन करते हुए उनकी सम्भावना प्रकट की है। वे लिखते हैं कि, "इन उल्लेखनीय उपलब्धियों का श्रेय चाहे किसी को दिया जाये किन्तु उनसे देवपाल की कुशाग्र बुद्धि की पुष्टि होती है।....तत्कालीन अनिश्चित परिस्थितियों में पड़ौसी राज्यों की आक्रामक योजनाओं तथा साम्राज्य के अन्तर्गत विघटन की शक्तियों पर नियन्त्रण रखने के लिए केवल लौह व रक्त की कठोर नीति ही सफल हो सकती थी। अतः देवपाल के 40 वर्ष की दीर्घ शासन-अवधि में प्राग्ज्योतिष, उत्कल, हूण, गुर्जर तथा द्रविड़ों के अतिरिक्त अनेक राज्यों के प्रति सैनिक अभियान करने पड़े होंगे।"

देवपाल की विजयों की विवेचना—डॉ. मजूमदार के उक्त कथन की सत्यता देखने के पूर्व अभिलेखों में वर्णित देवपाल द्वारा विजित प्रदेशों के समीकरण पर विचार कर लेना आवश्यक है।

1. **प्राग्ज्योतिष**—यह प्रदेश ब्रह्मपुत्र घाटी में स्थित है जो कामरूप के नाम से भी पुकारा जाता है। ह्वेनसांग ने कामरूप के अन्तर्गत समस्त आसाम का क्षेत्र माना है। देवपाल के भाई तथा सेनापति जयपाल के आदेशानुसार प्राग्ज्योतिष के राजा हरराज या उसके पिता प्रालम्भ ने देवपाल की अधीनता स्वीकार कर ली जिसके कारण उस पर आक्रमण नहीं किया गया।

2. **उत्कल (उड़ीसा)**—उत्कल के राजा की पूर्ण पराजय हुई थी क्योंकि बदल शिलालेख में उसके अपनी राजधानी से भाग खड़े होने का उल्लेख है। तारानाथ के अनुसार उत्कल में करवंश का राजा शिवकर इस समय राज्य कर रहा था। अतः उत्कल को देवपाल द्वारा अपने साम्राज्य में मिलाया जाना उचित प्रतीत होता है।

3. **हूण**—डॉ० मजूमदार का मत है कि देवपाल ने हिमालय के निकट उत्तरापथ के हूण राज्य पर आक्रमण किया था। हूणों को जीतने के पश्चात् देवपाल ने पंजाब की उत्तरी-पश्चिमी दिशा में स्थित कम्बोज तथा गान्धार राज्यों को पराजित किया। ये राज्य पाल साम्राज्य की उत्तरी तथा पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित थे। सम्भवतः हूणों पर विजय प्रतिहार शासक रामभद्र के समय की गई हों किन्तु यह विजय स्थायी नहीं थी। डॉ० मनराल तथा डॉ० मित्तल[2] का मत है कि बदल अभिलेख में वर्णित हूण मालवा के निकट बसने वाले हूण प्रतीत होते हैं। उत्तर में हिमालय और पूर्वपयोधि से पश्चिमपयोधि तक देवपाल की सेनाओं का अभियान कोरी प्रशंसा-मात्र है। मुंगेर अभिलेख में वर्णित कम्बोज का तात्पर्य तिब्बत है। किन्तु यह अनुमान किसी साक्ष्य से पुष्ट नहीं होता है। अतः डॉ० मजूमदार का मत मान्य होना चाहिए।

1. पूर्वोक्त (पृ० 116–117)
2. पूर्वोक्त (पृष्ठ 51)

4. **द्राविड़**—बदल अभिलेख के अनुसार देवपाल ने द्रविड़ नरेश का दर्प नष्ट किया। चूंकि द्रविड़ का अर्थ सामान्यतः दक्षिण से होता है, अतः यह अनुमान हो सकता है कि देवपाल ने किसी राष्ट्रकूट नरेश को पराजित किया होगा किन्तु राष्ट्रकूट अपने को द्रविड़ नहीं मानते। डॉ. वि. प्र. सिन्हा ने द्रविड़ों की पहिचान कांची के पल्लवों से की है। डॉ. मजूमदार के मत से देवपाल ने द्रविड़ पाण्डय नरेश श्रीमार-श्रीवल्लभ को पराजित किया होगा। किन्तु अन्य साक्ष्यों के अभाव में सुदूर दक्षिण की विजय सम्भावित प्रतीत नहीं होती।

5. **गुर्जर**—गुर्जरों से तात्पर्य गुर्जर-प्रतिहार है। देवपाल के समकालीन प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय, रामभद्र तथा मिहिर भोज थे। बदल अभिलेख में रामभद्र से संघर्ष होने का उल्लेख है जिसमें देवपाल की विजय अंकित है। किन्तु यह विजय स्थायी नहीं थी। ग्वालियर अभिलेख में रामभद्र के सामन्तों द्वारा शत्रुओं को पराजित होना दर्शाया गया है। मिहिर भोज के समय भी पाल-प्रतिहार संघर्ष चलता रहा। कहल अभिलेख से विदित होता है कि मिहिर भोज के सामन्त गुणाम्बोधिदेव ने देवपाल को पराजित किया। ग्वालियर अभिलेख से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि देवपाल की लक्ष्मी ने भोज को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि देवपाल ने उत्तरी भारत में अनेक अभियान भले ही किये हों किन्तु गुर्जर प्रतिहार शक्ति के रहते हुए पाल साम्राज्य में इन विजित प्रदेशों को सम्मिलित किया जाना सम्भावित प्रतीत नहीं होता।

अरब यात्री सुलेमान—अरब यात्री सुलेमान ने नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत-यात्रा की थी। उसके यात्रा-विवरण से ज्ञात होता है कि पालों व प्रतिहारों में मित्रता थी। पाल सेना प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट सेना की अपेक्षा काफी विशाल थी। पाल नरेश अपने सैनिक अभियानों में 50,000 हाथी तथा 10-15 हजार व्यक्ति सैनिकों के वस्त्र धोने के लिए ही ले जाता था। सुलेमान पाल राज्य को रूह्मी नाम से पुकारता है।

बौद्ध धर्मावलम्बी—अपने पूर्वजों की भाँति देवपाल बौद्धधर्म का अनुयायी था। उसका यश भारत के बाहर बौद्ध धर्मावलम्बी देशों में फैला हुआ था। मलाया के शैलेन्द्र वंशीय राजा बालपुत्रदेव ने देवपाल के दरबार में एक दूत नालन्दा विहार के लिए पाँच गाँव माँगने भेजा। देवपाल ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। एक अन्य अभिलेख से विदित होता है कि नगरहाड़ (जलालाबाद) के एक बौद्ध भिक्षु को देवपाल ने नालन्दा विहार का प्रमुख बनाकर सम्मानित किया था। देवपाल ने नालन्दा तथा विक्रमशीला विहारों की प्रगति में काफी योगदान किया। तारानाथ उसे बौद्ध धर्म का पुनर्स्थापक कहता है।

मृत्यु—देवपाल लगभग 40 वर्ष शासन करने के बाद 850 ई. में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

देवपाल का मूल्यांकन—देवपाल एक योग्य पिता का योग्य पुत्र था। उसने

अपने अर्जित साम्राज्य को अक्षुण्ण ही रखा बल्कि उसने उसकी सीमावृद्धि भी की। समस्त उत्तरी भारत में हिमालय से विन्ध्याचल तक तथा पूर्वी से पश्चिमी सागर तक के राज्यों से उपहार प्राप्त करने की उसकी ख्याति अभिलेखों में अंकित है। उसने उत्कल, प्राग्ज्योतिप, हूण, द्रविड़ व गुर्जरों को परास्त किया। इन अभियानों में उसका भाई जयपाल तथा मन्त्री दर्भपाणि तथा केदारमिश्र की सहायता उसे मिलती रही। यद्यपि उसकी सुदूर उत्तर तथा दक्षिण की विजयें स्थायी नहीं थी किन्तु उसका प्रभाव-क्षेत्र काफी विस्तृत था। यह उसकी महत्वाकाँक्षा, वीरता, साहस तथा कूटनीति का परिणाम था। अरब यात्री सुलेमान ने भी उसकी सैनिक शक्ति को सर्वोत्कृष्ट माना है।

सैनिक अभियानों तथा साम्राज्य-विस्तार में जिस कुशलता का परिचय उसने दिया उसी के साथ वह एक धर्मनिष्ठ शासक भी था। बौद्ध धर्म के प्रसार तथा प्रचार के कारण वह विदेशों में भी विख्यात था। डॉ. मजूमदार ने उचित ही कहा है कि "धर्मपाल तथा देवपाल की शासन-अवधि बंगाल के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।"

(4) विग्रहपाल प्रथम (850–854 ई.)

देवपाल की मृत्यु के बाद विग्रहपाल शासक बना। मुंगेर ताम्रपत्र में देवपाल के पुत्र राज्यपाल को युवराज बतलाया गया है। डॉ. आर. सी. मजूमदार विग्रहपाल को देवपाल का भतीजा तथा देवपाल के चचेरे भाई व सेनापति जयपाल का पुत्र बतलाते हैं। राज्यपाल के स्थान पर विग्रहपाल को शासक बनाये जाने के सन्दर्भ में डॉ सत्य प्रकाश[1] ने दो सम्भावनायें व्यक्त की हैं—

1. देवपाल की मृत्यु के बाद उसके भाई व सेनापति जयपाल ने उत्तराधिकारी राज्यपाल को मार कर अपने पुत्र जयपाल को गद्दी पर बैठाया।

2. दूसरी सम्भावना यह हो सकती है कि राज्यपाल अपने पिता के शासन-काल में ही मर गया था, अत: देवपाल ने अपने भतीजे विग्रहपाल को उत्तराधिकारी बना दिया हो।

साक्ष्यों के अभावों में निश्चयात्मक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। बदल अभिलेख में विग्रहपाल का दूसरा नाम सूर्यपाल भी मिलता है। विग्रहपाल ने 4 वर्ष के अल्प शासन के बाद धार्मिक क्रियाओं के निमित्त गद्दी त्याग कर अपने पुत्र नारायणपाल को सौंप दी। डॉ. पुरी का मत है कि चाटसु अभिलेख में प्रतिहार नरेश द्वारा जिस गौढ़ नरेश की पराजय का उल्लेख है, वह विग्रहपाल प्रथम ही था।

(5) नारायणपाल (854–908 ई.)

विग्रहपाल प्रथम की हैहयवंशी रानी लज्जादेवी से उत्पन्न पुत्र नारायणपाल 854 ई. में गद्दी पर बैठा। बादल तथा भागलपुर अभिलेखों में उसकी विजयों का

1. पूर्वोक्त (पृ० 324)

विवरण नहीं मिलता। अतः यह सम्भावना है कि नारायणपाल का समय पाल वंश की अवनति का काल था। अधीन स्वराज्य कामरूप तथा उड़ीसा स्वाधीन हो गए और राष्ट्रकूटों ने भी आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिहार अभिलेखों से ज्ञात होता है कि *नारायणपाल के समय उत्तरी बंगाल का काफी बड़ा भाग प्रतिहारों* ने हस्तगत कर लिया।

राष्ट्रकूटों का अभियान—नीलगुण्ड और सिरूर अभिलेखों से विदित होता है कि राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष ने अंग, वंग तथा मगध के राजाओं को पराजित किया। *बंगाल के इन तीन प्रदेशों का पृथक उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि* नारायणपाल के समय बंगाल के पाल साम्राज्य का विघटन हो चुका था। डॉ. आर. सी. मजूमदार का मत है कि नारायणपाल को हरा कर अमोघवर्ष ने उत्तरी भारत पर अभियान किया। किन्तु अन्य साक्ष्यों के अभाव में यह मत विश्वसनीय नहीं है। अमोघवर्ष के बाद राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय ने नारायणपाल पर आक्रमण किया। पिथापुरम अभिलेख में अंकित है कि—"कृष्ण द्वितीय ने गुरु की तरह पालों को विनम्रता का पाठ पढ़ाया तथा उसकी आज्ञाओं का पालन अंग, कलिंग, गंग और मगध के नरेश करते थे।" राष्ट्रकूट इस छापा-अभियान के बाद दक्षिण चले गए। इस आक्रमण का लाभ उठाकर उड़ीसा के सुल्कि वंश तथा शौलोद्भव वश के नरेशों ने पालों से अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी।

गुर्जर-प्रतिहारों का अभियान—प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल ने नारायणपाल को पराजित किया। इसकी पुष्टि बंगाल के राजशाही जिले के उत्तरी भाग में प्रतिहारों के अनेक शिलालेखों से होती है। नारायणपाल के शासन-काल के प्रथम 17 वर्षो के बाद का कोई पाल शिलालेख भी इस प्रदेश से नहीं मिला। महेन्द्रपाल के शिलालेख गया जिले के गुनरिया नामक स्थान, बिहार शरीफ, हजारी बाग जिले में इतखोरी व नालन्दा से प्राप्त हुए हैं जो यह प्रकट करते हैं कि सम्पूर्ण बिहार और छोटा नागपुर प्रतिहारों ने पालों से अधिकृत कर लिए थे।

मगध व उत्तरी बंगाल पर पुनः अधिकार—दुर्बल प्रतिहार नरेश भोज द्वितीय तथा महीपाल प्रथम के समय राष्ट्रकूटों ने प्रतिहारों को बुरी तरह पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। महीपाल प्रथम ने अपने चन्देल सामन्त हर्ष की सहायता से कन्नौज पर पुनः अधिकार किया। प्रतिहारों के इस संकटकाल का लाभ उठाते हुए नारायणपाल ने अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षो में प्रतिहारों द्वारा विजित अपने प्रदेश मगध और उत्तरी बंगाल पर पुनः अधिकार कर लिया। इस प्रकार नारायणपाल एक दुर्बल पाल शासक सिद्ध हुआ जिसके समय में पाल-साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया। 908 से 988 ई. तक की अवधि पाल वंश का अन्धकार काल कहलाता है।

(6) राज्यपाल (908–940 ई.)

नारायणपाल की 908 ई. में मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र राज्यपाल शासक बना जिसने 32 वर्ष शासन किया। राज्यपाल ने राष्ट्रकूट राजकुमार तुंग देव की

पुत्री भाग्यदेवी से विवाह किया। तुंगदेव राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय का पुत्र जगतुंग था। इस वैवाहिक सम्बन्ध से राष्ट्रकूट-पाल संघर्ष में कुछ समय के लिए विराम आ गया।

नालन्दा तथा गया जिले के कुर्किहार नामक स्थान से प्राप्त अभिलेखों से विदित होता है कि राज्यपाल ने विशाल सरोवर तथा मन्दिरों का निर्माण कर जन-कल्याण कार्य किए। यह तथ्य इस बात का सूचक है कि राज्यपाल का शासन-काल शान्तिपूर्ण रहा।

(7) गोपाल द्वितीय (940–960 ई.)

940 ई. में राज्यपाल की मृत्यु के बाद उसकी रानी भाग्यदेवी से उत्पन्न पुत्र गोपाल गद्दी पर बैठा। गोपाल ने लगभग 20 वर्ष शासन किया। मगध से अनेक शिलालेख तथा ताम्रपत्र मिले हैं जिससे प्रकट होता है कि गोपाल द्वितीय का अधिकार बिहार तथा उत्तरी बंगाल पर था।

(8) विग्रहपाल द्वितीय (960–988 ई.)

गोपाल द्वितीय के बाद 960 ई. के लगभग उसका पुत्र विग्रहपाल द्वितीय शासक बना। विग्रहपाल के पुत्र महीपाल के बानगढ़ अभिलेख में विग्रहपाल की प्रशंसा की गई है किन्तु उसके द्वारा किसी विजय का उल्लेख नहीं है। अतः यह अनुमान है कि किसी बाहरी शक्ति सम्भवतः कलचुरी या चन्देल नरेशों ने पाल राज्य पर आक्रमण किया जिसका सामना विग्रहपाल ने सफलता से किया।

पाल साम्राज्य की अवनति
(The Decline of Pala Empire)

राज्यपाल, गोपाल द्वितीय तथा विग्रहपाल द्वितीय की शासन-अवधि में पाल ज्य की अवनति हुई। आन्तरिक विघटन तका बाह्य आक्रमण इस अवनति के कारण थे। इस समय प्रतिहार राष्ट्रकूटों से पराजित हो दुर्बल हो गए थे तथा राष्ट्रकूटों से वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने के कारण वे भी पालों के मित्र बन गए थे। किन्तु अन्य दो शक्तियाँ—जैजाक भुक्ति (बुन्देलखण्ड) के चन्देल तथा त्रिपुरी के कलचुरी—उत्तर भारत में प्रबल हो रही थीं।

चन्देल नरेश यशोवर्मन महत्वाकाँक्षी था जिसने उत्तरी भारत पर अभियान किया। जब गोपाल द्वितीय गृह-युद्ध में फँसा हुआ था यशोवर्मन ने पालों से गौड़ और मिथिला प्रदेश छीन लिए। खजुराहो अभिलेख से ज्ञात होता है कि चंदेल नरेश धंग के कारागार में राढ़ा तथा अंग नरेशों की पत्नियाँ बन्दी थीं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पाल साम्राज्य के पतन में चन्देलों की भूमिका प्रमुख थी।

त्रिपुरी के कलचुरि शासक युवराज प्रथम तथा लक्ष्मणराज भी अत्यन्त महत्वाकांक्षी थे। बिल्हरी शिलालेख के अनुसार युवराज प्रथम ने गौड़, कर्णाट, लाठ, कश्मीर तथा कलिंग पर विजय प्राप्त की। गोहरवा अभिलेख के अनुसार लक्ष्मणराज

ने पूर्वी बंगाल और उड़ीसा पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार चंदेलों की भाँति कलचुरियों ने भी पाल साम्राज्य की अवनति से स्वयं के राज्यों का विस्तार किया।

वाह्य आक्रमणों तथा आंतरिक विघटन के कारण पाल राज्य के अन्तर्गत अनेक स्वाधीन प्रदेशों की स्थिति का पता चलता है। कम्बोज-वंश का अधिकार पश्चिमी बंगाल में था, कान्तिदेव का शासन पूर्वी बंगाल में था तथा पूर्वी बंगाल में ही चंद्रवंशी शासकों का प्रथक शासन था।

धर्मपाल और देवपाल जैसे साम्राज्यवादी पाल शासकों द्वारा निर्मित विशाल साम्राज्य उनके उत्तराधिकारियों की दुर्बलता के कारण अवनति के पथ पर अग्रसर हो गया था। डॉ० आर. सी. मजूमदार[1] ने उचित ही कहा है कि—"इन वाह्य आक्रमणों को पाल राज्य की सैनिक दुर्बलता तथा राजनैतिक विघटन के कारण तथा परिणाम दोनों माना जा सकता है।....यह प्रतीत होता है कि गोपाल द्वितीय तथा उसके पुत्र व उत्तराधिकारी विग्रहपाल द्वितीय के राज्य-काल में बंगाल तीन स्पष्ट राज्यों में विभक्त था—पूर्वी-दक्षिणी बंगाल में चंद्रवंशी शासक, उत्तरी-पश्चिमी बंगाल में कम्बोज वंशी शासक तथा अंग एवं मगध में पाल-राज्य। गोपाल द्वितीय व उसके पुत्र विग्रहपाल द्वितीय का यह विचित्र दुर्भाग्य था कि वे अपने पैतृक राज्य को खोकर अपने राज्य के अन्य भाग पर शासन कर रहे थे।"

महीपाल प्रथम (988–1038 ई.)
(Mahipal I)

राज्यारोहण तथा प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

विग्रहपाल द्वितीय की 988 ई. में मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र महीपाल प्रथम शासक बना। जब उसका राज्यारोहण हुआ पाल वंश का भविष्य पूर्णतः अंधकारमय था क्योंकि पाल राज्य पैतृक प्रदेश को छोड़ कर मगध के निकटवर्ती प्रदेश तक ही सीमित रह गया था। चंदेलों तथा कलचुरि नरेशों के निरन्तर आक्रमणों तथा आन्तरिक विघटन से पाल राज्य बुरी तरह झकझोरित होकर धराशायी हो गया था। महीपाल प्रथम में अत्यन्त धैर्य, साहस तथा पराक्रम से अपने पैतृक प्रदेश पर पुनः अधिकार करने में सफलता पाई। इसीलिए उसे पाल-साम्राज्य का पुनर्संस्थापक कहा जाता है। डा. आर. सी. मजूमदार[2] का कथन है कि, "जब महीपाल प्रथम 988 ई. के लगभग अपने पिता विग्रहपाल द्वितीय के पश्चात् गद्दी पर बैठा तो उस समय उसके वंश का भविष्य अत्यन्त निराशाजनक था। महीपाल प्रथम की यह कम उपलब्धि नहीं है कि वह अपने वीरतापूर्ण प्रयासों से अपने वंश की प्रतिष्ठा को पर्याप्त सीमा तक पुनर्संस्थापित करने में सफल रहा।"

महीपाल प्रथम की विजयें

1. पैतृक राज्य (बंगाल) की पुनः प्राप्ति—वानगढ़ ताम्रपत्र के श्लोक सं. 12

1. पूर्वोक्त (पृ० 133–135)
2. पूर्वोक्त (पृष्ठ 136)

के अनुसार महीपाल प्रथम ने अपने उस पैतृक राज्य को पुनः हस्तगत किया जो "अनधिकृत विलुप्त" हो गई थी अर्थात् उस पैतृक राज्य पर पहले ऐसे लोगों ने अधिकार कर लिया था जो उसके अधिकारी नहीं थे। श्री एन. जी. मजूमदार ने इसका अर्थ यह लगाया है कि ऐसे पैतृक राज्य पर पुनः अधिकार किया गया जो हस्तगत करने के प्रयास न करने के कारण अब तक विलुप्त था। किन्तु यह निश्चित है कि महिपाल ने दूसरों के अधिकार से अपना पैतृक राज्य पुनः प्राप्त किया।

यह पैतृक राज्य 'रामचरित' के अनुसार 'वरेन्द्र' (उत्तरी बंगाल) पालों का 'जनकभू' था। वरेन्द्र पर कम्बोजवंशी शासकों ने अधिकार कर लिया था जिसे महीपाल प्रथम ने पुनः हस्तगत किया। किन्तु पैतृक राज्य से केवल वरेन्द्र प्रदेश का ही अर्थ नहीं लगाना चाहिए बल्कि बंगाल का वह सभी भू-भाग समझना चाहिए जो पाल-साम्राज्य से विलग हो गया था। अतः डॉ० मजूमदार का भी यही मत है कि पैतृक राज्य जिसे पुनः हस्तगत किया गया, वह बंगाल था।

बंगाल-विजय का अन्य साक्ष्य टिप्पेरा जिले के बाघौरा स्थान पर प्राप्त विष्णु की मूर्ति का अभिलेख है जिसमें उल्लेख है कि महीपाल के राज्य में समतट में यह मूर्ति स्थापित की गई। यह महीपाल प्रथम पाल-नरेश ही था जिसने अपने शासन-काल के तीसरे वर्ष में पूर्वी बंगाल को पुनः अधिकृत किया। पूर्वी बंगाल को अधिकृत करने के लिए महीपाल को अंग और मगध से चल कर पहले वरेन्द्र (उत्तरी बंगाल) तथा राढ़ (पश्चिमी बंगाल) को विजित करना स्वाभाविक था। अतः श्री मजूमदार का मत है कि महीपाल ने अपने राज्य-काल के तीसरे वर्ष तक सम्पूर्ण बंगाल को, जो उसका पैतृक राज्य था पुनः अधिकृत कर लिया।

2. **राजेन्द्र चोल का आक्रमण**—चोलों के तिरुवालंगाडु अभिलेख से विदित होता है कि चोलवंश के प्रतापी शासक राजेन्द्र चोल के सेनापति ने उत्तरी भारत का अभियान 1021 से 1023 ई. के मध्य किया। इस अभियान का उद्देश्य चोल नरेश की आज्ञा से अपने राज्य को पवित्र करने हेतु उत्तरी भारत से गंगा-जल प्राप्त करना था। अभिलेख के अनुसार चोल सेनापति ने दण्डभुक्ति के शासक धर्मपाल, दक्षिणी राढ़ के शासक रणसूर तथा बंगाल नरेश गोविन्दचन्द्र को पराजित करने के बाद महीपाल को हराया तथा उत्तर राढ़ पर अधिकार किया। महीपाल की यह पराजय अस्थायी थी क्योंकि श्री नीलकण्ठ शास्त्री के मतानुसार चोल-अभियान एक छापा-मात्र था क्योंकि चोल सेना शीघ्र ही गंगा-जल लेकर दक्षिण वापस चली गई।

चोल आक्रमण के सन्दर्भ में श्री आर० सी० मजूमदार[1] का कथन है कि चोलों द्वारा पराजित गोविन्दचन्द्र चन्द्रवंशी राजा बंगाल में, कम्बोज वंशी धर्मपाल दण्डभुक्ति मे तथा सूरवंशी रणसूर दक्षिणी राढ़ में स्वतन्त्र शासन कर रहे थे और

1. पूर्वोक्त (पृ० 139)

महीपाल केवल वंगाल के उत्तरी तथा कुछ पूर्वी भाग के अतिरिक्त उत्तरी राढ़ को पुनः अधिकृत कर सका था।

3. **विहार पर विजय**—महीपाल के नालन्दा, बोधगया, कुर्कीहार तथा इमादपुर शिलालेखों से पता चलता है कि उसने उत्तरी बिहार पर विजय प्राप्त की थी। यह तथ्य इस वात से भी प्रमाणित होता है कि महीपाल के पूर्व शासकों के कोई शिलालेख इस क्षेत्र में नहीं मिलते। नालन्दा अभिलेख से ज्ञात होता है कि महीपाल बौद्ध धर्मावलम्बी था और उसने एक प्राचीन भग्न मन्दिर का पुर्ननिर्माण कराया था।

4 **सारनाथ व बनारस की विजय**—सारनाथ अभिलेख (1026 ई०) से विदित होता है कि महीपाल ने काशी (बनारस) में सैकड़ों भवनों के निर्माण हेतु स्थिरपाल और वसन्तपाल नामक अपने भाइयों को वहाँ नियुक्त किया। अतः यह निष्कर्ष निकालना उचित है कि महीपाल ने 1026 ई० तक सारनाथ व बनारस पर भी अधिकार कर लिया था। इस प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश भी उसके अधिकार में आ गया था।

5. **कलचुरियों से संघर्ष**—कलचुरि अभिलेखों से ज्ञात होता है कि महीपाल को अपने अंतिम वर्षों में कलचुरि नरेश गांगेयदेव से संघर्ष किया। इस संघर्ष में गांगेयदेव ने अंग के शासक (महीपाल) को पराजित किया। मुस्लिम लेखक वैहाकी का कथन है कि 1034 ई० में बनारस पर कलचुरि नरेश का अधिकार था जब कि अहमद नियलतिगिन ने आक्रमण किया था। इससे स्पष्ट होता है कि कलचुरियों से महीपाल को पराजित हो कुछ प्रदेशों को खोना पड़ा।

6. **महमूद गजनवी के प्रति नीति**—कुछ इतिहासकार महीपाल प्रथम की इस लिये आलोचना करते हैं कि उसने, महमूद ग़जनवी के आक्रमण से भारत की रक्षा हेतु शाही नरेश द्वारा गठित भारतीय संघ में भाग नहीं लिया। इसके लिये वे महीपाल के वौद्ध होने तथा हिन्दू धर्म के प्रति असहिष्णु होना वतलाते हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि परिस्थितिवंश महीपाल को अपनी सारी शक्ति अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त करने हेतु पूर्व की ओर लगानी पड़ी थी तथा राजेन्द्र चोल एवं कलचुरि गांगेयदेव के प्रवल आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था। अतः वह पश्चिम दिशा में अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहता था।

महीपाल प्रथम की उपलब्धियों का मूल्यांकन

महीपाल प्रथमधर्मपाल तथा देवपाल के वाद पाल वंश का प्रतापी शासक था। उसने खोये हुए अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कर पाल साम्राज्य का पुनर्स्थापन किया। डॉ० आर० सी० मजूमदार[1] का कथन है कि—"महीपाल प्रथम की योग्यता तथा सैनिक प्रतिभा को ही सर्वाधिक श्रेय दिया जाना चाहिए जिसके कारण वह वंगाल

1. पूर्वोक्त (पृष्ठ 141–142)

रामपाल की सेना ने गंगा नदी पार कर भीम की सेना से युद्ध किया तथा भीम को पराजित किया। रामपाल ने भीम तथा उसके परिवार की हत्या कर वरेन्द्री पर अधिकार कर लिया।

पूर्वी बंगाल पर अधिकार—'रामचरित' से ज्ञात होता है कि वरेन्द्री पर अधिकार कर रामपाल ने पूर्वी बंगाल के वर्मन वंश के शासक पर अभियान किया। वर्मन शासक ने आत्मसमर्पण कर दिया।

कामरूप पर अधिकार—'रामचरित' से ही विदित होता है कि उसके बाद उसने कामरूप पर भी विजय प्राप्त की तथा अपने सहयोगी सामन्त को पुरस्कृत किया।

उड़ीसा पर अभियान—रामपाल ने अपने पैतृक राज्य को पुनः हस्तगत करने के बाद दक्षिण में राज्य विस्तार हेतु उड़ीसा पर आक्रमण किया। वहाँ के राजा को पराजित कर उसने अपने समर्थक को वहाँ का शासक नियुक्त किया। उड़ीसा के बाद उसने कलिंग तक धावा बोला। अन्य शिलालेखों से विदित होता है कि उड़ीसा में एक दूसरे विरोधी राजकुमार ने गंग वंश के राजा अनन्तवर्मन चोडगंग की सहायता से गद्दी पर अधिकार कर लिया। अतः उत्कल (उड़ीसा) के लिये पाल-गंग संघर्ष चलता रहा।

गहड़वालों से संघर्ष—गहड़वाल नरेश चन्द्रदेव ने पूर्व की ओर पाल राज्य पर अभियान किया किन्तु 'रामचरित' के अनुसार रामपाल के सामन्त भीमयश ने गहड़वाल नरेश चंद्रदेव को पराजित कर दिया। रामपाल ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) पर अभियान किया किन्तु गहड़वाल नरेश मदनवर्मन के राजकुमार गोविन्दचन्द्र ने रामपाल को वापस लौटने पर विवश कर दिया। इस तथ्य की पुष्टि रहन शिलालेख तथा 'कृत्यकल्पतरु' ग्रन्थ से होती है।

रामपाल का मूल्यांकन—इस प्रकार रामपाल अपनी प्रारंभिक कठिनाइयों से घबराया नहीं बल्कि साहस, शौर्य और महत्वाकांक्षा के साथ उसने कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर पैतृक साम्राज्य को भी पुनः हस्तगत किया। इसके अतिरिक्त उसने कामरूप, उत्कल, कलिंग तथा गहड़वाल राज्य तक भी अभियान किये। रामपाल की सैनिक उपलब्धियों के अतिरिक्त उसके लोक-कल्याणकारी कार्य भी प्रशंसनीय थे। उसने वरेन्द्री में प्रजा को करों से मुक्त किया तथा नये भवनों का निर्माण किया।

मृत्यु—रामपाल अपने मामा राष्ट्रकूट मथनदेव की मृत्यु से इतना निराश हुआ कि उसने मुंगेर में गंगा में डूबकर आत्म-हत्या कर ली।

(15) कुमारपाल (1120–1125 ई०)

'रामचरित' के अनुसार रामपल के चार पुत्र थे—वित्तपाल, राज्यपाल, कुमारपाल तथा मदनपाल। प्रथम दो पुत्रों को शासन करने का अवसर न मिलना इस तथ्य का सूचक है कि रामपाल की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिये संघर्ष हुआ जिसमें कुमारपाल विजयी हो गद्दी पर बैठा।

कुमारपाल के समय कमौली ताम्र-पत्र के अनुसार कामरूप (आसाम) के अधीनस्थ शासक तिग्यदेव ने विद्रोह किया। कुमारपाल के मंत्री वैद्यदेव ने इस विद्रोह का दमन कर दिया किन्तु उसने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। कुमारपाल ने कामरूप जाकर वैद्यदेव को अपने अधीन किया।

बेलाव ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि पूर्वी बंगाल भी पालों की अधीनता से स्वतन्त्र हो गया था क्योंकि वहाँ का वर्मन वंश का शासक भोजवर्मन स्वतन्त्र शासन कर रहा था। इसके अतिरिक्त गंग वंश के नरेश अनन्तवर्मन चोड़गंग ने दक्षिणी और पश्चिमी बंगाल के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार गहड़वाल नरेश गोविन्द चंद्र ने पूर्व में अपने साम्राज्य का विस्तार किया। मानेर शिलालेख से ज्ञात होता है कि 1126 ई० में गहड़वालों ने इस स्थान पर अधिकार कर लिया था।

(16) गोविन्द तृतीय (1125–1144 ई०)

कुमारपाल की मृत्यु के बाद 1125 ई० में उसका पुत्र गोविन्द तृतीय शासक बना। इसके राज्य काल में मानेर शिलालेख के अनुसार गहड़वालों ने पाल राज्य के पश्चिमी भाग पर अधिकार कर लिया। कामरूप (आसाम) का प्रशासक वैद्यदेव ने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। पाल राज्य का विघटन तीव्र गति से आरम्भ हो गया।

(17) मदनपाल (1144–1161 ई०)

गोविन्द तृतीय की 1144 ई० में मृत्यु के पश्चात् उसका चाचा मदनपाल (कुमारपाल का भाई) गद्दी पर बैठा। इसने 14 वर्षों तक शासन किया। इसका शासन काल पाल राज्य के पतन का समय था। लार अभिलेख के अनुसार उसने मुद्गिरी (मुंगेर) से दान दिया। इस अभिलेख की तिथि 1146 ई० है जिसके बाद गहड़वाल गोविन्द चद्र ने मुंगेर पालों से छीन लिया। रामचरित से ज्ञात होता है कि मदनपाल ने शत्रु सेना को कालिंदी के पीछे तक धकेल दिया तथा उसने गोवर्धन को पराजित कर उसे गद्दी से उतारा। किन्तु शत्रु तथा गोवर्धन की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। मदनपाल ने पूर्वी बंगाल के सेन शासक विजय सेन से भी संघर्ष किया किन्तु मदनपाल पराजित हुआ और उत्तरी बंगाल पर सेनों का अधिकार हो गया। मदनपाल की राज्य-सीमा केवल विहार के मध्य तथा पूर्वी भागों तक संकुचित रह गई।

(18) गोविन्दपाल

मदनपाल की मृत्यु के बाद गोविन्दपाल राजा बना। गोविन्दपाल एक प्रादेशिक शासक की भाँति गया के निकटवर्ती क्षेत्र पर शासन करता था। इसके बाद पाल वंश के शासकों का कोई विवरण नहीं मिलता। पाल वंश की महान् परम्परा का अन्त हो गया।

पाल साम्राज्य के पतन के कारण
(The Causes of the Downfall of Pala Empire)

पाल साम्राज्य जो धर्मपाल तथा देवपाल जैसे प्रतापी सम्राटो के समय उत्तरी

भारत का सर्वोत्कृष्ट साम्राज्य वन गया था तथा जिसकी सीमा समस्त वंगाल तथा विहार के अतिरिक्त पूर्व में कामरूप, दक्षिण में कलिंग और पश्चिम में विन्ध्य और मालवा तक विस्तृत थी; वह परवर्ती दुर्वल शासकों के राज्य-काल में विघटित हो पतन की ओर अग्रसर होने लगा। पतन के निम्नांकित कारण थे :—

1. **पालों की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा**—जव तक धर्मपाल, देवपाल तथा महीपाल प्रथम जैसे पराक्रमी तथा महत्वाकांक्षी पाल-शासक रहे साम्राज्यवादी नीति सफलतापूर्वक क्रियान्वित की जाती रही। किन्तु दुर्वल शासकों के समय विशाल साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को नियंत्रित नहीं किया जा सका। विस्तारवादी नीति के कारण ही पालों को पड़ौसी राज्यों प्रतिहार, राष्ट्रकूट, गहड़वाल, कलचुरि, कर्णाट, गंग, सेन आदि से संघर्षरत रहना पड़ा जिसे दुर्वल शासक सहन नहीं कर सके।

2. **अयोग्य उत्तराधिकारी**—जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि धर्मपाल, देवपाल तथा महीपाल प्रथम के वाद कोई भी शासक इतना योग्य नहीं निकला जो अपने पैतृक साम्राज्य की रक्षा कर सकता हो। उत्तराधिकार के लिए संघर्ष तथा सामन्तों के विद्रोह के कारण वे वाह्य आक्रमणों तथा विजय अभियानों में उल्लेखनीय प्रदर्शन न कर सके। प्रतिहार तथा राष्ट्रकूटों के निर्वल होने पर भी परवर्ती पाल शासक अवसर का लाभ न उठा सके वल्कि अपने अधीनस्थ शासकों से ही पराजित व अपमानित होते रहे।

3. **प्रतिहारों का आक्रमण**—पाल-राष्ट्रकूट-प्रतिहार त्रिशक्ति संघर्ष में पालों की भूमिका विशेष उल्लेखनीय नहीं रह सकी। धर्मपाल को प्रतिहार वत्सराज नागभट्ट द्वितीय ने पराजित किया। देवपाल के समय यद्यपि शक्ति-संतुलन वना रहा किन्तु विग्रहपाल व नारायणपाल के समय प्रतिहार मिहिर भोज तथा महेन्द्रपाल ने पाल राज्य के अधिकांश प्रदेश छीन लिए। उत्तरी भारत की परम्परागत राजधानी कन्नौज पर विजय प्रतिहारों की पालों पर करारी चोट थी।

4. **राष्ट्रकूटों का आक्रमण**—दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेशों ने भी अपने आकस्मिक छापा-अभियानों द्वारा पालों व प्रतिहारों को पराजित किया। ध्रुव द्वारा धर्मपाल की पराजय तथा गोविन्द तृतीय के समक्ष धर्मपाल का आत्मसमर्पण पालों की शक्ति को प्रवल चुनौती थी। कृष्ण तृतीय ने भी पालों को गुरु की तरह विनम्रता का पाठ पढ़ाया। यह घटना दुर्वल पाल शासक नारायणपाल के समय की थी। इस दुर्वलता का लाभ उठाकर उड़ीसा तथा कामरूप पाल साम्राज्य से स्वतन्त्र हो गये।

5. **कम्बोजों के आक्रमण**—गोपाल द्वितीय के शासन-काल में कम्बोजवंशी राजाओं ने उत्तरी बंगाल पर अधिकार कर पाल-राज्य की दुर्वलता का लाभ उठाया।

6. **चोल नरेश का श्राक्रमण**—प्रतिहार तथा राष्ट्रकूटों के दुर्बल होने पर चोल नरेश राजेन्द्र ने गंगा तक अभियान कर पालों को पराजित किया।

7. **कलचुरियों का श्राक्रमण**—चोलों के आक्रमण तथा पालों की दुर्बलता का लाभ उठाकर त्रिपुरी के कलचुरियों ने पालों पर आक्रमण किया। गांगेयदेव ने पाल राज्य पर प्रहार कर उसके पतन में योगदान किया।

8. **कैवर्तों का विद्रोह**—रामपाल की हत्या के बाद कैवर्त्त वंशी दिव्य ने वरेन्द्री पर अधिकार कर स्वाधीन सत्ता स्थापित की।

9. **सेनवंश के श्राक्रमण**—मदनपाल के समय विजयसेन ने पूर्वी बंगाल में स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया तथा पालों से उनके पूर्वी प्रदेश छीन लिए।

10. **सामन्तों के विद्रोह**—दुर्बलपाल शासकों के समय शक्तिशाली सामन्त तथा अधीनस्थ शासकों ने विद्रोह कर अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। नारायणपाल के समय उड़ीसा व कामरूप स्वतन्त्र हुए। गहड़वाल तथा चन्देले भी स्वाधीन हो गये। असम में तिग्यदेव तथा मन्त्री वैद्यदेव के विद्रोह कुमारपाल की दुर्बलता के कारण हुए।

11. **श्रान्तरिक संघर्ष**—अनेक पाल शासकों को उत्तराधिकार के लिए संघर्षरत रहना पड़ा जिससे सामन्त अपनी शक्ति वढ़ाने के अवसर खोजने लगे। कैवर्त्त सरदार दिव्य द्वारा महीपाल की हत्या ऐसे संघर्षों की पराकाष्ठा थी।

12. **वैदेशिक नीति की दुर्बलता**—कुछ पाल शासकों को छोड़कर अन्य शासक कूटनीति की योग्यता नहीं रखते थे। बाह्य राज्य प्रतिहार, राष्ट्रकूट, गहड़वाल, गंग, कलचुरि आदि से कूटनीतिक सम्बन्धों से बाह्य आक्रमण के संकट टल सकते थे किन्तु इस ओर पाल शासकों ने ध्यान नहीं दिया। धर्मपाल ने राष्ट्रकूटों तथा विग्रहपाल तृतीय ने कलचुरियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर कुछ समय के लिए परस्पर सम्बन्ध अवश्य मधुर कर लिए थे किन्तु इस नीति को अग्रसर नहीं किया गया।

13. **महमूद गजनवी का श्राक्रमण**—महमूद गजनवी के आक्रमण के समय महीपाल प्रथम शाही नरेश के भारतीय राजाओं के संघ में सम्मिलित नहीं हुआ था। इसका परिणाम उत्तरी भारत के सभी राज्यों के लिए घातक सिद्ध हुआ।

उपरोक्त कारणों से पाल साम्राज्य निरन्तर पतन की ओर अग्रसर होता रहा।

पालों की प्रशासनिक व्यवस्था
(The Administration of Palas)

पालों की प्रशासनिक व्यवस्था तत्कालीन उत्तरी भारत के अन्य साम्राज्यवादी राजवंशों की व्यवस्था से भिन्न थी। डॉ० आर० सी० मजूमदार[1] इसका कारण

1. *Majumdar R.C.* : The Age of Imperial Kanauj (p. 242)

बतलाते हुए कहते हैं कि, "इस काल के अन्य शासन-तन्त्रों से पाल साम्राज्य अपनी विचित्र उत्पत्ति के कारण भिन्न था। प्रकृति अर्थात् प्रमुख अधिकारियों ने गोपाल को अराजकता की बाढ़ को रोकने के लिए शासक नियुक्त किया था। प्राचीन बंगाल में ऐसे आकस्मिक उदय के कारण वास्तविक संवैधानिक साम्राज्य की नींव नहीं पड़ सकी क्योंकि उस समय कोई विधिवत तथा स्थायी रूप से निर्मित मन्त्रिपरिषद् नहीं थी। पालों के उत्तरवर्ती अभिलेखों से विदित होता है कि उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पूर्णतया व्यक्तिगत साम्राज्य का प्रतिरूप थी और शासक के अधिकारों पर किसी प्रकार के संवैधानिक नियन्त्रण होने का कोई प्रश्न ही नहीं था।" पालों की प्रशासनिक व्यवस्था का जो रूप तत्कालीन अभिलेखों तथा ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है, वह निम्नांकित है—

1. राजा का पद—राजा सर्वशक्तिमान तथा स्वेच्छाचारी था। आरम्भ से ही पाल शासकों ने "परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज" विरुद धारण किये थे। ऐसी ही परम्परा गुर्जर-प्रतिहारों ने स्थापित की थी। राजा का पद वंश परम्परागत था। विशाल साम्राज्य होने के कारण पाल राजाओं ने केन्द्रीय शासन-प्रणाली भी विकसित कर ली थी। राजा के अधीन सामन्तवादी परम्परा प्रचलित थी जो राजन, राजन्यक, सामन्त, महासामन्त आदि नामों से पुकारे जाते थे। राजा विशेष अवसरों पर अपना 'दर्बार' करते थे जिसमें अधीनस्थ शासक तथा सामन्त एकत्रित होकर सम्राट को सम्मान देते थे। पाल सम्राट पर संवैधानिक नियन्त्रण न होते हुए भी वह जन-कल्याण के कार्य तथा धार्मिक सहिष्णुता के कारण लोकप्रिय था। राजा प्रशासन के अतिरिक्त न्याय तथा धर्म के क्षेत्र में भी सर्वोच्च सत्ता-सम्पन्न थे।

2. युवराज—पाल शासक का पद वंशानुगत था। राजा की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र अर्थात् युवराज शासक बनता था। राजा के जीवनकाल में ही युवराज की घोषणा कर दी जाती थी। कभी-कभी राजा धार्मिक कृत्यों के लिए गद्दी त्याग कर युवराज को शासक बना देते थे। युवराज तथा उसके भाइयों में उत्तराधिकार के लिए भी संघर्ष होते थे जैसे ,महीपाल द्वितीय की सामन्तों ने हत्या कर उसके भाई शूरपाल तथा रामपाल को शासक बनाया और रामपाल की मृत्यु के बाद उसके युवराज को भी गद्दी प्राप्त करने के लिए अपने भाई मदनपाल से संघर्ष करना पड़ा था।

3. प्रशासनिक व्यवस्था—साम्राज्य विभिन्न शासकीय इकाइयों—भुक्ति, विषय, मण्डल तथा पाटक—में विभक्त था। सम्राट का सीधा प्रशासनिक नियन्त्रण बंगाल, बिहार तथा आसाम पर था। बंगाल के अन्तर्गत पुण्ड्रवर्धन, वर्धमान तथा दण्ड भुक्तियाँ थी, बिहार के अन्तर्गत तीर तथा श्रीनगर भुक्तियाँ और आसाम में प्रागज्योतिस भुक्ति थी। ताम्रपत्रों से भुक्तियों को हम अनेक विषय और मण्डलों में विभक्त पाते हैं।

मुख्यमन्त्री—मन्त्रिपरिषद् का प्रमुख 'मुख्यमन्त्री' या 'सचिव' कहलाता था। मुख्य मन्त्री का पद वंशानुगत था। बदल स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण मन्त्री गर्ग धर्मपाल तथा नारायणपाल का मुख्यमन्त्री था। गर्ग का पुत्र दर्भपाणि देवपाल का मुख्यमन्त्री था। अन्य मुख्यमन्त्री का परिवार योगदेव का था जो विग्रहपाल तृतीय का मुख्य मन्त्री था। उसके वंशज कुमारपाल के शासनकाल तक मुख्यमन्त्री पद पर रहे। कुमारपाल का मन्त्री वैद्यदेव सेनापति भी था जिसने कामरूप का विद्रोह-दमन कर स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी। पालों ने मन्त्री-पद को वंशानुगत बनाने की परम्परा गुप्त सम्राटों से ली थी। ब्राह्मणों को मुख्यमन्त्री पद देना और स्वयं बौद्ध होना पाल शासकों की धर्म-सहिष्णुता का सूचक है।

अन्य मन्त्री तथा पदाधिकारी[1]—दान पत्रों में निम्नांकित विभाग तथा उनके पदाधिकारियों का पता चलता है—

1. केन्द्रीय कार्यकारिणी का अध्यक्ष राजा होता था जिसमें 'राजपुत्र', मुख्य-मन्त्री, महासांधिविग्रहिक (युद्ध व शान्ति का मन्त्री), 'राजामात्य' (उपमन्त्री), 'महाकुमारामात्य', 'दूत', 'अमात्य', 'अंगरक्षक', 'राजस्थानीय' (प्रान्त का प्रशासक), 'अध्यक्ष' आदि होते थे।

2. राजस्व विभाग में 'उपरिक', 'विषयपति', 'दशग्रामिक' और 'ग्रामपति' प्रशासनिक इकाइयों के अनुसार होते थे। राजस्व के स्रोत भाग, भोग, कर, हिरण्य, उपरिकर आदि कर होते थे। एक अधिकारी 'षष्ठाधिकृत' सम्भवतः राजस्व का छटा भाग वसूल करता था। कर उगाने वाले अधिकारी 'चौरोधरनिक', 'शौल्किक', 'दाशाप्राधिक' और 'तरिक' होते थे।

3. लेखा विभाग का अधिकारी 'महाअक्षपटलिक' तथा उसका सहायक 'ज्येष्ठ-कायस्थ' था।

4. भू-सर्वेक्षण विभाग 'क्षेत्रपाल' तथा 'प्रमात्रि' अधिकारियों के अधीन था।

5. न्याय विभाग का प्रमुख 'महादण्डनायक' या 'धर्माधिकारी' होता था।

6. पुलिस विभाग के अधिकारी 'महाप्रतिहार', 'दण्डिक', 'दण्ड-पाशिक' तथा 'दण्डशक्ति' थे। 'खोल' अधिकारी गुप्तचर विभाग का प्रभारी था।

7. सेना विभाग 'सेनापति' या 'महासेनापति' के अधीन था। उसके अधीन स्थल, अश्व, गज, ऊँट तथा जल सेना के पृथक् प्रभारी अधिकारी थे। 'कोट्टपाल' दुर्गों का अधिपति था और 'प्रान्तपाल' शिविर-अधिकारी था। सेना में पैदल, हाथी, घोड़े आदि की विशाल संख्या के अतिरिक्त जल-सेना भी पालों के समय सुव्यवस्थित थी। कुमारपाल तथा विजयसेन के मध्य जल-युद्ध का उल्लेख पाया जाता है। सेना में जाति के आधार पर भी विभाजन था जैसे गौड़, मालव, खस, कुलिक, कर्नाट, हूण,

1. *Majumdar R. C.* : The History of Bengal (p. 278)

लाट तथा चोड़। युद्ध-योजना की दृष्टि से 'महाव्यूहपति' नामक सैनिक अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है।

8. लोक-कार्य विभाग का अधिकारी 'खण्डरक्ष' था जो भवनों के निर्माण तथा मरम्मत का कार्य देखता था।

इनके अतिरिक्त अन्य पदाधिकारियों में 'अमात्य', 'बलाध्यक्ष' (स्थल सेनाधिकारी), 'भोगपति' (प्रान्तपति), 'दाशापराधिक' (अपराधों के लिए जुर्माना वसूल करने वाला), 'गौल्मिक' (9 हाथी, 9 रथ, 27 अश्व तथा 45 पैदल सैनिकों के एक गुल्म का सैनिक अधिकारी), 'ग्रामपति' (ग्राम का मुखिया), 'नौकाध्यक्ष' (जहाजों का अधिकारी), 'उपरिक' (प्रान्तपति), 'विषयपति' (जिलाधीश) आदि।

उपरोक्त विवरण से यह विदित होता है कि पालों की प्रशासनिक व्यवस्था गुप्तकाल तथा गुर्जर-प्रतिहार-कालीन व्यवस्था के अनुरूप थी। महाभारत तथा मनु द्वारा स्थापित ग्राम स्वायत्त प्रशासन की प्राचीन परम्परा पाल साम्राज्य में प्रचलित थी। पाल शासक बौद्ध होते हुए भी ब्राह्मण मन्त्रियों को नियुक्त करते थे जो यह प्रकट करता है कि वे जाति या धर्म की अपेक्षा व्यक्ति की योग्यता एवं कार्यकुशलता को महत्त्व देते थे। दुर्बल पाल शासकों के समय मन्त्रियों तथा सामन्तों के विद्रोह से प्रशासन-तन्त्र को आघात पहुँचता था। पाल शासकों ने जहाँ एक ओर लोक-कल्याणकारी अनेक कार्य—कुए, सरोवर, मन्दिर, विहार, मठ, भवन, नगर आदि का निर्माण कार्य किया और बौद्ध-धर्म का प्रसार किया, वहाँ दूसरी ओर नालन्दा, विक्रमशीला आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्रों की स्थापना कर तथा विद्वानों को प्रश्रय देकर अपनी प्रशासन-व्यवस्था को प्रजाहितकारी भी बनाया। बंगाल में व्याप्त अराजकता को दूर कर एक सुदृढ़ विशाल साम्राज्य की स्थापना करना पालों की प्रशासनिक व्यवस्था की सफलता का सूचक है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. पालों की प्रशासनिक व्यवस्था का पुनरीक्षण कीजिये। (1974)
   Give a critical review of the administration of Palas.
2. 8वीं और 9वीं शताब्दियों में पालों, प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के बीच राजनैतिक और सैनिक प्रभुत्व के लिए चलने वाले संघर्ष के स्वरूप और इतिहास का विवेचन कीजिये। (1974)
   Discuss the nature and history of the conflict of Palas, Pratiharas and Rashtrakutas for the political and military supremacy during the 8th and 9th centuries.
3. बंगाल के महीपाल प्रथम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (1974)
   Write short note on Mahipal I of Bengal.

4. धर्मपाल की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये। (1975)

   Evaluate the achievements of Dharampal..

5. "देवपाल की अधिसत्ता असम से कश्मीर की सीमा तक के सम्पूर्ण उत्तरी भारत में स्वीकृत थी।" (मजूमदार)। क्या आप इस मत से सहमत हैं? (1976)

   "The Supremacy of Devapala was recognised in the whole of Northern India from Assam to Kashmir." (Majumdar). Do you agree with this view?

6. "महीपाल वास्तव में द्वितीय पाल साम्राज्य का संस्थापक माना जा सकता है।" इस कथन की विवेचना कीजिये। (1977)

   "Indeed Mahipal may justly be regarded as the founder of the second Pala Empire." Discuss this statement.

7. पालों के पूर्व बंगाल की राजनैतिक दशा का विवेचन करते हुए पालों की की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये।

   Giving the political condition of Eastern Bengal before the advent of Palas. Discuss their origin.

8. पाल साम्राज्य की अवनति के कारणों को समझा कर लिखिये।

   Discuss in detail the causes of downfall of the Pala Empire.

9. निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

   (क) गोपाल, (ख) धर्मपाल की दिग्विजय, (ग) बदल अभिलेख (घ) नालन्दा विहार, (च) विक्रमशीला, (छ) विग्रहपाल द्वितीय (ज) 'रामचरित', (झ) राजेन्द्र चोल का आक्रमण।

   Write short notes on the following—

   (a) Gopal, (b) Digvijaya of Dharampal, (c) Badal Inscription, (d) Nalanda Vihar, (e) Vikramshila, (f) Vigrahpal II, (g) "Ramcharit", (h) The Invasion of Rajendra Chola.

10. पाल राजवंश के इतिहास में धर्मपाल के राज्यकाल के महत्व का मूल्यांकन कीजिये। (1978)

    Estimate the importance of the reign of Dharmapala in the history of the Pala Dynasty.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. Majumdar R. C. : The History of Bengal
2. ,, ,, : The Age of Imperial Kanauj
3. ,, ,, : The Struggle for Empire
4. मालवीय, लक्ष्मीकांत : उत्तरी भारत का इतिहास
5. पाठक, वी० एस० : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास
6. डॉ. मनराल व डॉ. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास
7. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल
8. पाण्डेय, वी. सी. : उत्तर भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
9. Ray H. C. : Dynastic History of Northern India

4 चन्देल वंश—विद्याधर और धंग के विशेष संदर्भ में

(Chandellas with special reference to Vidyadhar and Dhanga)

गुर्जर-प्रतिहार तथा पाल वंशों के अतिरिक्त चन्देल वंश एक अन्य प्रमुख वंश था जिसने नवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से तेरहवीं शताब्दी तक उत्तरी भारत के एक विशाल क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित किया था। प्रतिहार तथा पाल वंशों के पतन के समय चन्देल वंश का उदय हुआ। इस वंश के शासक धंग तथा विद्याधर ने अपनी राज्य-सीमा का विस्तार कर तत्कालीन राजनैतिक पृष्ठभूमि में प्रमुख भूमिका निभाई। सर्वप्रथम चन्देल वंश की उत्पत्ति व मूल निवास स्थान का सिंहावलोकन करते हुए इस वंश के शासकों की उपलब्धियों का विवेचन किया जाएगा।

चंदेलों की उत्पत्ति
(The Origin of Chandellas)

प्रथम अध्याय में राजपूतों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अन्य राजपूत वशों के अतिरिक्त चन्देल वंश की उत्पत्ति पर भी विस्तार से विचार किया जा चुका है। यहाँ उन्हीं तथ्यों की संक्षेप में समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है। चन्देल वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। उत्पत्ति सम्बन्धी स्रोत सामग्री अभिलेखों तथा जनश्रुतियों से प्राप्त होती है। उत्पत्ति सम्बन्धी निम्नांकित मत प्रचलित हैं—

(1) चंद्रमा से उत्पत्ति

(क) **जनश्रुति-आधार**—चन्दवरदाई[1] के ग्रंथ "पृथ्वीराजरासो" के 'महोबा-खण्ड' में चन्देलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक कथा दी गई है। इसके अनुसार काशी (बनारस) के गहड़वाल राजा इन्द्रजीत के पुरोहित हेमरण की एक अत्यन्त सुन्दर कन्या हेमवती थी जो सौलह वर्ष की आयु में ही विधवा हो गई थी। एक रात्रि को वह रति नामक सरोवर में स्नान करने गई। चन्द्रमा उसके रूप पर मोहित हो आकाश से उतरा और उसने हेमवती का आलिंगन किया। हेमवती ने जब लोकलज्जा से दुखी होकर चन्द्रमा को श्राप देना चाहा तो चन्द्रमा ने उसे आश्वस्त

1. चन्दवरदाई : पृथ्वीराजरासो (महोबा खण्ड)

करते हुए कहा—"तुम्हारा पुत्र पृथ्वी पर शासन करेगा और उससे हजारों शाखाओं की उत्पत्ति होगी।" जब हेमवती ने पूछा कि वह पति के बिना इस अपवाद को कैसे सहेगी तो चन्द्रमा ने उत्तर दिया—"डरो नहीं। तुम्हें प्रसव कर्णावती नदी के तट पर होगा। वहाँ से तुम खजुराहो जाकर अपने पुत्र को देवता के अर्पण कर देना तथा अपने कलंक को धोने के लिए महोवा में यज्ञ करना। तुम्हारा पुत्र महोवा पर शासन करेगा। उसे एक दार्शनिक पत्थर मिलेगा जिसके स्पर्श से वह लोहे को स्वर्ण में परिणित कर कालिंजर में एक दुर्ग का निर्माण करेगा। जब तुम्हारा पुत्र 16 वर्ष का हो जाये तब तुम अपनी अपकीर्ति से निवृत्त होने के लिए एक यज्ञ और करना जिसके बाद तुम काशी छोड़कर कालिंजर में रहने को आ जाना।" इस भविष्यवाणी के अनुसार ही हेमवती का पुत्र राजा बना और उसने कालिंजर का दुर्ग तथा 85 मन्दिरों का निर्माण कराया। अन्त में उसने महोत्सव (महोबा) को अपनी राजधानी बनाया।

एक अन्य जनश्रुति[1] के अनुसार कथा इस प्रकार है। कालिंजर के राजा ने एक दिन अपने राजपुरोहित से तिथि पूछी। भ्रमवश पुरोहित ने अमावस्या के स्थान पर पूर्णमाशी तिथि बतला दी। जब पुरोहित को अपनी भूल का ज्ञान हुआ तो राजा के भय के कारण वह बहुत दुखी रहने लगा। पुरोहित की पुत्री ने अपने पिता की चिंता का कारण जानकर चन्द्रमा से प्रार्थना की। प्रार्थना के फलस्वरूप उस दिन पूर्ण चन्द्रमा आकाश में दिखाई दिया जिससे पुरोहित की बात सत्य सिद्ध हुई किन्तु चन्द्रमा ने उसकी पुत्री से सहवास किया। पुरोहित को इस बात की जानकारी होते ही उसने अपनी पुत्री को घर से निकाल दिया। जंगलों में भटकते हुए उसकी पुत्री ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस शिशु को गोद में लेते हुए उस स्त्री को मनीराम नामक एक बनाफर राजपूत ने देख लिया। बनाफर राजपूत ने इस लज्जा के कारण स्वयं को पत्थर की मूर्ति में परिवर्तित कर लिया। यह मूर्ति ही मनियदेव के नाम से पूजी जाती है। यह शिशु ही चन्देल वंश का पूर्वज हुआ।

(ख) अभिलेखीय-आधार—चन्देलों की चन्द्रमा से उत्पत्ति सम्बन्धी साक्ष्य दो अभिलेखों से भी मिलते हैं।

धंग के 954 ई. के खजुराहो के लक्ष्मण-मन्दिर से प्राप्त एक अभिलेख से विदित होता है कि विश्व को उत्पन्न करने वाले पुराण-पुरुष से मरीचि और अत्रि जैसे ऋषियों का जन्म हुआ। अत्रि ऋषि के पुत्र का नाम चन्द्रात्रेय था। चन्द्रात्रेय के वंश में नन्नुक राजा उत्पन्न हुआ जिससे चन्देल-वंश का आरम्भ हुआ। इस वंश के विषय में लिखा हुआ है कि यह वंश पृथ्वी पर उस दिन तक राज्य करेगा जब तक चन्द्रमा आकाश में चमकता है।

1. The Tribes and Customs of the North-Western Province and Oudh, Vol. II (p. 196–97)

इसी प्रकार परमर्दी के बटेश्वर शिलालेख में उत्कीर्ण है—'पर्वतों की पुत्री पार्वती के पति शिव के मस्तक के आभूषण चन्द्रमा का जन्म अत्रि के कमलरूपी नेत्र से हुआ। चन्द्रमा से उत्पन्न चन्द्रात्रेय ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की जिससे चन्देल वंश का उद्भव हुआ।

चन्द्रमा से उत्पत्ति के सिद्धान्त की आलोचना—चन्द्रमा से चन्देल वंश की उत्पत्ति के उपरोक्त मत की आलोचना सभी विद्वानों ने की है। निम्नांकित कारणों से वे इस मत को स्वीकार नहीं करते—

1. डॉ० स्मिथ के अनुसार 'पृथ्वीराजरासो' विश्वसनीय ग्रंथ नहीं है तथा उनके मत से "हेमवती की कथा बेवकूफी की है जिसका उद्देश्य चन्देल वंश के बारे में सफाई प्रस्तुत करना है।" ब्राह्मण कन्या और चन्द्रमा से उत्पत्ति दिखा कर चंदेलों को क्षत्रिय सिद्ध करने का यह कपोलकल्पित प्रयास है।

2. हेमवती की चन्द्रमा से सहवास की कल्पना यह प्रकट करती है कि चंदेलों का सम्बन्ध ब्राह्मणों से निम्न किसी वंश से था।

3. चन्द्रमा से तथा अत्रि ऋषि से सम्बन्धित करने की प्रवृत्ति अन्य राजपूत वंशों की भी रही है। यह केवल अपने वंश को अलौकिकता तथा श्रेष्ठता प्रदान करने की दृष्टि से काल्पनिक कथा है।

4. चन्द्रमा जैसे निर्जीव उपग्रह का मानव से सम्बन्ध जोड़ना हास्यास्पद भी है।

अत: डॉ० नेमाइ साधन बोस[1] के शब्दों में, "आधुनिक विद्वान चन्देलों के चन्द्रवंशीय क्षत्रियों से सम्बन्ध पर तनिकमात्र भी विश्वास नहीं करते।"

(2) अनार्यों से उत्पत्ति

डॉ० विन्सेण्ट स्मिथ तथा श्री आर० वी० रसल चन्देलों की उत्पत्ति अनार्यों से मानते हैं। डॉ० स्मिथ उनकी उत्पत्ति बुन्देलखण्ड की जनजाति गौंड तथा भर लोगों से निम्नांकित तथ्यों के आधार पर मानते हैं—

1. चन्देल वस्तुत: निम्न जाति से उत्पन्न हैं किन्तु उनका सम्बन्ध पश्चिमोत्तर दिशा से आने वाले हूणों से उत्पन्न अग्निवंशी राजपूतों से नहीं है।

2. जिस प्रदेश में चन्देलों ने राज्य किया उसकी स्थानीय परम्पराओं के अनुसार गौंड, कोल, भील, भर, चमार आदि निम्न जातियाँ ही इस प्रदेश की मूल निवासी थीं। अत: इन्हीं जातियों में से किसी कबीले के चन्देल थे जो स्थानीय शासक नियुक्त किये जाते थे।

3. महोबा स्थित 'मनियदेव' के मन्दिर में स्थापित मूर्ति चन्देलों के इष्टदेव हैं। इस मूर्ति की समानता गौंडों के देवता के समान है। मनियदेव की पूजा भी चन्देल तथा भर समान रूप से करते हैं।

1. *Bose, N. S.* : History of Chandellas (p. 3)

4. चन्दवरदाई भी 'मनियगढ़' स्थान (जो चन्देलों का मूल निवास-स्थान था) का सम्बन्ध एक गौंड सरदार से जोड़ते हैं।

5. चन्देल राजकुमारी दुर्गावती की गढ़मण्डल के राजा से विवाह की कथा भी चन्देल और गौंड के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध को पुष्ट करती है।

डॉ० स्मिथ का मत है कि हेमवती तथा चन्द्रमा के सम्बन्ध की कथा चन्देलों की निम्न जाति से उत्पत्ति को छिपाने का प्रयास है। चन्देलों से पूर्व गहड़वाल इस प्रदेश के शासक थे। अत: डॉ० स्मिथ का मत है कि चन्देल गहड़वालों के गौंड तथा भरों से वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा उत्पन्न हुए।

श्री रसल डॉ० स्मिथ के मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि चन्देल भर नामक जनजाति से ही उत्पन्न हुए थे। इसके प्रमाणस्वरूप वे निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

1. चन्देल गौंडों से उत्पन्न नहीं हो सकते क्योंकि गौंड दक्षिण से उत्तर की ओर केवल सागर तथा दमोह तक गये थे। वे बुन्देलखण्ड में प्रविष्ट नहीं हुए और न वहाँ उनकी कोई सत्ता स्थापित थी। चन्देलों द्वारा राज्य स्थापना के काफी समय बाद बुन्देलखण्ड में गौंडों का अस्तित्व प्रकट हुआ।

2. बुन्देलखण्ड में चन्देलों से पूर्व भर जनजाति निर्माता के रूप में प्रसिद्ध थी। श्री ईलियट स्थानीय परम्परा के अनुसार यह मानते हैं कि—"भर गोरखपुर से बुन्देलखण्ड तथा सागर तक के क्षेत्र में स्थित थे तथा गोरखपुर, आजमगढ़, जौनपुर, मिर्जापुर तथा इलाहाबाद के अनेक प्राचीन प्रस्तर दुर्ग, बाँध एवं भूमिगत सरायें भरों ने ही बनाई थीं।" श्री रसल का मत है कि गहड़वाल, जिनसे चन्देलों के सम्बन्ध थे, भर जाति के एक सम्पन्न वर्ग के थे।

3. डॉ. स्मिथ ने चन्देलों के देवता मनियदेव का मन्दिर हमीरपुर जिले के एक ऐसे गांव में खोज निकाला था जिस पर प्राचीन काल में भरों का अधिकार था।

4. मिर्जापुर में आज भी चन्देल काफी संख्या में निवास करते हैं जबकि मिर्जापुर पर मूलत: भरों का अधिकार था।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर श्री रसल का मत है कि गहड़वालों की उत्पत्ति भरों से हुई और गहड़वालों की एक स्थानीय शाखा का नाम चन्देल था जो चन्देरी स्थान के आधार पर चन्देल नाम से पुकारी जाने लगी।

(3) क्षत्रियों से उत्पत्ति

डॉ० स्मिथ तथा श्री रसल के द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त सिद्धान्त का श्री सी० वी० वैद्य ने खण्डन करते हुए चन्देलों की क्षत्रियों से उत्पत्ति स्वीकार की है। उनके तर्क निम्नांकित हैं—

1. चंदवरदाई द्वारा उल्लिखित 36 राजपूत राजवंशों में एक वंश 'छन्द' (चन्द) भी है। श्री वैद्य का मत है कि 'छन्द' शब्द चंदेलों का ही द्योतक है।

2. श्री टॉड ने भी "कुमारपाल चरित" में वर्णित 36 राजवंशों के अन्तर्गत चदेलों की गणना की है।

3. अभिलेखों से विदित होता है कि चंदेलों के वैवाहिक सम्वन्ध अन्य राजपूत वंशों के साथ हुए थे।

4. डॉ० स्मिथ का यह तर्क निराधार है कि चंदेल चूंकि गौंडों के प्रदेश में राज्य करते थे, अत: वे भी गौंड थे। श्री वैद्य का कथन है कि राजपूत वंशों ने प्राय: उन प्रदेशों पर अधिकार कर राज्य स्थापित किया जिनके निवासी जनजाति के थे।

5. चंदेल मनियगढ़ के निवासी बन गये थे किन्तु वे मूलत: क्षत्रिय थे व सम्भवत: कुशान अथवा हूणों के भारत-आक्रमण के समय इस प्रदेश में आये थे।

6. मनियदेव तथा रानी दुर्गावती के तर्कों के आधार पर चंदेलों को गौंड या भर नहीं माना जा सकता।

उत्पत्ति सम्बन्धी मतों के आधार पर निष्कर्ष—डॉ. एन एस. वोस श्री वैद्य के मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि 'पृथ्वीराजरासो' तथा 'कुमारपाल-चरित' काफी समय बाद की रचनाएँ हैं जबकि चंदेलों ने स्वयं को क्षत्रियों के वर्ण में स्थापित कर लिया था। श्री वैद्य का यह मत कि चंदेल मूलत: क्षत्रिय थे और वे कुशान या हूणों के आक्रमण के समय बुन्देलखण्ड में आये, किसी साक्ष्य द्वारा प्रमाणित नहीं होता। श्री वोस[1] की यह मान्यता उचित जान पड़ती है कि "सम्भाव्य सत्य यह हो सकता है कि डॉ. स्मिथ के अनुसार परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्वन्धित जनजातियों गौंड और भर से चदेलों की उत्पत्ति हुई किन्तु गहड़वालों को भी गौंड और भर के समकक्ष माना जा सकता है।" इस प्रकार चंदेलों की उत्पत्ति चन्द्रमा या क्षत्रियों से न होकर स्थानीय गौंड, भर तथा गहड़वालों से होना अधिक सम्भावित है।

चन्देलों का मूल निवास-स्थान
(The Original Home of Chandellas)

चंदेलों ने जिस क्षेत्र पर राज्य किया वह बुन्देलखण्ड कहलाता है जिसके अन्तर्गत यमुना के दक्षिण तट से लेकर विन्ध्याचल के उत्तर तक तथा वेतवा नदी के पूर्वी तट से लेकर तमसा नदी के पश्चिमी तट तक विस्तीर्ण भू-भाग था। इस क्षेत्र में वर्तमान उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के सागर, जबलपुर, झाँसी, हमीरपुर आदि जिले सम्मिलित थे।

जनश्रुतियों के अनुसार चन्देलों का मूल निवास-स्थान छतरपुर राज्य में स्थित मनियगढ़ था। आठ चन्देल दुर्गों में बरीगढ़, कालिंजर, मनियगढ़, मर्फ, मौढ़, गढ़ तथा महिमर प्रसिद्ध थे किन्तु इनमें से केवल कालिंजर तथा अजयगढ का उल्लेख चन्देल-अभिलेखों में हुआ है। चंदेलों की राज्य-सीमा में खजुराहो, महोबा, कालिंजर

1. पूर्वोक्त (पृ० 9)

तथा अजयगढ़ का सम्मिलित होना साक्ष्यों से प्रमाणित होता है। महमूद गजनवी के साथ 1022 ई० में कालिंजर आक्रमण के समय आए हुए आबू रिहान ने 'खजुराहह' (खजुराहो) को 'जजाहुति' (जैजाक भुक्ति) की राजधानी बतलाया है। 1335 ई. में भारत आए इब्नबतूता ने खजुराहो को 'कजुरा' कहा है जहाँ विशाल सरोवर के तट पर अनेक मन्दिरों का उल्लेख किया है। खजुराहो महोवा के दक्षिण में 34 मील, छतरपुर के पूर्व में 27 मील तथा पन्ना के पश्चिमोत्तर दिशा में 25 मील की दूरी पर स्थित है। कालिंजर दुर्ग इलाहाबाद के दक्षिणी-पश्चिमी दिशा में 90 मील तथा रीवाँ के उत्तर-पश्चिम में 60 मील पर स्थित है। इस दुर्ग से चंदेलों के अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं। अजयगढ़ कालिंजर के दक्षिण-पश्चिम में 20 मील पर स्थित है। महोवा हमीरपुर के दक्षिण में 54 मील तथा खजुराहो के उत्तर में 34 मील दूर बेतवा तथा यमुना के संगम पर स्थित है। महोवा का प्राचीन नाम 'महोत्सव नगर' था। खजुराहो, कालिंजर, महोवा तथा अजयगढ़ चंदेल राज्य के चार प्रमुख केन्द्र थे। श्री आसोपा[1] चंदेलों का मूल स्थान ह्वेनसाँग के विवरण के आधार पर "चंदेरी" मानते हैं।

इस प्रकार मध्यकाल में जैजाक मुक्ति (वर्तमान बुन्देलखण्ड) चंदेलों के मूल निवास का क्षेत्र था। महोवा अभिलेख के अनुसार चंदेलों के एक प्रारम्भिक शासक जयशक्ति के नाम पर इस प्रदेश का नाम जैजाकभुक्ति या जैजाभुक्ति पड़ा। मदनपुर के शिलालेखों में भी पृथ्वीराज चौहान तृतीय द्वारा विजित इस प्रदेश का नाम जैजाभुक्ति ही दिया गया है। जैजाकभुक्ति ही वर्तमान बुन्देलखण्ड है। 641 ई. में भारत आए चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने इस प्रदेश का नाम चि-चि-तो अर्थात जाभोति बतलाया है। कनिंघम ने इसका समीकरण जैजाकभुक्ति से किया है।

चन्देल वंश के शासक
(The Chandela Rulers)

दसवीं शताब्दी के मध्य तक गुर्जर-प्रतिहारों का साम्राज्य अपने चर्मोत्कर्प पर था जिसके अन्तर्गत बुन्देलखण्ड प्रदेश सम्मिलित था। चन्देल शासक इस अवधि-पर्यन्त गुर्जर-प्रतिहारों के सामन्त के रूप में जैजाकमुक्ति के शासक थे। नागभट्ट द्वितीय (800–833 ई.) के समय कालिंजर तथा खजुराहो गुर्जर-प्रतिहारों के अधीन थे। चन्देल शासक धंग (950–1002 ई.) ही ऐसा शक्तिशाली एवं महत्वाकांक्षी था जिसने कुछ समय बाद ही अपने राज्य-काल में गुर्जर-प्रतिहारों से चन्देल-राज्य को स्वाधीन कर लिया।

चन्देल शासकों का विवरण निम्नांकित है—

(1) नन्नुक (831–844 ई.)

सर्वप्रथम धंग के खजुराहो शिलालेख (954 ई.) से विदित होता है कि

1. *J. N. Asopa* : Origin of Rajputs (p. 214)

चन्देलों का प्रथम शासक नन्नुक था। बाद के चन्देल अभिलेखों से भी इसकी पुष्टि होती है। जनश्रुतियों के अनुसार चन्देल चन्द्रवर्मन ने गुर्जर-प्रतिहारों को पराजित कर चन्देल राज्य की स्थापना की थी किन्तु चन्द्रवर्मन का उल्लेख अभिलेखों में नहीं है। डॉ० रे[1] के मतानुसार 'चन्द्रदेव' नन्नुक का विरुद मात्र था किन्तु वे चन्द्रवर्मन (नन्नुक) द्वारा गुर्जर-प्रतिहार जैसे शक्तिशाली नरेशों को पराजित होना स्वीकार नहीं करते। डॉ० बोस[2] का मत है कि नन्नुक ने किसी स्थानीय गुर्जर-प्रतिहार शाखा के छोटे शासक को पराजित कर अपना राज्य स्थापित किया होगा। ऐसी स्थिति में जनश्रुति तथा अभिलेख के सम्मिलित साक्ष्यों के आधार पर नन्नुक (चन्द्रवर्मन) चन्देल राज्य का संस्थापक माना जा सकता है।

खजुराहो अभिलेख में नन्नुक को 'नृप' तथा अन्य शिलालेख में उसे अर्जुन के समान शक्तिशाली बतलाते हुए उसका विरुद 'महीपति' बतलाया गया है। इससे प्रकट होता है कि नन्नुक गुर्जर-प्रतिहारों के अधीन शासक था। प्रतिहार शासक भोज के अभिलेख (836 ई०) से इसकी पुष्टि होती है क्योंकि भोज द्वारा कालिंजर मण्डल में दान दिये जाने का उल्लेख है। ग्वालियर (सगरताल) शिलालेख के अनुसार नन्नुक ने प्रतिहार शासक रामभद्र के संकट के समय उसकी सामन्त के रूप में सहायता की। अतः यह प्रतीत होता है कि नन्नुक प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय (815-833 ई०) का सामन्त था।

नन्नुक के राज्यकाल के आरंभ की तिथि धंग के खजुराहो शिलालेख के आधार पर कनिंघम ने नवीं शताब्दी के प्रथम चरण में मानी है। जनश्रुति के आधार पर हेमवती के पुत्र चंद्रवर्मन की तिथि हर्ष सम्वत् में 225 दी गई है अर्थात् यह तिथि $225 + 606 = 831$ ई० निश्चित होती है। डॉ० हेमचंद्र रे का भी यही मत है। नन्नुक ने लगभग 14 वर्ष शासन किया।

(2) वाक्पति (844–870 ई०)

नन्नुक की 844 ई० में मृत्यु के बाद उसका पुत्र (खजुराहो शिलालेख के आधार पर) वाक्पति शासक बना जिसकी प्रसिद्धि सूर्य-रश्मियों के अनुसार तीनों लोकों में व्याप्त थी। उसने अनेक शत्रुओं को पराजित कर विन्ध्याचल प्रदेश को अपनी क्रीड़ा-स्थली बनाया। एक दूसरे शिलालेख में वाक्पति का विरुद 'क्षितिप' लिखा गया है तथा उसके शौर्य एवं विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए उसे पौराणिक राजा पृथु तथा ककुस्थ से भी श्रेष्ठ बतलाया गया है। इन विवरणों से यह प्रतीत होता है कि वाक्पति ने चंदेल-राज्य की सीमा का विस्तार विन्ध्याचल की दिशा में किया किन्तु वह गुर्जर-प्रतिहारों के अधीन सामन्त के रूप में ही शासन करता था।

1. *Dr. Hem Chandra Ray* : Dynastic History of Northern India Vol. II (p. 667)
2. *Dr. N. S. Bose* : History of Chandellas (p 16)

(3) जयशक्ति (870 ई०)

वाक्पति की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र जयशक्ति ने अल्प समय के लिये शासन किया। खजुराहो शिलालेख (954 ई०) में वाक्पति के दो पुत्रों जयशक्ति तथा विजयशक्ति की प्रशसा में लिखा गया है—"जिस प्रकार क्षीर-सागर से चंद्रमा तथा कौस्तुभ मरिण की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार आश्चर्य-गृह (वाक्पति) से दो पुत्रों जयशक्ति तथा विजयशक्ति का जन्म हुआ। जब ये दोनों राजकुमार मिल कर अपने शत्रुओं को दावाग्नि से जंगलों को भस्म करने के समान नष्ट-भ्रष्ट करते थे तो दोनों के शौर्य की सभी मस्तक हिला कर प्रशंसा करते थे।" जयशक्ति का नाम शिलालेखों में जैजा और जैजाक भी मिलता है। जयशक्ति की पुत्री नट्ट का विवाह कलचुरि नरेश कोक्कल प्रथम से हुआ था।[1] जयशक्ति के बाद चंदेल प्रशासित प्रदेश जँजाक-भुक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(4) विजयशक्ति (870–900 ई०)

जयशक्ति की 870 ई० में अल्पकालिक शासन के बाद मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका छोटा भाई विजयशक्ति गद्दी पर बैठा। विजयशक्ति की रणकुशलता खजुराहो शिलालेख से प्रकट होती है। इस शिलालेख के श्लोक संख्या 19 में विजयशक्ति को राम की भाँति अभियान करता हुआ दक्षिण तक पहुँचना बतलाया गया है। 'सहृदय-उपकृति-दक्ष' विरुद का आशय डॉ० आर० सी० मजूमदार[2] ने यह निकाला है कि दक्षिण का यह अभियान विजयशक्ति ने अपने मित्र शासक की सहायतार्थ किया था सम्भवतः यह पाल शासक देवपाल (801–840 ई०) के साथ किया गया क्योंकि देवपाल ने भी इसी समय दक्षिण में अभियान किया था। डॉ० मजूमदार का मत है कि विजयशक्ति ने देवपाल की सहायता कर प्रतिहार शासक भोज को हराया जिसके बदले में पाल शासक के सामन्त के रूप में खजुराहो प्रदेश पर चन्देलों का अधिकार हुआ।

किन्तु डॉ० मजूमदार का उपरोक्त मत स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि वराह ताम्रपत्र में स्पष्ट अंकित है कि कालिंजर मण्डल 836 ई० में प्रतिहार भोज के साम्राज्य में सम्मिलित था। खजुराहो जो कालिंजर से केवल 50 मील दूर है, कालिंजर मण्डल का ही अंग था। यदि यह भी मान लिया जाये कि देवपाल ने 836 ई० में प्रतिहार भोज को पराजित किया, फिर भी यह सम्भव नहीं हो सकता कि पालों ने चंदेलों को खजुराहो पर अधिकार करने की अनुमति दी। इसका कारण यह है कि काल-क्रम की दृष्टि से देवपाल विजयशक्ति का समकालीन नहीं था। अतः डॉ० एन० एस० बोस[3] का मत उचित प्रतीत होता है कि विजय शक्ति अपने पूर्वजों

1. *Dr. Majumdar R. C.* : (The Age of Imperial Kanauj (p. 83)
2. *Dr. Majumdar R. C.* : History of Bengal (p. 119 Footnote)
3. *Dr. Bose N. S.* : History of Chandellas (p. 21)

की भाँति गुर्जर-प्रतिहार नरेश भोज के अधीन सामन्त था। श्री एस० के० मिश्र की भी मान्यता है कि 'सहृदय' जैसा साधारण विरुद चंदेलों के स्वामी गुर्जर-प्रतिहारों के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त यह शिलालेख धंग जैसे स्वाधीन व शक्तिशाली चंदेल-नरेश के समय लिखा गया था, अतः धंग ने अपने पूर्वज विजयशक्ति को किसी अन्य शासक के अधीन कहना अपमानजनक समझा। विजयशक्ति द्वारा दक्षिण तक अभियान करने का भी कोई औचित्य प्रकट नहीं होता। डॉ० हेम चंद्ररे [1] का निष्कर्ष ठीक प्रतीत होता है कि विजयशक्ति एक अधीन सामन्त था जो सम्भवतः प्रतिहार नरेश भोज या उसके पुत्र महेन्द्रपाल के अधीन था।

(5) राहिल (900–915 ई०)

विजयशक्ति के पश्चात् उसका पुत्र राहिल शासक बना। खजुराहो अभिलेख में उत्कीर्ण है कि, "राहिल युद्ध-यज्ञ में कभी नहीं थकता था। उसके भय से उसके शत्रुओं की निद्रा क्षणिक हो गई। वह मित्रों का हितैषी तथा शत्रुओं को दंड देने वाला था।" जनश्रुतियों के अनुसार उसे नगरों और तालाबों का निर्माता कहा गया है। अजयगढ़ में उसके द्वारा निर्मित मन्दिर में उसके नाम का शिलालेख प्राप्त हुआ है। महोबा के निकट 'राहिल सागर' नामक सरोवर उसी का बनवाया हुआ है। चन्दबरदाई ने उसके द्वारा निर्मित एक नगर 'रासिन' का उल्लेख किया है जिसका समीकरण बांदा जिले के 'राजवसिन' नगर से किया जाता है। राहिल भी अपने पूर्वजों की भाँति गुर्जर-प्रतिहारों का सामन्त था।

(6) हर्ष (915–930 ई०)

राज्यारोहण—राहिल की मृत्यु के बाद 915 ई० में उसका पुत्र हर्ष गद्दी पर बैठा। इसकी पुष्टि धंग के नन्यौर ताम्र अभिलेख[2] से होती है जिसमें अंकित है कि, "त्रिलोकों का स्वामी परमप्रतापी ऋषि चन्द्रात्रेय के महान् वंश में एक विख्यात शासक हर्षदेव हुआ जो अपने आश्रितों के लिए कल्पवृक्ष, सज्जनों के लिए आनन्दमूल, अपने मित्रों के नेत्रों के लिए अमृत, अपनी शत्रु-सेना के लिए विशाल धूमकेतु की भाँति अनिष्टकारक तथा युद्धरूपी सागर को पार करने हेतु एक पुल की भाँति था। वह अपनी विशाल भयानक सेना से शत्रुओं में आतंक उत्पन्न कर तथा शत्रुता रखने वाले नरेशों को अपना करद सामन्त बनाकर इस प्रकार असह्य था जिस प्रकार ग्रीष्म-कालीन सूर्य अपने प्रचण्ड तप्त केन्द्रमण्डल द्वारा पार्वतों को किरणों से भस्म कर देता है।" हर्ष भी अपने पूर्वजों की भाँति गुर्जर-प्रतिहारों के अधीन सामन्त था।

1. *Dr. Ray H. C.* : Dynastic History of Northern India (p. 671)
2. Indian Antiquary, Vol. XVI (p. 202 Line 1)

प्रतिहार-नरेश महिपाल प्रथम की सहायता—जिस समय हर्ष गद्दी पर बैठा प्रतिहार-राष्ट्रकूट-पाल त्रिशक्ति संघर्ष चल रहा था तथा प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों भोज द्वितीय (910–912 ई०) तथा महीपाल प्रथम (912–945 ई०) के मध्य उत्तराधिकार के लिए संघर्ष होने के कारण प्रतिहार-साम्राज्य संकट में था। यह संकट उस समय चरमोत्कर्ष पर पहुँचा जब 917 ई० के लगभग राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय ने प्रतिहार नरेश महीपाल प्रथम पर आक्रमण कर महीपाल को बुरी तरह पराजित कर भाग जाने को विवश किया तथा कन्नौज पर अधिकार कर लिया। कन्नड़ कवि पम्प के विवरण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि राष्ट्रकूटों के हाथों महीपाल को अत्यन्त अपमानित होना पड़ा। इस स्थिति का लाभ उठाकर पालों ने भी प्रतिहारों से बिहार के कुछ प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया। गया के अभिलेख से यह तथ्य प्रमाणित होता है।

इस प्रकार अपने खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने हेतु महीपाल को अपने सामन्तों की सहायता की अपेक्षा थी। खजुराहो अभिलेख के श्लोक सं० 10 की पंक्ति "पुनरयेन श्री क्षितिपालदेवनृपतिः सिंहासने स्थापितः" के अनुसार चन्देल शासक ने क्षितिपाल देव (महीपाल) को पुनः सिंहासन पर बैठाया। इस पंक्ति के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। इस पंक्ति के अनुसार चन्देल नरेश कौन था ? इसके लिए श्री हार्नले का मत है कि वह यशोवर्मन था किन्तु श्री कीलहार्न ने उसे हर्षदेव माना है। कीलहार्न का मत ही उचित जान पड़ता है क्योंकि अभिलेख की सातवीं पंक्ति में हर्ष द्वारा अनेक शत्रुओं का पराजित होना दिखाया गया है। डॉ० आर० एस० त्रिपाठी का भी यही मत है।

महीपाल की हर्ष द्वारा सहायता की जाने की स्थिति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। श्री स्मिथ इस सम्भावना को प्रकट करते हैं कि राष्ट्रकूटों तथा हर्ष ने मिलकर प्रतिहारों पर विजय प्राप्त की किन्तु बाद में प्रतिहारों से मित्रता कर हर्ष ने क्षितिपाल (महीपाल) की सहायता उसे अपने खोये हुए राज्य को पुनः हस्तगत करने में की। डॉ. अल्तेकर का कथन है कि प्रतिहारों को पराजित करने वाला राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय था। डॉ० एच० सी० रे का मत है कि महीपाल ने हर्ष चन्देल तथा अन्य सामन्तों की सहायता से अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त किया। डॉ० आर० सी० मजूमदार राष्ट्रकूटों से महीपाल द्वारा पुनः अपना राज्य अधिकृत किया जाना मानते हैं। डॉ० त्रिपाठी 'पुनः' का अर्थ 'इसके बाद', 'इसके अतिरिक्त' या 'अब' मानते हैं तथा वे खजुराहो अभिलेख की उपरोक्त पंक्ति से यह आशय निकालते हैं कि हर्ष ने क्षितिपाल (महीपाल) की सहायता उसे पुनः शासक बनाने में नहीं की बल्कि उसे उत्तराधिकारी के रूप में गद्दी पर बैठने में सहायता दी। डॉ० त्रिपाठी कलचुरि कर्णदेव के बनारस ताम्र-पत्र के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि भोज द्वितीय तथा महीपाल प्रथम सौतेले भाई थे। महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद भोज द्वितीय कलचुरि नरेश कोक्कल की सहायता से गद्दी पर बैठा।

महीपाल ने चन्देल नरेश हर्ष की सहायता ली। हर्ष ने महीपाल को गद्दी पर बैठाया जिससे हर्ष की प्रतिष्ठा तथा शक्ति में अभिवृद्धि हुई।

डॉ० एन० एस० बोस[1] की मान्यता घटना-क्रम के आधार पर यह है कि 'पुनः' का अर्थ डॉ० त्रिपाठी के अनुसार 'इसके बाद' न होकर डॉ० रे के अनुसार 'एक बार और' ही उचित है क्योंकि चन्देल व कलचुरियों के परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध होने के कारण हर्ष महीपाल का साथ देकर भोज द्वितीय के सहायक कलचुरि कोक्कल के विरुद्ध युद्ध न करता। अतः डॉ० बोस का निष्कर्ष ही उचित प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूटों से महीपाल ने हर्ष की सहायता से पुनः अपना खोया हुआ राज्य हस्तगत किया। इसके बदले में हर्ष ने प्रतिहारों से चित्रकूट पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

चन्देलों के वैवाहिक सम्बन्ध—चन्देलों ने चहमानों, कलचुरियों तथा राष्ट्रकूटों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा-वृद्धि की। खजुराहो अभिलेख (954 ई०) से विदित होता है कि हर्ष ने चहमान राजकुमारी कंकुक से विवाह किया। कलचुरि कर्णदेव के बनारस ताम्रपत्र से पता चलता है कि कलचुरि नरेश कोक्कल ने चन्देल वंश की राजकुमारी (हर्ष से सम्बन्धित) नट्टादेवी से विवाह किया। कोक्कल की पुत्री का विवाह राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय के साथ हुआ। इन वैवाहिक सम्बन्धों से चन्देलों के पड़ौसी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध हो गये।

हर्ष का मूल्यांकन—उपरोक्त विवरण के आधार पर हर्ष की उपलब्धियाँ अभूतपूर्व थीं। प्रतिहारों का सामन्त होते हुए भी प्रतिहार सम्राट महीपाल को पुनः गद्दी पर स्थापित कर हर्ष ने अपनी शक्ति एवं पराक्रम का अद्भुत प्रदर्शन किया। चहमान, कलचुरि तथा राष्ट्रकूटों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर हर्ष ने चन्देलों को क्षत्रियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया तथा साथ ही अपने राज्य की सुरक्षा तथा राज्य विस्तार के लिए मित्र-राज्य भी उत्पन्न किये। चित्रकूट दुर्ग पर अधिकार कर उसने अपनी राज्य-सीमा का विस्तार किया। हर्ष केवल रणकुशल, कूटनीतिज्ञ एवं राज्य-विस्तारक शासक ही नहीं था बल्कि वह धर्म-निष्ठ एवं धर्म-सहिष्णु शासक भी था। वह विष्णु का भक्त होते हुए भी अन्य धर्मों का आदर करता था। यद्यपि खजुराहो शिलालेख की प्रशस्ति 'स्वर्गीय विभूतियों का वृक्ष' उसके लिए अतिशयोक्ति हो किन्तु वह चन्देल वंश का एक महान् शासक था। डॉ० बोस[2] के शब्दों में—"निस्सन्देह हर्ष ने चन्देल वंश की भावी महानता की नींव डाली। गुर्जर-प्रतिहारों का प्रत्यक्ष रूप से विरोध किये बिना उसने चन्देलों को अग्रणी शक्ति बनाया तथा अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी यशोवर्मन के लिए अनुकूल अवसर उपस्थित किये।"

1. *Dr. Bose N. S.* : History of the Chandellas (p. 26–27)
2. पूर्वोक्त (पृष्ठ 50)

(7) यशोवर्मन (925–950 ई०)

राज्यारोहण

खजुराहो शिलालेख (1002 ई०) से विदित होता है कि हर्ष की चौहान-वंशी रानी कंकुक से उत्पन्न पुत्र यशोवर्मन उसकी मृत्यु के बाद शासक बना। यशोवर्मन का दूसरा नाम लक्ष्मवर्मन भी इस अभिलेख में दिया गया था। उसे पवित्र एवं महान शासक बतलाया गया है जिसने अन्य राजाओं को पराजित कर अपना सुदृढ़ शासन स्थापित किया। उसने अनेक अभियानों द्वारा अपने राज्य का विस्तार किया।

यशोवर्मन की विजयें

1. कालिंजर विजय—कालिंजर विजय यशोवर्मन की महानतम उपलब्धि थी। धंग के खजुराहो अभिलेख (954 ई०) में अंकित है कि, "शिव के निवास-स्थल कालिंजर पर्वत, जो अपने उत्तुंग शिखरों के कारण मध्याह्न के सूर्य की किरणों के प्रवेश को रोकता था, यशोवर्मन ने उस पर सरलता से खेल-खेल में ही विजय प्राप्त की।" इस प्रश्न पर इतिहासकारों में मतभेद है कि कालिंजर किससे विजित किया गया। डॉ० हेमचन्द्र रे, डॉ० त्रिपाठी तथा डॉ० अल्तेकर के मतानुसार यशोवर्मन ने कालिंजर राष्ट्रकूटों से प्राप्त किया। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय (959 ई०) के दान-पत्रों से विदित होता है कि कृष्ण ने दक्षिण में अपनी सत्ता स्थापित कर कालिंजर तथा चित्रकूट पर अधिकार करना चाहा। वह अपने पिता अमोघवर्ष का आज्ञाकारी पुत्र था। पूर्व से लेकर पश्चिम तक एवं हिमालय से सिंहल तक के सभी शासक उससे भयभीत थे। इस विवरण से यह प्रकट होता है कि कृष्ण तृतीय ने अपने पिता अमोघवर्ष के समय कालिंजर व चित्रकूट दुर्गों पर कुछ समय तक अधिकार रखा। अमोघवर्ष की मृत्यु 940 ई० में हुई। अतः राष्ट्रकूटों की यह विजय इस तिथि से पूर्व हुई थी। राष्ट्रकूटों की इस विजय की पुष्टि कनारेजी प्रशस्ति से होती है।

डॉ. नीलकण्ठ शास्त्री तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के आधार पर यह मान्यता रखते हैं कि कलचुरि और राष्ट्रकूटों की सहायता से चन्देल नरेश यशोवर्मन ने कालिंजर प्रतिहारों से प्राप्त किया। किन्तु चन्देल शिलालेखों में चन्देल व कलचुरियों के शत्रुवत् सम्बन्धों के आधार पर यह मान्यता ठीक प्रतीत नहीं होती। श्री सी. वी. वैद्य, कनिंघम तथा डॉ. बोस का मत है कि चन्देलों ने कालिंजर कलचुरियों से विजित किया। डॉ. मीराशी का कथन है कि कालिंजर और चित्रकूट चन्देलों के अधिकार में आने के पूर्व प्रतिहारों की राज्य-सीमा में थे। डॉ. विशुद्धानन्द पाठक[1] का मत है कि, "यशोवर्मन ने राष्ट्रकूट-आक्रमणों की आंधी से ग्रस्त प्रतिहार

1 डॉ. पाठक वी० एन० : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 385)

साम्राज्य की शिथिलता का लाभ उठाते हुए कदाचित राष्ट्रकूटों के विरुद्ध या तो प्रथम महीपाल (914-946 ई.) की रक्षा करने के बहाने अथवा बलात् कालिंजर वैसे ही हथिया लिया, जैसे उसके पिता हर्ष ने चित्रकूट ले लिया था।" डॉ. सत्य प्रकाश[1] का भी यही मत है, "खजुराहो अभिलेख में यशोवर्मन को गुर्जरों के लिए अग्नि के समान बताया गया है जिससे यही प्रकट होता है कि प्रतिहार दुर्बल शासक अपने सामन्तों पर अंकुश लगाने में असफल थे। इसीलिए यशोवर्मन के कालिंजर और चित्रकूट अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रकूटों से प्राप्त किए और सम्भवतः यही कारण है कि खजुराहो शिलालेख में दी गई पराजित लोगों की सूची में इनका नाम नहीं है।" डॉ. सत्य प्रकाश का मत ही उचित प्रतीत होता है।

1. **अन्य विजयें**—खजुराहो अभिलेख (959 ई.) में उत्कीर्ण है—"यशोवर्मन गौड़रूपी क्रीड़लता के लिए तलवार था; उसने खस की सेनाओं की बराबरी की; कौशलों का कोष लूटा; कश्मीर के वीर का नाश किया; मिथिला के राजा को शिथिल किया; वह मालवों के लिए काल के समान था; उसके सामने गर्हित चेदिराज काँपने लगा था तथा वह कुरु रूपी वृक्ष के लिए आंधी के समान और गुर्जरों के लिए दाहकारक था।" इस विवरण में यशोवर्मन की दिग्विजय जैसा वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है किन्तु यशोवर्मन ने अपनी सैनिक-शक्ति को उत्तरी भारत में सर्वोत्कृष्ट बना लिया था जिसके कारण वह इतने राज्यों पर अभियान कर सका।

2. **पालों से संघर्ष**—पाल अभिलेखों से विदित होता है कि पाल नरेश गोपाल द्वितीय (921-978 ई.) ने पश्चिम के कुछ प्रदेशों पर अधिकार करने की चेष्टा की थी जिसे चन्देलों ने विफल कर दिया। अतः यह सम्भावना प्रतीत होती है कि गोपाल द्वितीय को पराजित कर यशोवर्मन ने गौड़ और मिथिला के प्रदेशों पर अधिकार किया।

3. **खस पर अभियान**—कश्मीर के दक्षिण में राजापुरी और लोहारा के दुर्ग में खस लोग निवास करते थे जिन्हें स्टाइन ने खोखरों का पूर्वज माना है। सम्भवतः यशोवर्मन के कुरु प्रदेश पर अभियान के समय उसकी सेना तथा खसों की सेना का संघर्ष हुआ हो किन्तु यह केवल छापा मात्र था।

4. **कौशल पर अभियान**—यशोवर्मन द्वारा कौशलों के कोष को लूटने का उल्लेख अभिलेख में किया गया है। डॉ. सत्य प्रकाश के अनुसार यह प्रदेश उत्तर कौशल था। डा. मनराल व डॉ. मित्तल[2] के मतानुसार यह प्रदेश महाकौशल था जिसमें मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़, रायपुर, बिलासपुर और संभलपुर क्षेत्र हैं। सम्भवतः यशोवर्मन ने कौशल पर आकस्मिक छापा मार कर कोष लूटने में सफलता प्राप्त की हो।

1. डा० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास, राजपूत–काल (पृ. 192)
2. डा. मनराल व डा. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृ 100

5. **कश्मीर से संघर्ष**—कश्मीर के दक्षिण भाग में स्थित कश्मीर की सेना से यशोवर्मन के उत्तरी अभियान के समय मुठभेड़ हुई सम्भव प्रतीत होती है। कश्मीर के वीर का नाश करने का तात्पर्य इसी मुठभेड़ में कश्मीर के सेनापति का मारा जाना प्रकट होता है। किन्तु इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

6. **मिथिला पर अभियान**—मिथिला पर पालों का अधिकार था। यशोवर्मन ने अपने पूर्वी अभियान में मिथिला को पदाक्रांत कर बंगाल तक छापा मारा। पाल नरेश राज्यपाल तथा गोपाल द्वितीय, जो यशोवर्मन के समकालीन थे, अत्यन्त दुर्बल शासक थे जिनके समय उत्तर-पूर्व दिशा से कम्बोज भी पालों पर आक्रमण कर रहे थे। अतः ऐसी स्थिति में यशोवर्मन को मिथिला पर विजय प्राप्त होना सरल था। पूर्वी अभियान से चन्देलों की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। किन्तु इन विजयों का कोई स्थाई प्रभाव नहीं हुआ क्योंकि इन दूरस्थ विजित प्रदेशों पर मध्य में प्रतिहार तथा कलचुरि राज्य होने से, चन्देल अपना अधिकार स्थापित न रख सके। 'मिथिला के राजा को शिथिल करने' का आशय केवल उसे पराजित करना था।

7. **मालवा पर अभियान**—खजुराहो शिलालेख में यशोवर्मन को मालवों के लिए काल के समान कहा गया है। मालवा के समकालीन शासक सम्भवतः वैरीसिंह द्वितीय तथा उसका पुत्र सीमक थे। सीमक अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था किन्तु चन्देलों ने 954 ई. तक अपनी राज्य-सीमा का मिलसा तक विस्तार कर लिया था जो मालवा की सीमा पर स्थित था। अतः सीमक तथा यशोवर्मन में परस्पर संघर्ष होना स्वाभाविक था। इस संघर्ष में यशोवर्मन को विजय मिली जिसका उल्लेख खजुराहो शिलालेख में किया गया है।

8. **उत्तर भारत तथा कुरुक्षेत्र पर अभियान**—यशोवर्मन ने गुर्जर-प्रतिहारों की दुर्बलता का लाभ उठाते हुए सामन्त के रूप में ही उत्तर भारत पर अभियान कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। खजुराहो शिलालेख के अनुसार यशोवर्मन ने 'कालिंदी और जान्हवी की पुत्रियों (गंगा-यमुना) को क्रमशः अपना क्रीड़ा-सरोवर बनाया। उसे गंगा-यमुना के दोआब क्षेत्र में किसी भी शत्रु से अनादर प्राप्त नहीं हुआ।" इससे प्रतीत होता है कि यशोवर्मन ने जमुना नदी पार कर गंगा के किनारे तक दोआब क्षेत्र में अपने सैनिक शिविर स्थापित कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तथा प्रतिहार सेनाएँ उसका प्रतिरोध न कर सकी। सम्भवतः प्रयाग पर भी उसका अधिकार हो गया।

खजुराहो अभिलेख से ही विदित होता है कि वह 'कुरु रूपी वृक्ष के लिए आंधी के समान था'। अतः यशोवर्मन ने प्रतिहार साम्राज्य के उत्तरी प्रदेश कुरु (कुरुक्षेत्र) पर अभियान कर अपनी धाक जमा दी।

9. **गुर्जर-प्रतिहार प्रदेशों पर अभियान**—खजुराहो अभिलेख में यशोवर्मन को 'गुर्जरों के लिए दाहकारक' कहने का यही तात्पर्य था कि उसने प्रतिहार साम्राज्य

के दोआव प्रदेश में होते हुए उत्तर में कुरु तथा कश्मीर की दक्षिणी सीमा तक सैनिक अभियान किये। प्रयाग तक क्षेत्र अधिकृत कर उसने प्रतिहार राजधानी कन्नौज पर आक्रमण किया तथा उसे लूटा। खजुराहो अभिलेख से यह भी विदित होता है कि यशोवर्मन ने वैकुण्ठ की प्रसिद्ध प्रतिमा 'हयपति' देवपाल से प्राप्त कर एक मन्दिर में प्रस्थापित किया। कीलहार्न हयपति देवपाल को प्रतिहार नरेश देवपाल मानते हैं। डॉ. सत्य प्रकाश देवपाल को अत्य दुर्बल प्रतिहार शासक कहते हैं। उसकी यह दिग्विजय प्रतिहार साम्राज्य की दुर्बलता तथा चन्देल शक्ति की प्रखरता की सूचक थी।

10. **चेदि राज्य पर आक्रमण**—खजुराहो अभिलेख में उल्लेख है कि यशोवर्मन के सामने चेदिराज कांपने लगा था। कालिंजर पर अधिकार करने के बाद यशोवर्मन ने 'निर्भयतापूर्वक अगणित सैन्य समूहवाले चेदिराज को बलपूर्वक हटाया'। चेदि राज्य के तीन शासक—बालहर्ष, युवराजदेव तथा लक्ष्मणराज—यशोवर्मन के समकालीन थे। डॉ. रे का मत है कि चेदिराज बालहर्ष तथा बाद में युवराजदेव एवं लक्ष्मणराज का यशोवर्मन से पराजित होना मानते हैं। कीलहार्न चेदिराज का समीकरण युवराज से करते हैं जिसका समर्थन डॉ. मीराशी भी करते हैं। डॉ. मनराल तथा मित्तल भी युवराजदेव प्रथम को ही यशोवर्मन से पराजित चेदिराज मानते हैं क्योंकि कलचुरि अभिलेख तथा राजेश्वर के संस्कृत नाटक 'विद्धशालभंजिका' से युवराजदेव के पास एक विशाल सेना होने की पुष्टि होती है जिसका उल्लेख खजुराहो लेख में हुआ है।

यशोवर्मन की उपलब्धियों का मूल्यांकन

यशोवर्मन एक वीर, साहसी तथा महत्वाकांक्षी शासक था। उसने अनेक सफल सैनिक अभियानों से अपनी राज्य सीमा का विस्तार किया तथा वह नाममात्र को प्रतिहारों का सामन्त होते हुए भी स्वयं सम्राट बन बैठा। डॉ. एन. एस. बोस[1] ने उचित ही कहा है कि—"अपने पिता हर्ष द्वारा स्थापित नींव पर यशोवर्मन ने एक शक्तिशाली सैनिक राज्य का निर्माण किया। प्रतिहार अनेक आघात सहकर अपने पतन के कगार पर खड़े थे। कलचुरि पराजित स्थिति में थे तथा राष्ट्रकूटों का अवसान भी आरम्भ हो गया था। चन्देल वस्तुत: स्वाधीन थे तथा उन्होंने स्वयं को उत्तरी भारत की सबसे शक्तिशाली शक्तियों में परिवर्तित कर लिया था। वे अपने इतिहास के महानतम तथा सर्वोत्कृष्ट काल में प्रविष्ट होने को तैयार थे।"

यशोवर्मन एक महान विजेता तथा योद्धा ही नहीं था अपितु वह प्रजाहितकारी शासक भी था। अभिलेखों में उसे 'प्रजा के सन्तोष के लिए पैदा हुआ' कहा गया है। वह एक महान निर्माता भी था। भारतीय वास्तुकला के प्रसिद्ध खजुराहो मन्दिरों का निर्माण उसी के समय आरम्भ हुआ था। देवपाल से प्राप्त वैकुण्ठ

1. *Dr. Bose N. S.* : History of Chandellas (p. 38)

(विष्णु) की मूर्ति को उसने अपने चतुर्भुज मन्दिर में प्रस्थापित किया था जिसके 'स्वर्ण शिखर आकाश को दीप्तिमान करते थे तथा स्वर्ग के निवासी भी उससे आकृष्ट होते थे।' उसने 'तड़ागार्णवम' नामक सरोवर का निर्माण कराया। वह धर्मनिष्ठ तथा धर्मसहिष्णु शासक था। अभिलेखों में उसे 'भयभीतों को प्राण देने वाला, वेदविहित, सामाजिक और धार्मिक विधान की रक्षा करने वाला एवं गोद्विजों को प्रसन्न करने वाला' कहा गया है। उसकी कर्त्तव्यपरायणता की सभी प्रशंसा करते थे। इस प्रकार यशोवर्मन चन्देल वंश का एक महत्वाकांक्षी राजा था।

(8) धंग (950–1008 ई०)

राज्यारोहण

यशोवर्मन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र धंग गद्दी पर बैठा। धंग की माता का नाम पुष्पादेवी था। ये तथ्य धंग के शिलालेख से विदित होते हैं। चूंकि धंग का प्रथम उपलब्ध शिलालेख खजुराहो मे 954 ई. का है अत धंग के राज्यारोहण की तिथि इससे पूर्व की लगभग 950 ई. थी। इस अभिलेख में धंग की प्रशंसा में लिखा गया है कि उसने पृथ्वी पर उपने सुदृढ़ हाथों से सत्ता स्थापित की। धंग को 'कालिंजराधिपति' के विरुद से विभूषित किया गया है। खजुराहो शिलालेख (954 ई.) के अनुसार चन्देल राज्य की सीमा 'कालिंजर तथा मालव नदी के तट पर स्थित भास्वत (भिल्सा) तक थी, यहाँ से भी कालिंदी (यमुना) नदी तक तथा वहाँ से चेदि राज्य की सीमा तक तथा गोपपर्वत (ग्वालियर) तक विस्तीर्ण थी।" इन प्रदेशों में से ग्वालियर दुर्ग तथा भिलसा की विजय धंग की उपलब्धि थी किन्तु अन्य प्रदेश उसे विरासत में मिले थे।

दुधाई शिलालेख से यशोवर्मन एक दूसरे पुत्र कृष्णप का पता चलता है। कृष्णप के पुत्र देवलब्धि द्वारा एक मन्दिर का निर्माण हुआ। झाँसी अभिलेख में कन्हप नृप का चन्देल वंश में उल्लेख है। डॉ. चक्रवर्ती इस कन्हप का समीकरण दुधाई अभिलेख के कृष्णप से करते हैं। डॉ. बोस का मत है कि वह सम्भवत: धंग का छोटा भाई था जो झाँसी के निकट किसी जिले का प्रभारी शासक था। धंग चन्देल वंश का सबसे प्रतापी राजा हुआ जिसने प्रतिहारों से स्वाधीनता प्राप्त की।

धंग की विजयें

(1) प्रतिहारों से स्वाधीनता—डॉ० बोस का मत है कि धंग के राज्यकाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना प्रतिहारों से समस्त सम्बन्धों का विच्छेद करना था।[1] ग्वालियर विजय के सन्दर्भ में प्रतिहारों से धंग के स्वतन्त्र होने सम्बन्धी तथ्य प्रकट होते हैं। खजुराहो अभिलेख (954 ई०) में अंकित है "जबकि प्रतापी विनायकपाल देव पृथ्वीपालक था तब पृथ्वी पर शत्रुओं का अधिकार नहीं हो सका, ये शत्रु नष्ट

1. पूर्वोक्त (पृ० 39–40)

कर दिये गये।" इस पंक्ति के विनायकपाल के समीकरण पर इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वान विनायकपाल को प्रतिहार शासक सिद्ध करते हैं और धंग को उसका सामंत बतलाते हैं। प्रतापगढ़ शिलालेख के अनुसार विनायकपाल का उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय 946 ई० में राज्य कर रहा था। इसके अनुसार विनायकपाल का राज्यकाल 946 ई० से पूर्व होना चाहिए जो खजुराहो अभिलेख की तिथि 954 ई० से पूर्व की है। डॉ० आर० सी० मजूमदार इस समस्या का समाधान इस सम्भावना से करते हैं कि यह खजुराहो अभिलेख यशोवर्मन के समय लिखा गया किन्तु बाद में धंग के समय पूरा हुआ। डॉ० त्रिपाठी इस मत की आलोचना करते हुए कहते हैं कि यदि डॉ० मजूमदार की सम्भावना को मान लिया जाये तो यह कैसे सम्भव है कि एक मृत शासक को उसके उत्तराधिकारी के अभिलेख में पृथ्वीपालक कहा जाये। डॉ० रे ने भी इस समस्या का समाधान खोजा किन्तु वह भी प्रमाणों से पुष्ट नहीं होता।

डॉ० बोस[1] का मत अधिक समीचीन जान पड़ता है। उनका मत है कि विनायकपाल को प्रतिहार शासक सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है। वस्तुतः विनायकपाल स्वयं धंग का ही दूसरा नाम है। जिस प्रकार अन्य कुछ चंदेल राजाओं के दो नाम अभिलेखों में मिलते हैं जैसे नन्नुक का दूसरा नाम 'चंद्रदेव' तथा यशोवर्मन का दूसरा नाम 'लक्षवर्मभ' मिलता है, उसी प्रकार धंग का दूसरा नाम विनायकपाल था। इसकी पुष्टि खजुराहो अभिलेख (954 ई०) के ही 44 व 45 श्लोक से होती है जिसमें धंग को 'पृथ्वी पर बाहुबल से शासन करता हुआ' दिखाया गया है। अतः धंग ही विनायकपाल था। डॉ० सत्यप्रकाश[2] डॉ० बोस के इस मत की सत्यता की सम्भावना प्रकट करते हैं किन्तु इसे संदेहों से परे नहीं मानते।

अतः धंग ने प्रतिहारों के सामन्त की स्थिति से स्वतन्त्र होकर एक स्वाधीन शासक के रूप में अपनी सत्ता स्थापित की जो उसकी महान् उपलब्धि थी।

2. **ग्वालियर विजय**—धंग ने साम्राज्य विस्तार हेतु जो महत्वपूर्ण विजय की, वह ग्वालियर पर अधिकार करना था। ग्वालियर अभिलेख (1036 ई०) से विदित होता है कि वज्रदामन नामक कच्छपघात राजा ने 'गाधिनगर' (कन्नौज) की बढ़ती हुई शक्ति का दमन किया और उसकी अप्रतिवार्य एवं शक्तिशाली भुजाओं द्वारा विजित गोपादि (ग्वालियर) के दुर्ग में उसके नगाड़ों की प्रतिध्वनि ने उसका वीर व्रत पूरा किया।" डॉ० त्रिपाठी और डॉ० एस० के० मित्र के मतानुसार वज्रदामन धंग का सामन्त था और ग्वालियर विजय में धंग ने अपने इस सामन्त की सहायता की थी।

प्रतिहार विनायकपाल (महीपाल प्रथम) के 942 ई० के रखेत्र अभिलेख से विदित होता है कि इस समय ग्वालियर पर प्रतिहारों का अधिकार था। बाद में

1. पूर्वोक्त (पृ० 42-43)
2. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 194–195)

977 ई० के पूर्व दुर्वल प्रतिहार शासकों के समय ग्वालियर दुर्ग प्रतिहारों के हाथ से निकल गया। डॉ० मजूमदार का मत है कि पहले धंग ने प्रतिहारों से ग्वालियर दुर्ग जीता जिसे वाद में वज्रदामन ने छीन लिया। वज्रदामन ने धंग और उसके सहायक प्रतिहार नरेश दोनों को पराजित कर ग्वालियर पर अधिकार किया था। अतः प्रतिहारों की इस दुर्वलता तथा इस अपमानजनक पराजय के कारण धंग ने प्रतिहारों की अधीनता से मुक्ति प्राप्त करली। किन्तु इस मत की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से नहीं होती।

दूसरा मत ही समीचीन जान पड़ता है जिसके अनुसार वज्रदामन ने गाधिनराधिपति (कन्नौज के प्रतिहार नरेश) को धंग के सामन्त के रूप में ही हराया। इसका दूसरा साक्ष्य खजुराहो अभिलेख (954 ई०) के अनुसार धंग को गोपगिरि (अर्थात गोपद्रि या ग्वालियर) तक शासन करता हुआ वतलाया गया है। इसकी पुष्टि मदनवर्मन के मऊ अभिलेख से होती है जिसके अनुसार धंग ने "निखिल नृप (सम्राट) कान्यकुब्ज नरेन्द्र को समर भूमि में जीतकर स्वयं उच्च सम्राट पद प्राप्त किया।" कछवाहों के अभिलेखों से भी प्रकट होता है कि कच्छपघात (कछवाहे) चंदेलों के अधीन सामन्त थे। कच्छपघात विक्रमसिंह के दूवकुण्ड अभिलेख (1088 ई०) में अंकित है कि उसके पूर्वज अर्जुन ने विद्याधर की सेवा में रत होकर कान्यकुब्ज नरेश राज्यपाल को भयंकर युद्ध में मार डाला।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धंग ने ही कच्छपघातों को अपना सामन्त वना कर ग्वालियर पर अधिकार किया।

3. कालिंजर विजय—यद्यपि धंग के पिता यशोवर्मन ने ही कालिंजर पर विजय प्राप्त कर अधिकार किया था किन्तु यह स्थायी नहीं था। कालिंजर के सामरिक एवं राजनैतिक महत्त्व के कारण धंग ने इसे विजित कर स्थायी अधिकार किया। चंदेल अभिलेख (998 ई०) में धंग को "कालिंजराधिपति" कहना इस तथ्य को प्रमाणित करता है। धंग की दिग्विजय सम्बन्धी अभियानों का केन्द्र सम्भवतः कालिंजर ही था।

4. प्रयाग पर अधिकार—धंग के पिता यशोवर्मन ने प्रयाग तक अपनी राज्य-सीमा उत्तर-पूर्वी दिशा में वढ़ाली थी। धंग ने प्रयाग पर अधिकार वनाये रखा जिसका प्रमाण एक शिलालेख से मिलता है जिसके अनुसार धंग ने 100 वर्ष की आयु में प्रयाग के संगम में डूबकर मृत्यु को वरण किया। अतः प्रतिहारों के इस प्रदेश पर चंदेलों का अधिकार स्थायी हो गया।

5. काशी पर अधिकार—हमीरपुर के नन्यौर ग्राम से प्राप्त एक अभिलेख (998 ई०) से विदित होता है कि उस वर्ष चन्द्रग्रहण के अवसर पर धंग ने भट्टयशोधर ब्राह्मण को काशी में मुलि नामक ग्राम का दान किया। इससे स्पष्ट है कि प्रयाग से आगे पूर्वोत्तर दिशा में धंग ने अपने राज्य का काशी तक विस्तार किया था।

6. धंग की दिग्विजय—खजुराहो अभिलेख (1002 ई०) में उत्कीर्ण है कि "कौशल, क्रथ, सिंहल (लंका) तथा कुन्तल के नरेश धंग की आज्ञाओं को शिरोधार्य करते थे तथा काँची, आन्ध्र, राढ़ और अग की रानियाँ धंग के कारागृह में वन्दी थीं।" कनिंघम, डॉ० वोस, श्री शिशिरकुमार मित्र आदि विद्वानों के अनुसार इन विजयों का उल्लेख अतिशयोक्तिपूर्ण तथा हास्यास्पद है क्योंकि धंग निस्संदेह एक शक्तिशाली नरेश था किन्तु दक्षिण भारत की दिग्विजय करना सम्भव प्रतीत नहीं होता। कम से कम लंका (सिंहल) को अधीन करना तो केवल एक गर्वोक्ति ही है। डॉ० विशुद्धानन्द पाठक का मत है कि सम्भवत: धंग की शक्ति से आतंकित हो इन राज्यों ने चंदेलों से दौत्य सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर लिए थे और सम्भवत: आन्ध्र, काँची, राढ़ और अंग पर छापे के रूप में वंग ने सैनिक अभियान किये थे। डॉ. वोस[1] की भी यही मान्यता है।

7. मुसलमानों से संघर्ष—कीतिवर्तन के महरेला अभिलेख में अंकित है—"धंग पृथ्वी के लिये वरदान था। शत्रुओं को तोड़ने में समर्थ तथा पृथ्वी के लिये मंगलकारक श्री धंग ने अपनी भुजाओं की शक्ति से पृथ्वी के लिये बहुत बड़े भार बने हुए अपने समकक्ष तथा अधिक शक्तिशाली शत्रुओं (हमवीर) का नाश किया।" इस अभिलेख से धंग के मुसलमानों से सम्वन्ध की जानकारी मिलती है। हमवीर (हम्मीर) शब्द अरवी के शब्द 'अमीर' (सेनापति या नेता) का अपभ्रंश है। इस शब्द का प्रयोग मुहम्मद बिन साम (मुहम्मद गौरी) की स्वर्ण मुद्राओं पर भी संस्कृत में किया गया है। श्री बिग्स के अनुसार 1000 से 1300 ई० तक हमवीर या हम्मीर शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमान शासक के लिये करते थे। महोवा शिलालेख का हमवीर भी धंग का समकालिक मुस्लिम शासक था। अधिकांश इतिहासकार हमवीर का समीकरण सुबुक्तगीन (976–997 ई०) से करते हैं क्योंकि इतिहासकार फरिश्ता का कथन है कि भटिण्डा के शाही नरेश जयपाल की सहायता भारतीय राजाओं के संघ ने की थी जिसमें दिल्ली, कालिंजर, अजमेर और कन्नौज के राजा भी सम्मिलित थे। किन्तु यह मत इस पर आधारित है कि धंग की 1002 ई० से पूर्व मृत्यु हो गई थी। डॉ० रे धंग का समकालीन मुस्लिम शासक मुहम्मद गौरी को वतलाते हैं क्योंकि वे फरिश्ता के अतिरिक्त अन्य इतिहासकारों—उत्वी, इब्न-उल-अथिर व निजामुद्दीन द्वारा धंग के समकालीन किसी मुस्लिम शासक का उल्लेख न करना चाहते हों।

वास्तव में धंग 100 वर्ष तक जीवित रहा अर्थात वह 1002 ई० के बाद भी जीवित था। डॉ० रे का कथन है कि 1008 ई० के बाद शाही नरेश आनन्दपाल की मृत्यु के साथ उसका वंश समाप्त हो गया। इसके बाद महमूद गजनवी ने पंजाब पर अधिकार कर गंगा की घाटी में आक्रमण की योजना बनाई। अतः महोवा अभिलेख में इसीलिये महमूद गजनवी को संभवतः हमवीर तथा पृथ्वी पर भार-

1. *Dr. Bose N. S.* : History of the Chandellas (p. 47)

स्वरूप वतलाया गया है। डॉ० रे के अनुसार धंग व महमूद गजनवी का युद्ध हुआ किन्तु धंग पराजित हुआ जिसका उल्लेख चंदेल अभिलेखों में नहीं किया गया।

डॉ० वोस[1] डॉ० रे के मत से सहमत होते हुए कहते हैं कि फरिश्ता के कथन को पूर्णत: अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फरिश्ता ने लिखा है कि कालिंजर नरेश धंग ने सुल्तान महमूद के विरुद्ध जयपाल की सहायता की। धंग के दीर्घकालीन शासन के आधार पर डॉ० वोस की मान्यता है कि धंग के समकालिक मुस्लिम नरेश सुवुक्तगीन तथा सुल्तान महमूद दोनों ही थे। धंग ने मुसलमानों के विरुद्ध शाही नरेश जयपाल तथा आनन्दपाल दोनों की ही सहायता की थी। अत: देशरक्षा की दृष्टि से मुसलमानों का सामना करने के लिये भारतीय राजाओं के संघ में सम्मिलित होने का धंग का कार्य प्रशंसनीय था। डॉ० वी० एन० पाठक[2] का मत है कि महोवा अभिलेख में धंग की तुलना हम्मीर से की गई है।

धंग की साम्राज्य-सीमा—धंग की उपरोक्त सैनिक उपलब्धियों से यह स्पष्ट होता है कि उसने अपने पिता यशोवर्मन से विरासत में प्राप्त राज्य को सुसंगठित कर सुदृढ़ ही नहीं किया वल्कि उसने प्रतिहारों के अधीन सामन्त स्थिति से स्वयं को मुक्त कर स्वाधीन शासक घोषित किया और अपने सफल सैनिक अभियानों से साम्राज्य का विस्तार किया। उसने उत्तर, दक्षिण तथा पूर्व के सुदूर राज्यों पर भी अभियान किया जिसे दिग्विजय की संज्ञा दी जा सकती है। इन अभियानों से उसका प्रभाव क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया और उसके सफल नेतृत्व में चन्देल उत्तरी भारत की सर्वोत्कृष्ट शक्ति वन गये। उसकी साम्राज्य-सीमा उत्तर में यमुना नदी से लेकर दक्षिण मे विध्याचल पर्वत तथा मालवा नदी के तट पर स्थित भिल्सा तक् विस्तृत थी। दक्षिण-पश्चिम में वेतवा नदी तथा पश्चिम में ग्वालियर तथा ललितपुर जिले के कुछ भागो से लगाकर पूर्व में रींवा तथा सोन नदी के तट तक विस्तीर्ण थी। प्रयाग, काशी, चित्रकूट आदि धंग के साम्राज्य में सम्मिलित थे। लगभग 58 वर्ष तक शासन करने के वाद 100 वर्ष की आयु में धंग ने गंगा में जल समाधि लेकर प्राण त्याग दिये।

धंग की उपलब्धियों का मूल्यांकन

धंग की विजयों से चंदेल राज्य का विस्तार तो हुआ ही किन्तु उसके सैनिक अभियानों से चंदेल शक्ति का प्रभाव सुदूर दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम के राज्यों तक पड़ा। डॉ० आर० सी० मजूमदार[3] ने गुर्जर-प्रतिहारों की अधीनता से मुक्त होकर स्वाधीनता की घोषणा करना धंग की सर्वोत्कृष्ट राजनैतिक सफलता मानी है। उनका कथन है कि, "चंदेल वंश का धंग प्रथम स्वाधीन शासक था। उसने

1. पूर्वोक्त (पृ० 49)
2. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का इतिहास (पृष्ठ 399)
2. *Dr. R. C. Majumdar* : The Age of Imperial Kanauj (p. 87)

'महाराजाधिराज' का विरुद धारण किया जो उसके स्वतन्त्र प्रभुतासंपन्न शासक होने का द्योतक है।" धंग के मऊ शिलालेख में यह उल्लेख किया जाना उचित है कि धंग ने शक्तिशाली साम्राज्य का निर्माण किया। चंदेल शक्ति ने साम्राज्यवादी नीति अपनाकर उत्तरी भारत में गुर्जर प्रतिहारों का स्थान अपना लिया जिसका श्रेय धंग को है। डॉ० एन० एस० बोस[1] की भी मान्यता है कि, "निस्संदेह साम्राज्यवाद का प्रतिहारों से विलग हो कर चंदेल धंग के कन्धों पर आ पड़ा था।"

धंग केवल साम्राज्य निर्माता तथा रणकुशल सेना नायक ही नहीं था अपितु वह कला तथा स्थापत्य का महान् संरक्षक भी था। धंग के अभिलेख तथा खजुराहो में निर्मित विश्वविख्यात मंदिर इस बात का प्रमाण हैं कि धंग निरंकुश शासक न हो कर धर्म, कला तथा संस्कृति का संरक्षक तथा प्रसारक था। खजुराहो के मंदिरों की प्रशंसा करते हुए डॉ० स्मिथ ने कहा है, "खजुराहो के भव्य मंदिरों के रूप में मंदिर-स्थापत्य कला की उत्तरी नागर शैली यशोवर्मन तथा धंग के शासन-काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी।" खजुराहो की स्थापत्य कला का विस्तार से विवेचन इस अध्याय के अंत में किया जायेगा।

धंग हिन्दू धर्म का प्रबल समर्थक तथा हिन्दू देवता वासुदेव, शिव, भारती (सरस्वती), गणेश आदि का उपासक था जिनकी स्तुति में अनेक श्लोक उसके शिलालेखों में उपलब्ध हैं। शिव उसके इष्ट देव थे। ब्राह्मणों को कर मुक्त भूमि दान देकर तथा उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त कर उनके प्रति उचित सम्मान प्रकट किया। यशोधर भट्ट धंग का धर्माधिकारी (मुख्य न्यायाधीश) तथा प्रभास उसका मुख्यमंत्री था। धंग ने 'तुलापुरुषदान' नामक धार्मिक दान-समारोह आयोजित किया था। अपने पिता यशोवर्मन द्वारा आरम्भ मंदिर (जिसमें वैकुण्ठ की मूर्ति प्रस्थापित की गई थी) का निर्माण पूरा कराया और उसमें मरकत मणि तथा प्रस्तर से बने शिव-लिंगों की स्थापना भी की। धंग अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना रखता था। खजुराहो में निर्मित जैन मंदिर इस बात का प्रमाण है। खजुराहो का जिननाथ का मंदिर प्रख्यात मंदिरों में है। धंग की धर्मसहिष्णुता का उल्लेख उसके खजुराहो स्थित वैद्यनाथ मंदिर के शिलालेख में किया गया है।

धंग की धर्मनिष्ठा का ज्वलंत प्रमाण उसके द्वारा 100 वर्ष की आयु के बाद गंगा-यमुना के संगम स्थल प्रयाग में "पवित्र जल में निमीलित नेत्रों से भगवान शिव की हृदय में जय करते हुए अपना शरीर-त्याग कर निवृत्ति प्राप्त" करने से मिलता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि धंग एक कुशल सेनानायक, महत्वाकांक्षी, साम्राज्यवादी, धर्मनिष्ठ तथा कलाप्रिय शासक था। उसके समय चंदेल वंश अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। अतः डॉ० बोस[2] का यह कथन उचित है

1. *Dr. Bose N. S.* : History of Chandellas (p. 50)
2. पूर्वोक्त (पृ. 50)

कि, "धंग अत्यन्त शक्तिशाली शासक था तथा अपने समय का महानतम् शासक था। मध्य भारत में उसने अपनी स्थिति को दृढ़ता से सुव्यवस्थित कर लिया था तथा उसके साम्राज्य पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण में स्थित अन्य राज्य उसकी शक्ति का लोहा मानते थे। वह एक साम्राज्य का निर्माता ही नहीं था बल्कि वह कला तथा स्थापत्य का महान् संरक्षक भी था।" इस प्रकार चन्देल वंश के इतिहास में धंग के राज्यकाल का विशेष महत्व है।

(9) गण्ड (1008–1017 ई०)

धंग की मृत्यु के बाद 1008 ई० में उसका पुत्र गण्ड राजगद्दी पर आसीन हुआ। गण्ड का कोई शिलालेख प्राप्त नहीं हुआ है यद्यपि परवर्ती चन्देल शासकों के अभिलेखों में उसकी परम्परागत प्रशंसा की गई है। कीर्तिमान के शिलालेख में अंकित है कि, "धंग से पृथ्वी का अलंकरण प्रतापी गण्ड उत्पन्न हुआ जो एक अनुपम वीर था और जिसकी भुजाओं पर समस्त पृथ्वी अवस्थित थी।" एक दूसरे शिलालेख में उत्कीर्ण है—"गण्ड पृथ्वी की चारों दिशाओं पर शासन करता था। वह अपने उन शत्रुओं को विनिष्ट करने में कुशल था जिनकी शक्तिशाली भुजाएँ गर्व के उन्माद से आतंकपूर्ण थी।"

इन विवरणों में अतिशयोक्ति का तत्त्व अधिक है किन्तु तथ्यात्मक कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती। गण्ड सम्भवतः अपने पिता की 100 वर्ष की आयु में मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठने के कारण वृद्ध हो चुका था और उसका अल्प राज्यकाल 9 वर्ष के लगभग रहा होगा। गण्ड के पुत्र विद्याधर की प्रथम ज्ञात तिथि 1019 ई० है जिसके लगभग दो वर्ष पूर्व तक गण्ड ने शासन किया होगा।

कुछ विद्वान् गण्ड का समीकरण मुसलमान इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित उस चन्देल शासक 'नन्द' से करते हैं जिसका युद्ध 1019 ई० तथा 1022 ई० में सुल्तान महमूद गजनवी से हुआ था किन्तु जैसा कि आगे विवेचन किया जायेगा कि यह मान्यता गलत है और सुल्तान महमूद से युद्ध करने वाला चन्देल शासक गण्ड का पुत्र विद्याधर ही था।

(10) विद्याधर (1017–1029 ई०)

राज्यारोहण

गण्ड के अल्पकालीन शासन के बाद उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र विद्याधर शासक बना। कीर्तिवर्मन के एक शिलालेख में अंकित है कि, "गण्ड के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विद्याधर ने अपने शत्रुओं के यश के पुष्प छीन लिए थे" अर्थात् विद्याधर ने अपने शत्रुओं का मान-मर्दन किया। डॉ० बोस[1] का मत है कि, "विद्याधर अपने समय का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था तथा उसका राज्य-काल चन्देलों की शक्ति की श्रेष्ठता का चरमोत्कर्ष था।" दुर्भाग्य से विद्याधर के समय का कोई

1. पूर्वोक्त (पृ०51)

अभिलेख उपलब्ध नहीं हुआ है। उसके विषय में जो भी जानकारी मिलती है वह मुस्लिम इतिहासकारों—इब्न-उल-अथीर, उत्वी, गर्दिजी, निजामुद्दीन तथा फरिश्ता—और परवर्ती चन्देल शासकों तथा तत्कालीन कच्छपाघात तथा कलचुरी शासकों के अभिलेखों से प्राप्त होती है। विद्याधर के राज्य-काल की प्रमुख घटना महमूद गजनवी के साथ हुआ उसका संघर्ष था जिसका विवरण मुस्लिम इतिहासकारों ने विस्तार से दिया है। इन इतिहासकारों ने विद्याधर का उल्लेख 'नन्द' तथा 'बीदा' नाम से किया है।

विद्याधर का मुसलमानों से संघर्ष

विद्याधर का मुसलमानों से संघर्ष का कारण विद्याधर द्वारा कन्नौज के प्रतिहार नरेश राज्यपाल पर आक्रमण करना था। अतः राज्यपाल पर आक्रमण की परिस्थितियों का विवेचन किया जाना आवश्यक है।

राज्यपाल पर आक्रमण—दूसरे अध्याय में प्रतिहार नरेश राज्यपाल पर 1018 ई० में महमूद गजनवी के आक्रमण के विषय में हम अध्ययन कर चुके हैं। महमूद गजनवी ने वरन् (बुलन्दशहर) तथा महावन (मथुरा) पर अधिकार करने के बाद कन्नौज पर आक्रमण किया था। कन्नौज नरेश राज्यपाल बिना लड़े ही भयभीत होकर गंगा पार कर बारी भाग गया था। महमूद लूटपाट करने के बाद गजनी वापस लौट गया।

राज्यपाल के इस कायरतापूर्ण व्यवहार पर उत्तरी भारत के राजपूत राजा उसके विरुद्ध हो गये। चन्देल शासक गण्ड ने राज्यपाल विरोधी संघ का निर्माण किया।[1] गण्ड ने इसका नेतृत्व अपने युवराज विद्याधर को सौपा। दूवकुण्ड अभिलेख से विदित होता है कि, "विद्याधर कच्छपघात सामन्त अर्जुन ने अपनी बाण वर्षा से राज्यपाल को मार डाला।" कीलहार्न अर्जुन का राज्यकाल (1003 से 1033 ई०) मानते हैं। वे इस शिलालेख के विद्याधर को समकालिक चन्देल नरेश विद्याधर तथा राज्यपाल को प्रतिहार नरेश मानते हैं। झूँसी ताम्रपत्र (1027 ई०) में राज्यपाल को त्रिलोचनपाल का पिता बतलाया गया है। इन तथ्यों को सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं। इसकी पुष्टि महोबा शिलालेख से होती है जिसके अनुसार, "विद्याधर ने कन्नौज के राजा को मार डाला।"

मुस्लिम इतिहासकारों ने उपरोक्त तथ्य का विस्तार उल्लेख करते हुए महमूद गजनवी द्वारा विद्याधर पर आक्रमण का कारण बतलाया है। इब्न-उल-अथीर का कथन है कि, "1019 ई० में यामिन-उल-दौलाह (महमूद गजनवी) ने भारत की ओर अभियान किया तथा उसने पूर्व की अपेक्षा विशाल तैयारी की थी। इस तैयारी का कारण यह था कि जब उसने कन्नौज जीत लिया तो इसका शासक राय भाग गया और महमूद गजनी लौट गया। बीदा जिस पर आक्रमण करना था, वह अपनी

1. Elliot : History of India (p. 463 Footnote 1)

राज्यसीमा की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा शासक था और उसके पास सबसे विशाल सेना थी तथा जिसका राज्य कजुराह (खजुराहो) कहलाता था। बीदा ने कन्नौज के राय राज्यपाल के पास दूत भेजकर मुसलमानों का सामना न कर भाग जाना तथा अपने राज्य का उनके समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए उसे प्रतारणा दी। राज्यपाल तथा बीदा के मध्य काफी समय तक संघर्ष हुआ जो युद्ध में बदल गया और चूंकि वे एक दूसरे से युद्ध के लिए तैयार थे, वे आगे बढ़ कर युद्ध करने लगे। इस युद्ध में राज्यपाल मारा गया और उसकी अधिकांश सेना नष्ट हो गई। इस सफलता से बीदा की धृष्ठता और विद्रोही भावना प्रबल हो गई और उसका यश समस्त भारत में फैल गया। तब भारत के एक शासक ने, जिसके राज्य पर यामिन-उद-दौला ने उसकी सेना को भगा कर अधिकार कर लिया था, बीदा के पास जाकर उसकी सेवा कर उसका संरक्षण प्राप्त किया। बीदा ने उसे उसका राज्य वापस दिलाने तथा उसकी रक्षा करने का वचन दिया किन्तु बीदा ने शीत-ऋतु तथा वर्षा आने का बहाना बनाया। यह समाचार यामिन-उद-दौला के पास पहुँचा तो उसे चिन्ता हुई और उसने अभियान की तैयारी की।[1]

दूसरे मुस्लिम इतिहासकार निजामुद्दीन, गर्दिजी तथा फरिश्ता ने चन्देल शासक का नाम 'बीदा' के स्थान पर 'नन्द' लिखा है। चूंकि 'नन्द' नाम का कोई चन्देल शासक विद्याधर का पूर्वज नहीं था, कुछ इतिहासकारों का मत है कि सम्भवतः गण्ड की जगह गलती से 'नन्द' लिख दिया गया है। किन्तु कनिंघम का मत है कि— "तत्कालीन फारसी लिपि का शब्द नन्द सरलता से गण्ड गलत पढ़ा जा सकता है।" डॉ० स्मिथ की मान्यता है कि 'नन्द' फारसी शब्द में एक मात्रा की गलती के कारण 'गण्ड' नहीं पढ़ा जा सकता। वस्तुतः उस समय गण्ड जीवित था उसका युवराज विद्याधर था। डॉ० मजूमदार, डॉ० त्रिपाठी तथा श्री वैद्य भी नन्द का समीकरण गण्ड से करते हैं। किन्तु डॉ० रे इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि इब्न-उल-अथीर महमूद गजनवी का समकालीन होने के कारण अन्य इतिहासकारों की अपेक्षा विश्वसनीय है, दूसरा तर्क यह है कि फारसी अक्षर 'बीदा' को 'गण्ड' की अपेक्षा 'नन्द' के अपभ्रंश रूप में अधिक सरलता से पढ़ा जा सकता है, तीसरा तर्क है कि गण्ड इतना शक्तिशाली शासक नहीं था कि वह महमूद गजनवी का दृढ़ता से सामना कर सकता तथा सबसे सशक्त प्रमाण भारतीय अभिलेखों में यह मिलता है कि विद्याधर ही वह चन्देल शासक था जिसके द्वारा राज्यपाल की हत्या किये जाने के कारण महमूद गजनवी ने उस पर आक्रमण किया। डॉ० रे के मत की पुष्टि 'तबकात-इ-नासिरी' से होती है जिसमें इब्न-उल-अथीर की भाँति महमूद गजनवी का विरोधी हिन्दू शासक बीदा को ही माना गया है। इस विवाद के विषय में

1. *Dr. H. C. Ray* : Dynastic History of Northern India (p. 604–605)

डॉ० एन० एस० बोस[1] की मान्यता भी यही है—"महमूद गजनवी के आक्रमणों के समय गण्ड जीवित था या नहीं, यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि विद्याधर ही वह शासक था जिसके साथ महमूद का वस्तुतः युद्ध हुआ। यह हो सकता है कि मुस्लिम इतिहासकार अपने विवरण संकलित करते समय इन दो नामों में विभेद न कर सके हों।"

महमूद गजनवी का कन्नौज के चन्देलों पर प्रथम आक्रमण (1019 ई०)
(The first Invasion of Mahmud Gazanwi on Chandelas of Kanauj 1019 A.D.)

उपरोक्त विवरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि चन्देल शासक विद्याधर (मुस्लिम इतिहासकारों का 'बीदा' या 'नन्द') द्वारा कन्नौज नरेश राज्यपाल को मार कर त्रिलोचनपाल को वहाँ का शासक बनाने के कारण महमूद गजनवी ने विद्याधर को दण्डित करने तथा कालिंजर को लूटने के उद्देश्य से 1019 ई० में पुनः भारत पर आक्रमण किया। इब्न-उल-अथीर के अनुसार महमूद ने गजनी से प्रस्थान किया तथा मार्ग में अफगानों को दण्डित करता हुआ वह गंगा पार कर आगे बढ़ा। जब उसने यह सुना कि शासक परुजपाल (त्रिलोचनपाल) उसके भय से भाग कर बीदा (विद्याधर) के संरक्षण में चला गया है तो महमूद ने उसका पीछा किया। परुजपाल की सेना को महमूद ने पराजित किया। परुजपाल के सन्धि-प्रस्ताव पर महमूद ने इस शर्त पर विचार करना स्वीकार किया कि वह इस्लाम धर्म अंगीकार कर ले। परुजपाल भाग गया किन्तु हिन्दुओं ने ही उसकी हत्या कर दी। डॉ० रे तथा डॉ० स्मिथ परुजपाल का समीकरण प्रतिहार राज्यपाल के पुत्र त्रिलोचनपाल से करते हैं। फरिश्ता के आधार पर डॉ० बोस त्रिलोचनपाल को शाही शासक आनन्दपाल का पुत्र मानते हैं।

इसके पश्चात् महमूद ने बारी (बुलन्दशहर) को लूटा तथा बीदा का पीछा करने के लिए आगे बढ़ा। बीदा (विद्याधर) एक नदी के तट पर महमूद का सामना करने को तैयार पाया गया। अथीर के शब्दों में—"यामिन-उद-दौलाह (महमूद) तथा बीदा (विद्याधर) दोनों ने अपनी कुछ सेना एक दूसरे का सामना करने के लिए आगे भेजी। दोनों पक्ष की सेनाओं को कुमुक प्राप्त होने पर युद्ध प्रचण्ड हो गया। अन्ततः रात्रि को युद्ध बन्द हो गया। दूसरे दिन प्रातः जब महमूद ने हिन्दू सेना को रण क्षेत्र से भागा हुआ पाया तो उसने चन्देल शिविर को लूट कर हिन्दू सेना का पीछा किया। जंगलों में हिन्दू सेना को पकड़ कर उसका अधिकांश भाग मार डाला गया तथा बन्दी बना लिया गया किन्तु बीदा अकेला ही भाग निकलने में सफल हो गया और यामीन-उद-दौलाह गजनी वापस आ गया।"

इतिहासकार निजामुद्दीन ने महमूद के आक्रमण का कारण अथीर के समान

1. *Dr. Bose N. S.* : History of the Chandellas (P. 53–54)

ही दिया है किन्तु चन्देलों पर अभियान करते समय मार्ग में महमूद से पराजित राजा का नाम 'नारो जैपाल' (त्रिलोचनपाल) दिया है। विद्याधर तथा महमूद के मध्य हुए संघर्ष का विवरण निजामुद्दीन ने भिन्न रूप में किया है। उसका कथन है कि, "नन्द ने युद्ध की तैयारी की और विशाल सेना एकत्रित कर ली। उसकी सेना में 36000 घुड़सवार, 145000 पैदल सैनिक तथा 390 हाथी थे। जब सुल्तान ने नन्द की सेना के समक्ष अपना मोर्चा जमा लिया तो उसने एक दूत द्वारा नन्द को आत्मसमर्पण करने तथा इस्लाम धर्म स्वीकार करने हेतु सन्देश भेजा। नन्द ने गुलामी के इस जुए को अपनी गर्दन पर रखने को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद सुल्तान नन्द की सेना को देखने तथा उसकी शक्ति का अनुमान लगाने के लिए एक पहाड़ी पर गया। जब उसने देखा कि नन्द की सेना काफी विशाल है तो उसे अपने अभियान करने पर पश्चाताप हुआ तथा उसने पृथ्वी पर सिजदा करते हुए अपनी विजय की कामना करते हुए खुदा की इबादत की। रात्रि के समय नन्द के हृदय में भय का संचार हुआ और वह अपने कुछ चुने हुए साथियों के साथ सेना तथा युद्ध-सामग्री को पीछे छोड़ कर भाग गया। दूसरे दिन जब सुल्तान को यह विदित हुआ तो उसने घोड़े पर सवार होकर शत्रु के शिविर की सावधानी से तलाशी ली। जब उसे विश्वास हो गया कि शत्रु द्वारा कोई धोखे की कार्यवाही नहीं की जा रही है तो उसने लूटपाट तथा विनाश कार्य प्रारम्भ किया। इस्लाम की सेना के हाथ में असंख्य लूट का माल आया। शत्रु सेना के 580 हाथियों को भी लूट में सम्मिलित कर लिया गया।" गर्दिजी तथा फरिश्ता भी इसी प्रकार का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

निजामुद्दीन का कथन है कि महमूद तथा विद्याधर (नन्द) के मध्य युद्ध नहीं हुआ तथा नन्द रात्रि के समय डर कर युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। डॉ० रे तथा डॉ० बोस इब्न-उद-अथीर का कथन ही विश्वसनीय मानते हैं किन्तु वे विद्याधर द्वारा डर कर भाग जाने की बात को मुस्लिम इतिहासकारों का अतिश्योक्तिपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण विवरण मानते हैं। डॉ. बोस[1] का मत है कि, "इब्न-उल-अथीर का वर्णन निजामुद्दीन की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है विशेष रूप से इसलिए कि 1022 ई० में महमूद को दूसरा अभियान विद्याधर के विरुद्ध करना पड़ा जो यह प्रकट करता है कि 1019 ई० के संघर्ष का परिणाम निर्णायक नहीं था।" अतः प्रथम आक्रमण के समय विद्याधर महमूद से पराजित नहीं हुआ।

विद्याधर के विरुद्ध अपने प्रथम आक्रमण (1019 ई०) में महमूद विद्याधर की शक्ति को नष्ट किये बिना ही गजनी वापस चला गया था। इसका कारण कनिंघम यह मानते हैं कि महमूद को विद्याधर के विरुद्ध विजय की आशा नहीं थी इसलिए वह गजनी से विशाल सेना लेकर पुनः भारत पर आक्रमण करना चाहता

1. पूर्वोक्त (पृ० 57)

था। निजामुद्दीन तथा इब्न-उल-अथीर इस तथ्य के विषय में मौन है किन्तु फरिश्ता लिखता है कि महमूद अपने देश से सम्पर्क के अभाव में अपने प्रथम आक्रमण की उपलब्धि से ही सन्तुष्ट था। अतः वह गजनी लौट गया। डॉ० बोस[1] का मत है कि, "सम्भवतः विद्याधर द्वारा एकत्र की गई विशाल सेना का प्रभाव महमूद की नीति पर पड़ा और वह काफी आगे बढ़ने तथा पंजाब होकर वापस लौटने के खतरों से भयभीत था। इन दो कारणों से महमूद गजनवी वापस जाने को प्रेरित हुआ तथा निकट भविष्य में अपने दूसरे आक्रमण के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।"

महमूद गजनवी का कन्नौज चन्देलों पर दूसरा आक्रमण (1022 ई०)

[The Second Invasion of Mahmud Gaznavi on the Chandelas of Kanauj (1022 A. D.)]

1022 ई० में महमूद गजनवी ने एक विशाल सेना के साथ भारत पर पुनः आक्रमण किया। निजामुद्दीन का कथन है कि, "महमूद ने हिजरी 413 में नन्द (विद्याधर) के राज्य पर अभियान किया। मार्ग में उसने ग्वालियर दुर्ग का घेरा डाला तथा चार दिन की प्रतीक्षा के बाद दुर्गपति ने 35 हाथियों का उपहार भेंट कर, महमूद से रक्षा की प्रार्थना की। सुल्तान ने इसे स्वीकार कर लिया और भारत के सबसे प्रसिद्ध तथा अभेद्य दुर्ग कालिंजर पर आक्रमण किया। काफी दिनों तक घेरा डालने के बाद अन्त में दुर्ग के सम्राट नन्द ने 300 हाथियों को भेंट कर सुरक्षा की प्रार्थना की। जब किले से बिना महावतों के हाथी छोड़े गये तो सुल्तान ने तुर्कों को उन्हें पकड़ कर उन पर सवार होने को कहा। दुर्ग के सैनिक इस दृश्य को देखकर चकित रह गये तथा तुर्कों की इस कुशलता से आतंकित हो गये। तब नन्द ने महमूद की प्रशंसा में स्व-रचित हिन्दी के कुछ पद्य भेजे। सुल्तान ने हिन्दुस्तान के उन विद्वानों व कवियों को इन्हें दिखाया जो उसकी सेवा में थे। उन सभी ने इनकी प्रशंसा की। सुल्तान ने इनके बदले में नन्द को बधाई भेजी तथा 15 दुर्गों का अधिपति बनाते हुए एक आज्ञापत्र भेजा। नन्द ने भी सुल्तान द्वारा स्वीकार करने हेतु काफी धन तथा बहुमूल्य रत्न भेजे। उस स्थान से सुल्तान विजयपूर्वक गजनी वापस चला गया।"[2] फरिश्ता तथा गर्दिजी भी इसी प्रकार का वर्णन करते हैं किन्तु गर्दिजी विद्याधर द्वारा जजिया कर देने का भी उल्लेख करते हैं।

श्री वैद्य महमूद द्वारा कालिंजर पर आक्रमण किया जाना स्वीकार नहीं करते किन्तु डॉ० बोस निजामुद्दीन के उक्त कथन को विश्वसनीय मानते हैं। चूँकि मुस्लिम इतिहासकारो के ही साक्ष्य पर विद्याधर तथा महमूद के संघर्ष का पता चलता है

1. पूर्वोक्त (पृ० 57)
2. Indian Historical Quarterly, Vol. IX (p. 941)

श्रीर उसकी पुष्टि भारतीय साक्ष्यों से नहीं होती, यह सम्भावना प्रकट की जाती है कि मुस्लिम इतिहासकार महमूद की विजय का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हैं। मुस्लिम इतिहासकार भी विद्याधर को एक विशाल राज्य का शासक तथा उसके पास सेना का होना स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा विद्याधर को दुर्बल तथा कायर कहना उचित प्रतीत नहीं होता। अतः डॉ० स्मिथ का यह मत निर्मूल सिद्ध होता है कि, "विद्याधर ने राज्यपाल की कायरता के लिए उसे मार कर दण्ड दिया था किन्तु विद्याधर में स्वयं साहस की कमी थी और वह इस्लाम के प्रबल योद्धाओं का सामना करने का साहस न कर सका।"

इसके विपरीत इतिहासकार विद्याधर की नीति-कुशलता तथा साहस की प्रशंसा करते हैं। डॉ. आर. सी. मजूमदार की मान्यता है कि, "चन्देल विद्याधर ने प्रत्येक वार कूटनीतिक सूझ-बूझ का परिचय दिया, वे विना लड़े ही पीछे हटते चले गये और अन्त में जंगलों और झाड़ियों में महमूद को भटकाकर उसे मैत्री का हाथ बढ़ाने के लिए विवश किया। इसलिए वही एक ऐसा भारतीय नरेश था जिसने कूटनीति और वीरता से सुल्तान को सफल नहीं होने दिया।"[1] डॉ. विशुद्धानन्द पाठक[2] का मत भी यही है कि, "विद्याधर और महमूद के बीच पारस्परिक प्रशंसाओं, बधाइयों और उपहारों का आदान-प्रदान यह नहीं सूचित करता कि विद्याधर हारा था।" डॉ. मनराल व डॉ. मित्तल[3] का कथन है कि "सत्य तो यह है कि युद्ध हुआ ही नहीं और दोनों ने एक दूसरे की शक्ति का अनुमान लगाकर मित्रता कर ली जिसे मुस्लिम इतिहासकारों ने अतिशयोक्तिपूर्वक महमूद की विजय माना। विद्याधर के जीवन की यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी कि जहाँ महमूद के आक्रमणों की आँधी से भारत के बड़े-बड़े राजा उखड़ गये, वह अकेला स्तम्भ की तरह खड़ा रहा और तुर्क उसके गढ़ कालिंजर में चन्देलों की शक्ति का भेदन न कर सके।"

अधिकांश इतिहासकारों की यह धारणा है कि महमूद ने चन्देलों पर आक्रमण इसलिए किया कि वह कन्नौज नरेश राज्यपाल की हत्या का बदला लेना चाहता था। डॉ० स्मिथ का भी यही मत है क्योंकि महमूद राज्यपाल को अपना करद सामन्त मानता था। डॉ० रे इस मत से सहमत नहीं हैं। उत्बी इतिहासकार के आधार पर उनका मत है कि महमूद के आक्रमण उसकी महत्वाकांक्षा तथा लूट के लोभ के कारण किये गये थे। उत्बी ने इसका कहीं उल्लेख नहीं किया कि राज्यपाल कन्नौज से भाग कर महमूद के अधीन हो गया था। इब्न-उल-अथीर के विवरण से भी स्पष्ट होता है कि महमूद का आक्रमण विद्याधर के कन्नौज पर अभियान करने के कारण नहीं हुआ था बल्कि इसलिए हुआ था कि विद्याधर भारत में महमूद के विजित प्रदेशों

1. *Dr. Majumdar R. C.* : Ancient India (p. 351)
2. डॉ. पाठक वी. एन. : उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (पृ. 411)
3. डा. मनराल तथा डा. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का इतिहास (पृ. 109)

को हस्तगत करना चाहता था। डॉ० बोस महमूद के आक्रमण के कारणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "उसके दो उद्देश्य थे—विद्याधर की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को नष्ट करना जो चन्देलों ने राज्यपाल को पराजित कर तथा मार कर प्राप्त की थी और महमूद की लूट तथा धन एकत्रित करने के प्रति आकर्षण था।" डॉ० बोस चन्देलों की मुसलमानों के प्रति नीति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि धंग के समय से ही चन्देल मुसलमानों को पृथ्वी पर भारस्वरूप समझते थे। अभिलेखों से इसकी पुष्टि होती है। चन्देल इस भार को हटाने के लिए सदैव चिन्तित रहे। इस प्रकार चन्देलों ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा धर्म की रक्षार्थ मुसलमानों से संघर्ष किया। इस संघर्ष में विद्याधर की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही।

विद्याधर की अन्य उपलब्धियाँ—अभिलेखों के आधार पर विद्याधर की राजनैतिक प्रतिष्ठा अन्य राज्यों के साथ उसके सम्बन्धों से प्रकट होती है। चन्देल-अभिलेख से विदित होता है कि—"भोजदेव और कलचुरि चन्द्र भयभीत होकर युद्धकला के आचार्य विद्याधर की शिष्य की भाँति पूजा करते थे जिसने कान्यकुब्ज के नरेश का विनाश किया था।" डॉ. बोस इस भोज का समीकरण तत्कालीन मालवा के परमार नरेश भोज (1010-1055 ई.) से करते हैं जो उत्तरी भारत में चन्देलों के कारण अपने राज्य विस्तार को दुष्कर मानते हुए विद्याधर की शक्ति का लोहा मानता था।

अभिलेख में वर्णित कलचुरि-चन्द्र का समीकरण डॉ. रे कलचुरि नरेश कोक्कल द्वितीय से करते हैं। डॉ. डी. सी. गांगुली तथा श्री वैद्य उसे कलचुरि नरेश गांगेयदेव मानते हैं। इसकी पुष्टि रीवां के निकट मुकुंदपुर से प्राप्त गांगेयदेव के शिलालेख (1019 ई.) से होती है। डॉ. मिराशी गांगेयदेव को विद्याधर के अधीन सामन्त मानते हैं। श्री वैद्य का मत है कि भोज तथा गांगेयदेव विद्याधर के नेतृत्व में मुसलमानों के विरुद्ध संघ में सम्मिलित थे।

दूबकुण्ड के कच्छपघात चन्देलों के अधीन थे। अभिलेख में अंकित है कि कच्छपघात राजकुमार अर्जुन ने विद्याधर को प्रसन्न करने के लिए राज्यपाल को मारा। ग्वालियर के कच्छपघात महीपाल के सहसबाहु शिलालेख से विदित होता है कि कच्छपघात वंश के राजकुमार कीर्तिराज मालवा नरेश को पराजित किया। डॉ. रे कीर्तिराज (1005-1035 ई.) को विद्याधर का समकालिक तथा महमूद के आक्रमण (1022 ई.) के समय उसे ग्वालियर दुर्ग का अधिपति मानते हैं। कीर्तिराज ने विद्याधर की सहायता से ही मालवा नरेश भोज को पराजित किया। निजामुद्दीन द्वारा उल्लिखित ग्वालियर दुर्ग का 'हाकिम' कीर्तिराज विद्याधर के अधीन था।

विद्याधर की उपलब्धियों का मूल्यांकन—इस प्रकार विद्याधर चन्देल वंश का प्रतापी तथा उत्तरी भारत का शक्तिशाली शासक था। मुसलमानों से संघर्ष में उसने उल्लेखनीय भूमिका निभाई। मुसलमानों को पृथ्वी पर भार स्वरूप समझ

भारतीय धर्म व संस्कृति की रक्षार्थ उन्हें भारत से निकाल बाहर करने की चन्देलों की परम्परागत नीति को विद्याधर ने अत्यन्त वीरता, साहस तथा कूटनीति से अग्रसर किया। राज्यपाल की कायरता तथा देशद्रोह के लिए विद्याधर ने उसकी हत्या कर मुसलमानों के विरुद्ध भारतीय राजाओं के आक्रोश को मूर्तिमान किया तथा शाही नरेश त्रिलोचनपाल तथा उसी नाम के कन्नौज नरेश को महमूद गज़नवी के आक्रमण से सुरक्षा प्रदान की। श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय[1] का कथन उचित है—"वह अकेला भारतीय शासक था जिसने सुल्तान महमूद की विजय-यात्रा का सफलतापूर्वक अवरोध किया और उस निर्दय विजेता की स्वच्छन्द विनाशलीला से अपने राज्य को बचाया।"

विद्याधर कुशल सेनानायक, वीर योद्धा तथा कूटनीतिज्ञ था। महमूद के दूसरे आक्रमण के समय विद्याधर ने पीछे हटते हुए महमूद को ऐसी स्थिति में आगे बढ़ने को प्रेरित किया कि अंतत. उसे विद्याधर से मित्रता का हाथ बढ़ाने को विवश कर दिया। केवल विद्याधर ही एक भारतीय शासक था जिसने महमूद गज़नवी जैसे क्रूर तथा शक्तिशाली आक्रांता के विरुद्ध जमकर सामना किया तथा पराजय नहीं मानी।

विद्याधर की राजनैतिक प्रतिष्ठा इसी से प्रकट होती है कि प्रतिहार कन्नौज नरेश, मालवा का परमार भोज,कलचुरि नरेश गांगेयदेव तथा कच्छपघात नरेश कीर्तिराज जैसे शक्तिशाली शासक उसकी शक्ति, युद्ध कुशलता-तथा कूटनीति का लोहा मानते थे तथा उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध भारतीय राजाओं के संघ का नेतृत्व उसे सौंपा था जिसकी भूमिका विद्याधर ने अत्यन्त कुशलता से निभाई। डॉ. रे का मत है कि सुल्तान महमूद तथा विद्याधर की मित्रता जो 1022 ई. में स्थापित हुई, वह 1029 ई. तक अनवरत चलती रही। 1029 ई. में अल बुन्दारी तथा रहतुस-सुदूर के अनुसार सुल्तान महमूद ने अपने शत्रु के पुत्र को कालिंजर के दुर्ग में 7 वर्ष तक बंदी बना कर रखा जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। अत: 1029 ई. विद्याधर की सम्भावित अन्तिम तिथि मानी जा सकती है।

(11) विजयपाल (1030–1050 ई)

विद्याधर की मृत्यु के बाद 1030 ई. में उसका पुत्र विजयपाल शासक बना। उसके राज्यकाल का कोई शिलालेख उपलब्ध नहीं हुआ है। बाद के एक चन्देल अभिलेख में उसे "कलियुग का अन्त करनेवाले" का श्रेय दिया गया है किन्तु अन्य साक्ष्यों से स्पष्ट होता है उसके राज्य-काल से चन्देलों का पराभव आरम्भ हो गया था।

कलचुरियों से संघर्ष—पूर्व में विदित हो गया है त्रिपुरी का कलचुरि नरेश गांगेयदेव तथा परमार नरेश भोज विद्याधर के समकालिक थे तथा वे उसका वर्चस्व स्वीकार करते थे। गांगेयदेव का राज्यकाल 1019 से 1041 ई. था, अत: वह

1. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 273)

विजयपाल का भी समकालीन शासक था। इसकी पुष्टि महोवा शिलालेख से होती है जिसमें अंकित है कि, "जब गांगेयदेव ने पृथ्वी पर विजय प्राप्त की तो उसने अपने समक्ष भयानक (विजयपाल) को देखा....युद्ध में उसका मान-मर्दन होकर उसका हृदय-कमल मुरझा गया।" जबलपुर ताम्रपत्र (1112 ई.) में यशकर्णदेव ने अंकित कराया कि "गांगेयदेव ने प्रयाग के बोधिवृक्ष के नीचे अपनी 100 पत्नियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।" मुसलमान लेखक बैहक के अनुसार बनारस गांगेयदेव के अधिकार में था।

इन अभिलेखीय साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि जो कलचुरि नरेश चन्देलों के अधीन थे, वे अब स्वतन्त्र होकर चन्देलों पर अपनी शक्ति का सिक्का जमाने लगे। विजयपाल के दुर्बल शासन में प्रयाग व काशी चन्देलों के हाथ से निकल कर कलचुरियों के अधिकार में आगये। कलचुरि नरेश गांगेयदेव के पुत्र व उत्तराधिकारी कर्ण ने चन्देलों को पराजित कर कुछ समय के लिए उनकी स्वतन्त्रता का हरण कर लिया।

कच्छपघातों से संघर्ष—ग्वालियर का कच्छपघात नरेश कीर्तिराज विद्याधर के अधीन था किन्तु विजयपाल के समय कीर्तिराज का पुत्र मूलदेव (दूसरे नाम भुवनपाल तथा त्रिलोक्यमाल) चन्देलों से मुक्त हो गया था। इसकी पुष्टि सहसबाहु शिलालेख से होती है जिसमें मूलदेव "का शरीर सार्वभौम सम्राट के चिन्हों से अलकृत था।"

विजयपाल के समय चंदेलों के पतन का चिह्न दूबकुण्ड के कच्छपघातों की स्वाधीनता से भी परिलक्षित होता है। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के विषय में दूबकुण्ड अभिलेख में अंकित है कि—"विजेता राजाओं को पराजित कर अभिमन्यु उन्हें तिनकों की तरह तुच्छ समझता था। परमप्रतापी तथा कुशाग्रबुद्धि का भोज (परमार नरेश) भी अभिमन्यु की अश्व तथा रथ-संचालन और अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग की कुशलता की प्रशंसा करता था। अभिमन्यु के राज-छत्र के दर्शनमात्र से ही गर्वोन्मत्त शत्रु भयभीत हो भाग जाते थे।" डॉ० गांगुली[1] का मत है कि मालवा के परमार नरेश भोज की उत्तरी भारत की विजयों में अभिमन्यु ने अमूल्य सहायता दी थी। डॉ० रे[2] की उक्त शिलालेख के आधार पर मान्यता है कि विजयपाल की दुर्बलता का लाभ उठाकर परमार भोज ने उत्तर में दूबकुण्ड तक अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार किया तथा अभिमन्यु परमारों के अधीन सामंत था।

इस प्रकार विजयपाल का शासन-काल चन्देल शक्ति के ह्रास के प्रारम्भ का सूचक है।

12. देववर्मन (1050–1060 ई०)

नन्यौर अभिलेख (1051 ई०) से पता चलता है कि उस समय विजयपाल का पुत्र देववर्मन शासन कर रहा था। बाद के चन्देल अभिलेखों में देववर्मन के

1. *Dr. Ganguly, D. C.* : History of the Parmar Dynasty (p. 105)
2. *Dr. Ray, H. C.* : Dynastic History of Northern India (p. 620)

स्थान पर विजयपाल के उत्तराधिकारी का नाम कीर्तिवर्मन मिलता है। इसका कारण डॉ० सत्यप्रकाश[1] के अनुसार यह है कि, "सम्भवतः देववर्मन के बाद उसके पुत्र का अधिकार छीनकर कीर्तिवर्मन राजा बना। यदि देववर्मन का कोई पुत्र राजा बनता तो निश्चित रूप से वह अपने पिता का नाम शिलालेखों में देता परन्तु शस्त्रबल से जिस भाई ने सत्ता प्राप्त की हो, वह अपने को ही हन्ता क्यों सिद्ध करेगा ?"

चरखारी अभिलेख से विदित होता है कि देववर्मन अपने दुःख तथा संसार की नश्वरता से विरक्त दशा में रहता था। अन्य अभिलेखों से उसके राज्यकाल का कोई तथ्य उपलब्ध न होना यह प्रकट करता है कि यह समय चंदेलवंश का अन्धकार काल था। डॉ० सत्यप्रकाश यह सम्भावना प्रकट करते हैं कि कलचुरि नरेश कर्ण ने चंदेलों को पूर्णतया पराजित कर अपना सामन्त बना लिया था।

(13) कीर्तिवर्मन (1060–1100 ई०)

देववर्मन के बाद उसका छोटा भाई कीर्तिवर्मन 1060 ई० में शासक बना। कीर्तिवर्मन ने चंदेलों की प्रतिष्ठा को पुनः प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया। कृष्ण मिश्र रचित नाटक "प्रबोधचंद्रोदय" से विदित होता है कि कीर्तिवर्मन के गोपाल नामक सामन्त ने कलचुरि सेनाओं को पराजित कर चन्देल सत्ता को स्थापित किया। गोपाल की तुलना विष्णु के नरसिंह तथा वाराह अवतारों से की गई है तथा उसकी प्रशंसा में कहा गया है कि उसने 'विनाश के समुद्र में गिरी हुई पृथ्वी' का उद्धार किया और 'प्रलयंकारी काल, अग्नि और रुद्र के स्वरूप' कलचुरि कर्ण द्वारा 'समून्मूलित चन्द्रवंश' की पुनर्स्थापना के लिये वह क्रोधित हो उठा। जिस प्रकार विष्णु ने समुद्र-मंथन द्वारा लक्ष्मी प्राप्त की, वैसे ही गोपाल ने कर्ण और अन्य शत्रुओं की सेना का मंथन कर राजलक्ष्मी को पुनः प्राप्त किया। अतः स्पष्ट होता है कि कीर्तिवर्मन ने अपने सामन्त गोपाल की सहायता से अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। डॉ० जयदेव का कथन है कि गोपाल ने कीर्तिवर्मन की श्रेष्ठता स्थापित कर राज्य में शान्ति व्यवस्था की और स्वयं ने युद्ध का मार्ग छोड़ कृष्णमिश्र के मार्गदर्शन में दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया।

उपरोक्त तथ्य की पुष्टि महोबा शिलालेख से होती है जिसमें अंकित है—"जिस प्रकार पुरुषोत्तम (विष्णु) ने पर्वतों के समान उत्तुंग लहरों वाले क्षीर सागर का मंदार पर्वत से मंथन कर अमृत, लक्ष्मी तथा आठों दिशाओं में गज प्राप्त किये, उसी प्रकार कीर्तिवर्मन ने अनेक राजाओं को नष्ट करने वाले अभिमानी लक्ष्मीकर्ण को अपनी शक्तिशाली भुजाओं से चकनाचूर कर (अपना राज्य पुनः प्राप्त कर) विश्व में ख्याति अर्जित की।"

इस प्रकार कीर्तिवर्मन ने लक्ष्मीकर्ण को पराजित कर धंग तथा विद्याधर के

1. डॉ० सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ० 203)

गौरव को पुनः स्थापित किया। डॉ. सत्यप्रकाश इस विजय की तिथि परमार भोज के उत्तरी भारत के अभियान के आधार पर 1060 ई. से 1064 ई. के मध्य निर्धारित करते हैं। कीर्तिवर्मन के शासन-काल में सर्वप्रथम चन्देल मुद्राओं (सिक्के) का प्रचलन उपलब्ध होता है जो चेदि नरेश गांगेयदेव की मुद्राओं के समान है जो इस बात का प्रमाण है कि पूर्व में चन्देल प्रदेश पर कलचुरियों का अधिकार रहा था।

कलचुरियों पर चन्देल-विजय का श्रेय "प्रबोध-चन्द्रोदय" में गोपाल को दिया गया है जब कि चन्देल-अभिलेखों में इसका श्रेय कीर्तिवर्मन को मिला है। इसका कारण यह है कि कीर्तिवर्मन के उत्तराधिकारियों द्वारा अंकित अभिलेखों में अपने पूर्वज को ही श्रेय दिया जाना उचित था तथा जब तक गोपाल की ख्याति भी विस्मृत हो गई होगी।

देवगढ़ शिलालेख (1098 ई.) से विदित होता है कि कीर्तिवर्मन के मुख्य-मन्त्री ने निकटवर्ती क्षेत्रों को विजित कर कीर्तिगिरि दुर्ग का निर्माण कराया। कीलहार्न कीर्तिगिरि का समीकरण देवगढ़ से ही करते हैं। भोजवर्मन के शिलालेख में कीर्तिवर्मन को पीतलशैल (पीले पर्वतों के प्रदेश) के नरेशों में मुख्य रत्न की भाँति देदीव्यमान कहा गया है। इस स्थान का समीकरण अभी तक करना सम्भव नहीं हुआ है। रत्नपुर के जज्जलदेव के एक अभिलेख में कान्यकुब्ज तथा जैजाकभुक्ति नरेश उसे अपना मित्र मानते थे। कीलहार्न जैजाकभुक्ति का नरेश कीर्तिवर्मन को मानते हैं किन्तु डॉ. बोस कीर्तिवर्मन के उत्तराधिकारी सल्लक्षणवर्मन को मानते हैं गोरखपुर के कलचुरि नरेश शिवराज प्रथम के कसिआ शिलालेख में उसके वंश के एक राजा को "कीर्ति से अधिक सफल" माना गया है। डॉ रे कीर्ति को कलचुरियों का विजेता चन्देल नरेश कीर्तिवर्मन मानते हैं। इस प्रकार अन्य राजवंशों के अभिलेखों में कीर्तिराज की प्रशंसा इस बात की सूचक है कि उसके समय में चन्देलों की प्रतिष्ठा ऊँची हो गई थी।

डॉ. मजूमदार के अनुसार पंजाब के मुस्लिम शासक महमूद (1075 ई.) ने कन्नौज तथा आगरा पर अधिकार कर लिया था किन्तु वह परमार तथा चन्देलो की शक्ति के कारण उज्जैन तथा कालिंजर पर अधिकार न कर सका। किन्तु इस की पुष्टि किसी साक्ष्य से नहीं होती।

(14) **सल्लक्षणवर्मन** (1100–1115 ई.)

कीर्तिवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र सल्लक्षणवर्मन 1100 ई. में गद्दी पर बैठा। मऊ शिलालेख में उसकी काफी प्रशंसा की गई है। उसके द्वारा शान्ति-व्यवस्था तथा दण्ड-न्याय का उचित प्रबन्ध किया जाना अंकित है। इस अभिलेख के श्लोक संख्या 38 व 39 में सल्लक्षणवर्मन द्वारा अन्तर्वेदी पर आक्रमण तथा विजय का उल्लेख किया गया है। कनिंघम का मत है कि यह गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र में सल्लक्षणवर्मन का छापा मात्र था। डॉ. रे का कथन है कि इस क्षेत्र के राष्ट्रकूट

शासक गोपाल से सल्लक्षणवर्मन का संघर्ष हुआ होगा किन्तु परिणाम अनिर्णीत रहा। डॉ. वोस इस की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि चन्देलों ने गहड़वालों के दक्षिण में बढ़ते हुए साम्राज्य पर अंकुश लगाया।

वीर्यवर्मन के अजयगढ़ शिलालेख से विदित होता है कि सल्लक्षणवर्मन ने "तलवार से मालवों तथा चेदियों के भाग्य को हर लिया।" डॉ. सत्यप्रकाश का मत है कि सल्लक्षणवर्मन ने अपने समकालीन परमार शासक नरवर्मन (1097-1111 ई.) को पराजित किया। डॉ. रे की मान्यता है कि वेतवा तक चन्देल साम्राज्य विस्तीर्ण था और उन्होंने कीर्तिगिरि से परमारों पर सफलता प्राप्त की। चेदि नरेश लक्ष्मीकर्ण के उत्तराधिकारी यशकर्ण को सल्लक्षणवर्मन ने पराजित किया।

इस प्रकार सल्लक्षणवर्मन अपने पिता के समान वीर, महत्वाकांक्षी तथा साहसी शासक था।

(15) जयवर्मन (1115–1120 ई.)

सल्लक्षणवर्मन के वाद 1115 ई. में उसका पुत्र जयवर्मन शासक बना। अजयगढ़ लेख से इसकी पुष्टि होती है किन्तु अन्य तथ्यों के अभाव में ऐसा प्रतीत होता है कि जयवर्मन का शासनकाल अधिक सफल नहीं था। कालिंजर अभिलेख के अनुसार जयवर्मन शासन के प्रति चिंतित रहता था तथा उसने अपने उत्तराधिकारी के पक्ष में शासन त्याग दिया। गहड़वाल नरेश गोविंदचंद्र का शिलालेख (1120 ई.) कानपुर के निकट छत्तरपुर में प्राप्त हुआ है जो यह प्रकट करता है यह स्थान (जो पहले चन्देलों के अधीन था) गहड़वालों ने 1120 ई. के लगभग चन्देलों से छीन लिया। जयवर्मन ने इस पराजय से निराश होकर अपने चाचा पृथ्वीवर्मन के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया।

(16) पृथ्वीवर्मन (1120–1129 ई०)

पृथ्वीवर्मन जयवर्मन के निःसंतान होने के कारण शासक बना। मऊ अभिलेख में इस शासक की प्रशंसा परंपरागत मात्र है। वस्तुतः वह एक दुर्बल शासक था।

(17) मदनवर्मन (1129–1163 ई०)

पृथ्वीवर्मन की मृत्यु के बाद 1129 ई० में उसका पुत्र मदनवर्मन शासक बना। मदनवर्मन के लगभग 12 शिलालेख 1129 तथा 1163 ई० के मध्य की अवधि के तथा उसकी अनेक मुद्रायें भी उपलब्ध हुई हैं। इनके आधार पर उसके विषय में कुछ तथ्य प्रकाश में आते हैं।

निकटवर्ती राज्यों से संघर्ष—मदनवर्मन के मऊ शिलालेख में उसकी प्रशस्ति में कहा गया है कि—"उसके नाम मात्र से ही चेदि नरेश सदैव भयानक युद्ध में परास्त हो भाग जाता था तथा मदनवर्मन के भय से काशी नरेश मित्रता स्थापित करने हेतु प्रयत्न करता रहता था। मालवा का धृष्ठ शासक मदनवर्मन से शीघ्र ही परास्त हो गया तथा दूसरे शासक उसे सम्मान देकर अत्यन्त मुग्ध का

अनुभव करते थे।" इस विवरण से मदनवर्मन को चेदि, काशी तथा मालवा के नरेशों से संघर्ष होने तथा उसमें विजयी रहने का तथ्य प्रकट होता है।

चेदी नरेश से संघर्ष—डॉ० बोस उक्त शिलालेख के पराजित चेदि नरेश का समीकरण कलचुरि गयाकर्ण (1125–1151 ई०) या उसके पुत्र नरसिंहदेव (1155–1170 ई०) से करते हैं क्योंकि उसकी पुष्टि शिलालेख तथा साहित्य-ग्रन्थों से होती है। रींवा की तिओथर तहसील के पनवाड़ ग्राम से प्राप्त मदनवर्मन के 48 चाँदी के सिक्के उपलब्ध हुए हैं जिनके आधार पर डॉ० रे[1] का अनुमान है कि चंदेलों ने कलचुरियों से कैमूर पर्वत श्रेणी के पूर्व से बघेलखण्ड के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। कलचुरि नरेश नरसिंह देव का एक शिलालेख (1158 ई०) विंध्य प्रदेश के नागोध जिले में भरहुत के निकट लाल पहाड़ नामक पहाड़ी में तथा दूसरा शिलालेख (1169 ई०) विंध्य पर्वत के अल्ह-घाट दर्रे (जहाँ से तौंस नदी निकलती है) की तलहटी में मिला है। शिलालेखों के इन प्राप्ति-स्थलों के आधार पर डॉ० रे[2] की मान्यता है कि इस समय तक कलचुरियों ने बघेलखण्ड के ये प्रदेश चन्देलों से पुनः हस्तगत कर लिये थे। डॉ० बोस[3] इस मत से सहमत होते हुए यह संभावना व्यक्त करते हैं कि उत्तर की ओर चंदेलों के गहड़वालों से संघर्ष में फँसे रहने के कारण कलचुरियों ने ये प्रदेश प्राप्त कर लिये।

मालवा नरेश से संघर्ष—मऊ शिलालेख में मदनवर्मन की विजय मालवा नरेश पर बतलाई गई है जो यह प्रकट करता है कि चन्देलों ने दक्षिण-पश्चिम दिशा में परमारों के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इसकी पुष्टि बांदा जिले के औगसी दान-पत्र (1134 ई०) में मदनवर्मन को भिल्सा के निकट किसी ब्राह्मण को दान देता हुआ दर्शाया गया है। अतः स्पष्ट है कि मदनवर्मन ने अपने शासन के आरंभिक वर्षों में सम्भवतः मालवा के परमार नरेश यशोवर्मन (1134–1142) को पराजित किया था। यशोवर्मन चन्देलों के अतिरिक्त चहमानों तथा चालुक्यों से भी पराजित हुआ था। किन्तु यह विजय स्थायी न रह सकी क्योंकि डॉ० एन० पी० चक्रवर्ती के अनुसार यशोवर्मन के पुत्र लक्ष्मीवर्मन ने 1153 ई० के पूर्व चंदेलों से अपने विजित प्रदेश पुनः हस्तगत कर लिये। इसका आधार महाद्वदशक मण्डल के लक्ष्मीवर्मन का एक दानपत्र (1153 ई०) है। महाद्वदशक मण्डल का समीकरण उदयपुर, भिल्सा तथा रायसीन प्रदेश से किया गया है। डॉ० बोस इस मत से सहमत हैं।

काशी के गहड़वाल नरेश से संघर्ष—ग्यारहवीं सदी से प्रारम्भ हुए चंदेल-गहड़वाल संघर्ष की परिणति मदनवर्मन के समय हुई। जो काशी नरेश मदनवर्मन के भय से

1. *Dr. Ray, H. C.* : Dynastic History of Northern India (p. 85)
2. पूर्वोक्त (पृष्ठ 86)
3. *Dr. Bose, N. S.* : History of the Chandellas (p. 86)

मित्रता करने का प्रयास कर रहा था, वह गोविन्दचंद्र (1114–1155 ई०) था। जैसा कि पूर्व में विदित हो गया है गोविन्दचंद्र ने चन्देलों से (1120 ई०) के लगभग छत्तरपुर अधिकृत कर लिया था किन्तु मदनवर्मन के छत्तरपुर शिलालेख (1147 ई०) से पता चलता है कि उसने अपने खोये प्रदेश पुनः गहड़वालों से हस्तगत कर लिये। यह लेख शांतिनाथ की मूर्ति के नीचे उत्कीर्ण है।

मदनवर्मन को उसके शासनकाल के अंतिम वर्षों में गहड़वालों से पराजित होना पड़ा। इसका प्रमाण नयचन्द्र सूरि कृत "रम्भामंजरी-नाटिका" की भूमिका से मिलता है जिसमें उल्लेख है कि, "जयचंद्र की शक्तिशाली भुजा मदनवर्मन के भाग्य-रूपी गज को चीरने के लिये एक स्तम्भ के समान है।" इससे स्पष्ट है कि जयचंद्र ने मदनवर्मन को पराजित कर उसकी बढ़ती हुई शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया। श्री रेउ का कथन है कि जयचंद्र ने यह विजय युवराज के रूप में अपने पिता के शासन-काल में प्राप्त की।

चालुक्यों (सोलंकियों) से संघर्ष—मदनवर्मन तथा चालुक्य नरेश सिद्धराज दोनों समकालिक महत्वाकांक्षी शासक थे। अतः वे दुर्बल परमार शासकों से उनका प्रदेश अधिकृत कर अपना साम्राज्य विस्तृत करना चाहते थे। कालिंजर शिलालेख से विदित होता है कि, "मदनवर्मन ने गुर्जर नरेश को इस प्रकार पराजित किया जिस प्रकार कृष्ण ने कंस को किया।" इसकी पुष्टि मऊ शिलालेख से होती है। 'कीर्तिकौमुदी' में सिद्धराज द्वारा मदनवर्मन की पराजय दिखलाई गई है किन्तु "पृथ्वीराजरासो' में विजय मदनवर्मन की बतलाई गई है। डॉ० सत्य प्रकाश[1] का मत है कि, "इन विवरणों के आधार पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धराज को स्थायी सफलता नहीं मिल सकी।"

अन्य विजयें—कनिंघम को महोबा में एक शिलालेख (1183 ई०) प्राप्त हुई थी जिसमें डॉ० चक्रवर्ती मदनवर्मन का नाम देखकर यह कहते हैं कि मदनवर्मन ने अंग, कलिंग और वंग प्रदेशों में अभियान किया था।

इस प्रकार मदनवर्मन ने चन्देल साम्राज्य को पुनः संगठित करने का प्रयास किया। उसकी साम्राज्य सीमा उत्तर में यमुना तक, दक्षिण-पश्चिम में बेतवा तक, पूर्व में रीवा तक तथा दक्षिण में नर्मदा तक विस्तृत थी। चंदेल शक्ति इस समय मध्य भारत की प्रमुख शक्ति बन गई थी। कनिंघम के इस मत से इतिहासकार सहमत नहीं कि मदनवर्मन के समय चंदेल साम्राज्य सबसे अधिक विस्तीर्ण था क्योंकि अंतिम वर्षों में मदनवर्मन के अधिकार से कुछ प्रदेश निकल गये थे।

(18) यशोवर्मन द्वितीय (1163–1165 ई०)

मदनवर्मन की मृत्यु के बाद 1163 ई० में उसका पुत्र यशोवर्मन गद्दी पर बैठा। बघेरी शिलालेख के अतिरिक्त अन्य चंदेल अभिलेखों में यशोवर्मन का नाम न

होने से अधिकांश इतिहासकारों की यह मान्यता है कि वह अपने पिता के समय ही मर गया था। किन्तु डॉ० रे का अनुमान है कि वह शासक बना था। यशोवर्मन एक दुर्बल शासक था जो अल्प समय ही शासन कर सका। उसकी मृत्यु के बाद 1165 ई० में उसका परमर्दिदेव शासक बना।

(19) **परमर्दिदेव** (1165–1202 ई०)

परमर्दिदेव का शासन-काल चहमानों तथा मुसलमानों के साथ हुए संघर्ष के कारण विशेष उल्लेखनीय है। उसके बनाफर वीर सामंत आल्हा तथा ऊदल लोकगीतों में विख्यात हैं। परमर्दिदेव के शासन काल की घटनाओं का विवरण उसके 12 उपलब्ध शिलालेखों के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों से भी प्राप्त होता है। परमर्दिदेव का शासनकाल भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण काल था जिसमें पृथ्वीराज तृतीय चौहान (1169–1192 ई०) दिल्ली व अजमेर के शासक थे किन्तु मुहम्मद गौरी से तराइन के युद्ध (1192 ई०) में वे पराजित हुए व मारे गये।

चहमानों से संघर्ष—चंदवरदाई के ग्रन्थ "पृथ्वीराजरासो" 'परमालरासो' तथा जगनिककृत 'आल्हा खण्ड' के अनुसार चंदेल तथा चहमानों के संघर्ष की घटना इस प्रकार बतलाई गई है। पृथ्वीराज चौहान के सैनिक जब समेत के राजा पद्मसेन की पुत्री का पृथ्वीराज के लिये अपहरण कर रहे थे तो वे घायल होकर भागते समय परमर्दि के बाग में छिप गये किन्तु उन्हें चंदेल शासक ने मरवा डाला। इस पर पृथ्वीराज ने क्रुद्ध होकर इसका बदला लेने के लिये विशाल सेना के साथ चंदेल राज्य पर आक्रमण कर दिया। मार्ग में पृथ्वीराज ने शिशिरगढ़ दुर्ग में मलखान बनाफर सरदार को हराया व मारा। बेतवा पार कर महोबा दुर्ग का घेरा डाला गया चंदेलों ने बनाफर सरदार आल्हा तथा ऊदल के नेतृत्व में चौहानों का सामना किया। गहड़वाल नरेश जयचंद्र ने परमर्दि की सहायतार्थ सेना भेजी। वीरता से युद्ध करते हुए ऊदल मारा गया और आल्हा अपने गुरु गोरखनाथ के साथ वन में चला गया। चौहानों ने कालिंजर दुर्ग का घेरा डालकर परमाल (परमर्दि) को बंदी बना लिया और उसे वे दिल्ली ले गये। पृथ्वीराज ने पज्जूनराय को महोबा का थानपति नियुक्त किया।[1] 'आल्हाखण्ड' में भी इसी प्रकार का वर्णन है।

डॉ० बोस का कथन है कि 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'आल्हा खण्ड' यद्यपि अनैतिहासिक ग्रंथ हैं किन्तु इतना सत्य है कि पृथ्वीराज चौहन ने परमिद को पराजित किया। इसकी पुष्टि चंदेल उन शिलालेखों से होती है जो दुधाई से 24 मील दक्षिण-पूर्व में मदनपुर ग्राम के दो मंदिरों से प्राप्त हुए हैं। एक अभिलेख में पृथ्वीराज तथा परमर्दि के नाम अंकित हैं। दूसरे अभिलेख में चहमान वंशावली के साथ पृथ्वीराज द्वारा विजित जैजाक भुक्ति की तिथि 1182 ई० अंकित है। तीसरे अभिलेख से भी इसी तिथि को जैजाक-भुक्ति मण्डल पृथ्वीराज द्वारा विजित बतलाया गया है।

1. चन्द वरदाई : पृथ्वीराजरासो (खण्ड 19)

चहमान तथा चंदेलों के इस संघर्ष का विवरण 'सारंगधरपद्धति' तथा 'प्रबन्ध चिन्तामणि' ग्रन्थों मे भी मिलता है जिसके अनुसार पृथ्वीराज के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिये परमर्दि ने मुँह में तिनका लेकर प्राणो की भीख मागी। डॉ. शर्मा के अनुसार चदेल नरेश परमर्दि का समकालिक चौहान नरेश पृथ्वीराज तृतीय था। यद्यपि पृथ्वीराज चौहान ने दिग्विजय के रूप में महोवा पर कुछ समय अधिकार बनाये रखा किन्तु महोवा दुर्ग के एक अभिलेख (1183 ई०) मे परमर्दि का नाम इस बात का द्योतक है कि एक वर्ष बाद ही चदेलों ने महोवा पुनः हस्तगत कर लिया था। डॉ० रे[1] कालिजर शिलालेख (1201 ई०) मे परमर्दि का विरुद 'दशार्नधिपति' देखकर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस समय तक परमर्दि ने अपने समस्त खोये प्रदेशो पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज चौहान का गहड़वालों तथा मुसलमानो से सघर्ष मे व्यस्त रहना भी इस तथ्य को पुष्ट करता है।

गहडवाल नरेश जयचद्र द्वारा उक्त संघर्ष मे पृथ्वीराज के विरुद्ध चदेलों की सहायता करना अनेक विद्वान ऐतिहासिक तथ्य मानते हैं किन्तु अभिलेख तथा साहित्य ग्रन्थो के साक्ष्य के आधार पर डॉ० बोस का मत है कि गहड़वाल तथा चंदेलों में वैमनस्य था। 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'आल्हा खण्ड' के अनुसार परमर्दि द्वारा आल्हा व ऊदल को देशनिकाला दे दिया गया था और वे जयचद्र की शरण मे चले गये थे। यह तथ्य यह प्रमाणित करता है कि परमर्दि और जयचद्र के संबंध मित्रतापूर्ण नही थे।

मुसलमानों से संघर्ष—परमर्दि ने चौहानो से अपने विजित प्रदेश पुनः अधिकृत कर लिये क्योंकि पृथ्वीराज का मुसलमानो से सघर्ष मे व्यस्त रहना इसके लिये उपयुक्त अवसर था। किन्तु 1192 ई० मे चहमानों की पराजय तथा उनके राज्य पर मुसलमानो के अधिकार हो जाने से मुसलमान चदेलो की पड़ौसी शक्ति बन गये थे। अतः परस्पर संघर्ष होना स्वाभाविक था।

तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकार हसन निजामी (1205–1217 ई०) ने अपने ग्रन्थ "तजुल मासिर" मे चन्देलों का मुसलमानो से हुए सघर्ष का इस प्रकार वर्णन किया है—"1202 ई० मे कुतुबुद्दीन कालिजर का घेरा डालने के अभियान पर निकला····कालिजर का राय (परमर्दि) मैदान मे सामना न कर पा सकने के कारण दुर्ग मे भाग गया किन्तु बाद मे उसने आत्मसमर्पण कर दिया और गले मे गुलामी का पट्टा डालकर तथा वफादारी का वायदा कर परमर्दि को अधीन सामन्त उसी प्रकार बना लिया गया जिस प्रकार सुबुक्तगीन ने उसके पूर्वजों को बनाया था। उसे कर देने के लिए विवश किया गया किन्तु परमर्दि की शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। परमर्दि के दीवान अजदेव ने आत्मसमर्पण नही किया तथा वह मुसलमानों का सामना करता रहा·······अन्त में दुर्ग मे पानी समाप्त होने के कारण उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा।····मुसलमानों ने दुर्ग में मन्दिर को नष्ट कर उनकी मसजिदें बना दी तथा

1. *Dr. Ray, H. C.* : Dynastic History of Northern India (p.720)

मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। 50 हजार व्यक्ति वन्दी बना लिये गये तथा हाथी, मवेशी तथा असंख्य अस्त्र-शस्त्र लूट के माल में सम्मिलित कर लिये गये।"[1]

इसके वाद कुतुवुद्दीन ने महोबा को अधिकृत कर कालिंजर का प्रशासक हजवरुद्दीन हसन अर्नाल को बना दिया।

फरिश्ता का विवरण भी लगभग ऐसा ही है। केवल अन्तर यह है कि फरिश्ता ने परमर्दि के आत्मसमर्पण को उसके मन्त्री अजयदेव द्वारा अस्वीकार कर देने के कारण कुतुवुद्दीन द्वारा परमर्दि की हत्या किये जाने का उल्लेख किया है। डॉ० रे फरिश्ता के इस कथन को वाद में वढ़ाया हुआ अनैतिहासिक तथ्य मानते हैं।

परमर्दि की राज्य-सीमा—परमर्दि के शिलालेखों के प्राप्ति-स्थलों से सूचित होता है कि उसकी राज्य-सीमा में उसके पिता के समय के सभी क्षेत्र सम्मिलित थे। चहमानों द्वारा विजित क्षेत्र शीघ्र ही उसने पुनः हस्तगत कर लिया था। किन्तु कुतुवुद्दीन का आक्रमण चन्देल राज्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ और चन्देलों के हाथ से कालिंजर दुर्ग सहित अधिकांश क्षेत्र निकल गया। डॉ० वोस[2] की मान्यता है कि "यह सम्भावित नहीं प्रतीत होता कि अधिक शक्तिशाली चन्देल शासक होता तो मुसलमानों से चन्देल राज्य की रक्षा कर सकता था, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि परमर्दि की दुर्वलता तथा युद्ध-कौशल एवं साहस के अभाव में परिस्थिति और भी विगड़ गई थी।"

(20) त्रैलोक्यवर्मन (1203–1250 ई०)

परिमर्दि की 1203 ई० में मृत्यु के वाद उसका पुत्र त्रैलोक्यवर्मन शासक बना जिसने अत्यन्त संकुचित चन्देल-क्षेत्र पर शासन किया। उसके 8 शिलालेख मिले हैं। गर्द दानपत्र में उसका विरुद 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम-महेश्वर कालिंजराधिपति' कहा गया है।

मुसलमानों से संघर्ष—गर्द दानपत्र (1205 ई०) में त्रैलोक्यवर्मन को 'कालिंजराधिपति' कहना इस वात का सूचक है कि उसने शीघ्र ही मुसलमानों से कालिंजर दुर्ग हस्तगत कर लिया था। वीर्यवर्मन के अजयगढ शिलालेख से इसकी पुष्टि होती है। गर्द दानपत्र में दान-स्थलों—झाँसी, सैंगोर, विजावर, पन्ना तथा छत्तरपुर का उल्लेख यह सूचित करता है कि कालिंजर के अतिरिक्त चन्देलों ने इन स्थानों पर भी 1205 ई० तक पुनः अधिकार कर लिया था। मिनहाज के 'तवकात-ए-नसीरी' ग्रन्थ से विदित होता है कि 1233 ई० में मलिक नुसरत-उद्दीन तपासि ने ग्वालियर से कालिंजर पर आक्रमण किया और धन लूटा क्योंकि राय दुर्ग छोड़ कर भाग गया था। यह राय त्रैलोक्यवर्मन ही था। अतः कालिंजर पर चन्देलों का अधिकार होना इससे भी प्रमाणित होता है।

1. इलियट, खण्ड–2 (पृ. 231–232)
2. *Bose, N. S.* : History of Chandellas (p. 99)

कलचुरियों से संघर्ष—रेवा शिलालेख (1193 ई०) में विजयसिंह का ककरेदी (रेवा) पर अधिकार बतलाया गया है। डॉ. आर. डी. बनर्जी विजयसिंह को कलचुरि नरेश मानते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि रेवा प्रदेश पर कलचुरियों ने पुनः अधिकार कर लिया क्योंकि पहले यह चन्देलों के अधिकार में हो गया था। विजयसिंह के पुत्र अजयसिंह के एक अन्य रेवा शिलालेख (1212 ई०) से विदित होता है कि चन्देल नरेश त्रैलोक्यवर्मन ने इस कलचुरि प्रदेश पर अधिकार कर लिया। रेवा के अन्य दो शिलालेखों से भी इसकी पुष्टि होती है। इस प्रकार त्रैलोक्यवर्मन ने कलचुरियों के राज्य के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया।

अन्य विजयें—अजयगढ़ शिलालेख में त्रैलोक्यवर्मन द्वारा वसेक को जयदुर्ग का अधिकारी नियुक्त करना लिखा है तथा वसेक के छोटे भाई आनन्द द्वारा भील, सबरस तथा पुलिन्दों नामक जंगली कबीलों के विद्रोह-दमन का भी विवरण है।

राज्य-सीमा—त्रैलोक्यवर्मन की राज्य-सीमा पूर्व में रींवा व सोन नदी तक, पश्चिम में ललितपुर तक तथा उत्तर में बाँदा तक विस्तीर्ण थी। बाँदा में उसके दो सिक्के भी मिले हैं। त्रैलोक्यवर्मन के उत्तराधिकारी निर्बल सिद्ध हुए तथा चन्देलवंश का पतन हो गया।

(21) चन्देलवंश के परवर्ती शासक

त्रैलोक्यवर्मन के पश्चात् कुछ निर्बल शासक वीर्यवर्मन (1250–1286 ई.) भोजवर्मन (1286-1288 ई.) तथा हम्मीरवर्मन (1288-1310 ई.) हुए। साक्ष्यों के अभाव में इनके राज्य-काल के तथ्य विदित नहीं हैं। चन्देल-वंश का यह पतन-काल था।

सती अभिलेखों से चन्देलों का राज्य 13वीं शताब्दी के अंत तक बना रहना प्रकट होता है। इनके अधिकार में अजयगढ़, कालिंजर, दमोह तथा जबलपुर स्थान थे। मुस्लिम साक्ष्यों में मुसलमानों की विजय का उल्लेख होते हुए भी 1540 ई. तक चन्देलों का कालिंजर व अजयगढ़ में शासक बना रहना प्रकट होता है। डॉ. स्मिथ के अनुसार 1545 ई. में महोबा व कालिंजर के चन्देल शासक कीरतराय की पुत्री दुर्गावती का विवाह गढ़मण्डल के राजा दलपत सा से हुआ था। शेरशाह ने 1545 ई. में जब कालिंजर का घेरा डाला तो यही चन्देल नरेश कीरतराय मारा गया था। इसके बाद चन्देल मध्य भारत में केवल जमींदारों की स्थिति में अवशिष्ट रहे। वस्तुतः हम्मीरवर्मन के बाद चन्देलों का उत्तरी भारत की राजनीति में कोई योगदान नहीं रहा।

चन्देलों का शासन-प्रबन्ध

(The Administration of Chandelas)

डॉ. बोस[1] ने निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत चन्देलों के शासन-प्रबन्ध का विवरण दिया है—

1. पूर्वोक्त (पृष्ठ 116–150)

राजा—चन्देल शासन-व्यवस्था में राजा ही राज्य का प्रभुसत्तासम्पन्न अधिपति होता था। प्राचीन भारतीय आदर्शों के अनुकूल राजा राज्य करते थे। एक शिलालेख में चन्देल राजा के गुणों में क्षमाशीलता, कूटनीतिज्ञता, विधिविशेपज्ञता, धैर्य तथा महत्वाकांक्षा का उल्लेख किया गया है। खजुराहो शिलालेख में हर्प को विधि से सदैव भय खाते हुए बतलाया गया है तथा धंग का भी ऐसा ही चित्रण किया है। अतः राजा प्रभुसत्तासम्पन्न होते हुए भी विधि तथा लोकमत का आदर करता था। परमर्दि द्वारा मुसलमानों से असम्मानसूचक सन्धि-प्रस्ताव को उसके मन्त्री अजयदेव ने नहीं माना था।

राजा अपनी सेना का प्रमुख सेनापति था तथा प्रमुख युद्धों का स्वयं संचालन करता था। विद्याधर का मुसलमानों के विरुद्ध तथा कीर्तिवर्मन का लक्ष्मीकर्ण के विरुद्ध स्वयं संचालन करना इस बात के प्रमाण हैं।

राजा का पद पैतृक होता था किन्तु निःसन्तान होने पर उसका छोटा भाई या चाचा राजा बनता था। चन्देल शासकों की राजमहिषी का शासन में महत्त्व इस तथ्य से प्रकट होता है कि परमर्दि की रानी मल्हनदेवी ने पृथ्वीराज चौहान से सन्धि-वार्त्ता की थी। वीर्यवर्मन की रानी कल्याणदेवी का भी शासन में योगदान रहा था।

मन्त्री—शासन को सुचारु रूप से संचालित करने हेतु चन्देल शासक मन्त्री-मण्डल तथा अधिकारी वर्ग को नियुक्त करते थे। मन्त्रिपद पैतृक था। मन्त्रिमण्डल में 10 सदस्य होने के परम्परागत विधान का पालन होता था। ये मन्त्री थे—पुरोहित, सचिव, पंडित, अमात्य, कोषाधिकाराधिपति, धर्माधिकारी, सेनापति, भण्डागारिक, प्रतिहार, कायस्थ तथा दूत।

साम्राज्य मण्डलों में, मण्डल विषयों में तथा विषय ग्रामों में विभक्त थे। मण्डल या भुक्ति प्रशासन की सबसे बड़ी तथा ग्राम सबसे छोटी इकाई होती थी।

सेना—राजपूतकाल में युद्ध के लिए सेना-व्यवस्था पर विशेप ध्यान दिया जाता था। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार चन्देल सेना में लगभग 56000 अश्वारोही, 184000 पैदल सैनिक तथा 746 हाथी थे। कृष्ण मिश्र युद्ध में रथों का प्रयोग होना भी बतलाते हैं। अस्त्रशस्त्रों में तीर, कमान, भाले तथा तलवार प्रमुख थे। हाथियों पर युद्ध में विशेष महत्त्व दिया जाता था।

सेनापति सेना संचालन करता था। परमर्दि के सेनापति मदनपालशर्मन का नाम शिलालेख से विदित होता है। चन्देल अभिलेखों के अनुसार मुख्यमन्त्री ही सेना-व्यवस्था देखता था किन्तु उसके अधीन हाथी तथा अश्वारोही विभागों के भी प्रभारी होते थे। इस प्रकार सैनिक तथा सामान्य प्रशासन सम्मिलित थे। दुर्गों का राज्य की सुरक्षा-व्यवस्था में विशेष स्थान था। चन्देल शिलालेखों में राउत (राजपुत्र) का उल्लेख किया गया है जो सेना अधिकारी होता था। चन्देल अभिलेखों से युद्ध में

मारे गये सैनिकों को "मृत्युक-वृत्ति" देने का प्रचलन था। इस प्रकार चन्देल नरेश युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वालों को सम्मान देते थे।

दुर्ग—चन्देल प्रशासनिक तथा सैनिक व्यवस्था में परम्परानुसार दुर्गों को महत्व दिया जाता था। याज्ञवल्क्य, मनु, बृहस्पति तथा कौटिल्य द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुसार दुर्गों का निर्माण होता था। कालिंजर, अजयगढ़ तथा महोबा चन्देलों के प्रसिद्ध दुर्ग थे। चन्देलों का भाग्य समय-समय पर कालिंजर दुर्ग पर अधिकार पर निर्भर रहता था। जैजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) की भौगोलिक एवं सामरिक स्थिति के कारण भी दुर्गों का विशेष स्थान था। विन्ध्याचल, मनरेर तथा कैमूर पर्वत श्रेणियों की ऊँची चोटियों पर स्थित दुर्ग सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। दुर्गों की राज्य की सुरक्षा-व्यवस्था में प्रमुख भूमिका थी। दुर्गों के प्रशासक नियुक्त किये जाते थे। त्रैलोक्यवर्मन के शिलालेख में कायस्थ वंश के आनन्द को जयपुरा दुर्ग का प्रशासक बनाये जाने का उल्लेख है।

राजस्व व्यवस्था—राज्य के कोष तथा भण्डार के प्रमुख अधिकारी क्रमशः 'कोषाधिकाराधिपति' तथा 'भण्डागारापति' कहलाते थे। एक चन्देल ताम्रपत्र का रचयिता 'अक्षपटलिक' यशोभट्ट था। अक्षपटलिक लेखा तथा अभिलेखों का अधिकारी था। दानपत्रों से विदित होता है कि भाग, भोग, कर, हिरण्य तथा शुल्क राजस्व के मुख्य स्रोत थे। सामान्य राजकीय देय कर, भोग भूमि, वृक्ष, पशु आदि पर कर, शुल्क व्यापारियों से प्राप्त टैक्स तथा हिरण्य मुद्राओं या स्वर्ण के रूप में प्राप्त धन कहलाता था। कुछ शिलालेखों में अष्टभोग का उल्लेख है जिसमें निधि (खजाना प्राप्ति), निक्षेप (भूमि की पेशगी रकम), वारि (जल), अस्मन (रत्न तथा खान), अक्षिणि (वास्तविक अधिकार), अगमि (भावी लाभ), सिद्ध (काश्त) तथा साध्य (बंजर भूमि) पर कर सम्मिलित थे। चरखारी दानपत्र में चन्देलों द्वारा इनके अतिरिक्त दण्ड (जुर्माना) तथा दाय (मृत निःसन्तान व्यक्ति की जायदाद) वसूल करने का भी उल्लेख है।

अभिलेखों से यह भी विदित होता है कि राज्य में विभिन्न कृषि तथा खान उत्पादन सामग्री पर भी कर लिया जाता था। चन्देलों के समय लोगों की आर्थिक स्थिति सम्पन्न थी। सुन्दर मन्दिरों, विशाल सरोवरों तथा जलाशयों एवं खजुराहो, कालिंजर, महोबा, अजयगढ़ आदि दुर्गों का निर्माण चन्देल शासकों की सम्पन्न वित्तीय स्थिति के सूचक हैं। चंदेल-कोष के अपार धन का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि कालिंजर की लूट का पाँचवाँ भाग 25 लाख मुद्राएँ महमूद गजनवी ने प्राप्त की थी।

मित्र-राज्य—प्राचीन भारतीय प्रशासन में राज्य के सात तत्वों में स्वामिन (राजा), अमात्य (मन्त्री), जनपद या राष्ट्र (साम्राज्य), दुर्ग, कोष (राजस्व), दण्ड (सेना) तथा मित्र की गणना की जाती है। सातवाँ तत्व मित्र के अन्तर्गत दूसरे राज्यों के मित्र नरेश आते हैं। प्रतिहार साम्राज्य के पतन के बाद सभी अन्य

राज्यों की यह महत्वाकाँक्षा थी कि वे भारत के मध्य, उत्तरी तथा पश्चिमी क्षेत्र के सबसे शक्तिशाली राज्य बन जायें। ऐसी स्थिति में एक-दूसरे की मित्रता पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। चंदेल भी अपने सामन्तों के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों पर अधिक निर्भर रहते थे। विद्याधर को उसके कच्छपघात शासक अर्जुन ने कई अभियानों में उसकी सहायता की थी। भोज परमार तथा कलचुरि गांगेयदेव भी विद्याधर से मैत्री-सम्बन्ध रखते थे किन्तु यह सम्बन्ध भय पर आधारित था। गांगेयदेव द्वारा चंदेलों पर आक्रमण इस सम्बन्ध की वास्तविकता प्रकट कर देता है। कीर्तिवर्मन ने चालुक्य, परमार तथा पालों से संधियाँ की थीं जो उनके शत्रु लक्ष्मीकर्ण के विरुद्ध थी। संधि का प्रयोजन सिद्ध होते ही वह टूट जाया करती थी। चंदेल तथा गहड़वालों के मध्य मैत्री भी इसी प्रकार संदिग्ध थी। इस प्रकार परस्पर सन्धि तथा मैत्री पर तत्कालीन राजनैतिक स्थिति में निर्भर नहीं रहा जाता था।

चन्देलों के समय सामाजिक दशा
(The Social Condition During Chandelas Regime)

अभिलेखों के आधार पर तत्कालीन समाज की कुछ झलक प्राप्त होती है। समाज वर्ण व्यवस्था के अनुसार विभक्त था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा कायस्थ प्रमुख वर्ण थे। ब्राह्मणों को चन्देल शासक दान देते थे क्योंकि उनका समाज में सम्माननीय स्थान था। ब्राह्मण सेनापति, धर्माधिकरण आदि पदों पर कार्य करते थे। क्षत्रियों के लिए शिलालेखों में प्राय: 'राउत' शब्द प्रयुक्त हुआ है। क्षत्रिय अपने कुल तथा वश को अधिक महत्व देते थे। कायस्थ 11वीं सदी में जाति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। रेवा शिलालेख में उनके उद्भव का वर्णन है। कायस्थ शासन-कार्यो में अधिक निपुण थे। वैश्य व शूद्रों का उल्लेख शिलालेखों में कम हुआ है। समाज में स्त्रियों के विषय में अभिलेखों में कम उल्लेख है। आल्हाखण्ड में परमर्दिन की रानी की प्रशासनिक कार्यो में रुचि प्रदर्शित की गई है। विवाह अपने वर्ण में ही होते थे। सती प्रथा का प्रचलन था।

चन्देलों के समय धार्मिक दशा
(The Religious Condition During Chandelas Regime)

चन्देल शासक शिव और विष्णु के उपासक थे। उनके अभिलेखों में इनकी स्तुति की गई है। खजुराहो में अधिकांश मन्दिर इन्हीं देवताओं के हैं। सबसे बड़ा मन्दिर कंदरिया महादेव का है। विष्णु का चतुर्भुज मन्दिर प्रसिद्ध है। विष्णु के अन्य अवतार नरसिंह, वराह, वामन और कृष्ण की पूजा भी होती थी। कृष्ण मिश्र के नाटक प्रबोधचंद्रोदय में वैष्णव धर्म की व्याख्या की गई है। पार्वती, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र, कृष्ण, राम, ब्रह्मा तथा हनुमान की मूर्तियों तथा मन्दिरों का निर्माण भी किया गया था।

मुस्लिम आक्रमण के कारण हिन्दू संस्कृति तथा धर्म की रक्षार्थ प्रबल भावना

हिन्दुओं में पनप रही थी तथा सभी परस्पर मतभेदों को भुलाकर एकता के प्रयास कर रहे थे।

चन्देलों के समय अन्य धर्मों का भी आदर किया जाता था। खजुराहो में बौद्ध, जैन तथा हिन्दू तीनों धर्मों के मन्दिर तथा प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार चन्देल नरेश धर्म सहिष्णु थे।

चन्देलों की स्थापत्य कला (खजुराहो के मन्दिर)
(The Architecture of Chandelas : Khajuraho Temples)

चन्देलों का इतिहास भारतीय स्थापत्य कला में चन्देल वंश के योगदान के उल्लेख किए बिना अधूरा ही कहा जायेगा। अतः उनकी स्थापत्य एवं मूर्ति कला की विशेषताओं का विवेचन किया जाना अपेक्षित है। अनेक विद्वानों ने चन्देल स्थापत्य कला का संक्षिप्त विवरण दिया है किन्तु डॉ. स्मिथ का मत है कि खजुराहो के चन्देल मन्दिरों का विवेचन एक पृथक ग्रंथ में सचित्र तथा विस्तार से किया जाना वांछनीय है।

खजुराहो में स्थापत्य कला का जो उत्कृष्ट प्रदर्शन मन्दिरों के निर्माण में अभिलेखों के आधार पर दसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में प्रारम्भ हुआ, वह सहसा ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में रुक गया। इसका कारण डॉ. आर. सी. मजूमदार[1] ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि कलचुरियों के उत्कर्ष तथा महमूद गज़नवी के आक्रमणों के कारण चन्देलों की स्थापत्य कला की साधना में व्यवधान पड़ा किन्तु ग्यारहवीं शताब्दी के दूसरे दशक में जब चन्देल पुनः शक्तिशाली बन गए तथा आज जो खजुराहो के मन्दिर चन्देलों के यश के प्रतीक के रूप में उपलब्ध होते हैं वे इसी अवधि में पूर्ण हुए। डॉ. बोस[2] का भी यही मत है—"अभिलेख तथा मन्दिरों की स्थापत्य कलाशैली से यह प्रकट होता है कि इन मन्दिरों का निर्माण 950 से 1050 ई. के मध्य हुआ जो धंग तथा विद्याधर का शासन-काल था।"

खजुराहो के प्रमुख चन्देल मन्दिर की संख्या लगभग 30 है। खजुराहो चन्देलों की धार्मिक राजधानी थी, अतः मन्दिरों का निर्माण यहीं कराया गया। ये मन्दिर अच्छी दशा में उपलब्ध हुए हैं क्योंकि भौगोलिक स्थिति के कारण मुस्लिम आक्रमणकारी इन्हें नष्ट नहीं कर सके। डॉ. स्मिथ[3] का मत है कि इन मन्दिरों का निर्माण चन्देल शासकों के आदेश से हुआ किन्तु पर्सी ब्राउन[4] की मान्यता है कि चंदेल शासकों ने केवल स्थापत्य कलाकारों तथा निर्माताओं को प्रश्रय दिया। चंदेलों के उत्थान काल से आरम्भ हो कर उनके पतनोन्मुख होने के मध्य ही मन्दिरों का

1. *Dr. Majumdar R.C.* : The Struggle for Empire (p. 565)
2. *Dr. Bose N. S.* : History of Chandellas (p 162)
3. *Dr. Smith V.* : Fine Art in India & Ceylone (p. 116)
4. *Percy Brown* : Indian Architecture (p. 133)

निर्माण किया जाना इस तथ्य का सूचक है कि चंदेल शासकों ने ही इनका निर्माण कराया था।

खजुराहो के मन्दिरों की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन की संख्या तीन संप्रदायों—शैव, वैष्णव तथा जैन के मध्य समान विभक्त है। एक मन्दिर "घण्टाई मन्दिर" पहले मूर्ति की आकृति के कारण बौद्ध मन्दिर माना जाता था किन्तु वस्तुतः यह जैन मन्दिर ही है। इन सम्प्रदायों के मन्दिरों में बहुत ही सादृश्य पाया जाता है। विभिन्न सम्प्रदायों के मन्दिरों का निर्माण तत्कालीन चंदेल शासकों की धर्म-सहिष्णुता का ज्वलंत प्रमाण है। श्री फर्गुसन[1] के अनुसार, "इन मन्दिरों का निर्माण धर्मसहिष्णुता की पराकाष्ठा के युग में किया हुआ होना चाहिए, जब कि केवल स्पर्धा इस बात की थी कि स्थापत्य के कलाकार परस्पर सबसे सुन्दर तथा भव्य मन्दिर बनाने की प्रतियोगिता में भाग ले रहे थे।" डॉ. स्मिथ[2] तथा बैंजमिन रोलैंड[3] ने भी इसी मत की पुष्टि करते हुए कहा है कि इस स्थापत्य-कला-शैली की विविधता का आधार साम्प्रदायिक मतभेद या द्वेष नहीं था बल्कि वह काल तथा स्थानगत विशेषता के कारण था। वास्तव में यह कथन उचित है क्योंकि कुछ मन्दिरों में तो इतना साम्य है कि केवल उनकी मूर्ति को देखने पर ही विदित होता है कि वे किस सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।

खजुराहो मन्दिरों की स्थापत्य-शैली—खजुराहो के मन्दिरों की स्थापत्य-कला अन्य स्थानों के हिन्दू मन्दिरों से भिन्न है। ये मन्दिर अन्य मन्दिरों की भाँति प्राचीर के अन्दर स्थित नहीं है बल्कि जमीन ऊँचे उठे हुए समतल मंचों पर अवस्थित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिरों, विशेषकर दक्षिण भारत के मन्दिरों की तुलना में अत्यन्त विशाल आकार के नहीं हैं किन्तु वे अपनी नयनाभिराम शिल्प-योजना तथा समानुपाती निर्माण-शैली के कारण श्लाघनीय हैं। खजुराहो के मन्दिर प्रायः तीन खण्डों में विभाजित हैं—(1) गर्भगृह (Cella), (2) सभा मण्डप तथा अर्ध-मण्डप (Portico)। इनके अतिरिक्त गर्भगृह के अन्दर एक अंतः गर्भगृह तथा एक महामण्डप गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ सहित बना हुआ है। पर्सी ब्राउन के अनुसार इस आश्चर्यजनक शिल्प-योजना का कारण इन मन्दिरों के निर्माताओं को इनकी आवश्यकताओं का अनुभव था।

इन मन्दिरों के बाह्य पक्ष के तीन प्रमुख भाग हैं—(1) उच्च मंच की मंजिल, (2) मंच पर दीवारें तथा अन्तःकक्षों के दरवाजे तथा (3) सबके ऊपर छतों के आकार की ऊपर की ओर उठते हुए शिखर में परिणति। मन्दिरों के ऊपरी भाग की विशेषता ऊँचाई की ओर प्रसार है। मन्दिर प्रत्येक कक्ष की

1. *Fergusson J.* : History of Indian and Eastern Architecture (p. 49–50)
2. *Dr. Smith* : Fine Art in India and Ceylone (p. 113)
3. *Benjamin Roland* : The Art & Architecture of India (p. 173)

पृथक छत है जिस पर सर्वोच्च शिखर है, उससे कुछ नीचा केन्द्रीय सभा मण्डप है तथा सबसे कम ऊँचाई तथा आकार का अर्धमण्डप है। बैंजेमिन रोलैण्ड का कथन है कि, "भारतीय आर्य स्थापत्य कला की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष खजुराहो मन्दिरों में हुआ।" पर्सी ब्राउन का भी मत है कि भारतीय आर्य-शैली के मन्दिरों के शिखरों का उत्कृष्ट उदाहरण खजुराहो मन्दिर प्रस्तुत करते हैं। "खजुराहो मन्दिरों के शिखरों का सौन्दर्य मुख्यतः उनके उरसरिंगों में है जो छोटी मीनारों की भाँति मुख्य शिखर से जुड़े हुए हैं।"[1] हैवल महोदय[2] का कथन है कि ये शिखर मन्दिर में प्रतिष्ठित देवता की विश्वव्यापी सार्वभौम सत्ता के प्रतीक हैं। डॉ० बोस[3] इन मन्दिरों को पृथ्वी का अभिन्न अंग होते हुए पर्वत-श्रेणियों की भाँति उच्च चोटी तक उठ कर प्रकृति के साथ एकाकार की अनुभूत जागृत करता हुआ मानते हैं।

खजुराहो मन्दिरों की दीवालों पर समानान्तर मूर्ति-पट्टिकाएँ उनके सौंदर्य तथा भव्यता में वृद्धि करती हैं। पर्सी ब्राउन के अनुसार ये मूर्तियाँ सजीव मानव जीवन के दृश्य प्रस्तुत करती हैं जिनकी कला अद्वितीय है। इन मन्दिरों का केवल एक ही द्वार पूर्व की ओर स्थित है जिस तक सीढ़ियों से चढ़ कर जाया जा सकता है। दरवाजे भी स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने हैं जो पत्थर में उत्कीर्ण होने की अपेक्षा हाथी दाँत पर नक्काशी या लटके हुए परदों के समान प्रतीत होते हैं। मन्दिर के मण्डप मूर्तियों से अलंकृत हैं। मण्डप छोटे आकार के हैं और ऊपरी भाग का भार चार स्तम्भों तथा चार पट्टियों पर आधारित हैं। ये पट्टियाँ छत के निचले भाग में एक वर्ग की आकृति बनाती हैं। स्तम्भ तथा निचली छतें सुन्दर मूर्तियों से सुसज्जित हैं। सभी कक्षों की छतों के नीचे अनेक मनोहर आकृतियाँ हैं जो अन्धकार रहने के कारण कठिनाई से दृष्टिगत हो पाती हैं।

कण्डारिया महादेव का मन्दिर—खजुराहो में सबसे भव्य मन्दिर कंडारिया महादेव का है जो 109 फीट लम्बा, 60 फीट चौड़ा तथा 116½ फीट ऊँचा है। इसके छः भाग हैं—अर्धमण्डप, सभा भवन, महामण्डल, ड्योढ़ी, गर्भगृह तथा आच्छादित मार्ग। मन्दिर का शिखर अत्यन्त भव्य तथा सुन्दर है जो अपनी आकृतियों के छोटे-छोटे शिखरों की आवृत्ति से निर्मित है। छतों के निचले भाग तथा दीवालों पर कलात्मक मूर्तियाँ हैं। कनिंघम के अनुसार अन्दर की मूर्तियों की संख्या 226 तथा बाहर की 646 हैं जिनमें अधिकांश 2½′×3′ आकार की हैं। गर्भगृह में शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित है और उसके दोनों ओर ब्रह्मा तथा विष्णु की मूर्तियाँ हैं जो धर्मसहिष्णुता की प्रतीक हैं।

चतुर्भुज मन्दिर—खजुराहो का चतुर्भुज मन्दिर वैष्णवों का प्रमुख मन्दिर

1. *Percy Brown* : Indian Architecture (p. 134)
2. *Havell* : A Handbook of Indian Art (p. 68)
3. *Dr. Bose N. S.* : History of Chandellas (p. 165)

है। मन्दिर में चार भुजा तथा तीन शिरों वाली विष्णु की मूर्ति प्रतिष्ठित है जिसका मध्य शिर मानव का तथा दो शिर सिंह के हैं जो विष्णु के नरसिंहावतार का सूचक हैं। मन्दिर के शिलालेख से विदित होता है कि इसका निर्माण धंग के शासन-काल में 954 ई० में पूर्ण हुआ। इसकी लम्बाई 85 फीट तथा चौड़ाई 44 फीट है और इसकी स्थापत्य-शैली कण्डारिया मन्दिर के समान है। इस मन्दिर तथा अन्य कुछ मन्दिरों में मंच के चारों कोनों पर चार छोटे मन्दिर भी बने हुए थे जो यह प्रकट करते हैं कि ये मन्दिर 'पंचायतन' प्रकार के थे। अन्य मन्दिर पृथ्वी के समानान्तर तथा लम्बाकार सात खण्डों में विभाजित हैं किन्तु इस मन्दिर में केवल पाँच खण्ड अथवा पंचरथ हैं। मन्दिर के मण्डप की छत उड़ीसा शैली के पीठों की भाँति बनी हुई है क्योंकि इसकी आकृति पिरेमिड तथा शीर्ष घंटे के समान है।

पार्श्वनाथ मन्दिर—तीसरा प्रमुख मन्दिर जैन सम्प्रदाय का पार्श्वनाथ मन्दिर है। यह भी अत्यन्त सुन्दर तथा भव्य है। इसकी लम्बाई तथा चौड़ाई क्रमशः 62 फीट तथा 31 फीट है। इसकी स्थापत्य-शैली तथा निर्माण-योजना अन्य उक्त हिन्दू मन्दिरों के समान है। अन्तर केवल इतना है कि मन्दिर में जैन उपासना-विधि के अनुकूल प्रावधान किया गया है। यह लम्बाकार आकृति का है जिसके दोनों ओर उभरे हुए छोटे शिखर हैं – सामने का शिखर मण्डप का है और पीछे का एक छोटे मन्दिर का है। यद्यपि सभागृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है किन्तु अन्य मन्दिरों की भाँति बगल में उभरे हुए दीर्घायुक्त गवाक्ष नहीं हैं जिसके कारण मन्दिर की दीवालों में कोई रिक्त स्थान नहीं है। केन्द्रीय रथ की बगल में दोनों ओर जालीदार गवाक्ष प्रकाश तथा वायु के प्रवेश हेतु बने हुए हैं। अन्य मन्दिरों की भाँति इसमें भी सुन्दर मूर्तियाँ मानव आकृति की विभिन्न मुद्राओं में प्रस्थापित की हुई हैं। इस प्रकार डॉ. मजूमदार[1] के शब्दों में—"खजुराहो के मन्दिरों में जो रिक्त तथा ठोस अंशों की तुलनात्मक विशेषता है, उसके अभाव में यह मन्दिर एक स्थूल नीरस दृश्य प्रस्तुत करता है जिसे मूर्तियों की सुन्दर आकृतियाँ भी कम नहीं कर पाती।"

अन्य मन्दिर—खजुराहो के अन्य प्रमुख मन्दिरों में चौंसठ योगिनी का मन्दिर, महादेव मन्दिर, देवी जगदम्बा मन्दिर तथा घण्टाई मन्दिर हैं। सभी की शिल्प-शैली लगभग समान है। घण्टाई मन्दिर में 14 फीट ऊँचे स्तम्भों पर घण्टों की आकृति बनी हुई है जिन पर छत आधारित है। स्तम्भ तथा मुख्य द्वार सुन्दरता से अलंकृत हैं। खजुराहो के अतिरिक्त चन्देलों ने महोबा में भी कुछ मन्दिरों का निर्माण कराया था। महोबा के निकट रहिल्य तथा कक्रमढ़ ग्राम में कक्र मन्दिर 103 फीट लम्बा तथा 42 फीट चौड़ा है। कक्र शिव का ही दूसरा नाम है क्योंकि मन्दिर में शिवलिंग की पीठिका बनी हुई है। इस मन्दिर की शिल्प-कला खजुराहो के मन्दिरों से निकृष्ट है।

1. *Dr. Majumdar R. C.* : The Struggle for Empire (p. 569)

मूर्ति-कला (Iconography)

खजुराहो मन्दिरों की विशेष उल्लेखनीय कला उसकी मूर्तियों के निर्माण में है तथा इन मूर्तियों से ही वे अलंकृत हैं। डॉ. स्मिथ का कथन है कि इन मन्दिरों के फोटोग्राफ्स में दिखने वाली आकृतियों से भी अधिक आकृतियाँ प्रस्थापित हैं। ली वौन का मत है कि इन मूर्तियों का निर्माण मन्दिरों की भव्य स्थापत्यकला के अलंकरण के रूप में हुआ है, न कि कलाकारों की व्यक्तिगत कला के प्रदर्शन के रूप में।

खजुराहो भौगोलिक दृष्टि से केन्द्र में स्थित है जहाँ पर वह पूर्व अर्थात् बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा और पश्चिम अर्थात् गुजरात तथा राजस्थान की मूर्ति-कला के प्रभावों को अपनी कला में आत्मसात कर सका। स्टैला क्रैमरिश[1] ने मध्य भारत की मूर्तिकला की दो शैलियाँ बतलाई हैं—चन्देल शैली तथा हैहय शैली। चन्देल तथा हैहयवंशी शासकों ने इन शैलियों के विकास में कोई हस्तक्षेप न करते हुए उन्हें प्रश्रय दिया। चन्देल शैली की मूर्तिकला खजुराहो और महोबा से पश्चिम में भरतपुर तक तथा पूर्व में प्रयाग तक विस्तीर्ण है। हैहय शैली का विस्तार प्रयाग से जबलपुर तक है।

खजुराहो की मूर्तियों को रिक्त स्थानों तथा कोणों पर उत्कीर्ण किया गया है जहाँ वे कठिनाई से दृष्टिगत होती हैं। क्रैमरिश का मत है कि मन्दिर के भक्तों को इन्हें दिखाने के लिए नहीं निर्मित किया गया किन्तु उनके अस्तित्व की अनुभूति मात्र कराने के लिए किया गया है। खजुराहो की मूर्तियों में पशुओं—शार्दूल (सिंह), दुर्गा का वाहन, वृष शिव का वाहन, मूषक गणेश का वाहन, हनूमान और गरुड़—को उत्कीर्ण किया गया है। पशु आकृतियाँ सिंधु-घाटी सभ्यता की कला को पुनर्जीवित सी करती प्रतीत होती है। ये पशु आकृतियाँ सम्बन्धित देवताओं के साथ में न होने से यह प्रकट करती है कि ये स्वयं अपने देवताओं का प्रतीक है।

खजुराहो की सहज खड़ी मूर्तियाँ सजीवता तथा भावभंगिमा की दृष्टि से अनुपम हैं। इनमें सर्वोत्कृष्ट मैथुन क्रिया में रत स्त्री-पुरुष की मूर्तियाँ हैं। इनके शिरों का झुकाव व स्त्रियों की कमान के समान झुकी हुई कमर सजीवता की प्रतिमूर्ति बनकर मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. धंग तक चन्देल सत्ता के उद्भव और विकास को रेखांकित कीजिये। (1974)
   Give a sketch of the rise and development of Chandella power upto Dhanga,
2. विद्याधर चन्देल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (1974)
   Write short note on Vidyadhar Chandela.

1. *Stella Kramrisch* : Indian Sculpture (p. 8)

3. मुसलमान आक्रान्ताओं के विरुद्ध विद्याधर चन्देल की भूमिका का समालोचित परीक्षण कीजिये। (1975)
   Examine critically the role of Vidyadhar Chandela against Muslim aggressors.
4. यशोवर्मन चन्देल पर टिप्पणी लिखिये। (1975)
   Write short note on Yashovarman Chandel.
5. धंगदेव के खजुराहो अभिलेख के प्रकाश में यशोवर्मन की विजयों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये। (1976)
   Discuss critically the conquests of Yashovarman in the light of Khajuraho Inscription of Dhangadeva.
6. चन्देल राजवंश के इतिहास में धंग के राज्यकाल के महत्त्व का विवेचन कीजिये। (1977)
   Discuss the importance of the reign of Dhanga in the history of Chandela Dynasty.
7. खजुराहो मन्दिर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (1977)
   Write short note on Kbajuraho Temples.
8. चंदेल वंश की उत्पत्ति तथा उनके मूल स्थान का विवेचन कीजिये।
   Discuss the origin and original home of Chandelas.
9. चंदेलों के शासन-प्रबन्ध की विशेषताएँ बतलाइए।
   Describe the important features of Chandela administration.
10. परमर्दिदेव का चाहमानों तथा मुसलमानों से संघर्ष का वर्णन कीजिये।
    Describe the conflict of Parmardideva with Chahmans and Muslims.
11. "निस्सन्देह हर्ष ने चंदेलवंश की भावी महानता की नींव डाली।" डॉ. बोस के इस कथन की समीक्षा कीजिये।
    "Endoubtedly Harsh laid the foundation of the future greatness of Chandela Dynasty."
    Discuss the statement of Dr. Bose.
12. चंदेल यशोवर्मन की दिग्विजय की विवेचना कीजिये।
    Critically examine the "Digvijaya" of Yashovarman Chandel.
13. चंदेल तथा महमूद गजनवी के संघर्ष में विद्याधर की भूमिका स्पष्ट कीजिये।
    Explain the role of Vidyadhar in the conflict of Chandelas against Mahmood Gazanavi.
14. मदनवर्मन ने चंदेल प्रतिष्ठा को पुनः किस प्रकार प्रतिष्ठित किया ?
    How did Madanvarman reestablish the prestige of Chandelas.
15. त्रैलोक्यवर्मन का चंदेल वंश के पतन में क्या उत्तरदायित्व है ?
    How far was Trilokyavarman responsible for the downfall of Chandelas.

16. चंदेल वंश के विद्याधर का मूल्यांकन कीजिए। (1978)
Give your own estimate of Vidyadhar of Chandela Dynasty.
17. धंग चंदेल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (1978)
Write short note on Dhanga Chandela.
18. विद्याधर चंदेल तथा कन्नौज पर महमूद के आक्रमण पर टिप्पणी लिखिये। (1976)
Write short notes on Vidyadhar Chandela and Mahmood's attack on Kanauj.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. Dr. Bose N. S. : History of Chandellas.
2. Dr. Ray H. C. : Dynastic History of Northern India. Vol. I & II.
3. Dr. Majumdar R. C. : The Struggle for Empire.
4. Vaidya : Downfall of Hindu India.
5. R. S. Tripathi : History of Kanauj to the Muslim Conquest.
6. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूतकाल
7. पाण्डेय, वी. सी. : उत्तर भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
8. पाठक, वी० एन० : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास
9. डॉ. मनराल व डॉ. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास
10. केशवचंद्र मिश्र : चंदेल और उनका काल
11. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास

5

चाहमान वंश—विग्रहराज चतुर्थ तथा पृथ्वीराज तृतीय एवं उनकी शासन-व्यवस्था के विशेष संदर्भ में

(Chahmans with special reference to Vigrahraj IV and Prithviraj III and their administration)

चाहमान वंश की गणना राजपूतों के अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा यशस्वी राजवंशों से की जाती है। उत्तरी भारत में गुर्जर-प्रतिहारों के साम्राज्य के पतन के पश्चात् चाहमान वंश ही विशाल साम्राज्य की स्थापना कर प्रमुख शक्ति बन गया था। इस वंश के राजनैतिक इतिहास का विवेचन करने से पूर्व चाहमानों की उत्पत्ति एवं उनके मूल निवास-स्थान के विषय में अवगत हो जाना आवश्यक है। यद्यपि प्रथम अध्याय में राजपूतों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में इस प्रकरण से सम्बन्धित तथ्य प्रकट किये जा चुके हैं किन्तु पुनः इनका सिंहावलोकन किया जाना अपेक्षित है।

चाहमानों (चौहानों) की उत्पत्ति
(Origin of Chahmans)

अन्य राजपूत राजवंशों की भाँति चाहमानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में काफी मतभेद है। श्री जे० एन० आसोपा[1] ने इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया है—

1. **सूर्य से उत्पत्ति**—बारहवीं शताब्दी में जयानक द्वारा रचित ग्रन्थ "पृथ्वीराज विजय" तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में नयनचन्द्र सूरी कृत "हम्मीर महाकाव्य" में चाहमानों की उत्पत्ति सूर्य से बतलाई गई है। जब ब्रह्मा ने सूर्य की उपासना की तो चाहमान सूर्य-मण्डल से उत्पन्न हुए। सोलहवीं शताब्दी में चन्द्रशेखर द्वारा रचित "सुरजन चरित" में भी इसी प्रकार का वर्णन किया गया है। अजमेर स्थित "ढाई दिन का झोंपड़ा" तथा पृथ्वीराज तृतीय के वेदला शिलालेखों में भी चाहमानों

1. *Asopa J. N.* : Origin of Rajputs (p. 87–98)

की सूर्य से उत्पत्ति बतलाई गई है। किन्तु सूर्य से उत्पत्ति का मत बारहवीं शताब्दी से पूर्व प्रचलित नहीं था। डॉ० गौ० ही० ओझा ने इस मत की पुष्टि की है।

डॉ० दशरथ शर्मा[1] इस मत को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि चाहमानों को सूर्यवंशी कहना उन्हें विशुद्ध क्षत्रिय वंश का सिद्ध नहीं करता क्योंकि प्रथम चौहान शासक का जन्म कलियुग के प्रारम्भ होने के बाद हुआ जब बुद्ध विष्णु के अवतार हुए तथा म्लेच्छों ने भारत पर आक्रमण करने आरम्भ किये थे। इस प्रकार वह सूर्यवंशी होने के लिए प्रथम सूर्यवंशी शासक इक्ष्वाकु की बहुत बाद की सन्तान हुई। इक्ष्वाकु का कोई उल्लेख 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'सुरजन चरित' ग्रन्थों में नहीं किया गया, उसे केवल सूर्य देवता का पुत्र कहा गया है। डॉ० दशरथ शर्मा का तर्क है कि सुग्रीव, अश्विनीकुमार, रावण तथा यम भी सूर्य के पुत्र थे किन्तु उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रिय नहीं माना जाता। इसी प्रकार चाहमान भी सूर्यवंशी क्षत्रिय नहीं थे।

डॉ० आर० बी० सिंह[2] ने सेवाड़ी ताम्रपत्र (1119 ई०) तथा बिजोलिया शिलालेख के आधार पर क्रमशः इन्द्र तथा विप्रगोत्र शब्दों को चाहमानों का सूर्यवंशी होने का सूचक माना है। डॉ० दशरथ शर्मा इन तर्कों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि सूंढा पर्वत तथा आबू पर्वत शिलालेखों में क्रमशः प्रथम चाहमान पुरुष को वत्स के समान नेत्रों वाला तथा सूर्य व चन्द्र वंशियों की समाप्ति के बाद वत्स द्वारा चन्द्र से उत्पन्न व्यक्ति माना है। श्री आसोपा का भी कथन है कि इक्ष्वाकु वंश में वत्स नाम का कोई ऋषि नहीं हुआ। अतः चाहमानों की सूर्यो से उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती।

2. चन्द्र से उत्पत्ति—चाहमानों की चंद्र से उत्पत्ति का आधार उक्त उल्लिखित लुंतिगदेव का आबू शिलालेख (1320 ई०) है। इसमें केवल चाहमान वंश की उत्पत्ति चन्द्र की सहायता से वत्स ने की किन्तु चाहमानों को चन्द्रवंशी नहीं कहा गया। दूसरा साक्ष्य पृथ्वीराज द्वितीय का हाँसी शिलालेख है जिसमें चाहमानों को सूर्यवंशी कहा है किन्तु टॉड महोदय का कथन है कि 36 राजपूत वंशों में केवल अग्निकुल प्रमुख है तथा अन्य कुल ब्राह्मणों की उत्पत्ति है, अतः चाहमान प्राचीन चन्द्रवंशी क्षत्रिय नहीं हैं। श्री हरनाम सिंह चौहान अहिछत्र को पांचाल से समीकरण कर चाहमानों की उत्पत्ति 'महाभारत' के राजा द्रुपद से मानते हैं किन्तु श्री आसोपा इसे अनुमान बतलाते हुए कहते हैं कि यह निराधार है क्योंकि पांचाल देश में कोई चाहमान अभिलेख उपलब्ध नहीं हुआ। अतः चन्द्रवंशी मत सूर्यवंशी मत से भी बाद में प्रचलित हुआ जिसका कोई ठोस आधार नहीं है।

3. इन्द्र से उत्पत्ति—सेवाड़ी ताम्रपत्र (1119 ई०) के आधार पर

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 6)
2. *Singh R. B.* : History of the Chahmans (p. 11)

चाहमानों की उत्पत्ति इन्द्र से कुछ लोग मानते हैं किन्तु इस अभिलेख के शब्द "प्राचीदिक्पति" का अर्थ इन्द्र न होकर सूर्य अधिक उपयुक्त है। अतः यह मत मान्य नहीं है।

4. **विष्णु से उत्पत्ति**—चाहमानों की विष्णु से उत्पत्ति का यह मत अग्नि से उत्पत्ति के मत के समान है क्योंकि विष्णु ने एक 'पुतली' बनाकर अग्नि में डाल दी जो चतुर्भुज चौहान वीर के रूप में प्रकट हुई। किसी चारण या भाट ने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने हेतु इस प्रकार के दैवी एवं चमत्कारिक मत का प्रचलन कर दिया प्रतीत होता है जो केवल कपोल-कल्पित है।

5. **विदेशी उत्पत्ति**—चाहमानों की विदेशियों से उत्पत्ति के मत का समर्थन अधिकाँश यूरोपीय तथा कुछ देशी विद्वान् करते हैं। टॉड ने सर्वप्रथम चाहमानों को तक्षक (सिथियन) विदेशी जाति का बतलाया जिसने भारत पर आक्रमण किया था। श्री वी० ए० स्मिथ[1] चाहमानों को अन्य तीन राजपूत वंशों—प्रतिहार, परमार तथा सोलंकी (चालुक्य) से सम्बन्धित मानते हुए श्री विलियम क्रुक के इस कथन का समर्थन करते हैं कि, "अग्निकुल मिथक अग्नि द्वारा शुद्धीकरण रीति का सूचक है, यह घटना दक्षिणी राजस्थान की है जहाँ कि विदेशियों की अपवित्रता को अग्नि द्वारा दूर कर उन्हें हिन्दू वर्ण व्यवस्था में प्रविष्ट होने योग्य बनाया गया।"

डॉ० दशरथ शर्मा[2] उक्त मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि अग्निकुल सम्बन्धी मत पन्द्रहवीं शताब्दी की कल्पना है क्योंकि इस मत के समर्थक तथाकथित अग्निवंशी राजपूतों के शिलालेखों से अनभिज्ञ हैं। मण्डौर के प्रतिहारों को अभिलेखों में ब्राह्मण हरिश्चन्द्र का वंशज बतलाया गया है, परमारों को आबू क्षेत्र के वशिष्ठ ब्राह्मणों का तथा चाहमानों को वत्स गोत्र ब्राह्मणों का वंशज कहा गया है।

विदेशी उत्पत्ति के मत का समर्थन करते हुए डॉ० डी० आर० भण्डारकर का कथन है कि चाहमान मूलत: 'खजर' विदेशी जाति के थे जो विदेशी आक्रामकों के साथ उनके पुरोहित के रूप में भारत आये थे। इस मत का आधार 'वासुदेव बहमन' की मुद्रा (सिक्का) है। इस मुद्रा के पहलवी लेख में 'बहमन' को 'चहमान' पढ़ा जा सकता है। यह वासुदेव चहमान 'पृथ्वीराज विजय' तथा 'प्रबन्धकोशा' के अनुसार चाहमानवंश का संस्थापक था। वासुदेव विदेशी जाति का खजर था। बाद में खजर गुर्जर कहलाये।

डॉ० दशरथ शर्मा[3] इस मत से असहमति प्रकट करते हुए तर्क देते हैं कि सातवीं सदी की नागरी लिपि में तो बहमन को चहमान पढ़ा जा सकता है किन्तु

1. *Smith V. A.* : Early History of India (p. 412)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 7)
3. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 8)

ससैनियन-पहलवी में यह सम्भव नहीं है। अतः डॉ० भण्डारकर का मत निराधार सिद्ध होता है।

6. अग्नि से उत्पत्ति—चंदवरदाई के "पृथ्वीराजरासो" के आधार पर राजस्थान के भाट व इतिहासकारों ने चाहमानों को अग्निकुल का माना है। इस मत से सम्बन्धित आबू पर्वत पर अग्निकुल की कथा राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी प्रथम अध्याय में विस्तार से दी गई है। अतः उसकी पुनरावृत्ति करना उचित नहीं है। इस कथा की कुछ हेर-फेर करके चौहानों के वेदला (सिसाणा) अभिलेख, नैणसी री ख्यात, जोधराज के "हम्मीर रासो", सूर्यमल्ल के "वंश भास्कर" तथा "मैनपुरी के चौहानों का इतिहास" ग्रन्थों में पुनरावृत्ति की गई है।

डॉ० दशरथ शर्मा[1] इस मत की आलोचना करते हुए कहते हैं कि कोई बुद्धिमान व्यक्ति इस बात पर विश्वास नहीं करेगा कि अग्नि से भी कहीं वीर पुरुष उत्पन्न होते हैं किन्तु सूर्य तथा चन्द्रवंशी प्राचीन क्षत्रिय कुलों की भाँति अग्निवंश को भी *माना जा सकता है। यदि उसमें ऐतिहासिक तत्व हों। अग्निकुल मत के ईसा* सम्वत् आरम्भ होने के पूर्व के ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलते। "नवसाहसांक चरित" ग्रन्थ के आधार पर जिस प्रकार परमारों को अग्निकुल का माना जाने लगा उसी प्रकार भाटों ने चाहमानों के विषय में भी कल्पना कर ली। परमारों के सम्बन्ध में अग्निकुल के मत का आधार 'रामायण' में शकों, पहलवों, कम्बोजों तथा अन्य अनार्य जातियों को वशिष्ठ द्वारा विश्वामित्र के विरुद्ध युद्ध करने हेतु उत्पन्न करने की कथा है। अतः यह मत नितान्त कपोल-कल्पित तथा निराधार है।

7. ब्राह्मणों से उत्पत्ति—चाहमानों की ब्राह्मणों से उत्पत्ति निम्नांकित तीन अभिलेखों के आधार पर मानी जाती है—

(क) चाहमान वंश का दूसरा शासक सामन्त बिजोलिया शिलालेख (1170 ई०) में वत्स गोत्री ब्राह्मण बतलाया गया है। डॉ० डी० आर० भण्डारकर ने इसके आधार पर चाहमानों की उत्पत्ति ब्राह्मणों से स्वीकार की किन्तु बाद में 'वासुदेव बहमन' मुद्रा के अनुसार चाहमानों को विदेशी 'खजर' जाति से उत्पन्न माना। बिजोलिया शिलालेख उन सभी अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों से पुराना है जिनमें चाहमानों को सूर्यवंशी माना गया है।

(ख) जालौर के चौहानों के 1262 ई० के सूंढा शिलालेख में अंकित है कि हमान नामक वीर पुरुष के नेत्रों की आभा वत्स के नेत्रों के समान थी। इसका र्थ भी बिजोलिया शिलालेख के तथ्य से मेल खाता है।

(ग) लुन्तिगदेव के आबू पर्वत शिलालेख (1320 ई०) से विदित होता है कि जब सूर्य तथा चंद्रवंशियों का अन्त हो गया तब पूज्य वत्स ने चंद्रमा की सहायता से चाहमान नामक वीर योद्धाओं के वंश का निर्माण किया। इस अभिलेख से यह

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynastics (p. 4)

आशय प्रकट होता है कि वत्स गोत्रीय ब्राह्मणों ने शास्त्रों के स्थान पर शस्त्रों को ग्रहण कर लिया था। चन्द्रमा का उल्लेख इसलिए है कि ब्राह्मण चन्द्रमा को अपना स्वामी मानते हैं।

उपरोक्त मत की पुष्टि मुसलमान-चौहान लेखक 'जान' द्वारा रचित "कायमखान रासो" से होती है। जान का कथन है कि चाहमान जमदगन्य गोत्री वत्स का वंशज था। डॉ० भण्डारकर चाहमानों को विदेशी जाति के पुरोहित वर्ग से उत्पन्न मानते हैं। इसके प्रमाण स्वरूप वे विजोलिया शिलालेख को उद्धृत करते हुए यह तर्क देते हैं कि राजशेखर कवि (ब्राह्मण) का विवाह अवन्ति सुन्दरी नामक एक चौहान कुमारी से होना चाहमानों को ब्राह्मण सिद्ध करता है। डॉ० दशरथ शर्मा चाहमानों को विदेशी जाति का होना स्वीकार न कर उनकी उत्पत्ति ब्राह्मणों से मानते हैं। उनका कथन है कि उस समय अनुलोम विवाह वैद्य माने जाते थे, अत: डॉ० भण्डारकर का दूसरा तर्क उचित नहीं है। वे उपरोक्त शिलालेखों तथा 'कायमखान रासो' की साक्ष्य तथा चंद्रावती के चौहानों के अचलेश्वर शिलालेख के आधार पर चाहमानों की उत्पत्ति ब्राह्मणों से होना स्वीकार करते हैं क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों में पल्लव, कदम्ब तथा गुहिल वंशियों की भाँति चौहान भी ब्राह्मणवंशी होते हुए ब्राह्मण धर्म को त्याग कर क्षत्रिय धर्म अपनाने को विवश हुए थे। अतः यह अन्तिम मत ही तर्कसम्मत है। श्री जे० एन० आसोपा[1] 'चाहमान' शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि चाहमान एक भौगोलिक नाम है जो शाकम्भरी (साँभर) झील के चारों ओर (चहुमान) के क्षेत्र में रहते थे। इस क्षेत्र की अन्य जातियों के लोगों ने भी 'चाहमान' शब्द का प्रयोग अपने लिए किया। एक वंश 'चाहमान' से उत्पन्न होते हुए भी विभिन्न कार्यों को अपनाने के कारण इस क्षेत्र के लोग विभिन्न जातियों में विभक्त हो गये। कार्य के आधार पर जाति-परिवर्तन भारतीय संस्कृति का चिह्न रहा है। किन्तु मुसलमानों के भारत में आगमन के पश्चात् जाति-बन्धन कठोर हो गये।

चाहमानों का मूल निवास स्थान
(Original home of Chahmans)

चाहमानों के मूल निवास स्थान का उल्लेख विभिन्न नामों से भिन्न-भिन्न साक्ष्यों से प्रकट होता है। साहित्य-ग्रन्थ 'सुरथोत्सव' और 'सुकृतसंकीर्तन' तथा कुछ अभिलेखों में उनका मूल-स्थान सपादलक्ष और "शब्दार्थ-चिन्तामणि" के अनुसार बतलाया गया है। "पृथ्वीराज विजय" में वासुदेव चाहमान की राजधानी साँभर के पूर्व में निकट स्थित दिखाई गई है। हर्ष शिलालेख (973 ई०) में अंकित है कि चौहानों की प्राचीन राजधानी अनन्त प्रदेश (राजस्थान के सीकर नगर के निकटवर्ती

1. *Asopa J. N.* : Origin of the Rajputs (p. 98)

प्रदेश) में थी और यहीं पर चौहानों के वंश-देवता 'हर्षदेव' का मंदिर स्थित है। विजोलिया शिलालेख में भी 'सामन्त' अनन्त प्रदेश का सामन्त था तथा अहिछत्रपुर का निवासी था। "पृथ्वीराज विजय", "हम्मीर महाकाव्य" तथा "सुरजन चरित" ग्रन्थों में चाहमान की जन्म-भूमि पुष्कर मानी गई है। "स्कन्द पुराण" में इसे "शाखम्भर-सपादलक्ष" कहा गया है।

उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर डॉ० दशरथ शर्मा का कथन है कि—"इन साक्ष्यों में कोई अन्तर्विरोध नहीं होगा यदि हम यह निष्कर्ष निकालें कि चाहमानों का मल-स्थान वह प्रदेश है जो दक्षिण में लगभग पुष्कर से लगाकर उत्तर में हर्ष तक विस्तृत था। इस प्रदेश को जांगलदेश पुकारना उचित है क्योंकि इसमें प्रदेश के अनुकूल पीलू, करीर एवं शमी के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं तथा यह प्रदेश उस भू-भाग में सम्मिलित है जिसे स्कन्द पुराण के अनुसार "शाखम्भर-सपादलक्ष" कहा जाता है और मिनहाज-उल-सिराज ने जिसे सिवालिक के नाम से पुकारा है।" हर्ष शिलालेख में इसी प्रदेश को चाहमानों का मूल स्थान माना गया है तथा विजोलिया शिलालेख के अनुसार भी यह अनन्त-सामन्त (नागों के नरेश) का प्रदेश था। वासुदेव तथा प्रारम्भिक चौहान नरेशों की राजधानी भी शाखम्भरी (साँभर) थी। चौहान शासक नरदेव (अहिछत्रपुर के सामन्त का पुत्र) पूर्णतल्ल (जोधपुर के निकट पून्टला) में शासन करता हुआ बतलाया गया है। अतः अहिछत्रपुर पून्टला और साँभर के मध्य कोई स्थान था। इस प्रकार डॉ० दशरथ शर्मा का निर्दिष्ट क्षेत्र ही चाहमानों का उचित मूल निवास स्थान प्रतीत होता है। डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[1] का मत भी यही है कि, "चाहमान शासनान्तर्गत मरुस्थल प्रदेशों के लिए ये परिभाषाएँ एकदम ठीक बैठती हैं और चहमानों के जांगलदेश को शाखम्भरी-अजमेर क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्यत्र खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है।" श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय[2] डॉ. दशरथ शर्मा के मत से सहमत होते हुए कहते हैं कि चौहान शाखम्भर-सपादलक्ष प्रदेश में रहते थे जिसमें (स-पाद-लक्ष) सवा लाख गाँव थे। डॉ. सत्यप्रकाश[3] भी कथन है कि, "डॉ० दशरथ शर्मा की यह धारणा ठीक ही प्रतीत होती है कि मानों का उद्भव स्थल सम्भवतः उस क्षेत्र की सीमा में होगा जिसके दक्षिण में प्रदेश तथा उत्तर में हर्ष प्रदेश था।"

चाहमान वंश के प्रारम्भिक शासक
(Early Chahamn Dynasties)

चाहमान वंश की सपादलक्ष या जांगलदेश की शाखा के शासन की स्थापना के

1. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ० 438)
2. मालवीय, लक्ष्मीकांत : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 294)
3 [illegible] भारत का इतिहास–राजपूतकाल (पृष्ठ 143)

पूर्व कुछ निम्नांकित चाहमान वंशी शाखाओं के शासकों ने अन्यत्र भी अल्पावधि के लिए शासन किया था—

1. भृगुकच्छ (भड़ौंच) के चाहमान—प्राचीनतम शिलालेखों के आधार पर भड़ौंच के चाहमान शासकों का पता चलता है। हंसोट ताम्रपत्रों (756 ई०) के अनुसार नागावलोक के शासन में भृगुकच्छ नरेश भर्तृवद्ध द्वितीय ने अक्रूरेश्वर विषय (वर्तमान अंकलेश्वर तालुका) में एक ग्राम-दान किया। इसमें दानकर्ता की वंशावली निम्नानुसार दी गई है—

परम महेश्वर-महासामन्ताधिपति भर्तृवद्ध द्वितीय
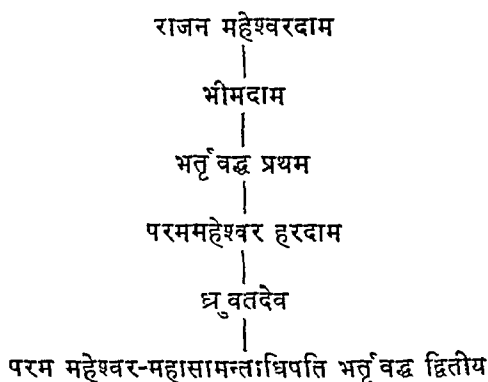
उक्त वंशावली में दान-दाता के विरुद 'महासामन्ताधिपति' तथा नागावलोक के शासन का उल्लेख यह प्रकट करता है कि भर्तृवद्ध द्वितीय नागभट्ट प्रथम (नागावलोक) गुर्जर-प्रतिहार नरेश का सामन्त था। वंशावली में अंकित अन्य शासकों के विरुद या विरुदरहित उल्लेख से उनके महत्त्वपूर्ण शासक होने का प्रमाण नहीं मिलता। डॉ० दशरथ शर्मा का अनुमान है कि सम्भवत: भड़ौंच इन शासकों के अधीन नहीं था क्योंकि 736 ई० तक इस पर गुर्जर नरेश जयभट्ट द्वितीय का अधिकार था। भर्तृवद्ध द्वितीय ही भड़ौंच (लाट प्रदेश) का पहला शासक था जिसने सिन्ध के अरब शासक जुनैद के भारत-आक्रमण के समय लाट नरेश पुलकेशिन से भड़ौंच पर अधिकार कर लिया था। यह उपलब्धि उसे अपने स्वामी गुर्जर-प्रतिहार नरेश नागभट्ट प्रथम की सहायता से मिली। यह घटना हंसोट ताम्रपत्र की तिथि 756 ई. के लगभग हुई। भर्तृवद्ध के उत्तराधिकारियों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। उसके बाद ही इस वंश का अन्त हो गया क्योंकि एक वर्ष बाद ही भृगुकच्छ के निकट जम्बूसर स्थान से राष्ट्रकूट मण्डलाधिपति कक्क प्रथम एक हंसोट ताम्रपत्र के अनुसार दान देता हुआ ज्ञात होता है।

2. भृगुकच्छ के परवर्ती चौहान शासक—लगभग 400 वर्ष पश्चात् पुन: विदित होता है कि भृगुकच्छ में एक अन्य चौहान वंश के शासक राज्य कर रहे थे। 1222 ई० के पूर्व धोलका के वाघेला लावण्यप्रसाद ने भड़ौंच के चौहान शासक

'सिम्ह्' के छोटे भाई सिन्धुराज को युद्ध में पराजित कर उसकी भुक्ति में स्थित खम्भात के वन्दरगाह पर अधिकार कर लिया। इस घटना के शीघ्रवाद देवगिरि के यादव शासक सिम्हण ने नर्मदा-तट पर सिन्धुराज को मार कर उसके पुत्र शंख को वन्दी वना लिया किन्तु लावण्य प्रसाद ने सिम्हण से प्रतिद्वन्दिता के कारण सिम्ह की सहायता कर शंख को मुक्त करा लिया तथा उसे अपने प्रदेश का शासक वनाया। सिम्ह तथा लावण्य प्रसाद में मित्रता हो गई।

1223 ई० के लगभग सिम्ह की मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा शंख शासक वना। वह खम्भात को पुनः हस्तगत करने का अवसर खोज रहा था। देवगिरि का सिम्हण चालुक्यों के विरुद्ध अभियान पर निकला तथा मारवाड़ के शासकों ने चालुक्य नरेश भीम द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह किया क्योंकि धोलका के लावण्य प्रसाद तथा उसके पुत्र का प्रभुत्व चालुक्यों पर बढ़ गया था। अतः उपयुक्त अवसर देखकर शंख ने खम्भात पर आक्रमण किया किन्तु उसे सफलता न मिली। भड़ौंच लौट कर शंख ने चालुक्यों के विरुद्ध एक संघ का निर्माण किया जिसमें सिम्हण तथा मालवा नरेश देवपाल सम्मिलित हो गये। इस समय दिल्ली का सुल्तान इल्तुतमिश मेवाड़ पर अधिकार करता हुआ गुजरात की ओर बढ़ रहा था। धोलका के मन्त्री वस्तुपाल ने शंख द्वारा निर्मित संघ में फूट डाल कर उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। शंख ने स्वयं ही खम्भात पर पुनः आक्रमण किया किन्तु इस वार भी वह पराजित हुआ तथा भड़ौंच पर वस्तुपाल के भतीजे लावण्य सिम्ह का 1241 ई० में अधिकार हो गया। इस प्रकार शंख इस चौहान वंश का अन्तिम शासक सिद्ध हुआ। डॉ. एच. सी. रे[1] के इस अनुमान से डॉ० दशरथ शर्मा सहमत हैं कि शंख तथा भृगुकच्छ का पूर्व शासक भर्तृवद्ध परस्पर सम्वन्धी थे।

3. धौलपुर (धवलपुरी) के चाहमान—दूसरा पुरातन चाहमान वंश धवलपुरी (धौलपुर) के शासक थे जिनकी वंशावली निम्नांकित है—

चण्डमहासेन के शिलालेख (842 ई.) से विदित होता है कि वह ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त उदार था। उसने धवलपुरी के निकट वन में सूर्य के मन्दिर का निर्माण कराया। चम्बल नदी के दोनों तटों पर वसे हुए म्लेच्छ उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। डॉ० रे इन म्लेच्छों का समीकरण सिन्ध के अरवों से करते हैं किन्तु मुहम्मद गोरी के आगमन से पूर्व अरवों सुदूरपूर्व में वस जाना असम्भावित होने के कारण डॉ० दशरथ शर्मा का मत है कि म्लेच्छ भील जाति के लोग थे जिन्हें हेमचंद्र

1. *Dr. Ray H. C.* : Dynastic History of Northern India (p. 1058)

के ग्रन्थ "शब्दार्थ चिन्तामणि" में भारत की म्लेच्छ जाति का माना है। डॉ० शर्मा का कथन है कि चण्डमहासेन सम्भवतः गुर्जर-प्रतिहार नरेश भोज प्रथम का सामन्त था जिसने नागभट्ट द्वितीय की सहायता से धौलपुर के प्रदेश पर अधिकार किया था। 833 ई० में उसकी मृत्यु के बाद चौहानों की इस शाखा का अन्त हो गया।

4. **प्रतावगढ़ के चाहमान**—प्रतावगढ़ के निकट घौंटावार्षिका (वर्तमान घोटार्सी) ग्राम के सूर्य मन्दिर से प्राप्त शिलालेख (946 ई०) से विदित होता है कि प्रतावगढ़ का चौहान शासक इन्द्रराज गुर्जर-प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल द्वितीय का महासामन्त था जिसने इस सूर्य-मंदिर (इन्द्रादित्यदेव) का निर्माण कराया। इस अभिलेख में उसकी वंशावली इस प्रकार है—
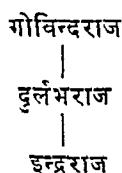
हर्ष शिलालेख के आधार पर डॉ० दशरथ शर्मा का मत है कि इन्द्रराज के पूर्वज शाकम्भरी चाहमानों के वंशज थे। गोविन्दराज का विरुद 'भूप' था जिसने गुर्जर-प्रतिहार नरेश महीपाल की राष्ट्रकूटों के विरुद्ध सहायता की थी। दूसरा शासक साधारण कोटि का था किन्तु इन्द्रराज की उपाधि 'महासामंत' थी। घोटार्सी ग्राम के एक जैन मन्दिर से प्राप्त शिलालेख से पता चलता है कि इस मंदिर का निर्माण दुर्लभराज ने कराया था। इंद्रराज के उत्तराधिकारियों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

5. **चन्दवार तथा रायभड्डिय के चाहमान**—एक अन्य पुरातन चाहमान वंश को चन्दवार में 1193 ई० में जैन ग्रन्थ 'अणुरत्न प्रदीप' तथा धनपाल के अपभ्रंश काव्य "बाहुबल चरित" के आधार पर शासन करता हुआ पाते हैं। यह चन्दवार वही स्थान था जहाँ मुहम्मद गोरी ने गहड़वाल जयचन्द को पराजित किया था। चाहमानों की चन्दवार शाखा ने 1449 ई० तक राज्य किया।

डॉ. दशरथ शर्मा[1] का मत है कि अजमेर में चौहानों तथा गहड़वालों के राज्य का अन्त हो जाने के बाद चन्दवार में चौहान राज्य स्थापित हुआ। चन्दवार के चौहान शासक शाकम्भरीय कहलाते थे तथा वे स्वयं को पृथ्वीराज तृतीय का वंशज मानते थे। श्रीधर के ग्रन्थ "अणुव्रत रत्न प्रदीप" के आधार पर इनकी वंशावली अग्रांकित है—

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 22)

अहवमल्ल 1256 ई० में शासन कर रहा था। अतः प्रथम शासक भरतपाल ने तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में चंदावर में चौहान राज्य की स्थापना की होगी। "तवकात-ए-नासिरी" ग्रन्थ में सुलतान इल्तुतमिश द्वारा चंदावर के युद्ध में चंदावर के राजा के पुत्र लड्डा को बन्दी बनाये जाने का उल्लेख है। चंदावर के इस राजा का समीकरण डॉ० दशरथ शर्मा[1] भरतपाल से करते हैं। चंदावर के युद्ध में पराजित होने के बाद इस चौहान शाखा की राजधानी रायवड्डीय बनाई गई। 'अणुव्रत रत्न प्रदीप' से विदित होता है कि अहवमल्ल चौहान शासक एक वीर योद्धा था जो 1256 ई० में शासक बना। उसने सुलतान नासिरुद्दीन से युद्ध किया।

चंदावर के आगामी चाहमान शासकों का विवरण धनपाल के ग्रन्थ "बाहुबल चरित" से मिलता है जिसकी रचना 1399 ई० में हुई। इस समय रामचंद शासन कर रहा था। इन शासकों की वंशावली निम्नांकित है—

इस वंशावली के अनुसार गणना करने पर चंदावर का पूर्व शासक अहवमल्ल तथा इस शाखा के प्रथम शासक यशवन्त में एक पीढ़ी का ही अन्तर था। सम्भवतः इस अन्तराल में चंदावर शासक बलवन के अधीन हो गये थे। इस शाखा के शासकों ने तुगलक सुलतानों से संघर्ष जारी रखा। तुगलक सेनापति ने धोखे से अभयचंद की ्या कर दी। खिलजी शासकों के समय चंदावर के शासक करद सामन्त बन गये। लोदी सुलतानों के समय चंदावर पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया। चंदावर के चौहान सरदार चंद्रभान ने मेवाड़ आकर राणा सांगा की ओर से खानवा

1. पूर्वोक्त (पृष्ठ 23)

के युद्ध में बाबर के विरुद्ध युद्ध किया था तथा वीर गति प्राप्त की। चन्द्रभान के वंशजों को मेवाड़ में बेदला की जागीर दी गई।

सपादलक्ष अथवा जांगलदेश के चाहमान
(Chahmans of Sapadlaksha or Jangaldesh)

उपरोक्त उल्लिखित चाहमानवंशी शाखाएँ तो गुर्जर-प्रतिहार सम्राटों के सामन्त के रूप में ही अपना अस्तित्व खो चुकी थी किन्तु सपादलक्ष अथवा सपादलक्ष की चाहमान शाखा गुर्जर-प्रतिहारों के आधिपत्य से मुक्त होकर अपना साम्राज्य स्थापित कर उत्तरी भारत की प्रमुख शक्ति के रूप में उभरे। इस शाखा का राजनैतिक इतिहास निम्नांकित है :

(1) वासुदेव (551 ई०)

शाखम्भरी के चाहमानों की वंशावली विग्रहराज द्वितीय के हर्ष अभिलेख (973 ई०), सोमेश्वर के बिजोलिया शिलालेख (1169 ई०) तथा पृथ्वीराज के राजकवि जयानक भट्ट के "पृथ्वीराज विजय" काव्य से ज्ञात होती है। इनमें अंतिम दो साक्ष्यों में सम्पूर्ण वंशावली दी गई है। वंशावली के आधार पर सपादलक्ष की चाहमान शाखा के राज्य का संस्थापक तथा प्रथम शासक वासुदेव था। उपलब्ध साक्ष्यों में वासुदेव का नाम साँभर से सम्बद्ध है।

'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार वासुदेव ने अपने मित्र विद्याधर से साँभर झील भेंट के रूप में प्राप्त की। बिजोलिया शिलालेख में साँभर झील की उत्पत्ति वासुदेव से होना इस पंक्ति से प्रकट होता है—"शकंभराजनि जनीव ततोपि विष्णोः"। राजशेखर के "प्रबंधकोष" के अनुसार वासुदेव 551 ई० में शासन कर रहा था। डॉ० डी० आर० भण्डारकर ने "वासुदेव वहमन" की मुद्रा के आधार पर वासुदेव की तिथि 627 ई० निर्धारित की है किन्तु यह मत पूर्व उल्लिखित कारणों से मान्य नहीं है।

(2) सामन्त (668 ई०)

बिजोलिया शिलालेख में अंकित है कि वासुदेव के वंश में उत्पन्न 'सामन्त' अनन्त प्रदेश (शेखावाटी में हर्ष प्रदेश) का सामन्त था तथा वह अहिच्छत्रपुर में वत्सगोत्रीय ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ था। अहिच्छत्रपुर का समीकरण करना कठिन है किन्तु यह अनन्त प्रदेश की राजधानी रहा होगा। गुर्जर-प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय के समकालीन चौहान नरेश गूवक प्रथम (जो सामन्त चौहान नरेश के बाद छटी पीढ़ी में हुआ) के आधार पर गणना करने पर सामन्त ने 668 ई० तक शासन किया। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार वह अनेक सामन्तों का स्वामी था। अतः उसने अपने राज्य का विस्तार किया।

(3) नागदेव

सामन्त के पश्चात् बिजोलिया शिलालेख के अनुसार आगामी शासक नरदेव हुआ जो पूर्णतल्ल (पुन्तला जोधपुर का एक ग्राम) में शासन करता था। बिजोलिया

शिलालेख में उसे 'नृप' तथा 'हम्मीर महाकाव्य', 'सुरजन चरित' एवं 'प्रवन्ध कोश' में उसे 'नरदेव' के नाम से पुकारा गया है। डॉ० डी० ग्रार० भण्डारकर तथा श्री अक्षय कीर्ति व्यास सामन्त के उत्तराधिकारी का नाम पूर्णतल्ल मानते हैं किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा[1] की मान्यता है कि पूर्णतल्ल किसी व्यक्ति का नाम न होकर उस स्थान का नाम है जहाँ का शासक नृप अथवा नरदेव चौहान शासन करता था।

(4) जयराज

सामन्त के वाद उसका पुत्र जयराज अथवा **ग्रजयराज प्रथम** शासक वना। श्री रामवृक्षसिंह[2] का मत है कि वह एक शक्तिशाली शासक था और उसने ग्रजमेर दुर्ग तथा नगर की स्थापना की। किन्तु जनश्रुति पर ग्राधारित इस मान्यता की पुष्टि ग्रन्य साक्ष्य से नहीं होती।

(5 से 7) जयराज के वाद क्रमशः उसका पुत्र **विग्रहराज प्रथम** तथा उसके प्रपोत्र **चन्द्रराज प्रथम** एवं **गोपेन्द्रराज** ने शासन किया। इनके विपय में कोई महत्वपूर्ण तथ्य विदित नहीं होता जो यह प्रकट करता हो कि गोपेन्द्रराज तक शाखम्भरी के चौहान शासक उल्लेखनीय नहीं थे।

(8) दुर्लभराज प्रथम

गोपेन्द्रराज ग्रथवा गोपेन्द्रक की मृत्यु के वाद उसका पुत्र दुर्लभराज प्रथम गद्दी पर बैठा। वह शाखम्भरी का यशस्वी शासक था। उसने गुर्जर-प्रतिहार सम्राट वत्सराज के सामन्त के रूप में उत्तरी भारत की राजनीति में ग्रपनी सैनिक सफलताग्रों के कारण ग्रपूर्व यश ग्रर्जित किया। "पृथ्वीराज विजय" के ग्रनुसार—"उसने ग्रपनी तलवार को गंगा ग्रौर समुद्र के संगम स्थल (गंगासागर) में स्नान कराया तथा गौड देश का भोग (रसास्वाद) किया ग्रर्थात विजय प्राप्त की"। डॉ० दशरथ शर्मा[3] का मत है कि यह विजय दुर्लभराज प्रथम ने वंगाल में वहाँ के शासक धर्मपाल के विरुद्ध ग्रपने स्वामी गुर्जर-प्रतिहार नरेश वत्सराज के सहायक के रूप में प्राप्त की। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि दुर्लभराज के पुत्र गूवक प्रथम को गुर्जर-प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय (वत्सराज के पिता) के दरवार में वीर के रूप में सम्मानित किया गया। इस विजय की पुष्टि रधनपुर ताम्रपत्र से भी होती है जिसके अनुसार वत्सराज ने "खेल-खेल में ही गौड़ राज्य की लक्ष्मी ग्रपने ग्रधीन करली तथा शरद-ऋतु के चंद्रमा की भाँति धवल गौड़राज के दो छत्रों को उसके यश से साथ छीन लिया ('गौडीय शरद-इन्दु-पाद-धवल छत्र-द्वयं')।"

डॉ० ग्रार० सी० मजूमदार[4] उपरोक्त मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 28)
2. *Singh, R. B.* : History of the Chahmans (p. 86-88)
3. पूर्वनिदिष्ट (पृ० 28)
4. *Dr. Majumdar, R. C.* : History of Bengal (p. 105)

है कि 'पृथ्वीराज विजय' की रचना इस घटना के लगभग 400 वर्ष बाद हुई, अतः दुर्लभराज की गौड़-विजय का उल्लेख विश्वसनीय नहीं है। उनके मत से वत्सराज और गौड़-नरेश वत्सराज का युद्ध दोआब में हुआ और 'गंगासागर' पूर्वी बंगाल का गंगासागर नहीं था बल्कि गंगा-यमुना का संगम-स्थल प्रयाग था। डॉ० मजूमदार रधनपुर ताम्र-पत्र की साक्ष्य को भी महत्व नहीं देते। किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा[1] का कथन है कि, "हम उनसे (डॉ० मजूमदार) से सहमत नहीं हैं क्योंकि वे प्रामाणिक साक्ष्यों की अवहेलना करते हैं।" उनका मत है कि रधनपुर ताम्र-पत्र में वर्णित वत्सराज की गौड़-विजय की पुष्टि 'पृथ्वीराज विजय' से होती है, अतः 'पृथ्वीराज विजय' इस घटना से 400 वर्ष बाद लिखे जाने के पश्चात् भी इसे अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता जब कि कोई विरोधी साक्ष्य उपलब्ध न हो। इसके अतिरिक्त वत्सराज की दूरगामी विजयों को दृष्टिगत रखते हुए उसके द्वारा चाहमान नरेश दुर्लभराज प्रथम के साथ बंगाल तक विजय करना कठिन नहीं था। ग्वालियर (सगरताल) शिलालेख से भी वत्सराज की विजयों की पुष्टि होती है। गौड़विजय राष्ट्रकूट ध्रुव द्वारा वत्सराज तथा धर्मपाल (850-883 ई०) की पराजय से पूर्व हुई थी।

डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[2] का भी यही मत है—"किन्तु जब तक 'पृथ्वीराज विजय' और रधनपुर ताम्रपत्र के साक्ष्यों के विपरीत कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं मिलता, इस बात में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि वत्सराज ने धर्मपाल को उसी के घर बंगाल (गौड़) में हराकर उसके राजचिन्हों का अपहरण किया था। उसके सैनिक सहायकों में दुर्लभराज प्रमुख था।" अतः यह स्पष्ट होता है कि दुर्लभराज प्रथम शक्तिशाली चौहान नरेश था जिसने अपने स्वामी के नेतृत्व में गौड़ प्रदेश तक अभियान किया तथा आगामी चौहान शासकों के लिये अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

(9) गूवक प्रथम

दुर्लभराज प्रथम के बाद उसका उत्तराधिकारी पुत्र गूवक प्रथम शासक बना। हर्ष शिलालेख में अंकित है कि, "गूवक ने नागावलोक (नागभट्ट द्वितीय) के दरबार में वीर के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की।" इससे स्पष्ट होता है कि गूवक प्रथम ने अपने पिता की भाँति गुर्जर-प्रतिहारों के सामन्त के रूप में सैनिक सफलताएँ प्राप्त कर यश अर्जित किया। हर्ष अभिलेख की अंतिम दो पंक्तियों से पता चलता है कि चाहमानों के वंश-देवता का मंदिर "हर्षनाथ" (सीकर के निकट) का निर्माण गूवक प्रथम ने किया था यद्यपि इसका विस्तार परवर्त्ती चौहान शासकों ने किया।

1. पूर्वनिर्दिष्ट
2. डा. विशुद्धानंद पाठक : उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (पृ. 442)

(10) चन्द्रराज द्वितीय

गूवक प्रथम के बाद उसका पुत्र चन्द्रराज द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसके विषय में कोई उल्लेखनीय तथ्य उपलब्ध नहीं होता।

(11) गूवक द्वितीय

गूवक द्वितीय चन्द्रराज द्वितीय का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। वह अपने पितामह की भाँति वीर तथा महत्वाकांक्षी था। 'पृथ्वीराज विजय' से ज्ञात होता है कि उसने अपनी बहिन कलावती का विवाह गुर्जर-प्रतिहार सम्राट भोज प्रथम से कर गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य में विशिष्ट सम्मान प्राप्त किया। किन्तु इस ग्रन्थ में वर्णित यह तथ्य अतिशयोक्ति प्रतीत होता है कि उसने अपनी बहिन कलावती से विवाह के इच्छुक 12 नरेशों को पराजित कर उनकी धन-सम्पति भी प्रतिहार सम्राट भोज को भेंट कर दी। यह संभव हो सकता है कि उसने कलावती के विवाह में अपनी ओर से उपहार भेंट किये हो। प्रतापगढ़ अभिलेख से विदित होता है कि वह इस वैवाहिक सम्बन्ध से अपनी राजनैतिक प्रतिष्ठा स्थापित कर सका।

(12) चन्दनराज

हर्ष अभिलेख के अनुसार गूवक द्वितीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी चन्दनराज की प्रमुख उपलब्धि तोमर नरेश रुद्र की हत्या करना था। रुद्र तँवरावाटी क्षेत्र का छोटा शासक माना जाता है। हर्ष अभिलेख में रुद्र को "इनभूप" की उपाधि दी गई है जो प्रकट करता है कि वह एक शक्तिशाली शासक था तथा वह उस जनश्रुति की भी पुष्टि करता है कि तोमर तँवरावाटी से 1143 ई० के बाद स्थानान्तरित होकर दिल्ली के शासक बने। डॉ० भण्डारकर के इस मत से डॉ० दशरथ शर्मा सहमत हैं। "पृथ्वीराज विजय" के अनुसार चन्दनराज की रानी का नाम रुद्राणी था, जिसे 'आत्मप्रभा' के नाम से भी पुकारा जाता था क्योंकि उसे योगिनी की शक्ति प्राप्त थी। रुद्राणी ने पुष्कर शिव-लिंगों के समक्ष एक हजार दीपों से प्रकाश किया था।

इस प्रकार चन्दनराज के शासन-काल में चाहमान-तोमर संघर्ष आरम्भ हो गया जो अनवरत चलता रहा और विग्रहराज चतुर्थ द्वारा दिल्ली पर अधिकार कर लेने के बाद ही समाप्त हुआ।

(13) वाक्पतिराज प्रथम

चन्दनराज की मृत्यु के बाद उसकी रानी रुद्राणी से उत्पन्न पुत्र वाक्पतिराज (वप्पराज) गद्दी पर बैठा। हर्ष अभिलेख में उसका विरुद "महाराज" अंकित है। 'पृथ्वीराज विजय' में उसे 188 युद्धों का विजेता बतलाया गया है। यद्यपि यह वर्णन अतिशयोक्ति है किन्तु इतना सत्य है कि वह आजीवन युद्धों में व्यस्त रहा। उत्तर भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति अस्थिर हो गई थी। 915 ई० के लगभग राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र ने प्रतिहार साम्राज्य पर अभियान कर कन्नौज तथा प्रयाग तक का क्षेत्र पदाक्रांत किया। किन्तु राष्ट्रकूट नरेश के दक्षिण लौट जाने के बाद प्रतिहार पुनः अपना राज्य हस्तगत करने का प्रयास करने लगे। प्रतिहारों की इस दुर्बल स्थिति

का लाभ उठाकर उसके सामन्त अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे। वाक्पति भी अपनी राज्य सीमा की वृद्धि हेतु अभियानों में व्यस्त हो गया।

वाक्पतिराज की एक सैनिक सफलता की पुष्टि हर्ष शिलालेख से होती है जिसमें अंकित है कि, 'वाक्पतिराज ने अपने अधिराज (प्रतिहार नरेश महीपाल) की आज्ञा से अनन्तदेश की ओर तीव्र गति से आते हुए उद्दण्ड एक तंत्रपाल क्षमापाल को लौट जाने को विवश कर दिया।" डॉ. दशरथ शर्मा[1] इस अभिलेख के आधार पर व्याख्या करते हुए कहते हैं कि प्रतिहार नरेश महीपाल ने अपने क्षमापाल नामक प्रांतपति को चाहमान नरेश वाक्पति पर आक्रमण हेतु भेजा किन्तु अपनी शक्तिशाली अश्वारोही सेना के बल पर वाक्पति ने क्षमापाल की गज-सेना को पराजित कर भगा दिया। इस विजय से चाहमानों की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गई और नवविजित क्षेत्रों पर उनका अधिकार सुदृढ़ हो गया।

पुष्कर से प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर डॉ. दशरथ शर्मा की मान्यता है कि वाक्पति शैव मतावलम्बी था। उसने पुष्कर में एक शिव-मन्दिर का निर्माण कराया जो पृथ्वीराज तृतीय के समय तक अस्तित्व में था।

इस प्रकार डॉ. मनराल व डॉ. मित्तल[2] का कथन उचित है कि, "वाक्पतिराज प्रथम ने प्रतिहार वंश की सत्ता का विरोध प्रारम्भ कर दिया था।"

(14) सिंहराज

बिजोलिया शिलालेख के अनुसार वाक्पतिराज के पश्चात् विन्ध्यराज का शासक होना विदित होता है किंतु उसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। सम्भवतः विंध्यराज वाक्पतिराज के पुत्र तथा आगामी उत्तराधिकारी सिंहराज का बड़ा भाई था। सिंहराज के अन्य दो भाइयों में एक लक्ष्मण नाडौल चाहमान शाखा का संस्थापक हुआ तथा दूसरा वत्सराज 'हर्षनाथ' मन्दिर को कर्दमखात ग्राम का दान-दाता था। यद्यपि डॉ. दशरथ शर्मा डॉ. एच. सी. रे के इस मत से सहमत नहीं कि विंध्यराज सिंहराज का ही दूसरा नाम था किन्तु विंध्यराज का अल्प शासन उल्लेख-नीय नहीं है।

सिंहराज ने वाक्पतिराज प्रथम की भाँति आक्रामक-नीति अपनाई तथा तोमरों से संघर्ष जारी रखा। उसने तोमर नरेश सलवण की हत्या करदी तथा उसके सहायकों को पराजित कर भगा दिया या बंदी कर लिया। इस तथ्य की पुष्टि हर्ष अभिलेख से होती है जिसके अनुसार सिंहराज ने अपने इन शत्रुओं को बंदीगृह में रखा जब तक कि उसका अधिपति 'रघुकुल चक्रवर्ती' (प्रतिहार सम्राट विजयपाल) तथा उसके प्रतिद्वंदी उन्हें छुड़ाने के लिए स्वयं उपस्थित न हुए। डॉ. दशरथ शर्मा का अनुमान है कि सलवण उसी तोमर नरेश रुद्र का वंशज था जिसे सिंहराज के

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 32)

2. डा. मनराल व डा. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (पृ. 120)

पितामह चन्दनराज ने मार डाला था। डॉ. विशुद्धानंद पाठक[1] कनिंघम के मत से सहमत होते हुए कहते हैं कि सलवण "तोमर नरेश तेजपाल (940-961 ई.) का सेनापति था जो एक सैनिक संघ का नेतृत्व करता हुआ चाहमान क्षेत्रों पर चढ़ गया जान पड़ता है।" इस अभिलेख में वर्णित अधिपति प्रतिहार नरेश विजयपाल था जो एक दुर्बल शासक सिद्ध हुआ।

थांवला शिलालेख (956 ई.) में सिंहराज का विरुद "महाराजाधिराज" अंकित है जो उसके शक्ति सम्पन्न होने का सूचक है। इस अभिलेख में उसका अधिकार मेड़ता तथा पुष्कर क्षेत्र पर दिखलाया गया है। उसके शैव होने का तथ्य हर्ष अभिलेख से प्रकट होता है। वह सूर्य (आदित्य) का भी उपासक था।

"हम्मीर महाकाव्य" के इस कथन पर कि सिंहराज ने कर्णाट, लाट, गुजरात, चोल और अंग के राजाओं को युद्ध में हराया, डॉ. पाठक असम्भव मानते हैं। "प्रबन्धकोश" तथा "हम्मीर महाकाव्य" से विदित होता है कि सिंहराज ने हेजिउद्दीन अथवा हेतिम नामक एक मुसलमान सेनापति को जेठन नामक स्थान पर पराजित कर मार डाला। अभिलेखों तथा अन्य साक्ष्यों से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती। डॉ. पाठक सिंध और मुल्तान के मुस्लिम शासकों की दुर्बलता के कारण चाहमानों के राज्य पर उनके आक्रमण की सम्भावना नहीं मानते।

उपरोक्त विवरण से इतना स्पष्ट होता है कि सिंहराज ने चाहमानों की शक्ति को काफी बढ़ाया तथा 'महाराजा' की उपाधि धारण कर अपनी शक्ति का परिचय दिया।

(15) विग्रहराज द्वितीय

सिंहराज के पश्चात् उसका पुत्र विग्रहराज द्वितीय शासक बना। डॉ. दशरथ शर्मा[2] विग्रहराज द्वितीय को शाकम्भरी के प्रारम्भिक शासकों में सबसे महान् मानते हैं क्योंकि उसके हर्ष शिलालेख (973 ई.) में उसकी उपलब्धियों की प्रशंसा की गई है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि विग्रहराज द्वितीय के समय चौहान वंश का संकट ही नहीं टल गया अपितु उसने नवीन विजयों से अपने राज्य की वृद्धि की तथा उसके अधीन अनेक सामन्त थे।

विग्रहराज द्वितीय की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि उसकी चालुक्य नरेश मूलराज पर विजय थी जिसका विवरण जयानक से चंद्रशेखर तक के कवियों ने ही नहीं किया बल्कि गुजरात के इतिहासकारों ने भी किया है। हर्ष अभिलेख में इसका उल्लेख न होने का कारण यह प्रतीत होता है कि यह घटना 973 तथा 998 ई. के मध्य हुई थी। "पृथ्वीराज विजय" के अनुसार विग्रहराज ने गुजरात नरेश मूलराज को कन्था दुर्ग में शरण लेने को विवश किया तथा उसने भृगुकच्छ (भड़ौंच) तक सैनिक

1. डा० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (पृष्ठ 446)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 34)

अभियान किया जहाँ उसने "ग्राशापुरी देवी" के मन्दिर का निर्माण किया। "हम्मीर महाकाव्य" में तो विग्रहराज द्वारा मूलराज को मार डालने तथा गुजरात प्रदेश को लूटने का भी उल्लेख किया गया है। "सुरजन चरित" में भी इस घटना का विवरण दिया गया है। चालुक्यों की प्रशंसा में रचित ग्रंथ "प्रबंधचितामणि" में इस घटना का इस प्रकार वर्णन है—एक बार सपादलक्ष के शासक तथा तिलिंग नरेश के सेनापति बारप ने दोनों ग्रोर से एक साथ गुजरात पर ग्राक्रमण किया। गुजरात नरेश मूलराज इस ग्राशा में कन्था दुर्ग में छिप गया कि सपादलक्ष नरेश शीघ्र नवरात्रा में शाकम्भरी जाकर ग्राशापुरी की पूजा करेगा। किन्तु जब वह नहीं गया तो मूलराज स्वयं हाथी पर सवार हो कर सपादलक्ष शिविर में गया तथा विग्रहराज से प्रार्थना की कि जब बारप के साथ उसका युद्ध हो तो विग्रहराज पीछे से उस पर ग्राक्रमण न करे। विग्रहराज ने यह प्रार्थना स्वीकार करली। इसके बाद मूलराज ने तिलिंग सेनापति को सरलता से पराजित कर मार डाला। सपादलक्ष नरेश को जब ग्रपने गुप्तचरों से यह ज्ञात हुग्रा तो वह तत्काल ग्रपने प्रदेश को वापस चला गया।"[1]

डॉ. दशरथ शर्मा[2] 'हम्मीर महाकाव्य' के इस कथन को कि विग्रहराज द्वितीय ने मूलराज को मार डाला, ग्रन्य साक्ष्यों के ग्रभाव में ग्रस्वीकार करते हैं। किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मूलराज की इस युद्ध में पराजय अवश्य हुई। वे गुजरात के विरुद्ध विग्रहराज के इस ग्रभियान का कारण यह बतलाते हैं कि सम्भवतः विग्रहराज ने भृगुकच्छ में ग्राशापुरा देवी के मन्दिर का निर्माण कर लाट के शासक के साथ मिल कर गुजरात पर ग्राक्रमण किया।

फरिश्ता इतिहासकार के ग्रनुसार ग्रजमेर के राय विग्रहराज द्वितीय ने 997 ई. में सुबुक्तगीन के विरुद्ध लाहौर के शाही शासक द्वारा निर्मित संघ में ग्रपनी सेना भेजी थी। किन्तु ग्रजमेर का उस समय अस्तित्व नहीं था तथा ग्रन्य विश्वसनीय इतिहासकार उत्बी, इब्न-उल-ग्रथर तथा निजामुद्दीन ने इस घटना का कोई उल्लेख नहीं किया है। ग्रतः डॉ. दशरथ शर्मा फरिश्ता के कथन को संदिग्ध मानते हैं किन्तु वे सपादलक्ष के प्रारम्भिक चौहान शासकों में सबसे महान् विग्रहराज द्वितीय को मानते हैं। श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय[3] का कथन है—"विग्रहराज द्वितीय की उपाधि 'खुररजोन्धकार' थी ग्रर्थात वह ग्रश्वारोही दल का महान् नेता और कुशल सेनापति था। उसने मूलराज के दर्प को भंग किया ग्रौर ग्रनेक राजाग्रों से कर उगाहा। वह सपादलक्ष का एक महान् चौहान शासक था। उसने ग्रपने वंश के गत वैभव को पुनः प्राप्त किया ग्रौर उसकी श्रीवृद्धि की।"

1. मेरुतुंग : प्रबन्ध चिन्तामणि (पृष्ठ 15–16)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृष्ठ 35)
3. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ० 299)

(16) दुर्लभराज द्वितीय

विग्रहराज द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई दुर्लभराज द्वितीय शासक बना। हर्ष शिलालेख से विदित होता है कि दुर्लभराज अपने बड़े भाई की सेवा इस प्रकार करता था जिस प्रकार लक्ष्मण ने राम की तथा बलराम ने कृष्ण की सेवा की।[1] इस अभिलेख में अन्य दो भाइयों—चन्द्रराज तथा गोविन्दराज का उल्लेख न होने से डॉ० दशरथ शर्मा का यह अनुमान है कि सम्भवत: दुर्लभराज इन भाइयों से बड़ा था तथा इसे उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था।

राष्ट्रकूटों धवल के शिलालेख (996 ई०) से ज्ञात होता है कि दुर्लभराज समस्त पृथ्वी का अधिपति था तथा उसने महेन्द्र पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। कीलहार्न ने महेन्द्र का समीकरण नाडौल के चौहान शासक महेन्द्र से किया है जो उचित प्रतीत होता है। इस अभिलेख के आधार पर डॉ० दशरथ शर्मा[2] की मान्यता है कि धवल ने शक्ति की अपेक्षा कूटनीति से महेन्द्र की रक्षा करने का प्रयास किया। दुर्लभराज द्वितीय की बहिन का विवाह अन्हिलपट्टन के चालुक्य नरेश से किया था किन्तु दोनों में परस्पर प्रतिद्वन्दिता थी। दुर्लभराज द्वारा चौहान नरेश महेन्द्र पर आक्रमण किये जाने का कारण महेन्द्र की चालुक्यों से मित्रता थी।

किनसदिया शिलालेख में अंकित है कि दुर्लभराज द्वितीय की आज्ञा का कभी उल्लंघन न किये जाने के कारण उसकी उपाधि 'दुर्लंघ्यमेरु' थी। इसी अभिलेख से यह भी विदित होता है कि उसने असोसिन्तन अथवा रसोसिन्तन नामक मण्डल के क्षेत्र पर विजय प्राप्त की। इस स्थान का समीकरण करना कठिन है। सकराइ शिलालेख में दुर्लभराज का विरुद 'महाराजाधिराज' अंकित है जो प्रकट करता है कि उसने विग्रहराज द्वितीय द्वारा स्थापित प्रतिष्ठा को निरन्तर बनाये रखा।

(17) गोविन्दराज तृतीय

गोविन्दराज तृतीय दुर्लभराज द्वितीय का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था जो 'गण्दु' के नाम से भी पुकारा जाता था। "पृथ्वीराज विजय" में उसका विरुद "वैरीघरट्ट" अर्थात शत्रुओं का मर्दन करने वाला अंकित है। राजशेखर कृत "प्रबन्ध कोश" में दी हुई वंशावली में गोविन्दराज तृतीय को सुलतान महमूद का विजेता बतलाया गया है। इससे प्रकट होता है कि महमूद गजनवी गोविन्दराज तृतीय का समकालीन था। इसकी पुष्टि फरिश्ता[3] के इस कथन से होती है—"महमूद को सिंध के मार्ग से गजनी वापस जाना पड़ा क्योंकि अजमेर के शासक ने अपनी विशाल सेना से मारवाड़ का मार्ग अवरुद्ध कर दिया था।" डॉ० दशरथ शर्मा[4] ने अजमेर के स्थान

1. हर्ष शिलालेख—श्लोक संख्या–26
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 38)
3. फरिश्ता—तारीख–ए–फरिश्ता (पृ. 69)
4. पूर्वनिदिष्ट (पृ. 39)

पर शाकम्भरी का नाम होना उचित बतलाया है क्योंकि उस समय अजमेर का अस्तित्व नहीं था।

(18) वाक्पतिराज द्वितीय

गोविन्दराज तृतीय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र वाक्पतिराज द्वितीय शासक बना। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार वाक्पतिराज ने आघाढ़ (मेवाड़ की राजधानी) के शासक अम्बाप्रसाद को युद्ध में पराजित कर मार डाला था। "सुर्जन चरित", "हम्मीर महाकाव्य" तथा "प्रबन्ध कोश" की वंशावलियों में उसे "वल्लभ" के नाम से पुकारा गया है तथा उसके द्वारा मालवा के शासक भोज (1010–1055 ई०) तथा चेदि के राजा की पराजय बतलाई गई है। डॉ० दशरथ शर्मा इन साक्ष्यों को परवर्ती समय का होने के कारण विश्वसनीय नहीं मानते हैं। डॉ० पाठक[1] का मत है कि मालवा तथा चेदि के नरेश इतने शक्तिशाली थे कि उनके विरुद्ध वाक्पतिराज की सफलता असम्भव प्रतीत होती है।

(19) वीर्यराम

आगामी शासक वीर्यराम वाक्पति द्वितीय का छोटा भाई था। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार वीर्यराम अवन्ति के शासक भोज से युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। 'सुर्जन चरित' के साक्ष्य को यदि सत्य माना जाये तो भोज वीर्यराज के भाई वाक्पतिराज द्वितीय के समय से ही चौहानों से संघर्षरत था। सम्भवतः परमारों ने इस विजय के कारण कुछ समय तक शाकम्भरी पर अधिकार किया।

(20) चामुण्डराज

वीर्यराज के बाद उसका वीर तथा धर्मनिष्ठ भाई चामुण्डराज शासक बना। 'पृथ्वीराज विजय' में उसके द्वारा नरपुरा में एक विष्णु के मन्दिर के निर्माण का उल्लेख किया गया है। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि नाडौल के चौहान शासक अनहिल्ल की सहायता से शाकम्भरी को परमारों से मुक्त कराना था। बिजोलिया शिलालेख में चामुण्डराज तथा दूसल अथवा दुर्लभराज तृतीय के मध्य एक और शासक सिम्हट का नाम मिलता है। डॉ० दशरथ शर्मा सिम्हट को दूसल का बड़ा भाई होना मानते हैं। चाचिगदेव के सुन्धा पहाड़ी शिलालेख से विदित होता है कि चामुण्डराज ने शाकम्भरी को मुक्त कराने हेतु हुए युद्ध में भोज के साढ़ नामक सेनापति को मार डाला। राजशेखर के "प्रबन्ध कोश" में चामुण्डराज को "सुल्तान का वध करने वाला" कहा गया है। 'हमीर महाकाव्य' तथा 'सुर्जन चरित' में इस सुल्तान का नाम हेजिमुद्दीन बतलाया गया है। अतः वीर्यराम अत्यन्त वीर एवं अपने राज्य की प्रतिष्ठा बनाये रखने का महत्वाकांक्षी शासक था।

(21) दुर्लभराज तृतीय

चामुण्डराज के पश्चात् उसका छोटा भाई दुर्लभराज तृतीय गद्दी पर बैठा।

1. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 450)

"पृथ्वीराज विजय" में मातंगों से युद्ध करते हुए दुर्लभराज तृतीय की मृत्यु होने का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में मातंग शब्द का प्रयोग पश्चिमोत्तर दिशा से आने वाले मुस्लिम आक्रांताओं के लिए किया गया है। जोनराज ने इसका समीकरण म्लेच्छों से किया है और भोज प्रतिहार ग्वालियर शिलालेख तथा शिवालिक स्तम्भ-लेख में विग्रहराज चतुर्थ की प्रशस्ति में म्लेच्छों को मुसलमान ही माना है। मुसलमानों के इस समय हुए आक्रमणों का प्रमाण अन्य साक्ष्यों से भी मिलता है। दुर्लभराज तृतीय के समकालिक नाडौल नरेश आशाराज ने तुरुष्कों के आक्रमण से अपने भाई पृथ्वीपाल को मुक्त कराने का उल्लेख एक चौहान दान-पत्र में हुआ है। एक दूसरे दानपत्र में आशाराज के वहनोई हरिपाल द्वारा हम्मीर के घोड़ों को पानी पिलाने की आज्ञा न देने के कारण उनमें हुए युद्ध का उल्लेख है। ये दोनों दान-पत्र डॉ० गौ० ही० ओझा को प्राप्त हुए थे। अतः मातंग या म्लेच्छ मुस्लिम आक्रमणकारी ही थे।

उपरोक्त साक्ष्यों में उल्लिखित तुरुष्क आक्रमणकारी का समीकरण फरिश्ता द्वारा उल्लिखित गजनी का इब्राहीम था जिसने 1079 ई० में भारत के पश्चिमी तट तक आक्रमण किये। डॉ० दशरथ शर्मा[1] की मान्यता है कि दुर्लभराज तृतीय तथा नाडौल के चौहानों ने जिस मातंग या मुस्लिम आक्रमणकारी का सामना किया वह फरिश्ता द्वारा वर्णित उक्त सरदार था।

"हम्मीर महाकाव्य" तथा "प्रबन्धकोश" की वंशावलियों में दुर्लभराज तृतीय द्वारा गुजरात के चालुक्य नरेश कर्ण के युद्ध में मारे जाने का उल्लेख किया गया है। डॉ० शर्मा का मत है कि यह युद्ध सम्भाव्य है किन्तु इस युद्ध में कर्ण के मारे जाने का तथ्य असत्य है क्योंकि 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार विग्रहराज तृतीय के समय कर्ण जीवित था। डॉ० हरविलास शारदा तथा डॉ० डी० आर० भण्डारकर द्वारा दुर्लभराज का दूसरा नाम "वीरसिम्ह" स्वीकार करना डॉ० दशरथ शर्मा उचित नहीं मानते क्योंकि यह मत 'पृथ्वीराज विजय' की पंक्ति की गलत व्याख्या के कारण है। अतः चौहान इस समय मुसलमानों का वीरता से सामना करने तथा राज्य विस्तार करने की अपनी परम्परा को जारी रखे हुए थे।

(22) विग्रहराज तृतीय (1079 ई०)

दुर्लभराज तृतीय की मृत्यु के वाद उसका छोटा भाई विग्रहराज तृतीय गद्दी र वैठा। विग्रहराज 'वीसल' या 'वीशल' के नाम से भी पुकारा जाता था। नरपति ह द्वारा रचित काव्य "वीसलदे रासो" में विग्रहराज की रानी राजदेवी मालवा क की पुत्री थी। इस वैवाहिक सम्बन्ध की सम्भावना इस बात से होती है कि स समय चाहमान-परमार सम्बन्ध मधुर थे। "पृथ्वीराज विजय" से ज्ञात होता है विग्रहराज तृतीय ने मालवा नरेश उदयादित्य की सहायता गुजरात के चालुक्य कर्ण को पराजित करने में की थी। "सुर्जन चरित" में इसकी पुष्टि करते हुए

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynastics (p. 41)

कहा गया है कि इस विजय का श्रेय विग्रहराज तृतीय को है। डॉ० दशरथ शर्मा विग्रहराज के राज्यारोहण की तिथि 1079 ई० के लगभग निर्धारित करते हैं तथा कर्ण की पराजय की तिथि 1079 ई० तथा उदयादित्य की अन्तिम तिथि 1086 ई० के मध्य निश्चित करते हैं।

"प्रबन्धकोश" से ज्ञात होता है कि विग्रहराज द्वारा एक ब्राह्मण नारी के शील-भंग किये जाने के कारण उसके शरीर के घावों से विग्रहराज की मृत्यु हुई। 'पृथ्वीराज विजय' में भी इस प्रकरण का उल्लेख है। ये दोनों ग्रन्थ काफी समय बाद की रचनाएँ होने के कारण उनकी सत्यता संदिग्ध है। सकराइ शिलालेख में विग्रहराज के शासन-काल में वच्छराज की रानी दायिका द्वारा शंकरादेवी के मंदिर के जीर्णोद्धार का उल्लेख किया गया है। डॉ. शर्मा चौहान नरेश का समीकरण विग्रहराज तृतीय से करते हैं तथा वच्छराज को विग्रहराज का सामन्त मानते हैं। इस प्रकार विग्रहराज तृतीय की उपलब्धियाँ परमारों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना तथा गुजरात नरेश पर विजय प्राप्त करना थी।

(23) **पृथ्वीराज प्रथम**

विग्रहराज तृतीय के बाद उसका पुत्र पृथ्वीराज प्रथम शासक बना। "पृथ्वीराज विजय" के अनुसार उसकी रानी का नाम रासलदेवी था। पृथ्वीराज प्रथम का एक शिलालेख (1105 ई.) शेखावाटी के रेवासा नामक ग्राम के निकट जीणमाता के मंदिर से प्राप्त हुआ है जिसमें उसका विरुद "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" अंकित है। विरुद से स्पष्ट है कि वह पूर्वगामी चौहान शासकों से अधिक शक्तिसम्पन्न व स्वतन्त्र था। "पृथ्वीराज विजय" से ज्ञात होता है कि उसने पुष्कर में ब्राह्मणों को लूटने वाले 700 चालुक्यों का वध किया था। इसी अभिलेख से प्रकट होता है कि वह कर्णदेव (1064–1094 ई०) तथा सिद्धराज जयसिंह (1094–1142 ई०) सोलंकी नरेशों का समकालिक था तथा पृथ्वीराज ने अपने क्षेत्र में प्रविष्ट हुई सोलंकी सेना को पराजित कर दण्डित किया। विजयसिंह सूरी कृत "उपदेशमालावृत्ति" तथा चंद्र सूरी कृत "मुनिसुव्रत चरित" नामक जैन ग्रन्थों में उल्लेख है कि पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भौर के जैन मंदिरों पर "कनक कलशों" की स्थापना की। इससे पृथ्वीराज प्रथम का रणथम्भौर पर अधिकार तो प्रकट होता ही है किन्तु पृथ्वीराज की धर्मसहिष्णुता की भावना का भी पता चलता है।

अजमेर के संग्रहालय में सुरक्षित 'चौहान प्रशस्ति' में पृथ्वीराज को "हम्मीर सुरारी चक्र" विरुद दिया गया है। "प्रबन्धकोश" की वंशावली में मुसलमानों से उसके युद्ध का उल्लेख है। "तबकात-इ-नासिरी" के आधार पर डॉ० दशरथ शर्मा का अनुमान है कि चौहान-प्रशस्ति में उल्लिखित 'हम्मीर' उसका समकालिक मुस्लिम शासक इमाद-उद-दौलाह (1099–1115 ई.) था।

पृथ्वीराज प्रथम शैव धर्मावलम्बी था। चौहान-प्रशस्ति के अनुसार उसने

सोमेश्वर (सोमनाथ) जाने वाले मार्ग में निःशुल्क भोजन वितरित करने की व्यवस्था की थी जिसकी पुष्टि 'पृथ्वीराज विजय' से होती है।

(24) अजयराज (1105-1130 ई.)

परमारों से संघर्ष—पृथ्वीराज प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अजयराज गद्दी पर बैठा। अजयराज 'अजयदेव' तथा 'सल्हण' नामों से भी विख्यात था। 'चौहान प्रशस्ति' के अनुसार अजयराज ने मालवा के परमार नरेश नरवर्मन को अवन्ति की सीमा पर पराजित किया। "पृथ्वीराज विजय" में इस युद्ध में उसके द्वारा परमार सेनापति सुल्हण को वन्दी बनाये जाने तथा तीन परमार योद्धाओं—चाचिग, सिन्धुल और यशोराज—को मार डालने एवं श्रीमार्ग्ग दुर्ग को विजित करने का उल्लेख है।

तुर्कों से संघर्ष—'पृथ्वीराज विजय' से ही विदित होता है कि अजयराज ने "गर्जन मातंगों" पर विजय प्राप्त की। 'गर्जन' का समीकरण गजनी से तथा 'मातंग' का समीकरण मुसलमानों से किया गया है। डॉ० दशरथ शर्मा[1] का मत है कि गजनी के मुसलमानों से उसका युद्ध होना निश्चित है किन्तु उन पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख संदिग्ध है क्योंकि मिनहाजुसिराज कृत "तवकात-इ-नासिरी" व "तारीख-इ-फरिश्ता" से ज्ञात होता है कि गजनी के वहराम शाह द्वारा नियुक्त भारतीय विजित प्रदेशों के सूवेदार मुहम्मद वाहलीम ने नागौर पर अधिकार कर उसकी किलेवन्दी की तथा भारतीय प्रदेशों पर सैनिक अभियान करने हेतु वहाँ अपना शिविर स्थापित किया। "प्रभाव चरित" में अजयराज का नागौर पर अधिकार 1121 ई० तक वतलाया गया है। अतः मुसलमानों द्वारा विजित नागौर प्रदेश के कारण अजयराज को काफी क्षति उठानी पड़ी। मुहम्मद वाहलीम के वाद सलार हुसैन सूवेदार नियुक्त किया गया था। डॉ० शर्मा[2] का अनुमान है कि इन सूवेदारों में से किसी एक के आक्रमण का सफल प्रतिरोध कर अजयराज ने "गर्जन मातंगों" पर विजय प्राप्त की। डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[3] का भी यही मत है—"वाद में वाहलीम का नागौर पर अधिकार यह प्रकट करता है कि अजयराज की राज्य सीमाओं पर तुर्कों का दवाव कुछ समय के लिए वड़ा प्रचण्ड हो गया था। किन्तु यह जानने का कोई साधन नहीं है कि वाहलीम की मृत्यु के वाद चाहमान पुनः नागौर पर अधिकृत हो गये अथवा नहीं।"

अजमेर की स्थापना—अजयराज की केवल सैनिक दृष्टि से ही उपलब्धियाँ विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं वल्कि जन-कल्याण के कार्यों एवं भवनों के निर्माण के क्षेत्र भी वह अग्रणी था। "पृथ्वीराज विजय" के अनुसार उसने अपने नाम पर अजयमेरु

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 43)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 45)
3. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (पृ० 455)

(अजमेर) नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बना कर अनेक मंदिरों का निर्माण कराया जिसके कारण वह "देवताओं का वासस्थल" बन गया। जयानक कवि ने तो अजमेर नगर की प्रशंसा में यहाँ तक कहा है कि, "वह काव्य धन्य नहीं जिसमें उस नगर का वर्णन न हो। समुद्र के पार राम के द्वारा जीती हुई लंका और समुद्र के मध्य कृष्ण की बसाई हुई द्वारका नामक नागरीद्वय अजमेर नगरी की दासी भी होने लायक नहीं है।" वास्तव में अजमेर नगर सामरिक, भौगोलिक, राजनैतिक तथा जलवायु की दृष्टि से उत्तरी भारत का एक विशिष्ट स्थान थे। डॉ. पाठक[1] का कथन है कि—"इसमें सन्देह नहीं कि अजमेर का भौगोलिक वैशिष्ठय और सामरिक महत्व अजयदेव ने भली भाँति आँका होगा।" डॉ० दशरथ शर्मा[2] की भी यही मान्यता है—"अजमेर निश्चित रूप से साँभर की अपेक्षा मुसलमानों से सुरक्षा की दृष्टि से उपयुक्त स्थान था तथा मालवा जैसे राज्यों पर सैनिक अभियान हेतु सामरिक्त महत्व रखता था। इस नगर की स्थापना पल्ह की "पट्टावली' की प्रतिलिपि धार में जिनरक्षित द्वारा तैयार करने की तिथि 1113 ई० में की गई होगी।"

अजयराज की मुद्रायें—अजयराज की अन्य उपलब्धि उसके तथा उसकी रानी सोमल्लदेवी या सोमरेखा के नाम की मुद्राएँ प्रचलित करना है। अजयदेव की मुद्राएँ चाँदी तथा ताँबे की बनी हैं और उनके अग्र भाग में पद्मासना देवी की आकृति उत्कीर्ण है। मेनाल शिलालेख (1168 ई.) तथा ढोढ स्तम्भ-लेख (1171 ई.) में इन मुद्राओं का उल्लेख सपादलक्ष में इनके प्रचलन को प्रमाणित करता है। सोमल्लदेवी की ताँबे की मुद्राओं के अग्रभाग में एक अश्वारोही की आकृति तथा पृष्ठ भाग में रानी का नाम उत्कीर्ण है। उसकी चाँदी की मुद्राएँ थोड़ी मात्रा में मिली हैं जो "राजा के सिर" अथवा जनभाषा में "गधैया का पैसा" प्रकार की मानी जाती हैं। जयानक ने "पृथ्वीराज विजय" में लिखा है कि—"अजयदेव ने चाँदी (दुर्वण) के रुपयों अर्थात् सिक्कों से पृथ्वी भर दी और कवियों ने उसे अपने सुवर्णों (अच्छे अक्षरों अर्थात् सत्काव्य) से भर दी।"

धर्म सहिष्णुता—अजयराज शिव का उपासक था किन्तु वह अन्य धर्मों का आदर करता था। उसके राज्य में वैष्णव तथा जैन धर्मावलम्बियों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। जिनपाल के ग्रन्थ "खरतर गच्छ पट्टावली" के अनुसार उसने अजमेर में जैनियों को अपने मंदिर बनाने की अनुमति दी और उसने पार्श्वनाथ मंदिर पर स्वर्ण-कलश प्रस्थापित किया। रविप्रभा सूरी ने अपने ग्रन्थ "धर्माघोष स्तुति" में अजयराज द्वारा श्वेताम्बर आचार्य धर्मघोष सूरी तथा उसके दिगम्बर प्रतिद्वन्दी गुणचंद्र के मध्य हुए

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 456)
2. *Dr Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 46)

शास्त्रार्थ की अध्यक्षता करने का उल्लेख किया है। इस प्रकार अजयराज की धर्म सहिष्णुता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हुई।

अजयराज के अन्तिम दिन—'चौहान प्रशस्ति' ने अपने पुत्र अर्णोराज के पक्ष में राजगद्दी त्याग कर पवित्र पुष्कर सरोवर के निकट वन में सन्यासी जीवन व्यतीत किया। डॉ० दशरथ शर्मा ने इस घटना की तिथि 1133 ई० के पूर्व निर्धारित की है जो बिजोलिया शिलालेख के आधार पर अजयराज के पुत्र अर्णोराज द्वारा मालवा नरेश नरवर्मन की पराजय तथा नरवर्मन की मृत्यु की तिथि है।

(25) अर्णोराज (1130–1150 ई०)

राज्यारोहण—अजयराज ने 1130 ई० के लगभग अपने अन्तिम दिनों में अपने पुत्र अर्णोराज को गद्दी पर बैठा कर सन्यास ग्रहण कर लिया था। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार अर्णोराज की माता का नाम सोमल्ल देवी था। वह अनलदेव, आनलदेव, अन्ना तथा आनाक नामों से भी पुकारा जाता था। उसका जन्म 1113 ई. के पूर्व हुआ क्योंकि पल्ह के ग्रन्थ "जिनदत्त सूरी स्तुति" की प्रतिलिपि इसी तिथि को तैयार की गई जिसमें अर्णोराज के नाम पर "गढ़ अनल्लिड" का उल्लेख किया गया है। अर्णोराज का राज्यारोहण उसके प्रतिद्वन्दी मालवा नरेश नरवर्मन की 1133 ई० में मृत्यु के पूर्व हुआ। उसके शिलालेखों की तिथियों के आधार पर उसने लगभग 18 वर्ष शासन किया।

अजमेर संग्रहालय की "चौहान प्रशस्ति" में अर्णोराज की निम्नांकित उपलब्धियों का उल्लेख किया गया है—

(1) अजमेर के निकट तुरुष्कों का वध,
(2) मालवा के नरवर्मन की पराजय,
(3) सिन्धु और सरस्वती तक चौहानों का अभियान,
(4) हरितानक प्रदेश पर अभियान।

तुरुष्कों पर विजय—अर्णोराज का जिन तुरुष्कों से संघर्ष हुआ, वे लाहौर तथा गजनी के यामिनी वंश के तुर्क थे। "पृथ्वीराज विजय" से विदित होता है कि अजयराज के समय इन तुर्कों ने नागौर पर अधिकार कर अन्य भारतीय प्रदेशों पर आक्रमण की योजना बनाई। अर्णोराज के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ये विदेशी तुर्क अजमेर तक पहुँच गये। अजमेर नगर के निकट मैदान में (जहाँ वर्तमान अनासागर झील का निर्माण कर उसे चंद्रा नदी के जल से भरा गया ताकि वह स्थान मुस्लिम रक्त के धब्बों से मुक्त हो सके) युद्ध हुआ। यामिनी सेनापति निर्णायक रूप से पराजय हो भागा जिसका चौहानों ने पीछा किया। अनेक मुस्लिम सैनिक अपने भारी कवचों के भार से थक कर मर गये तथा कई सैनिक निर्जल मरुभूमि में प्यासे मर गये। कुछ सैनिकों की राजस्थान के चलायमान रेतीले टीबों में कब्र बन गई तथा अजमेर से जाने के मार्ग में अनेक मुस्लिम सैनिकों के दुर्गन्धयुक्त शवों को

ग्रामीणों ने जला दिया। काफी लूट का सामान जिसमें घोड़े प्रमुख थे अर्णोराज के सैनिकों के हाथ लगा तथा कई दिनों तक अजमेर इस महान् विजय के उपलक्ष में हर्ष-उल्लास के समारोहों के दृश्यों से परिपूर्ण रहा। "चौहान प्रशस्ति" से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—"अजमेर की भूमि जो तुरुष्कों के रक्त से सिंची हुई थी इस प्रकार प्रतीत हो रही थी मानो वह अपने अधिपति (अर्णोराज) की विजय का पर्व मनाने हेतु गहरे लाल रंग के परिधानों से सुसज्जित हो।"

इस प्रकार अर्णोराज की तुरुष्कों पर विजय निर्णायक हुई। श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय[1] का कथन है कि, "उसने तुरुष्कों को ऐसा परास्त किया कि 20 वर्ष तक उन्होंने सपादलक्ष पर दृष्टि डालने का साहस न किया। मुसलमानों ने गुजरात तथा अन्य राज्यों पर आक्रमण नहीं किया क्योंकि वहाँ जाने का रास्ता सपादलक्ष से होकर पड़ता था।" 'पृथ्वीराज विजय' में भी यही मत व्यक्त करते हुए कहा गया है कि, "यदि वह मुसलमानों को न हराता तो मंदिरों का अस्तित्व ही मिट जाता।"

मालवा के परमारों पर विजय—बिजोलिया शिलालेख में श्लेष अलंकार का प्रयोग करते हुए कहा गया है कि—"यह हमें आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि अर्णोराज जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति ने देवताओं के स्वामी 'निर्वाण-नारायण' को परास्त कर उसका अनादर किया।" किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा का कथन है कि इस उक्ति का विरोधावास दूर हो जाता है जब हमें ज्ञात होता है कि अर्णोराज द्वारा पराजित देवताओं का स्वामी नारायण न होकर मालवा का शासक निर्वाण-नारायण था। 'चौहान प्रशस्ति' से भी इस की पुष्टि होती है जिसमें अंकित है कि—"अर्णोराज के सैनिकों ने मालवेश के हाथियों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया।" यह मालवेश मालवा का शासक नरवर्मा था।

सिन्धु और सरस्वती का अभियान—'चौहान प्रशस्ति' में अंकित है कि—"जलविहीन मरुभूमि में प्यासे रहने के कारण तथा प्रहलाद कूप (सम्भवतः बीकानेर के निकट पल्लू) से प्यास न बुझने के कारण अर्णोराज सिन्धु और सरस्वती के तट पर पहुँचा।" समकालीन कवि हेमचन्द्र के "द्वियाश्रयकाव्य" में उल्लेख है कि अन्ना (अर्णोराज़) की सहायता पूर्वी मद्र तथा वाहीक देश के शासकों ने की। इसी ग्रन्थ में अर्णोराज के लिए "उदिच्यराट" विरुद के प्रयोग के आधार पर डॉ. दशरथ शर्मा[2] का अनुमान है कि सिन्धु और सरस्वती के अभियान के फलस्वरूप अर्णोराज ने उदिच्य अर्थात् पूर्वी पंजाब के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया था।

हरितानक देश पर आक्रमण—'चौहान प्रशस्ति' में उत्कीर्ण है कि, "अर्णोराज के सैनिकों के अभियान से कालिन्दी (यमुना) नदी का जल गँदला हो गया तथा हरितानक देश की नदियाँ अश्रु बहाने लगी थी।" पालम बाउली शिलालेख

1. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 303)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 50)

(1280 ई०) तथा दिल्ली संग्रहालय शिलालेख (1327 ई०) के आधार पर हरितानक देश का समीकरण उस प्रदेश से किया गया है जो चाहमानों की विजय के पूर्व तोमरों के अधिकार में था। इस प्रदेश की राजधानी ढिल्लिका (दिल्ली) थी जो कालिन्दी (यमुना) नदी के दक्षिण तट पर स्थित है। डॉ० दशरथ शर्मा की मान्यता है कि चौहान प्रशस्ति के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अर्णोराज ने दिल्ली के शासक तोमरों को युद्ध में पराजित किया किन्तु यह विजय निर्णायक नहीं थी क्योंकि विग्रहराज चतुर्थ ने दिल्ली पर स्थायी अधिकार किया था। डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[1] का मत है कि—"चाहमान सेनाओं ने तोमरों के राज्य क्षेत्र हरितानक अर्थात् हरियाणा पर आक्रमण कर कुछ सफलता पाई।" डॉ० शर्मा का मत ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

वारन (बुलन्दशहर) पर विजय—हरियाणा के समीप वारन (वर्तमान बुलन्दशहर) राज्य था जिस पर ढोढ राजपूत राज्य करते थे। बिजोलिया शिलालेख से अर्णोराज द्वारा कुशवारन पर विजय प्रदर्शित करते हुए कहा गया है—"वारन जैसे पापपूर्ण राज्य के विरुद्ध जो कुछ भी अर्णोराज ने किया उससे हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि वारन एक उद्दंड हाथी के समान था और अर्णोराज ऐसे हाथी के समान उद्दंड शासकों के लिए अंकुश के सदृश था।" वारन का उस समय शासक सहजादित्य या भोजदेव था। डॉ. पाठक ने भी कुशवारन का समीकरण बुलन्दशहर से किया है जहाँ गहड़वालों के अधीन ढोढ (द्रोड) राजपूत राज्य करते थे तथा इस प्रदेश पर चौहानों की विजय अस्थायी बतलाई है। डॉ. सत्यप्रकाश[2] ने "इन्सक्रिपशन्स ऑफ नोर्दन इण्डिया" के साक्ष्य पर वारन (बुलन्दशहर) के निवासी छन्द राजपूतों को तथा यहाँ का शासक सहजादित्य अथवा भोजदेव बतलाया है।

गुजरात के चालुक्यों से संघर्ष—(क) सिद्धराज जयसिंह से संघर्ष—अर्णोराज ने अब तक अपने सैनिक अभियानों में सफलता प्राप्त की थी किन्तु गुजरात के चालुक्यों ने उसकी विस्तारवादी तथा आक्रामक नीति पर अंकुश रखा। सपादलक्ष दक्षिण-पश्चिम में गुजरात का राज्य अर्णोराज्य (चौहानों) की भाँति ही शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी था जिसका शासक जयसिंह सिद्धराज था। सिद्धराज ने भी चौहान राज्य पर अभियान किये तथा उसने 1121 ई. में नागौर एवं 1143 ई. में मालवा पर अधिकार कर लिया। अतः चालुक्य-चौहान संघर्ष अर्णोराज के राज्यारोहण के पूर्व से ही चला आ रहा था। उसके शासनकाल में यह संघर्ष और तीव्र हो गया। हेमचंद्र के "द्वयाश्रय महाकाव्य" के अनुसार अर्णोराज को सिद्धराज की शक्ति का लोहा मानना पड़ा। इसकी पुष्टि सोमेश्वर के "सुरथोत्सव" ग्रन्थ से होती है। सोमेश्वर के ही दूसरे ग्रन्थ "कीर्तिकौमुदी" से ज्ञात होता है कि यद्यपि सिद्धराज ने अर्णोराज

1. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ० 459)
2. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास-राजपूतकाल (पृष्ठ 153)

को पराजित किया था किन्तु उसने अपनी पुत्री का विवाह अर्णोराज से किया। "पृथ्वीराज विजय" से सिद्धराज की इस पुत्री का नाम कांचन देवी ज्ञात होता है। साँभर शिलालेख में अंकित है कि जयसिंह की सेना ने साँभर पर कुछ समय तक अधिकार किया था।

चालुक्यों के चौहानों से हुए उक्त संघर्ष का कारण बतलाते हुए डॉ. दशरथ शर्मा[1] कहते हैं कि मालवा को अधिकृत करने की दोनों की महत्वाकांक्षा ही इस संघर्ष का कारण प्रतीत होती है। किन्तु इस वैवाहिक सम्बन्ध से यह संघर्ष समाप्त हो गया और जयसिंह सिद्धराज को मालवा में आक्रामक नीति अपनाने का अवसर मिल गया।

(ख) **कुमारपाल से संघर्ष**—यह चालुक्य-चौहान सद्भाव केवल जयसिंह के जीवन-काल तक सीमित रहा। कुमारपाल के 1147 ई० में गद्दी पर बैठते ही सपादलक्ष के चौहानों तथा गुजरात के चालुक्यों में संघर्ष छिड़ गया। इस संघर्ष का सर्वप्रथम साक्ष्य हेमचन्द्र के "द्वयाश्रय महाकाव्य" में मिलता है। इसके अनुसार अर्णोराज ने उत्तरी भारत के कुछ शासकों का संघ बनाया तथा कुमारपाल के सम्बन्धी तथा असन्तुष्ट सामन्त चाहड़ ने चालुक्य राज्य पर अभियान की तैयारी की। जब कुमारपाल ने चाहमान आक्रमण का सामना करने के लिये अभियान किया तो अर्णोराज का मित्र बल्लाल गुजरातियों पर पीछे से आक्रमण करने को सहमत हो गया। अतः इस संघर्ष में अर्णोराज के आक्रामक नीति अपनाई थी। इसकी पुष्टि "द्वयाश्रय महाकाव्य" के टीकाकार अभयतिलकगणि (1255 ई०) तथा "प्रबन्धचिन्तामणि" के लेखक मेरुतुंग (1314 ई०) से होती है जिनके अनुसार सिद्धराज की अपेक्षा कुमारपाल एक दुर्बल शासक था, अतः अर्णोराज ने समझा कि वह उसे सरलता से पराजित कर सकता है। मेरुतुंग इस संघर्ष का कारण चाहड़ को मानता है जो सिद्धराज का दत्तक पुत्र था। चाहड़ ने कुमारपाल के आदेशों की अवहेलना कर अर्णोराज के दरबार में शरण ले ली तथा कुछ दिनों में ही उसने अधिकांश गुजराती सामंतों को अपने पक्ष में कर अर्णोराज को सेनासहित गुजरात की सीमा पर ले आया। प्रभाचंद्र के ग्रंथ "प्रभावकचरित" (1277 ई०) में अर्णोराज की आक्रामक योजना का तो उल्लेख नहीं किया किन्तु कहा है कि कुमारपाल ने गर्वोन्मत्त अर्णोराज के विरुद्ध युद्ध करने हेतु अभियान किया। इस प्रकार सभी साक्ष्यों के आधार पर डॉ० दशरथ शर्मा[2] ने निष्कर्ष निकाला है कि कुमारपाल द्वारा चौहानों के विरुद्ध अभियान करने से पूर्व अर्णोराज ने चालुक्य राज्य की सीमा का अतिक्रमण अवश्य किया था।

उपरोक्त संघर्ष के कारण को परवर्ती साहित्यिक साक्ष्यों ने भिन्न रूप से प्रस्तुत किया है। दीवान बहादुर हरविलास शारदा ने इस संघर्ष का कारण अर्णोराज

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 53)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 54)

द्वारा अपनी रानी देवलदेवी (कुमारपाल की वहिन) से दुर्व्यवहार करना वतलाया है। राजशेखर कृत "प्रवन्धकोश" के अनुसार कुमारपाल की वहिन का विवाह आनाक (अर्णोराज) से हुआ था। एक वार जव अर्णोराज तथा उसकी यह पत्नी शतरंज खेल रहे थे तो अर्णोराज ने उसकी पत्नी का मोहरा उठाकर कहा "इन मुंडकों (गुजरातियों व जैन मुनियों) को मारो"। इस पर उसकी रानी ने मुंडका शब्द पर क्रुद्ध होकर अर्णोराज से अपनी जवान पर नियंत्रण रखने को कहा अन्यथा उसके भाई 'राजराक्षस' कुमारपाल द्वारा उसकी जवान खींच ली जायेगी। अर्णोराज ने रानी को लात मारी। अपमानित रानी ने तत्काल पट्टन (गुजरात की राजधानी अन्हिलपट्टन) जाकर कुमारपाल से इस घटना का उल्लेख किया। कुमारपाल ने इस अपमान का वदला लेने का निश्चय किया। इसी घटना का उल्लेख जयसिंह सूरी कृत "कुमारपाल चरित", जिनमण्डन तथा चरित्रसुन्दर ने भी किया है। इन्होंने कुमारपाल की इस वहिन का नाम देवलदेवी वतलाया है जिसका विवाह अर्णोराज से हुआ था। इन जैन लेखकों ने इस घटना को जैन विरोधी वना कर सांप्रदायिक रूप देने का और प्रयास किया। डॉ० सत्य प्रकाश[1] इस कहानी को अविश्वसनीय मानते हुए कहते हैं कि "यह विचारधारा जैन सिद्धान्तों के भी विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त कुमारपाल ने जैन धर्म को अपनी सव विजयों के वाद स्वीकार किया था, अतः शतरंज के मोहरे की तनिक सी वात को लेकर इतना वड़ा युद्ध प्रारम्भ करना, यह अविश्वसनीय है।" डॉ० दशरथ शर्मा[2] यह सिद्ध करने के लिये अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि देवल देवी नामक न तो कोई कुमारपाल की वहिन थी और न अर्णोराज की रानी ही। यदि देवल देवी की उक्त घटना सत्य होती तो प्रारम्भिक लेखक हेमचंद्र उसका उल्लेख अवश्य करते। अतः परवर्ती लेखकों ने इस कहानी को गढ़ लिया है जो तत्कालीन शैव तथा जैन धर्मावलम्वियों की परस्पर प्रतिद्वंदिता की सूचक है। अर्णोराज की दो रानियाँ थी—एक कांचनदेवी जो सिद्धार्थ जयसिंह की पुत्री थी तथा दूसरी मारवाड़ की सुधवा देवी। एक प्राचीन गुजराती साक्ष्य-ग्रन्थ "कीर्तिकौमुदी" में भी अर्णोराज की एक ही रानी जयसिंह की पुत्री का उल्लेख है। मुनिजिनविजय के "कुमारपाल चरित" से ज्ञात होता है कि कुमारपाल के एक ही वहिन परमाल देवी थी जिसका विवाह गुजरात के एक सामंत कृष्णराज के साथ कुमारपाल के राज्यारोहण के पूर्व हुआ था। इसकी पुष्टि सोमतिलक सूरी तथा पुरातनाचार्य भी करते हैं। अतः देवल देवी की कपोल-कल्पित कहानी का सृजन राजशेखर या उसके पूर्वगामी लेखक द्वारा हुआ था।

कुमारपाल के समकालिक तथा गुरु हेमचंद्र तथा परवर्ती लेखक अभयतिलकगणि, प्रभाचंद्र तथा मेरुतुंग चालुक्य-चौहान संघर्ष का वास्तविक कारण

1. डॉ० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ० 155)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 56)

राजनैतिक बतलाते हैं। सिद्धराज की मृत्यु के बाद कोई सर्वसम्मत उत्तराधिकारी नहीं था, उसका दत्तक पुत्र चाहड़ गद्दी का प्रत्याशी था, अतः अर्णोराज ने इस आशय से चाहड़ का पक्ष लिया कि वह गुजरात नरेश के रूप में चौहानों की विस्तारवादी महत्वाकांक्षा के मार्ग में कुमारपाल की अपेक्षा कम बाधक होगा। इसके अतिरिक्त कुमारपाल का राज्यारोहण हुआ ही था कि अर्णोराज ने गुजरात पर आक्रमण करने का इस समय उपयुक्त अवसर समझा। हेमचंद्र के अनुसार चाहड़ कुमारपाल का सम्वर्न्धी तथा कन्था (कन्था दुर्ग) का शासक था। सम्भवतः वह चालुक्य अथवा परमार था। वह हाथियों के नियन्त्रण में दक्ष था।

अर्णोराज तथा कुमारपाल के मध्य संघर्ष "प्रभावक चरित" के अनुसार 12 वर्ष तक चला। अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर डॉ० दशरथ शर्मा[1] दो चरणों में इस संघर्ष को विभाजित करते हैं। प्रथम चरण में संघर्ष का कारण अर्णोराज की विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा तथा चालुक्य गद्दी के लिये उत्तराधिकार का विवादास्पद प्रकरण था। अर्णोराज के गुजरात अभियान में वह आबू पर्वत के निकट कुमारपाल की सेना से पराजित हुआ किन्तु यह पराजय निर्णायक नहीं थी। चालुक्य नरेश कुमारपाल ने आबू के सामंत परमार विक्रमसिंह को चालुक्य नरेश के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के आरोप में हटा दिया तथा उसके स्थान पर यशोधवल को आबू का शासक बनाया। यह तथ्य अजारी शिलालेख से प्रमाणित होता है। इसके अतिरिक्त उसने नाड़ौल में राज्यपाल को पदच्युत कर चालुक्य समर्थक चौहान आल्हण को शासक बनाया गया। "हेमचंद्र सूरी चरित" से ज्ञात होता है कि चालुक्य सेनाएँ अजमेर तक बढ़ आई थी किन्तु 16 मील चौड़े कंटीले पेड़ों की प्राचीर ने उसे गुजरात वापस जाने को विवश किया।

संघर्ष के दूसरे चरण में इस पराजय के 3–4 वर्ष पश्चात् ही अर्णोराज ने प्रतिशोध में गुजरात पर अभियान की योजना बनाई। उसने सर्वप्रथम आल्हण को पराजित कर नाडौल से भगा दिया। 'द्वयाश्रयकाव्य' से विदित होता है कि इसके बाद अर्णोराज ने मालवा में चलुक्यों के विरुद्ध बल्लाल को भड़काया। कुमारपाल ने बल्लाल का दमन करने के लिये अपने सामंत भेजे और स्वयं अर्णोराज के विरुद्ध सैनिक अभियान किया। 'कुमारपाल चरित' से पता चलता है कि कुमारपाल नाडौल होता हुआ पाली 1150 ई० में पहुँचा जहाँ उसने काफी लूट-पाट की। आगे बढ़ता हुआ वह अजमेर गया। 'प्रबन्धकोश' के अनुसार चाहड़ ने गुप्त रीति से कुमारपाल के महावत चौलिग तथा सामंत केल्हण को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार अपनी स्थिति सुदृढ़ कर अर्णोराज ने कुमारपाल पर आक्रमण किया। अपने महावत तथा चौलिग पर संदेह होने पर कुमारपाल ने उन्हें हटा दिया। इस तथ्य से अनभिज्ञ चाहड़ युद्ध में अपने हाथी से कुमारपाल के हाथी पर जाते समय गिर पड़ा और बन्दी

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 58)

बना लिया गया। कुमारपाल तथा अर्णोराज में परस्पर द्वन्द युद्ध हुआ जिसमें तीर से घायल होकर अर्णोराज अपने हाथी पर बेहोश हो गया। अर्णोराज की सेना युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ी हुई। 'बड़नगर प्रशस्ति' से ज्ञात होता है कि कुमारपाल ने अर्णोराज को वन्दी बनाकर एक लकड़ी के जंगले में रखा। चरित्रसुन्दर में देवल देवी द्वारा युद्ध-क्षेत्र में जाकर अपने पति अर्णोराज के जीवन-रक्षा के लिये प्रार्थना करने का उल्लेख किया है।

"द्वियाश्रय महाकाव्य" से ज्ञात होता है कि यह पराजय अर्णोराज के लिए अत्यन्त अपमानजनक सिद्ध हुई क्योंकि उसे अपनी पुत्री जल्हणा का विवाह कुमारपाल से कर तथा अनेक घोड़े व हाथी दहेज में देकर संधि करनी पड़ी। यह विवाह अर्णोराज को अजमेर से करने की अपेक्षा अन्हिलपट्टन से करना पड़ा। अर्णोराज का मित्र मालवा का बल्लाल भी मारा गया। "बड़नगर प्रशस्ति" से भी इसकी पुष्टि होती है तथा विदित होता है कि कुमारपाल अर्णोराज को पराजित कर अजमेर से शालिपुर, चित्रकूट पर्वत (चित्तौड़) तथा पाहारी गया जहाँ उसने 1150 ई० में एक शिलालेख उत्कीर्ण कराया।

इस युद्ध के फलस्वरूप विजेता कुमारपाल को सर्वाधिक लाभ मिला। कुमारपाल की वीर योद्धा के रूप में ख्याति हुई तथा दक्षिणी-पश्चिमी राजपूताना और मालवा में उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया। अर्णोराज की प्रतिष्ठा तथा धन की हानि हुई किन्तु उसकी राज्य-सीमा में कोई कमी नहीं हुई। चौहान पराजित अवश्य हुए किन्तु उनकी शक्ति का दमन नहीं हुआ था क्योंकि विग्रहराज चतुर्थ के शासन-काल में उन्होंने कुमारपाल को पराजित किया।

अर्णोराज का अंतिम काल—उपरोक्त पराजय के पश्चात अर्णोराज अधिक समय जीवित नहीं रह सका क्योंकि उसकी मारवाड़ी रानी सुधवा के बड़े पुत्र जगद्देव ने उसकी हत्या कर दी। अर्णोराज के अन्य तीन पुत्रों के नाम थे। विग्रहराज, देवदत्त तथा सोमेश्वर। तीसरा पुत्र उसकी चालुक्य रानी कांचनदेवी से उत्पन्न था।

अर्णोराज की उपलब्धियों का मूल्यांकन—अर्णोराज चौहान वंश का एक महान् शासक था। वह एक वीर योद्धा कुशल सेनानायक तथा महत्त्वाकांक्षी शासक था। वह म्लेच्छों (तुरुष्कों) का वीरतापूर्वक सामना करने तथा उन्हें पराजित कर भारतीय प्रदेश तथा संस्कृति की रक्षा करने की चौहानवंशी परम्परा का सफलतापूर्वक निर्वाह करने में समर्थ सिद्ध हुआ। वह विस्तारवादी आक्रामक नीति द्वारा अपनी राज्य-सीमा तथा प्रतिष्ठा की वृद्धि में संलग्न रहा। मालवा, हरितानक, सरस्वती एवं सिन्धु के अभियानों में सफलता प्राप्त कर उसने इसी नीति का परिचय [illegible]या। गुजरात के चालुक्य नरेश सिद्धराज जयसिंह तथा कुमारपाल से उसका [illegible]ीन संघर्ष राजस्थान तथा मालवा में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने के उद्देश्य हुआ था। इस संघर्ष में यद्यपि उसको पराजय मिली किन्तु उसकी राज्य-सीमा [illegible]ई हानि नहीं पहुँची। परिस्थिति के अनुकूल उसने चालुक्यों से संधि कर

अपनी कूटनीतिक प्रतिभा का परिचय दिया। सिद्धराज की पुत्री कांचन देवी से विवाह तथा अपनी पुत्री जल्हणा का विवाह कुमारपाल से कर संधि करना चौहानों को अपनी शक्ति संचय के लिये समय देने के लिये आवश्यक था। मालवा के बल्लाल तथा गुजरात की गद्दी के लिये प्रत्याशी चाहड़ को अपना सहायक बनाना अर्णोराज की कूटनीति का ही अंग था।

अर्णोराज की ख्याति एक आक्रामक विस्तारवादी अभियानकर्त्ता के रूप में ही नहीं थी, वह पूर्ण धर्मनिष्ठ था तथा निर्माण कार्यो में रुचि लेता था। वह शैव धर्मावलम्बी होते हुए भी धर्मसहिष्णु था। उसने पुष्कर में वराह मन्दिर का निर्माण कराया तथा अजमेर में मन्दिर बनाने हेतु उसने खरतर-गच्छ के अनुयायियों को एक विशाल भू-खण्ड प्रदान किया। वह धर्माचार्यों तथा साहित्यकारों का आश्रयदाता था। उसके दरबार में भागवत आचार्य देवबोध को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। श्वेताम्बर आचार्य धर्मघोप सूरी को उसके द्वारा अपने प्रतिद्वन्दी दिगम्बर आचार्य गुणचन्द्र को शास्त्रार्थ में पराजित करने पर अर्णोराज ने एक 'जयपत्र' प्रदान किया।

डॉ० दशरथ शर्मा[1] ने अर्णोराज का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है—"कुमारपाल से पराजित होने के बाद भी अर्णोराज को अपने वंश का एक महानतम शासक होने का श्रेय दिया जाना चाहिए। अपनी राज्य-सीमा के निकटवर्ती प्रदेश मालवा, हरियाना तथा अन्य प्रदेशों पर सफल अभियान कर उसने अपने अधीन लोगों की तथा अपनी राज्य-सीमा की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि की। किन्तु उसकी महानतम उपलब्धि उसके द्वारा गजनी के मुसलमानों की निर्णायक पराजय थी जिसके कारण वे सपादलक्ष पर 20 वर्ष तक अभियान करने का साहस न कर सके और इस प्रकार उसने सपादलक्ष की ही नहीं अपितु गुजरात तथा अन्य प्रदेशों की शान्ति तथा समृद्धि की सुरक्षा की क्योंकि इन राज्यों पर आक्रामकों का अभियान-मार्ग अर्णोराज के राज्य के मध्य था।" जयानक[2] का कथन है कि, "वर्तमान तथा भविष्य के मन्दिरों के निर्माण का धार्मिक श्रेय अर्णोराज को है क्योंकि यदि वह मुसलमानों को पराजित न करता तो मन्दिरों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता।"

(26) जगद्देव (1150 ई०)

पितृहन्ता जगद्देव अधिक समय तक शासन नहीं कर सका। डॉ० दशरथ शर्मा ने अपने पास सुरक्षित एक वही के आधार पर कहा है कि जगद्देव की माता सुधवा अविचि की राजकुमारी नहीं थी बल्कि वह मरुकोट्ट (मारोठ) की राजकुमारी थी। सुधवा का भाई तथा मारोठ का शासक सिम्हवल (1160–1[illegible] ई०) यौधेय राजपूत था तथा विग्रहराज चतुर्थ का एक विश्वस्त सेनानायक

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties
2. जयानक : पृथ्वीराजविजय–VI (p. 155)

पितृहन्ता जगद्देव के पाप के विरोध में हुए विद्रोह का नेतृत्व उसके छोटे भाई विग्रहराज ने किया तथा उसकी हत्या कर दी। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार, "अपने स्नेहपूर्ण पिता की हत्या कर जगद्देव स्वयं नष्ट हो गया और अपना कलंकित नाम छोड़ गया। वह एक ऐसा चौहान शासक था जिसे स्वर्ग नहीं मिला।"

(27) विग्रहराज चतुर्थ (1150-1164 ई०)

राज्यारोहण—अपने भाई जगद्देव की हत्या करने के बाद अर्णोराज का पुत्र विग्रहराज चतुर्थ शासक बना। उसका राज्यारोहण (1150 ई०) के लगभग हुआ तथा उसने 1164 ई० तक राज्य किया। राज्यारोहण के समय विग्रहराज का लक्ष्य सर्वप्रथम प्रतिशोध लेना था। अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध उसने कर लिया था। अब कुमारपाल के हाथों उसके पिता की पराजय एवं अपमान का बदला लेना था। इसके लिए उसने चालुक्य-राज्य के विरुद्ध अनेक प्रतिशोधात्मक अभियान किये। विग्रहराज के 11 शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनमें सबसे पूर्व का अजमेर के 'ढाई दिन का झौंपड़ा' (तत्कालीन सरस्वती मन्दिर) से प्राप्त हुआ है।

विग्रहराज चतुर्थ की विजयें

1. चित्तौड़-विजय (1151 ई०)—विजोलिया शिलालेख[1] में वर्णित विजयों के क्रम में सर्वप्रथम विग्रहराज द्वारा 'सज्जन' के विरुद्ध अभियान है। इस अभिलेख के श्लोक संख्या 20 में कहा गया है कि, "सज्जन प्रदेश का सबसे अधिक असज्जन व्यक्ति था जिसे विग्रहराज ने यमलोक पहुँचा दिया।" श्री अक्षयकीर्ति व्यास ने इस 'सज्जन' का समीकरण सौराष्ट्र के दण्डाधिपति सज्जन से किया है जिसका उल्लेख गिरनार पर्वत के शिलालेख (1119 ई०) में हुआ है। किन्तु, जयसिंह सूरी कृत 'कुमारपाल देवचरित'[2] के आधार पर यह 'सज्जन' एक कुम्हार था जिसकी सेवाओं से प्रसन्न हो कुमारपाल ने उसे चित्तौड़ का प्रशासक नियुक्त किया था। कुमारपाल के चित्तौड़ शिलालेख (1150 ई०) में सज्जन की उपाधि दण्डाधीश बतलाई गई है। सोमतिलक सूरी ने कहा है कि विग्रहराज चतुर्थ ने चित्तौड़ को जीत कर सज्जन की गज-सेना पर अधिकार किया। इस आक्रमण के समय विग्रहराज का ध्यानाकर्षित करने हेतु कुमारपाल ने नागौर दुर्ग का घेरा डाला किन्तु विग्रहराज की उक्त विजय के समाचार सुनकर घेरा तत्काल उठा दिया। सज्जन उस समय काफी वृद्ध था क्योंकि वह जयसिंह सिद्धराज के समय 1119 ई० में सौराष्ट्र का प्रशासक नियुक्त था। अतः वह सौराष्ट्र जैसे बड़े प्रान्त का प्रशासक बनने योग्य नहीं था। डॉ० दशरथ शर्मा का मत है कि विग्रहराज चतुर्थ द्वारा सौराष्ट्र पर अभियान करने का कोई प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण विग्रहराज द्वारा केवल सौराष्ट्र की

1. Epigraphia Indica,–XXVI (p. 105)
2. जयसिंह सूरी : कुमारपाल देवचरित (p. 165)

सीमा तक पहुँच पाना सम्भव है। डॉ० सत्यप्रकाश[1] भी यही निष्कर्ष निकालते हैं कि सज्जन नामक व्यक्ति सूरक्षेत्र (सौराष्ट्र) का सामन्त नहीं था।

2. **नाडुल्य (नाडौल), जालौर तथा पाली पर आक्रमण**—जिस प्रकार विग्रहराज ने प्रतिशोध की भावना से चालुक्यों के अधीन चित्तौड़ के सामन्त सज्जन पर आक्रमण कर उसे पराजित किया उसी प्रकार उसने नाडुल्य (नाडौल), जावालिपुर (जालौर) तथा पल्लिका (पाली) पर भी अभियान कर कुमारपाल के समर्थक वहाँ के सामन्तों को पदाक्रान्त किया। बिजोलिया शिलालेख में अंकित है—"विग्रहराज ने अप्रसन्न होकर जावालिपुर को ज्वालापुर बना दिया (अर्थात् जला दिया), पल्लिका को एक तुच्छ गाँव बना दिया और नाडुल्य को नड्वतुल्य अर्थात् बेंत की तरह झुका दिया।" इन स्थानों के शासक चालुक्यों के सामन्त थे तथा अधिकांश अर्णोराज के विरुद्ध कुमारपाल की ओर से युद्ध में भाग ले चुके थे। विग्रहराज ने इनका मान-मर्दन कर अपने पिता अर्णोराज की पराजय तथा अपमान का बदला लिया। सपादलक्ष के चौहान राज्य के समीपवर्ती इन स्थानों में से सबसे अधिक क्षति नाडौल को पहुँचाई गई। गत 10 वर्षों (1151–1161 ई०) में नाडौल के शासक चालुक्यों के प्रभाव से बदलते रहे। नाडौल पर आल्हण, कुन्तपाल, दण्डाधीश वैजल्यदेव तथा पुनः आल्हण क्रमशः शासक बनाए गए थे। सम्भवतः कुमारपाल चौहानों के विरुद्ध नाडौल जैसे सैनिक शिविर का उपयुक्त अधिपति खोजने में असमर्थ रहा।

उपरोक्त अभियानों से कुमारपाल को राज्य-सीमा, धन तथा जन सभी की क्षति पहुँची। "चौहान प्रशस्ति" के अनुसार "कुमारपालः करवालपालः" अर्थात् कुमारपाल 'करवालपाल' (प्रतिहार या कुन्तपाल) की स्थिति में अर्णोराज के अभियानों से पहुँच गया। यद्यपि यह अतिशयोक्ति है किन्तु डॉ. दशरथ शर्मा[2] के शब्दों में—"विग्रहराज को अपार भौतिक लाभ हुआ। उसे अपने प्रतिशोधात्मक अभियानों में लूट का विशाल सामान हाथ लगा तथा मेवाड़ का अधिकांश भाग उसने अपने राज्य में विजित कर सम्मिलित कर लिया। इसका प्रमाण है कि विग्रहराज चतुर्थ के शासन-काल में ही हम चौहान अभिलेखों की उपलब्धि सर्वप्रथम बिजोलिया, माण्डलगढ़ तथा जहाजपुर क्षेत्र से होती है।"

3. **भण्डानकों पर विजय**—बिजोलिया शिलालेख के आधार पर विग्रहराज की अन्य उपलब्धि भण्डानकों पर विजय थी। राजशेखर कृत "काव्यमीमांसा" में भण्डानकों का निवास स्थान मरु तथा थक्क क्षेत्र थे। उनकी भाषा अपभ्रंश थी। डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार मरुप्रदेश का समीकरण थार मरुस्थल तथा थक्क का समीकरण दक्षिणी-पूर्वी पंजाब क्षेत्र से किया जाता है। उनका कथन है कि भण्डानकों

1. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 158)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (*p. 66*)

का उपयुक्त निवास-स्थल शेखावाटी के उत्तर में वह प्रदेश है जो अब 'अहीरावाटी' कहलाता है। इस प्रदेश के शासक सम्भवतः अहीर थे जिनकी भाषा अपभ्रंश थी। इन लोगों में अब भी यहाँ जनश्रुति प्रचलित है कि उनके पूर्वज चौहान नरेश विशालदेव (विग्रहराज चतुर्थ) तथा पृथ्वीराज तृतीय के विरुद्ध लड़े थे।

4. ढिल्लिका (दिल्ली) तथा असिका (हाँसी) पर विजय (1157 ई०)— बिजोलिया अभिलेख के आधार पर ही अन्य सैनिक उपलब्धि दिल्ली तथा हाँसी पर विग्रहराज की विजय थी। पालम बाओली (1280 ई०) तथा दिल्ली संग्रहालय शिलालेखों (1327 ई०) के अनुसार दिल्ली के तत्कालीन शासक तोमर थे जबकि चौहानों ने उस पर आक्रमण किया था। हाँसी को तोमरों ने गजनी के मुसलमानों से अधिकृत किया था और चौहानों की विजय तक उस पर उनका अधिकार बना रहा। डॉ० दशरथ शर्मा[1] अपने पास सुरक्षित एक बही के आधार पर (1157 ई०) बतलाते हैं कि चौहानों और तोमरों के मध्य युद्ध विग्रहराज चतुर्थ के समय हुआ था जिसमें तोमरों की पराजय हुई और दिल्ली पर चौहानों का अधिकार हो गया। इस विजय की तिथि 1157 ई० उचित प्रतीत होती है। इस प्रकार दिल्ली और हाँसी पर अधिकार करने के पश्चात् तोमर एवं चौहानों का दीर्घकालीन संघर्ष समाप्त हुआ। यह संघर्ष चौहान शासक चन्दनराज के समय आरम्भ होकर अर्णोराज के समय तीव्रतर होता हुआ विग्रहराज के समय चौहान विजय में परिणित हो समाप्त हो गया। तोमर मुसलमानों, गहड़वालों तथा चौहानों से संघर्षरत रहने के कारण दुर्बल हो गये थे। अतः इस पराजय के बाद तोमरों ने अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये चौहानों का सामंत बनना स्वीकार कर लिया। 1167 ई० में दिल्ली का तोमर सामंत मदनपाल था तथा मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय यहाँ का सामंत मदनपाल का ही कोई वंशज था।

डॉ० दशरथ शर्मा[2] इस विजय का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं कि— "दिल्ली की विजय से शाकम्भरी और अजमेर के चौहान अखिल भारतवर्षीय शक्ति के रूप में परिणित हो गये। इस घटना के बाद निरन्तर उनकी स्वाधीनता आर्यावर्त्त की स्वाधीनता का पर्याय बन गई। मध्यदेश के द्वार पर प्रहरीरूप में खड़े रहकर व भारतीय स्वाधीनता तथा संस्कृति के लिये प्रस्तुत प्रत्येक चुनौती का सामना करने तथा उन्हें नष्ट करने का प्रयास करने वाले शत्रु का प्रतिरोध करने के लिए विवश हो गए। विग्रहराज चतुर्थ ने अपना कर्त्तव्य ठीक निभाया जिसका उल्लेख उसने अपने स्तम्भ-लेख[3] (1163 ई०) में उचित ही किया है कि उसने म्लेच्छों (उत्तर-पश्चिम दिशा से आने वाले मुस्लिम आक्रान्ताओं) को बार-बार खदेड़

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 67)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 68)
3. दिल्ली–शिवालिक स्तम्भलेख–श्लोक–1

कर आर्यावर्त्त को मुक्त तथा पवित्र रखा।" विग्रहराज चतुर्थ का दिल्ली शिवालिक स्तम्भलेख फिरोजशाह की लाट नामक अशोक के लौह-स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। यह स्तम्भ मूलत: खिज्राबाद के निकट तोपरा ग्राम में स्थित था और उसे फीरोज तुगलक (1351-1388 ई०) ने वहाँ से दिल्ली स्थानान्तरित किया था। इस लेख से विग्रहराज के अधिकार में पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी-उत्तरी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र होने की पुष्टि होती है।

5. मालवा के पर्वतीय दुर्गों पर विजय—"पृथ्वीराज विजय" के अनुसार विग्रहराज ने अनेक पर्वतीय दुर्गों को जीता। अन्य साक्ष्यों के अभाव में इन विजित स्थानों की पुष्टि एवं समीकरण किया जाना सम्भव नहीं है। रविप्रभाचार्य कृत "धर्मघोषसूरिस्तुति" में उल्लेख है कि मालवा के एक राजा ने अजमेर में एक जैन मन्दिर का ध्वजस्तंभ लगाते समय विग्रहराज की सहायता की थी। डॉ. विशुद्धानन्द पाठक[1] की मान्यता है कि, "मालवा की राजनीतिक सत्ता उस समय एकदम क्षीण थी और यह असम्भव नहीं है कि वहाँ के किसी राजा ने चाहमान सत्ता का गौरव स्वीकार किया हो।" डॉ. सत्यप्रकाश[2] दिल्ली-शिवालिक स्तंभलेख में अंकित विग्रहराज से सम्बन्धित "हिमालय से लेकर विन्ध्य तक शासक उसे उपहार भेंट करते थे" तथा "हिमवद्-विन्ध्यान्तराल" उक्तियों पर विश्वास करते हुए कहते हैं कि, "मालवा पर उसका अधिकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में हो सकता है परन्तु आर्यावर्त के शासक उसे भेंट देते थे यह केवल अतिशयोक्ति मात्र है किंतु इस सम्भावना को भी नहीं ठुकराया जा सकता कि इनमें अनेकों ने अपने धन का मुसलमानों के आक्रमण से बचने के लिए ठीक स्थान पर उपयोग किया हो।"

6. मुसलमानों से संघर्ष—दिल्ली तथा उसके पूर्व हिमालय की तलहटियों तक के क्षेत्र को अधिकृत करने से विग्रहराज की राज्य सीमा पश्चिमोत्तर प्रदेश में स्थित लाहौर के यामीनी मुस्लिम शासकों की राज्य सीमा को स्पर्श करने लगी। अत: चौहनों का मुसलमानों से संघर्ष होना स्वाभाविक था। दिल्ली-शिवालिक स्तंभ लेख में अंकित है कि विग्रहराज मुसलमानों से देश की रक्षा करने के कर्त्तव्य को भली-भाँति समझता था और उसने उनका समूलोच्छेदन कर आर्यावर्त्त को वास्तविक अर्थों में प्रकट किया।

प्रथम संघर्ष—विग्रहराज का पहला संघर्ष मुसलमानों के विरुद्ध रक्षात्मक था। मुस्लिम शासक 'हम्मीर' अभियान करता हुआ 'वव्वेरा' स्थान तक वढ़ आया और विग्रहराज को उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा। वव्वेरा स्थान का समीकरण डॉ. कीलहार्न ने अजमेर के दक्षिण-पश्चिम में 47 मील दूर स्थित

1, डॉ. पाठक वी० एन० : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 468)

2. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (पृ० 160)

'वघेरा' ग्राम से किया है कि डॉ. दशरथ शर्मा[1] इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि वघेरा हम्मीर के अभियान-मार्ग में पड़ना सम्भव नहीं है। डॉ. डी. आर. भण्डारकर वव्वेरा का समीकरण किशनगढ़ के रूपनगर स्थान से करते हैं किन्तु यह तर्क निराधार है। डॉ. शर्मा वव्वेरा का समीकरण खेतड़ी के निकट इसी नाम के एक ग्राम से करते हैं। यह मत उचित प्रतीत होता है क्योंकि इस स्थान के गौड़ ब्राह्मण आज भी राजस्थान में अन्यन्त्र बसे हुए स्वयं को वव्वेरवाल पुकारते हैं। मुस्लिम आक्रमणकारी हम्मीर का समीकरण गजनी का अमीर खुसरो शाह (1153-1160 ई.) से किया जाता है। 'ढाई दिन का झौंपड़ा' (तत्कालीन विग्रहराज द्वारा निर्मित 'सरस्वती मंदिर') से उपलब्ध शिलालेखों पर उत्कीर्ण सोमदेव कृत 'ललित विग्रहराज नाटक' से इस मुस्लिम आक्रमण का विवरण मिलता है। जब हम्मीर ने वव्वेर तक आकर विग्रहराज चतुर्थ को अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा तो विग्रहराज के मुख्यमन्त्री ने श्रीधर शत्रु से संधि करने का परामर्श दिया किंतु विग्रहराज ने इसे अपमानजनक माना। उसने अपने मित्रों तथा ब्राह्मणों, पवित्र स्थलों एवं मंदिर की रक्षा करने का व्रत लिया। इस स्थल पर इस शिलालेख के भग्नावस्था में हो जाने से आगे का विवरण नहीं मिलता। डॉ. दशरथ शर्मा[2] यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मुसलमानों के साथ हुए युद्ध में विग्रहराज ने उन्हें पराजित कर भगा दिया। इस उपलब्धि में उसका मामा सिम्हबल (मरुकोट्ट का जोहिया सामन्त) सहायक था।

द्वितीय संघर्ष—मुसलमानों से हुए दूसरे संघर्ष में विग्रहराज ने आक्रामक नीति अपनाई। यद्यपि इस संघर्ष का कोई विवरण नहीं मिलता किंतु 1163 ई. में उत्कीर्ण दिल्ली-शिवालिक स्तंभ-लेख से स्पष्ट होता है कि विग्रहराज गजनी के मुसलमानों से अधिकाँश हिन्दू प्रदेशों को मुक्त कराने में सफल हुआ था। केवल पंजाब पर ही मुसलमानों का अधिकार बना रहा। बिजोलिया शिलालेख में उल्लिखित हाँसी ऐसा ही प्रदेश था जिस को चौहानों ने मुसलमानों से छीना। "प्रबंधकोश' में भी वीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) को 'तुरुष्कजित' कहा गया है। 'ललितविग्रहराजनाटक' में अंकित है कि वह मित्र नरेशों, ब्राह्मणों, तीर्थस्थानों और मन्दिरों की तुर्कों से रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता था।

विग्रहराज चतुर्थ की उपलब्धियों का मूल्यांकन

डॉ. दशरथ शर्मा[3] ने विग्रहराज का मूल्यांकन करते हुए कहा है—"विग्रहराज की महानता एक निर्विवाद तथ्य है क्योंकि वह एक प्रथम कोटि का सेनानायक तथा शक्तिशाली विजेता होने के अतिरिक्त साहित्य का आश्रयदाता, स्वयं कवि तथा

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 68)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 69)
3. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 70–71)

कल्पनाशील एवं दूरदृष्टि वाला भवन-निर्माता था। उसके समकालीन साहित्यकारों में वह 'कविवान्धव' के नाम से विख्यात था।" 'पृथ्वीराजविजय' में कहा गया है कि, "उसकी मृत्यु के बाद कविवान्धव शब्द निरर्थक हो गया क्योंकि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहा जिसके लिए इसका प्रयोग उपयुक्त लगता हो।" चालुक्यों के समर्थक मेरुतुंग कृत 'प्रबंधचिंतामणि' में विग्रहराज के विरोधी कुमारपाल ने भी आलोचना से बचने के लिए उसने कविवान्धव उपाधि धारण कर ली। विग्रहराज के आश्रित कवि सोमदेव कृत "ललितविग्रहराज" एक उच्च कोटि का ऐतिहासिक नाटक है। इसका अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है। "चौहान प्रशस्ति" तथा 'ढाई दिन का झौंपड़ा' में अनेक शिलालेखों पर उत्कीर्ण विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति उच्च कोटि के काव्य के उदाहरण हैं।

सोमदेवकृत 'ललितविग्रहराज' नाटक की पंक्ति—"वीराणां च विपश्चिता-माधस्त्वमेवाधुना" से प्रकट होता है कि विग्रहराज न केवल योद्धाओं में वल्कि तत्कालीन विद्वान साहित्यकारों में भी अग्रणी था। विग्रहराज की संस्कृत भाषा के कवि होने की प्रतिभा का पता उसके द्वारा रचित "हरकेलि" नाटक से चलता है जो 'ढाई दिन का झौंपड़ा' से प्राप्त शिलालेखों में मिलता है। डॉ. कीलहार्न ने कहा है—"हरकेलि नाटक इस बात का प्रत्यक्ष तथा असंदिग्ध प्रमाण है कि प्राचीन काल के हिन्दू शासक कवि के रूप में ख्याति अर्जित करने के लिए भवभूति तथा कालिदास से प्रतिस्पर्धा करते थे।"

एक भवन-निर्माता के रूप में उसकी ख्याति का प्रमाण अजमेर में निर्मित 'सरस्वती मन्दिर' है जो धारा के शासक भोज द्वारा निर्मित 'सरस्वतीकण्ठावरण-विद्यालय' के आदर्श के अनुरूप वनाया गया है। यद्यपि कुतवुद्दीन के शासन-काल में इसे मसजिद में परिणित कर दिया गया किंतु फिर भी अवशिष्ट चिन्ह इस बात का प्रमाण है कि यह एक हिन्दू-भवन है। टॉड महोदय ने इसकी प्रशंसा में कहा है—"यह अत्यन्त सुन्दर तथा प्राचीन हिन्दू-भवनों के उदाहरणों में से एक है।" श्री कनिंघम ने भी कहा है—"प्रस्तर की विशाल अलंकृत शैली, उत्कृष्ट सुन्दर पच्चीकारी, स्थापत्य की सूक्ष्म कारीगरी, श्रमसाध्य कलात्मक शुद्धता, विषयवस्तु की अनन्तविविधता के कारण यह भवन विश्व के उत्कृष्टतम भवनों की कला के समकक्ष माना जा सकता है।"

विग्रहराज द्वारा निर्मित वीसलसर (वर्तमान वीछला सरोवर) उसकी निर्माता-प्रतिभा का अन्य उदाहरण है। यह $2\frac{1}{2}$ मील परिधि में बना हुआ है जिसके चारों ओर पहले मंदिर व प्रासाद बने हुए थे तथा मध्य में दो द्वीपों पर विग्रहराज का भव्य प्रासाद निर्मित था। इस सरोवर के तट पर मूर्तियाँ प्रस्थापित थी जिनके मुख से जल की फुहारें निकलती रहती थी।[1]

1. Archeological Survey of India (Annual Report) II–p. 263.

'पृथ्वीराजविजय' के अनुसार उसने विजित पर्वतीय दुर्गों की संख्या के समान भवनों का निर्माण किया। मुसलमानों द्वारा ध्वस्त किए जाने के कारण इनमें से कुछ भवन ही अवशिष्ट हैं। कुछ भवन ढाई दिन के झौंपड़े की तरह मुस्लिम स्थापत्य में परिवर्तित कर दिए गए।

'हरिकेलि नाटक' की रचना से सिद्ध होता है कि विग्रहराज शैव धर्म का कट्टर अनुयायी था। 'पृथ्वीराजविजय' से इसकी पुष्टि होती है। अपने पिता तथा पितामह की भाँति वह धर्मसहिष्णु था। उसने जैनियों के लिए 'विहार' बनवाये, उनके धार्मिक समारोहों में भाग लिया तथा उनके आचार्य धर्मघोष सूरि के आग्रह पर उसने अपने राज्य में एकादशी के दिन पशु-हत्या बन्द करवा दी।

इस प्रकार विग्रहराज चतुर्थ का शासन काल सपादलक्ष का स्वर्णयुग माना जाता है। उसने एक पराजित तथा अपमानित चौहान-राज्य की प्रतिष्ठा को अपने प्रतिशोधात्मक अभियानों से पुनः प्रस्थापित किया। उसकी विजयें तथा तुरुष्कों का सफल प्रतिरोध राज्य की सीमावृद्धि तथा सुदृढ़ता के लिए विशेष उल्लेखनीय थी। उसके समय कला तथा साहित्य की अभिवृद्धि हुई तथा सभी सम्प्रदायों ने धार्मिक स्वतन्त्रता का उपभोग किया। अतः विग्रहराज महान् की उपाधि उसके लिए उपयुक्त है।

(28) अपरगांगेय या अमरगांगेय (1164 ई.)

विग्रहराज की मृत्यु के बाद उसकी रानी देसलदेवी से उत्पन्न उसका पुत्र अपरगांगेय या अमरगांगेय शासक बना। देसलदेवी रानी 'ललितविग्रहराज' नाटक की नायिका के रूप में चित्रित की गई थी। सम्भवतः वह अल्पवयस्क और अविवहित था। कुछ समय बाद ही उसके भतीजे (पितृघाती जगदेव का पुत्र) पृथ्वीराज द्वितीय (या पृथ्वीभट्ट) ने उसकी हत्या कर गद्दी पर अधिकार कर लिया। धोड़ अभिलेख (1168 ई.) से इसकी पुष्टि होती है।

(29) पृथ्वीराज द्वितीय (1164–1169 ई.)

अपने चाचा अपरगांगेय की हत्या कर पृथ्वीराज द्वितीय गद्दी पर बैठा। इस शासक के चार शिलालेख उपलब्ध होते हैं—एक हाँसी में (1167 ई.), दो मेनाल मांडलगढ़ में (1168 तथा 1169 ई.) तथा ढोड जहाजपुर में (1168 ई.)।

ढोड अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने शाकम्भरी शासक को युद्ध में पराजित किया। इससे स्पष्ट है कि उसने अपरगांगेय को हरा कर गद्दी पर अधिकार किया क्योंकि वह अपरगांगेय को अर्णोराज के बड़े पुत्र जगद्देव का पुत्र होने के कारण गद्दी हड़पने वाला समझता था। हाँसी अभिलेख में उस के द्वारा अपरगांगेय के पितामह वसन्तपाल से 'मन:सिद्धकारी' हाथी प्राप्त करने का उल्लेख है। पृथ्वीराज द्वितीय ने पंचपुर (पंजौर–कालका के निकट एक नगर) के शासक को हराया जिसने एक मोतियों का हार तथा कर देकर अपने राज्य को बचाया।[1]

1 *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 74)

चौहान-मुस्लिम संघर्ष इसके समय भी चलता रहा। इसकी सूचना हाँसी अभिलेख से मिलती है। पृथ्वीराज ने अपने मामा किल्हण को हाँसी का प्रशासक नियुक्त किया जिसने मुसलमानों के अभियानों से सुरक्षा हेतु हाँसी दुर्ग को सुदृढ़ किया। इसी गुहलोतवंशी किल्हण द्वारा पंचपुर को जलाकर वहाँ के राजा को हराने के लिए इस अभिलेख में किल्हण की प्रशंसा की गई है। डॉ० भण्डारकर पंचपुर का समीकरण सतलज तट पर स्थित पाँचपत्तन स्थान से करते हैं। इसी के आधार पर डॉ० हेमचंद्र रे[1] का मत है कि पृथ्वीराज द्वितीय ने लाहौर के यामिनी सुल्तान खुसरोमलिक ताजुद्दौला को हराया जो आनन्दप्रिय था। किंतु डॉ० दशरथ शर्मा का पूर्वउल्लिखित मत ही उचित प्रतीत होता है कि पंजपुर कालका के निकट वर्तमान पंजौर स्थान है।

पृथ्वीराज तथा उसकी रानी सुहवा दोनों शैव धर्मावलम्बी थे। मेनाल (मेवाड़ के मांडलगढ़ के निकट) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि सुहवा के नाम पर मेनाल में एक शिवमंदिर 'सुहवेश्वर' का निर्माण किया गया। इस मंदिर को सुहवा से प्रतिवर्ष 20 द्रम का अनुदान मिलता था। पृथ्वीराज ने ब्राह्मणों को ग्राम तथा स्वर्ण दान में दिए। बिजोलिया शिलालेख से विदित होता है कि बिजोलिया के पार्श्वनाथ मंदिर को मोराकरी ग्राम दान कर पृथ्वीराज ने अपनी धर्मसहिष्णुता का परिचय दिया।

पृथ्वीराज निःसंतान था। अतः उसकी मृत्यु के बाद मंत्रियों ने उसके चाचा सोमेश्वर को गद्दी पर बैठाया क्योंकि जीवित उत्तराधिकारियों में से केवल वही अर्णोराज का पुत्र था और इस समय वह गुजरात में रहता था। पृथ्वीराज द्वितीय के साथ सुधवा से उत्पन्न उत्तराधिकारियों का 19 वर्षीय शासन समाप्त हुआ। इन चार उत्तराधिकारियों में से दो को जगद्देव के पितृहन्ता होने के अपराध के कारण अपने ही वंश के लोगों ने मार डाला था।

(30) सोमेश्वर (1169–1177 ई.)

सोमेश्वर का प्रारम्भिक जीवन—सोमेश्वर अर्णोराज की रानी कांचनदेवी से उत्पन्न पुत्र था। कांचनदेवी सिद्धराज जयसिंह की पुत्री थी। अतः सोमेश्वर का प्रारम्भिक जीवन गुजरात में ही व्यतीत हुआ। इसकी जानकारी "पृथ्वीराज विजय" से होती है। अर्णोराज के अंतिम दिनों में अजमेर का राजदर्बार उसकी बड़ी रानी सुधवा के पुत्रों की महत्वाकांक्षा के कारण आंतरिककलह और षड़यन्त्रों से कलुषित होने लगा था। यह स्थिति पृथ्वीराज द्वितीय की मृत्यु के बाद ही सुधर सकी। अतः इस अन्तराल में अर्णोराज की छोटी रानी कांचनदेवी अपने पुत्र सोमेश्वर को सुरक्षा

1. *Dr. Ray, H. C.* : Dynastic History of Northern India, Vol. II. (p. 1080)

की दृष्टि से अजमेर से गुजरात ले गई जहाँ अन्हिलपट्टन में सोमेश्वर का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा विवाह हुआ।

अर्णोराज से शत्रुता होते हुए भी कुमारपाल सोमेश्वर से स्नेह रखता था। 'पृथ्वीराजविजय' में कहा गया है कि इस कुमार (सोमेश्वर) की रक्षा कर कुमारपाल ने अपना नाम सार्थक कर दिया था। सोमेश्वर भी सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सेना में उच्च पद पर नियुक्त हो गया। सेनापति आवड़ के नेतृत्व में कौंकण अभियान पर सोमेश्वर भी गया। युद्ध में "सोमेश्वर ने हनूमान जैसी वीरता दिखाते हुए एक हाथी से कूदकर दूसरे हाथी के मस्तक पर जाकर कौंकण के राजा (मल्लिकार्जुन) के हाथों से ही तलवार छीनकर उसका वध कर डाला।"[1] कौंकण नरेश मल्लिकार्जुन का विरुद 'राजपितामह' था। जैन ग्रंथों में कौंकण विजय का श्रेय सेनापति आवड़ को दिया गया है किंतु जयानक ने सोमेश्वर की वीरता की उचित प्रशंसा की है। इस प्रकार कुमारपाल के स्नेह का प्रतिदान अपनी उल्लेखनीय सेवाओं के द्वारा सोमेश्वर ने किया।

अन्हिलपट्टन में ही सोमेश्वर का विवाह 1160 ई० में त्रिपुरी नरेश गयाकर्ण की पुत्री कर्पूरदेवी से हुआ और वहीं उसके दो पुत्रों—पृथ्वीराज तृतीय तथा हरिराज का जन्म हुआ। पृथ्वीराज द्वितीय की मृत्यु के बाद जब अर्णोराज का सुधवा से उत्पन्न कोई उत्तराधिकारी नहीं रहा तो मन्त्रियों ने सोमेश्वर को अजमेर आकर राजगद्दी पर बैठने के लिए आमन्त्रित किया। 'पृथ्वीराज विजय' से इसकी सूचना मिलती है। इस समय 1169 ई० में सोमेश्वर आयु से वृद्ध हो गया था जबकि उसका राज्यारोहण किया गया। गुजरात से लाये हुए दो गुजराती ब्राह्मणों—स्कंद तथा उसका पुत्र सोढ़—को उसने अपना मन्त्री बनाया। राज्यारोहण के बाद सोमेश्वर ने 'प्रतापलंकेश्वर' का विरुद धारण किया।

शासनकाल की घटनाएँ—सोमेश्वर ने कदम्बवास को भी पूर्वतः अपने मन्त्री के पद पर बनाए रखा। कदम्बवास ने आगे चल कर पृथ्वीराज तृतीय की अल्प-वयस्कता में कांचनदेवी संरक्षिका के शासन-कार्य में पूर्ण योगदान किया। सोमेश्वर के अभिलेख तथा 'पृथ्वीराज विजय' से ज्ञात होता है कि उसने पाँच मन्दिरों तथा अपने पिता के नाम पर एक नगर का निर्माण कराया। एक मन्दिर त्रिपुरुप तथा दूसरा वैद्यनाथ को समर्पित किया गया। उसने अश्वारोही के रूप में अपने पिता की तथा उसके समक्ष स्वयं की खड़ी हुई मूर्तियाँ बनवाईं तथा उन्हें प्रस्थापित कराया।

सोमेश्वर शैव था किन्तु चौहान परम्परानुसार वह सभी धर्मों का आदर करता था। विजोलिया शिलालेख के अनुसार उसने विजोलिया या विंध्यावल्ली के पार्श्वनाथ मन्दिर को रेवना ग्राम दान में दिया। उसने 'नांदि तथा अश्वारोही' प्रकार की मुद्राएँ भी प्रचलित कीं। इन मुद्राओं के एक ओर कूबड़वाला बैल तथा "आसावरी

1. जयानक : पृथ्वीराजविजय (सप्तम–11 से 15)

श्री सामन्तदेव" अंकित था तथा दूसरी ओर एक अश्वारोही व "श्री सोमेश्वरदेव" उत्कीर्ण था।

"पृथ्वीराज रासो" में कहा गया है कि सोमेश्वर गुजरात नरेश भीमदेव द्वितीय के साथ हुए युद्ध में मारा गया। डॉ० दशरथ शर्मा[1] इस कथन को कपोल-कल्पित मानते हैं। किन्तु भीमदेव द्वितीय के पाटन अभिलेख (1199 ई०) से ज्ञात होता है कि सोमेश्वर चालुक्यों से युद्ध में पराजित हुआ तथा अजयपाल द्वारा सपादलक्ष के राजा से कर वसूल किया गया। गुजराती कवि सोमेश्वर कृत "कीर्ति कौमुदी" से भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें उल्लेख है कि चालुक्य अजयपाल ने जाँगलदेश के नरेश से एक स्वर्ण मण्डपिका तथा हाथी वलपूर्वक छीन लिये थे। अजयपाल का शासनकाल 1172 से 1175 ई० तक था। अतः सपादलक्ष या जाँगल देश का पराजित नरेश अजमेर का चौहान शासक सोमेश्वर ही हो सकता है।

सोमेश्वर की 1179 ई० में मृत्यु हो गई क्योंकि पृथ्वीराज तृतीय की राज्यारोहण तिथि "प्रबन्धकोश" के अनुसार यही है। डॉ० दशरथ शर्मा इस तिथि को गलत मानते हैं क्योंकि 1178 ई० में पृथ्वीराज तृतीय राज्य कर रहा था। बड़ला शिलालेख के अनुसार पृथ्वीराज तृतीय की राज्यारोहण तिथि 1177 ई० की पुष्टि हो जाती है।

(31) पृथ्वीराज तृतीय (1177–1192 ई०)

प्रारम्भिक जीवन तथा राज्यारोहण—सोमेश्वर की 1177 ई० में मृत्यु होने के पश्चात् उसकी रानी कर्पूरदेवी से उत्पन्न पुत्र पृथ्वीराज तृतीय गद्दी पर बैठा। पृथ्वीराज का जन्म अन्हिलवाड़ में सम्भवतः 1166 ई० में हुआ। राज्यारोहण के समय उसकी आयु लगभग 11 वर्ष की थी। पृथ्वीराज का छोटा भाई हरिराज था। अल्पायु का होने के कारण कुछ समय तक उसे अपनी माता कर्पूरदेवी के संरक्षण में रहना पड़ा। कर्पूर देवी की संरक्षिका के रूप में कार्यकुशलता की "पृथ्वीराज विजय"[2] में प्रशंसा की गई है। संरक्षण काल तथा वाद में भी कदम्बवास (कैमास अथवा कैम्वास के नाम से लोकप्रिय) मुख्य मन्त्री पद पर था। जिनपाल रचित "खरतरगच्छपट्टावली" ग्रन्थ में उसे मण्डलेश्वर कैमास के नाम से पुकारा गया है। कदम्बवास ने एक बार चौहान नरेश की अनुपस्थिति में जैन आचार्य पद्मप्रभु तथा जिनपति सूरि के मध्य हुए शास्त्रार्थ की अध्यक्षता की थी, जो राज-दरवार में उसके उच्चतम सम्मान का सूचक है। जनश्रुतियों में भी कदम्बवास को एक महान् योद्धा माना गया है। "पृथ्वीराज विजय" में उसकी प्रशासन-कुशलता तथा पृथ्वीराज के प्रति स्वामिभक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है और पृथ्वीराज की प्रारम्भिक विजयों का श्रेय उसे दिया गया है।

1 *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 78)

2. जयानक : पृथ्वीराज विजय (9–35/43)

कदम्बवास के अतिरिक्त कर्पूरदेवी के पिता का छोटा भाई भुवनैकमल्ल भी उस समय मन्त्रिपद पर कार्य करता था। भुवनैकमल्ल को 'पृथ्वीराज विजय' में अत्यन्त दानशील प्रवृत्ति का बतलाया गया है जो अपना सर्वस्व दान कर दिया करता था। उसे "नागों" के नियन्त्रण की कला में पूर्ण कुशल बतलाया गया है। श्री हरविलास शारदा 'नागों' का अर्थ नाग जाति मानते हैं किन्तु टीकाकार जोनराज इनका अर्थ गजों (हाथियों) से लेते हैं। डॉ० दशरथ शर्मा जोनराज का अर्थ ही उचित मानते हैं। 'पृथ्वीराज विजय' में कदम्बवास तथा भुवनैकमल्ल दोनों को पृथ्वीराज की प्रारम्भिक विजयों की सफलता का श्रेय दिया गया है तथा कहा गया है कि "उन्होंने पृथ्वीराज की वैसे ही सेवा की जैसे हनुमान तथा गरुड़ ने राम की की थी।"

"पृथ्वीराज रासो" तथा "पृथ्वीराज प्रबंध" में पृथ्वीराज द्वारा बाद में कदम्बवास की हत्या किया जाना बतलाया है। 'रासो' में इसका कारण यह बतलाया गया है कि एक बार पृथ्वीराज अपने महल में सहसा आया और कदम्बवास को अपनी रखैल स्त्री 'कर्नाटी' के कक्ष में देखा। 'प्रबन्ध' में इसका कारण यह बतलाया गया है कि प्रतापसिंह नामक व्यक्ति ने कदम्बवास के विरुद्ध पृथ्वीराज के कान भर दिये तथा उसे आश्वस्त कर दिया कि कदम्बवास ही भारत पर मुसलमानों के निरंतर आक्रमणों के लिए उत्तरदायी है। किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा[1] ने इन दोनों मतों से असहमत होते हुए कहा है कि इन तथ्यों की "पृथ्वीराज विजय" (जो सम्भवतः 1191 और 1193 ई० के मध्य लिखा गया) से पुष्टि नहीं होती बल्कि उसमें कदम्बवास द्वारा पृथ्वीराज की सेवा और स्वामिभक्ति की हनुमान द्वारा राम की सेवा से तुलना की गई है।

डॉ० पाठक[2] ने कहा है कि, "पृथ्वीराज की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बड़ी देखभाल से हुई थी। उसने जहाँ एक ओर कई भाषाएँ सीखीं, वहीं अनेक शास्त्रों के साथ शस्त्रों के प्रयोग में भी उस समय उसकी तुलना का कोई वीर नहीं था।" 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'पृथ्वीराज रासो' से इन तथ्यों की पुष्टि होती है। अतः यह प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा का ही परिणाम था कि पृथ्वीराज अपनी सैनिक उपब्धियों से काफी विख्यात हो गया।

डॉ. वी. एस. भार्गव[3] ने पृथ्वीराज के वैवाहिक जीवन की व्याख्या करते हुए कहा है कि, "उसने अपने छोटे से जीवन में पांच सुन्दरियों से विवाह किया जिनमें से एक संयोगिता भी थी। पृथ्वीराज स्वयं तो सुन्दर नहीं था, लेकिन सुन्दरता का उपासक और साथ ही सुन्दरियों के आकर्षण का केन्द्र था। वह इतना शूरवीर

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 81)
2. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 475)
3. डॉ० वी० एस० भार्गव : राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण (पृ. 51)

सेनानी और योद्धा था कि कोई भी स्त्री उससे विवाह करके अपने को गौरवान्वित अनुभव कर सकती थी।" इस प्रकार पृथ्वीराज का जीवन रोमान्स से परिपूर्ण था जो तराइन के द्वितीय युद्ध के समय उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता सिद्ध हुआ।

पृथ्वीराज ने 1180 ई० में वयस्क होने पर शासन की बागडोर अपने हाथों में सम्भाल ली किन्तु उसे शीघ्र ही प्रारम्भिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

प्रारम्भिक कठिनाइयों के निराकरण हेतु उसे निम्नांकित युद्ध करने पड़े—

1. नागार्जुन के विद्रोह का दमन—सर्वप्रथम पृथ्वीराज को उत्तराधिकार के लिए एक प्रत्याशी नागार्जुन से निपटना पड़ा। पृथ्वीराज द्वितीय ने विग्रहराज चतुर्थ के पुत्रों में से एक अपरगांगेय को पराजित कर उसकी हत्या की थी किन्तु दूसरा पुत्र नागार्जुन अभी जीवित था तथा गद्दी प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा रखता था। कुछ लोगों द्वारा प्रेरित किये जाने तथा नवयुवक चौहान नरेश पृथ्वीराज तृतीय की अनुभवहीनता से प्रोत्साहित होने के कारण उसने विद्रोह कर गुड़पुर (गुड़गाँव) पर अधिकार कर लिया यद्यपि यह सफलता नगण्य थी। अबुलफजल की "आइन-ए-अकबरी" तथा डॉ. दशरथ शर्मा के पास सुरक्षित एक प्राचीन बही में क्रमशः इसका नाम 'नागदमन' तथा 'नागदेव' दिया गया है और उसे अजमेर का शासक बतलाया गया है।

पृथ्वीराज ने एक विशाल सेना के साथ नागार्जुन के विरुद्ध अभियान किया और गुड़पुर दुर्ग का घेरा डाला। नागार्जुन दुर्ग से भाग गया किन्तु उसकी पत्नी, माता तथा अनुयायी काफी लूट के सामान के साथ पृथ्वीराज के हाथ लगे। नागार्जुन का सेनापति देवभट्ट सेना सहित मारा गया। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार इन लोगों के सिरों की माला बना कर अजमेर दुर्ग के द्वार पर लटका दी गई।[1] डॉ. पाठक[2] ने इस कृत्य पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि, "अपने शत्रु के शवों के प्रति इस प्रकार के प्रदर्शन मुसलमानों में तो बहुत व्यापक थे, किन्तु वे हिन्दू राजाओं की युद्ध-संहिता के बाहर थे। ऐसा लगता है कि पृथ्वीराज वैसा कर सबके सामने यह उदाहरण उपस्थित करना चाहता था कि सभी विद्रोहियों की उनकी जैसी ही नौबत होगी। इस युग के हिन्दू इतिहास में कुछ ऐसे नृशंस उदाहरण और भी मिलते हैं (जिस प्रकार तैलप ने मुंज के साथ किया), किन्तु असम्भव नहीं है कि वे आक्रामक तुर्कों के प्रभाव के परिणाम हों।" इस प्रकार पृथ्वीराज ने उत्तराधिकार के युद्ध में अपने प्रतिद्वन्दी का कठोरता से दमन कर दिया।

2. भाडानकों का दमन—पृथ्वीराज का दूसरा प्रारम्भिक युद्ध भाडानकों के दमन हेतु किया गया। डॉ. दशरथ शर्मा का मत है कि भाडानकों का अधिकार क्षेत्र वर्तमान रेवाड़ी तहसील, भिवानी और इसके समीपवर्ती ग्राम तथा अलवर राज्य का एक

1. जयानक · पृथ्वीराज विजय (XII 8–38)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 476)

भाग था। यह युद्ध 1182 ई. के लगभग हुआ होगा जबकि इस तथ्य का उल्लेख जैन आचार्य जिनपति सूरि ने किया था। भाडानकों का दमन निर्णायिक रूप से किया गया क्योंकि उन्होंने फिर कभी विद्रोह नहीं किया। डॉ. दशरथ शर्मा[1] पृथ्वीराज द्वारा पराजित भाडानक नरेश का नाम, साहणपाल आबारपुर शिलालेख के आधार पर बतलाते हैं।

पृथ्वीराज की विजयें

उपरोक्त सफल सैनिक अभियानों से प्रोत्साहित होकर पृथ्वीराज तृतीय की महत्वाकाँक्षा "दिग्विजय" के लिए बलवती होने लगी। अतः इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए जब जिनपाल कृत "खरतरगच्छ पट्टावली" (1187 ई०) में इस बात का उल्लेख मिलता है कि पृथ्वीराज ने चारों दिशाओं की विजय हेतु सैनिक अभियान प्रारम्भ कर दिये तथा इसके लिए उसने अपना प्रथम शिविर नरायना (वर्तमान नराना जो फुलेरा स्टेशन से 12 मील दूर स्थित है) में स्थापित किया। अतः पृथ्वीराज की विजयों का जो क्रम चला, उसका विवरण निम्नांकित है—

1. चन्देल राज्य जैजाकभुक्ति पर आक्रमण—चन्देल वंश का विवेचन करते समय पिछले अध्याय में हम पृथ्वीराज तथा चन्देल नरेश परमर्दिदेव के संघर्ष का विस्तार से उल्लेख कर चुके हैं। अतः उन तथ्यों की पुनरावृत्ति न कर केवल उनका यहाँ सिंहावलोकन करेंगे।

मदनपुर शिलालेख से ज्ञात होता है कि सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज ने 1182 ई० में जैजाकभुक्ति को विनिष्ट किया। "पृथ्वीराज रासो" तथा "आल्हा खण्ड" से भी पुष्टि होती है कि चौहानों ने चंदेल नरेश परमाल (परमर्दिदेव) की राजधानी महोबा पर बनाफरवंशीय वीर आल्हा तथा ऊदल एवं कन्नौज की सहायक सेना से घमासान युद्ध कर अधिकार किया था। डॉ० दशरथ शर्मा अभिलेखों के आधार पर तथा "शारंगधर पद्धति" एवं "प्रबन्ध चिन्तामणि" ग्रन्थों में पाये गये उल्लेख के अनुसार पृथ्वीराज द्वारा परमर्दिदेव की पराजय को सत्य मानते हैं। 'शारंगधर पद्धति' में तो यहाँ तक कहा गया है कि पृथ्वीराज के आक्रमण से भयभीत हो परमर्दिदेव ने अपने मुख में तृण दबा कर पृथ्वीराज से अपने प्राणों की भीख माँगी।

मऊ शिलालेख के आधार पर गहड़वालों तथा चंदेलों के परस्पर सम्बन्ध मित्रतापूर्ण थे तथा स्वयं परिमर्दिदेव के काशी के मणिकर्णिका घाट पर 1180 ई० में दान देना भी गहड़वाल नरेश जयचंद्र से उसकी मित्रता प्रकट करता है। अतः डॉ. शर्मा[2] गहड़वालों द्वारा परमर्दिदेव की सहायता करने को असम्भावित नहीं मानते।

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Rajasthan Through the Ages, Vol I (p. 23)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 84)

पृथ्वीराज की यह विजय स्थायी नहीं थी। यह अभियान केवल छापा मात्र था। इसका प्रमाण परमर्दिदेव के शिलालेखों का चौहान आक्रमण के एक वर्ष बाद ही (1183 ई. में) कालिंजर तथा महोबा में उपलब्ध होना है तथा एक शिलालेख में परमर्दिदेव को "दशार्णाधिपति" कहा गया है। अतः डॉ० शर्मा का मत है कि परवर्ती साक्ष्यों के इस कथन को असत्य माना जाना चाहिए कि पृथ्वीराज ने जैजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) पर पूर्ण विजय प्राप्त की।

2. **गुजरात के चालुक्यों से संघर्ष**—परमर्दिदेव को पराजित करने के बाद पृथ्वीराज ने किस प्रदेश को दिग्विजय का लक्ष्य बनाया, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु जिनपाल कृत "खरतरगच्छ पट्टावली" तथा वैरावल प्रशस्ति से यह ज्ञात होता है कि 1187 ई० में पृथ्वीराज तृतीय गुजरात में चालुक्यों के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त था। वैरावल शिलालेख में अंकित है कि, "गुजरात नरेश भीमदेव द्वितीय का मुख्य मंत्री प्रतिहार जगद्देव पृथ्वीराज की कमल के समान रानियों के लिए चन्द्रमा के समान था।" सम्भवतः इस युद्ध के दौरान पृथ्वीराज ने आबू के परमार नरेश धारावर्ष पर रात्रि के समय आक्रमण किया जो असफल रहा। प्रह्लादनदेव कृत "पार्थपराक्रमव्यायोग" से इसकी पुष्टि होती है।

"पृथ्वीराज रासो" में चालुक्य-चाहमान संघर्ष का विस्तार से विवरण दिया गया है किन्तु यह परवर्ती तथा संदिग्ध ग्रन्थ है। रासो के अनुसार भीमदेव ने नागौर पर अधिकार किया किन्तु पृथ्वीराज ने इसे पुनः अधिकृत कर लिया, भीमदेव द्वारा सोमेश्वर को पराजित किया गया और मार डाला गया तथा पृथ्वीराज ने भीमदेव को पराजित कर मार डाला। डॉ० दशरथ शर्मा प्रमाणों के आधार पर रासो के विवरण को असत्य बतलाते हुए कहते हैं कि सोमेश्वर चालुक्य नरेश द्वारा नहीं मारा गया क्योंकि भीमदेव के राज्यारोहण के पूर्व ही सोमेश्वर की मृत्यु हो गई थी। युवराज के रूप में भी 1177 ई. में भीमदेव इतनी कम आयु का था कि उसके साथ सोमेश्वर का द्वन्द्व युद्ध होना असम्भव था। इसी प्रकार पृथ्वीराज तृतीय द्वारा भीमदेव के मारे जाने की बात भी असत्य है क्योंकि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद भी लगभग 50 वर्ष तक जीवित रहा था। किन्तु नागौर में चालुक्य और चौहानों के मध्य युद्ध होना सम्भावित है क्योंकि बीकानेर के निकट चर्लू ग्राम से प्राप्त मोहिल वीरों के दो शिलालेख 1184 ई. के मिले हैं जिनमें नागौर के युद्ध में उनके मारे जाने का उल्लेख है। डॉ. शर्मा[1] इस युद्ध का रासो में वर्णित नागौर युद्ध से समीकरण करते हैं क्योंकि मोहिल स्वयं चौहानवंशी थे, मोहिलों का क्षेत्र पृथ्वीराज चौहान के अधिकार-क्षेत्र में था, यह युद्ध "खरतरगच्छ पट्टावली" में वर्णित चालुक्य-चौहान सन्धि होने के पूर्व हुआ था, तथा नागौर जैसे सपादलक्ष के सुदृढ़ दुर्ग के युद्ध का अन्य स्रोतों में उल्लेख नहीं मिलता।

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृष्ठ 85)

जगद्देव प्रतिहार को चौहानों के विरुद्ध कुछ प्रारम्भिक सफलता मिली थी जैसा कि पृथ्वीराज द्वारा आबू के धारावर्ष पर रात्रि-आक्रमण की विफलता से विदित होता है किन्तु अन्ततः पृथ्वीराज ही इस संघर्ष में विजयी रहा। इस तथ्य का पता "खरतरगच्छ पट्टावली"[1] ग्रन्थ में जगद्देव द्वारा अपने एक अधिकारी से कहे गये इन शब्दों से चलता है—"मैंने अभी हाल में काफी कठिनाई से पृथ्वीराज से सन्धि की है। अतः यदि तुम सपादलक्ष के लोगों से दुर्व्यवहार करोगे तो मैं तुम्हें गधे की खाल में बँधवा दूँगा।" जगद्देव ने पृथ्वीराज से यह सन्धि बड़ी कठिनाई से 1187 ई. में सम्पन्न की थी।

3. **गहड़वाल जयचन्द्र से संघर्ष**—जनश्रुतियों से कन्नौज के गहड़वाल नरेश जयचन्द्र तथा पृथ्वीराज के मध्य युद्ध होना पाया जाता है। दोनों ही महत्वाकांक्षी थे। भारतीय राजनीति में अग्रणी बनने की प्रतिद्वन्दिता के कारण दोनों में संघर्ष होना स्वाभाविक था।

इतिहासकार हसन निजामी के "ताजुल मासिर"[2] ग्रन्थ में कहा गया है कि, "अपनी विशाल सेना तथा वैभव के कारण पृथ्वीराज के दिमाग पर विश्व-विजय करने का भूत सवार था।" अन्य स्रोतों "पृथ्वीराज रासो" तथा "पृथ्वीराज प्रबन्ध" से ज्ञात होता है कि जयचन्द्र की पृथ्वीराज की भाँति ही विस्तारवादी महत्वाकाँक्षा थी। "पुरातन-प्रबन्ध संग्रह" में पृथ्वीराज की मृत्यु पर जयचन्द्र द्वारा अपनी राजधानी में दीप जला कर खुशी मनाने का उल्लेख है। अतः यह स्वाभाविक है कि पृथ्वीराज द्वारा जैजाकभुक्ति, भाडानकों आदि पड़ौसी राज्यों के प्रति आक्रामक नीति का प्रदर्शन करने पर जयचन्द्र के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। यद्यपि गहड़वाल-चौहान युद्ध का निकटतम कारण पृथ्वीराज द्वारा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का अपहरण था।

'संयोगिता' की ऐतिहासिकता (Historicity of "Sanyogita")

संयोगिता-अपहरण की कथा का उल्लेख "पृथ्वीराज-प्रबन्ध", "प्रबन्ध-चिन्तामणि" तथा "हम्मीर महाकाव्य" जैसे ग्रन्थों में नहीं है यद्यपि वे पृथ्वीराज के विषय में अन्य तथ्यों का उल्लेख करते हैं। इस कथा का विवरण चन्दवरदाई के "पृथ्वीराज रासो", अबुल फजल की "आइन-ए-अकबरी" तथा चन्द्रशेखर के "सुरजन-चरित" में कुछ भिन्नता से दिया गया है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता से पृथ्वीराज प्रेम करता था तथा संयोगिता की ओर से भी अनुकूल संकेत पाकर पृथ्वीराज ने बलपूर्वक स्वयंवर से संयोगिता का अपहरण किया क्योंकि भारत में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने की प्रतिद्वन्दिता के कारण जयचन्द ने पृथ्वीराज को इस स्वयंवर में आमन्त्रित नहीं किया था। पृथ्वीराज के सामन्तों ने

1. जिनपाल : खरतरगच्छ पट्टावली (श्लोक सं० 1244)

2. *Elliot and Dowson* : History of India as told by its own Historians (p. 24)

पृथ्वीराज तथा संयोगिता की सुरक्षा हेतु जयचन्द्र के सैनिकों को युद्ध में व्यस्त रख कर वीर गति प्राप्त की। इस युद्ध से बहुत कम चौहान वीर बचकर अजमेर पहुँचे जहाँ पृथ्वीराज तथा संयोगिता का विवाह हुआ। पृथ्वीराज संयोगिता के साथ ही अधिक समय व्यतीत करने लगा।

डॉ० गौ० ही० ओझा[1] तथा उनके अनुयायी विद्वान् संयोगिता की उक्त कथा की ऐतिहासिकता के विरुद्ध निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(1) संयोगिता की कथा नयनचन्द्र सूरि कृत "रम्भामंजरी" (1403 ई०) में, जिसमें इस ग्रन्थ के नायक कन्नौज नरेश जयचन्द्र की विशेषताओं तथा उपलब्धियों का विवरण दो पृष्ठों में दिया गया है, उल्लेख नहीं किया गया है।

(2) रणथम्भौर नरेश चौहान वीर हम्मीर तथा उसके पूर्वजों का विवरण देने वाले ग्रन्थ नयनचन्द्र सूरि कृत "हम्मीर महाकाव्य" में भी संयोगिता का कोई उल्लेख नहीं है।

(3) संयोगिता के स्वयंवर तथा पृथ्वीराज तृतीय से उसके विवाह का विस्तृत विवरण इतना रोमांसपूर्ण है कि वह सत्य से परे प्रतीत होता है।

किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा[2] संयोगिता-प्रसंग को ऐतिहासिक सत्य मानते हुए कहते हैं कि, "इसके होते हुए भी (कि इसका उल्लेख उक्त ग्रन्थों में नहीं है) इसे किसी चारण-भाट की कल्पना की रोमांसपूर्ण उत्पत्ति मानने में कठिनाई है।" आगे वे कहते हैं कि, "निस्सन्देह यह अत्यन्त रोमांसपूर्ण घटना है किन्तु ऐसी घटनाएँ जीवन में वस्तुतः घटित होती हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र का विख्यात प्रकरण ही लिया जाये जिसके अनुसार इन्द्र चालुक्यों का सामन्त होते हुए भी कैरा के विवाह-मण्डप से राजकुमारी भवनागा का बलपूर्वक अपहरण करने में सफल हुआ था। संयोगिता की कथा में कोई वैचित्र्य प्रतीत नहीं होगा यदि हम यह समझलें कि चौहान सामन्त अपनी सेनाओं के सेनापति थे, अतः पृथ्वीराज की इच्छानुसार उन्होंने जयचन्द्र के किसी धार्मिक अनुष्ठान में व्यस्त रहने के समय कन्नौज पर तीव्र वेग से छापा मार कर संयोगिता का अपहरण किया। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के तीव्र गति से छापा मारने में पृथ्वीराज सिद्धहस्त था जो उसके आबू तथा जैजाकमुक्ति अभियानों से भी स्पष्ट होता है।

डॉ० शर्मा का कथन है कि 'रम्भामंजरी' तथा 'हम्मीर महाकाव्य' ग्रन्थों में संयोगिता प्रकरण का उल्लेख न होना इसकी ऐतिहासिकता को संदिग्ध नहीं बनाता। 'रम्भामंजरी' में जयचन्द का विवरण उसके युवराज के रूप में किया गया है तथा इस ग्रन्थ की रचना भी जयचन्द की मृत्यु के 200 वर्ष बाद की गई थी। इसी प्रकार 'हम्मीर महाकाव्य' में केवल संयोगिता प्रकरण का ही उल्लेख नहीं हुआ बल्कि

1. डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : ओझा निबन्ध-संग्रह भाग 2 (पृ. 78–112)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 86–87)

इसमें पृथ्वीराज द्वारा नागार्जुन, चंदेल परमर्दि, चालुक्य नरेश भीमदेव द्वितीय तथा भाडानकों पर विजय का भी कोई उल्लेख नहीं किया गया है। अतः इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर संयोगिता की ऐतिहासिकता को नकारा नहीं जा सकता। वल्कि अन्य स्रोत-ग्रन्थों से इसकी ऐतिहासिकता स्पष्ट होती है। डॉ० शर्मा का कथन है कि परम्परा व जनश्रुतियों में संयोगिता की कथा कुछ नाम-भेद के साथ पायी जाती है। चन्द्रशेखर रचित "सुर्जन चरित" में संयोगिता के स्थान पर कान्तिमती नाम लिखकर "पृथ्वीराज रासो" के समान ही विवरण दिया गया है। अबुल फजल की "आइन-ए-अकबरी" में भी "पृथ्वीराज रासो" की कथा की पुनरावृत्ति की गई है। "पृथ्वीराज विजय" में संयोगिता की जगह तिलोत्तमा नाम दिया गया है तथा उसे और पृथ्वीराज को क्रमशः सीता व राम का अवतार मान कर उनके प्रणय को उचित वतलाया गया है। "पृथ्वीराज रासो" में संयोगिता को रम्भा का अवतार माना गया है। अतः डॉ० दशरथ शर्मा इन प्रमाणों के आधार पर संयोगिता प्रसंग को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि संयोगिता-स्वयंवर में जयचन्द्र द्वारा पृथ्वीराज का अपमान करने हेतु द्वार पर उसकी मूर्ति स्थापित करना कोई नई घटना नहीं थी क्योंकि पूर्व में कन्नौज में हुए 'हिरण्यगर्भ महादान' में राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग ने गुर्जर नरेश की मूर्ति भी अपमानित करने के लिए द्वार पर लगाई थी। इसी प्रकार संयोगिता का पृथ्वीराज द्वारा अपहरण भी कोई नवीन घटना नहीं है क्योंकि इस प्रकार के राक्षस विवाह होने के प्रमाण पूर्व में ही नहीं पाये जाते वल्कि आजकल भी विवाह-मण्डप से वधू का वर द्वारा अपहरण की घटनाएँ होती हैं। अतः डॉ० शर्मा[1] संयोगिता प्रकरण की ऐतिहासिकता में विश्वास करते हुए कहते हैं कि—"इस (प्राचीन परम्परा) में कोई भी तत्त्व अनार्किक या निराधार नहीं है और न यह ऐतिहासिक तथ्यों के विरुद्ध है।" संयोगिता-अपहरण की यह घटना पृथ्वीराज तथा मुहम्मद गोरी के 1193 ई० के निर्णायक युद्ध के पूर्व की है।

पृथ्वीराज चौहान तथा मुहम्मद गौरी का संघर्ष
(Prithviraj Chauhan's Conflict with Mohammad Gauri)

चाहमान तथा तुर्कों का संघर्ष परम्परागत था। चौहान नरेशों को आरम्भ से ही तुर्कों से संघर्ष कर देश की रक्षा करनी पड़ी। विग्रहराज चतुर्थ के दिल्ली के लौह-स्तम्भ लेख में "आर्यावर्त को तुच्छ म्लेच्छों से रक्षाकर उसे सचमुच आर्य भूमि वनाने" का श्रेय चौहानों को दिया गया है। जयानक भट्ट रचित "पृथ्वीराज विजय" में अंकित है कि "गौमांस भक्षी म्लेच्छ के रूप में कलियुग की प्रत्यक्ष मूर्ति" मुहम्मद गौरी का अन्त करना पृथ्वीराज चौहान के जीवन का लक्ष्य था।

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 114)

डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[1] का कथन है—"किन्तु तत्कालीन भारतीय समाज और संस्कृति की रक्षा का बीड़ा उठाने वाले उस चाहमान शासक में जितनी वीरता, उत्साह तथा आन पर मर मिटने की सतत् तत्परता थी, उतनी राजनीतिक बुद्धिमानी नहीं थी। यद्यपि उस समय के प्रमुख भारतीय राजाओं में वह इस दोष का अकेला दोषी नहीं था, सीमन्तों पर स्थित होने के कारण कदाचित वह सर्वाधिक उत्तरदायी माना जायेगा।"

मुहम्मद गौरी के भारत पर प्रारम्भिक अभियान—इतिहासकार मिनराज-उद-दीन के ग्रन्थ "तबकात-इ-नासिरी" तथा फरिश्ता के ग्रन्थ "तारीख-इ-फरिश्ता" के आधार पर मुहम्मद गौरी के भारत-अभियानों का पता चलता है। अपने बड़े भाई गियासुद्दीन मुहम्मद द्वारा मुहम्मद गौरी 1173 ई० में गजनी का सूबेदार नियुक्त किया गया तथा पृथ्वीराज के राज्यारोहण के दो वर्ष पूर्व उसने 1175 ई० में भारत पर प्रथम सैनिक अभियान किया और मुलतान तथा उच्छ पर अधिकार कर लिया। 1178 ई० में उसने गुजरात पर अभियान किया। मार्ग में उसने किराडू में सोमेश्वर की मूर्ति को खण्डित किया तथा नाडोल को जीत लिया। "पृथ्वीराज विजय" के आधार पर ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी के इस दुस्साहस पर म्लेच्छों को समूल नष्ट करने का संकल्प किया। मुहम्मद गौरी ने अपना दूत भेज कर पृथ्वीराज चौहान को कर देने के लिए कहा। पृथ्वीराज ने इस प्रस्ताव को अपमानजनक समझकर ठुकरा दिया किन्तु उसने मुहम्मद गौरी के अभियान के विरुद्ध गुजरात नरेश की सहायता नहीं की। मंत्री कदम्ब्रवास के परामर्श पर उसने गौरी और गुजरात नरेश दोनों को परस्पर युद्ध द्वारा विनिष्ट होने की प्रतीक्षा की। इसका प्रतिकूल परिणाम पृथ्वीराज को आगे चल कर भुगतना पड़ा। सौभाग्य से काशह्रद के युद्ध में चालुक्य नरेश भीम ने मुहम्मद गौरी को पराजित कर दिया। बाद में जब गौरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान के मध्य 1191 ई. तथा 1195 ई. में युद्ध हुआ तो इस नीति के फलस्वरूप चालुक्यों ने भी पृथ्वीराज की कोई सहायता न की। डॉ. दशरथ शर्मा[2] का कथन है कि—"कदम्बवास या पृथ्वीराज द्वारा गुजरातियों की सहायता न करना कुछ वर्ष बाद ही न केवल चौहानों के हितों के लिए ही बल्कि समग्र हिन्दू राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हुआ।" डॉ० पाठक[3] का भी यही मत है—"यह उदाहरण (चौहानों द्वारा चालुक्यों की सहायता न करना) उस समय के मंत्रियों की दूरदृष्टि के अभाव का परिचायक है। किन्तु राजा होने के नाते पृथ्वीराज का उत्तरदायित्व इस सम्बन्ध में और अधिक था। कदाचित् उसकी नव-वयस्कता और राजनीतिक अपरिपक्वता इस अल्प दृष्टि का एक कारण थी।"

1. डा० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (पृष्ठ 482)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 89)
3. डा. विशुद्धानंद पाठक : उत्तरी भारत का राजनीतिक इजिहास (पृ. 482)

काशह्रद के युद्ध में पराजित होने के पश्चात् मुहम्मद गौरी अपनी भारत-अभियान की योजना अग्रसर करता रहा। उसने 1181 ई० में सियालकोट जीत कर वहाँ एक दुर्ग बनाया। 1186 ई० में उसने लाहौर के अन्तिम गजनीवंशी शासक खुसरो मलिक को हरा कर पंजाब पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह सीधे पृथ्वीराज चौहान के संघर्ष में आ गया क्योंकि पंजाब से चौहान साम्राज्य की सीमाएँ मिलती थीं। इन संघर्षों में पृथ्वीराज ने गौरी को अनेक बार पराजित कर छोड़ दिया था। "पृथ्वीराज प्रबन्ध" तथा "हम्मीर महाकाव्य" में पृथ्वीराज की गौरी पर सात बार विजय बतलाई गई है तथा "प्रबन्ध चिन्तामणि" "प्रबन्धकोश" और "पृथ्वीराज रासो" में इन विजयों की संख्या 24 दी गई है। किन्तु मुस्लिम इतिहासकार केवल दो युद्धों 1191 तथा 1192 ई० का ही उल्लेख करते हैं। सम्भवत: सीमावर्ती कुछ झड़पों में चौहानों द्वारा गौरी की पराजय को हिन्दू लेखकों ने अतिरंजित कर उन्हें युद्ध की संज्ञा दे दी जबकि मुस्लिम इतिहासकारों ने उनकी नितान्त उपेक्षा ही कर दी।

तराइन का प्रथम युद्ध (1191 ई०)

मुहम्मद गौरी का वह अभियान जिसमें गौरी और पृथ्वीराज चौहान का प्रथम बड़ा युद्ध हुआ वह 1191 ई० की शीत ऋतु में तराइन के मैदान में हुआ। इतिहासकार मिनहाजुद्दीन[1] का कथन है कि मुहम्मद गौरी ने लाहौर से चल कर पृथ्वीराज की राज्य सीमा में स्थित तबरहिन्द पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया और उसका प्रभारी काजी जियाउद्दीन को बनाकर आगे बढ़ा। तारीखे-फरिश्ता के अनुसार तबरहिन्द का समीकरण भटिण्डा से किया जाता है। जब गौरी ने सुना कि पृथ्वीराज दिल्ली के अपने सामन्त गोविन्दराज के साथ एक विशाल सेना सहित उसकी ओर बढ़ रहा है तो गौरी ने चौहानों का सामना करने के लिए करनाल जिले में स्थित तराइन नामक ग्राम के पास अपना शिविर स्थापित किया। डॉ० दशरथ शर्मा का कथन है कि यह युद्ध-स्थल वही कुरुक्षेत्र का मैदान था जहाँ महाभारत काल में कौरव और पाण्डवों के मध्य देश का निर्णायक युद्ध हुआ था।

तराइन का युद्ध आरम्भ हुआ। चौहानों ने गौरी की आक्रामक सेना के दोनों पार्श्वों पर भीषण आक्रमण किया जिससे घबराकर मुस्लिम सेना भाग खड़ी हुई। किन्तु गौरी ने हिम्मत न हारी और उसने एक भाले का प्रहार गोविन्दराज पर किया और उसके दो दाँत तोड़ डाले। गोविन्दराज ने भी बर्छी का वार गौरी पर किया और उसकी भुजा घायल कर दी। गौरी इतना घबड़ा गया कि उसने तुरन्त घोड़ा मोड़ कर पीछे भागना शुरू किया। एक खिलजी सरदार ने गौरी को घोड़े से गिरते हुए उठा लिया और उसे युद्ध क्षेत्र से बाहर ले गया। मिनहाजुद्दीन ने विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि मुस्लिम सेना भाग कर जब सुरक्षित स्थान पर पहुँची तो

1. "तबकाते-नासिरी (रैवर्टी-भाग 1 पृ. 457-469)

गौरी को अपने मध्य न पाकर कातर हो उठी, किन्तु शीघ्र ही टूटे भालों से बनी एक डोली में गौरी को घायलावस्था में आते हुए देखकर प्रसन्न हुई। इसके बाद गौरी अपनी सीमा में चला गया।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज चौहान की सेना इतनी शक्तिशाली थी कि यदि गौरी घायल भी न होता तो भी वह उसे परास्त कर देती किन्तु चौहानों ने तुर्कों का पीछा न कर उन्हें सुरक्षित स्थान पर जाने दिया। डॉ० दशरथ शर्मा ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि इस प्रकार का उदार व्यवहार यद्यपि हिन्दू शास्त्रों के अनुसार घायल और पलायनवादी शत्रु पर आक्रमण न करना क्षत्रियोचित आदर्श के अनुकूल हो सकता है किन्तु बुद्धिमत्ता तथा आधुनिक एवं तत्कालीन मुस्लिम शत्रुओं की नीति के प्रतिकूल था। "यह वस्तुतः हिन्दू स्वाधीनता के कफन के लिए दूसरी कील सिद्ध हुई जिसके लिए हमें पृथ्वीराज को उत्तरदायी ठहराना होगा।"[1]

पृथ्वीराज चौहान ने गौरी की इस पराजय को ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली और "पृथ्वीराज रासो" के अनुसार उसने अपना समय गहड़वालों से युद्ध कर संयोगिता के साथ भोग-विलास में व्यतीत किया। जबकि उधर गौरी निद्रा तथा आराम को त्याग कर अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने की तैयारी में जुट गया।

तराइन का द्वितीय युद्ध (1192 ई०)

एक वर्ष बाद ही मुहम्मद गौरी ने 120000 चुने हुए तुर्क, ताजिक तथ अफगान सवारों की सेना कोअस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कर अभियान किया। वह मुलता व लाहौर होता हुआ आगे बढ़ा। पृथ्वीराज के शत्रु जम्मू के राजा विजयराज ने गौरी की सहायता की। मिनहाजुद्दीन ने "तबक़ाते नासिरी" में इस अभियान का विवरण दिया है। शीघ्र ही गौरी तराइन के मैदान में आ डटा। तबरहिन्द के दुर्ग पर इ समय चौहानों का पुनः अधिकार हो गया था। गौरी ने अपने दूत किवाम-उल-मुल्क के द्वारा पृथ्वीराज को पत्र दिया जिसमें पृथ्वीराज से इस्लाम स्वीकार कर गौरी की अधीनता मानने के लिए कहा गया किन्तु पृथ्वीराज ने इसका उत्तर तराइन के मैदा में युद्ध के लिए सनद्ध होकर दिया। गौरी का सामना करने के लिए पृथ्वीराज 3 लाख सवार, 3000 हाथी तथा विशाल पैदल सेना के साथ सन्नद्ध खड़ा था। इस अतिरिक्त उसके 150 सामन्त तथा मित्र शासक भी उसके नेतृत्व में मर मिटने के लि गंगा-जल की सौगन्ध खाकर युद्ध के लिए उत्सुक थे। केवल जयचन्द्र तथा गुजरात के चालुक्य नरेश भीम पृथ्वीराज की नीति के कारण उसकी सहायतार्थ न आये।

पृथ्वीराज ने गौरी को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि यदि वह वापिस लौट ज

1. पूर्वनिर्दिष्ट (p. 93)

तो उसे कोई हानि नहीं पहुँचाई जायेगी अन्यथा उसकी सेना नष्ट कर दी जायेगी। मुहम्मद गौरी राजपूतों की वीरता एवं शौर्य से परिचित था, अतः उसने धोखे व चालाकी का मार्ग अपनाया। उसने पृथ्वीराज को लिखा कि—"मैं अपने भाई के आदेश से भारत आया हूँ जिसका कि मैं सेनापति हूँ। गरिमा तथा कर्त्तव्य दोनों से मैं आपका कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए विवश हूँ। किन्तु मैं आपके साथ उस समय तक सन्धि करने के लिए तत्पर हूँ जब तक कि मैं अपने भाई को इस स्थिति से अवगत कराकर उसका उत्तर प्राप्त नहीं कर लेता।"[1] इस उत्तर का राजपूतों पर इच्छित प्रभाव पड़ा और वे गौरी के शब्दों पर विश्वास कर निश्चित होकर रात्रि भर आमोद-प्रमोद में व्यस्त हो गये किन्तु प्रातःकाल में उन्हें इस असावधानी का कटु प्रतिफल उठाना पड़ा।

इतिहासकार उत्बी ने अपनी पुस्तक "फमीउल हिकायत" में लिखा है कि मुहम्मद गौरी ने उस रात्रि को अपने शिविर में आग जलाये रखी ताकि राजपूतों को कोई सन्देह न हो सके किन्तु गौरी चुपचाप सेना का अधिकांश भाग लेकर दूसरी दिशा में चला गया और सेना को चार भागों में विभक्त कर उसे हिन्दू सेना पर चारों ओर से आक्रमण कर वापस भागने का अभिनय करने का आदेश दिया। उषाकाल के पूर्व इस सेना ने जब प्रथम आक्रमण किया तो पृथ्वीराज निद्रामग्न था तथा राजपूत सैनिक नित्यकर्म हेतु इधर-उधर चले गये थे। इस असूचित आक्रमण तथा भागते हुए आक्रमणकारियों का पीछा करने के प्रयास में राजपूत सेना स्वयं को युद्ध के लिये तैयार न कर सकी। दिन के 3 बजे के लगभग जब राजपूत सैनिक पूर्णतया थक गये, मुहम्मद गौरी ने अपनी सुरक्षित सेना से अंतिम आक्रमण किया जिसका सामना पृथ्वीराज की सेना न कर सकी। हसन निजामी के अनुसार पृथ्वीराज के एक लाख सैनिक मारे गये तथा सेना भाग निकली। दिल्ली के सामंत गोविन्दराज ने भी वीरगति प्राप्त की। गौरी द्वारा टूटे हुए दाँतों से गोविन्दराज का शव पहिचान लिया गया। पृथ्वीराज घोड़े पर बैठ कर युद्ध-क्षेत्र से भागा किन्तु पहिचान लिये जाने के कारण उसका पीछा किया गया और उसे सरस्वती नामक स्थान (पंजाब के हिसार जिले में सिरसा नामक स्थान) पर बंदी बना लिया गया।

मुहम्मद गौरी पृथ्वीराज चौहान को बंदी बना कर उसकी राजधानी अजमेर गया जिस पर गौरी ने अनेक राजपूत वीरों को मार कर तथा बन्दी बनाकर धकार किया था। "ताजुल-इ-नासिर" के रचयिता इतिहासकार हसन निजामी कथन है कि गौरी ने अजमेर में पृथ्वीराज चौहान के कोष पर अधिकार किया तथा वहाँ के मंदिरों को नष्ट किया। अजमेर पर अधिकार करने के बाद गौरी ने हांसी, सरस्वती, समाना तथा कोहराम के दुर्गों को जीता[2] "प्रबन्ध-चिन्तामणि" के लेखक मेरुतुंग का कथन है कि गौरी पृथ्वीराज को अजमेर की गद्दी पर अपने अधीन

1. "तबकाते नासिरी" (रैवर्टी पृ. 176)
2. हसन निजामी : ताजुल-इ-नासिर (इलियट तथा डाउसन भाग II, पृ० 215)

सामन्त के रूप में वैठाना चाहता था किन्तु पृथ्वीराज की चित्रशाला में मुसलमानों को सूअरों द्वारा मारा जाना चित्रित देखकर गौरी ने उसे मौत के घाट उतार दिया। डॉ० दशरथ शर्मा ने गौरी द्वारा पृथ्वीराज को अजमेर का अधिपति बनाये जाने की सम्भावना इस साक्ष्य पर व्यक्त की है कि एक उपलब्ध सिक्के पर पृथ्वीराज तथा मुहम्मद साम दोनों के नाम उत्कीर्ण हैं। डॉ० शर्मा का तर्क है कि पृथ्वीराज की मृत्यु के वाद भी गौरी द्वारा अजमेर का राज्य पृथ्वीराज के छोटे भाई गोविन्द को सौंप देना इस वात का प्रमाण है कि गौरी पृथ्वीराज को अपने अधीन अजमेर का शासक बनाना चाहता था।

गौरी द्वारा पृथ्वीराज को मौत के घाट उतारे जाने का कारण हसन निजामी ने पृथ्वीराज द्वारा किया गया एक षड्यन्त्र वतलाया है। "पृथ्वीराज-प्रवन्ध" में एक कथा इस प्रकार है—एक दिन सुलतान मुहम्मद गौरी अजमेर में वन्दी पृथ्वीराज के समक्ष अपना दरवार लगाकर वैठा था। इससे पृथ्वीराज को अपमान के कारण अत्यन्त दुख हुआ। पृथ्वीराज को अपने प्रधान मंत्री के देशद्रोही होने का पता न था। प्रधान मन्त्री ने पृथ्वीराज को गौरी के इस कृत्य पर दुखी न होने को कहा क्योंकि उसके भाग्य में ही ऐसा लिखा था। इस पर क्रुद्ध होकर पृथ्वीराज ने प्रधानमंत्री को आदेश दिया कि वह एक धनुष तथा वाण उसे लाकर दे ताकि वह गौरी को मार डाले। प्रधानमंत्री ने गोपनीय ढंग से गौरी को अपने स्थान पर न वैठने का निवेदन किया। गौरी के स्थान पर उसकी धातु से निर्मित मूर्ति रख दी गई। प्रधानमंत्री से धनुष-वाण लेकर पृथ्वीराज ने अपने लक्ष्य पर वाण चला दिया किन्तु मूर्ति के दो टुकड़े होने पर धनुष फैंक कर उसने कहा उसका कार्य अपूर्ण रहा, कोई दूसरा व्यक्ति ही मारा गया। गौरी ने तत्काल पृथ्वीराज को एक गड्ढे में डाल कर पत्थरों से मरवा डाला। डॉ० दशरथ शर्मा इस कथा की ऐतिहासिकता के विषय में संदिग्ध हैं क्योंकि "पृथ्वीराज रासो" तथा "सुर्जन चरित" नामक ग्रन्थों में भी यही विवरण कुछ अतिश्योक्तिपूर्ण दिया गया है। किन्तु यह निश्चित है कि पृथ्वीराज के हृदय में गौरी के प्रति अत्यन्त घृणा तथा प्रतिशोध की भावना थी और वह उसकी अधीनता स्वीकार नहीं करते थे। इस प्रकार मध्यकालीन भारत के एक महान् शासक का दुखद अंत हुआ।

पृथ्वीराज चौहान का चरित्र-चित्रण

पृथ्वीराज चौहान के नाम की गणना वीरता, शौर्य एवं विजेता के रूप में भारतीय इतिहास के महान् हिन्दू सम्राटों में की जाती है। वह मध्यकालीन भा तीय इतिहास के प्रवलतम शासकों में था। उसके चारित्रिक गुणों का वर्णन करते हुए डॉ० शर्मा का कथन है कि वह सुन्दर, वीर, साहसी, कुशल धनुर्धर तथा शौर्य का प्रतीक था। भाडानक, चदेल, नागार्जुन, भीमदेव द्वितीय तथा गहड़वालों पर विजय उसके कुशल सेनानायक होने का प्रमाण है। वह केवल महान् योद्धा ही नहीं था वल्कि वह साहित्यकारों का संरक्षक भी था। उसके प्रश्रय में "पृथ्वीराज विजय" का

लेखक इतिहासकार एवं कवि जयानक, विद्यापति गौड़, वागीश्वर जनार्दन, विश्वरूप, आशाधर, पृथ्वीभट्ट (जिसका समीकरण चंदवरदायी से किया जाता है) आदि रहते थे। इन साहित्यकारों की गोष्ठियाँ पृथ्वीराज के मंत्री पद्मनाथ द्वारा समय-समय पर आयोजित की जाती थीं।

डॉ० शर्मा[1] ने उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त पृथ्वीराज के अवगुणों की गणना करते हुए कहा है कि पृथ्वीराज में दूरदर्शिता का अभाव था क्योंकि उसमें परिवर्तित स्थितियों के अनुकूल कूटनीतिक योग्यता न थी। जब मुहम्मद गौरी उसकी पश्चिमी सीमा पर निरंतर आक्रमण कर रहा था, पृथ्वीराज अपने "दिग्विजय" के दम्भ में चूर होकर अन्य पड़ोसी राज्यों को अपना शत्रु बना रहा था। मुसलमानों के विरुद्ध समस्त हिन्दू राजाओं का संघ बनाकर उनका नेतृत्व करने की अपेक्षा उसने जैजाक भुक्ति, कन्नौज तथा गुजरात पर आक्रमण कर उनके शासकों को अपना विरोधी बना लिया। यही कारण था कि जब पृथ्वीराज की तराइन के द्वितीय युद्ध में पराजय हुई तो कोई भी भारतीय शासक सपादलक्ष के नष्ट प्राय: राज्य की रक्षार्थ सहायता हेतु नहीं आया।

तराइन के प्रथम तथा द्वितीय युद्ध के मध्य पृथ्वीराज चौहान भोगविलास तथा आलस्य में लिप्त हो गया था जिसका फल उसे उठाना पड़ा। उसने मुहम्मद गौरी की शक्ति का द्वितीय तराइन युद्ध के समय ठीक अनुमान नहीं लगाया तथा गौरी की छद्मपूर्ण बातों पर एक नौसिखिये शासक की भाँति विश्वास कर लिया। पृथ्वीराज द्वारा आबू के परमार शासक धारावर्ष पर सफल अभियान से विदित होता है कि वह रात्रि के समय छापामार युद्ध प्रणाली में कुशल था किन्तु गौरी के रात्रि-आक्रमण के समय वह घोर निद्रा में लिप्त था जिसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज को अपने साम्राज्य तथा शक्ति से हाथ धोने पड़े और अपने दु:खद अन्त का सामना करना पड़ा। डॉ० वी० एस० भार्गव के शब्दों में—"अपनी भूलों के बावजूद पृथ्वीराज पूर्व मध्यकालीन भारत का एक महान् शासक था जिसे इतिहास में शूरवीरता और रोमांस के लिये सदा याद किया जाता रहेगा।[2]

पृथ्वीराज तृतीय के उत्तराधिकारी
(Successors of Prithviraj)

गोविन्दराज—पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद गौरी द्वारा उसका पुत्र गोविन्दराज अजमेर का शासक बनाया गया जिसके बदले में गौरी को काफी भेंट देनी पड़ी। किन्तु मुसलमानों की अधीनता को पृथ्वीराज के भाई हरिराज के नेतृत्व में अनेक चौहान वीरों ने चुनौती दी। तराइन के युद्ध में पराजित हो हरिराज अलवर की पहाड़ियों में आ गया था। वहाँ आगे बढ़ कर उसने गोविन्दराज को अजमेर की

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 98)
2. डॉ० वी० एस० भार्गव : राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण (पृ० 68)

गद्दी से हटा कर स्वयं को शासक घोषित कर दिया। "तारीख-ए-फरिश्ता" ग्रन्थ से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

हरिराज—हरिराज के अन्य चौहान सामन्त मुसलमानों का अन्य स्थानों पर सामना कर रहे थे। हांसी के निकट एक चौहान वीर ने मुसलमानों से युद्ध किया किन्तु वह गौरी के भारतीय विजित प्रदेशों के प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन से पराजित हो मारा गया। अजमेर के पश्चात दिल्ली पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया था। यद्यपि दिल्ली के राजा ने कुतुबुद्दीन का सामना किया था किन्तु वह मारा गया। गोविन्दराज ने गौरी समर्थित शासक गोविन्दराज को अजमेर से भगाकर रणथम्भौर जाने को विवश कर दिया। यह घटना 1192 ई० में हुई।

आगामी दो वर्ष तक हरिराज को मुसलमानों के आक्रमण का सामना न करना पड़ा। 1194 ई० में कुतुबुद्दीन ने कन्नौज, बनारस, असनी तथा कोल स्थानों को विजित किया। जब मुसलमान पूर्वी प्रदेशों की विजय में संलग्न थे, हरिराज ने अपने सेनापति जैत्र को दिल्ली पर आक्रमण करने हेतु भेजा। हसन निजामी ने अपने ग्रन्थ "ताजुल मासिर" में लिखा है कि इस आक्रमण से दिल्ली की जनता घबरा उठी और मुसलमानों का जीवन और धन संकट में पड़ गया। किन्तु शीघ्र ही कुतुबुद्दीन ने आकर जैत्र का पीछा किया। 'तारीख-ए-फरिश्ता' के अनुसार हरिराज तथा जैत्र कुतुबुद्दीन से पराजित हो मारे गये। "हम्मीर महाकाव्य" के अनुसार हरिराज ने दुर्ग के अन्दर अपने परिवार सहित अग्नि में जल कर प्राण त्याग दिये। इस प्रकार लगभग पाँच शताब्दियों तक राज्य करने वाले सपादलक्ष के चौहान शासकों का अन्त हो गया। रणथम्भौर में गोविन्दराज के वंशजों ने हम्मीर चौहान शासन तक राज्य किया। हम्मीर अलाउद्दीन खिलजी द्वारा परास्त हो मारा गया।

चौहानों की शासन-व्यवस्था
(Administration of Chauhans)

चौहानों के समय की शासन-व्यवस्था का पता तत्कालीन शिलालेखों तथा "खरतरगच्छ पट्टावली", "ललितविग्रहराज नाटक", "कान्हडदेव प्रबन्ध," "लखपद्धति" आदि साहित्यिक ग्रन्थों के अधार पर लगता है। इनके अनुसार शासन-व्यवस्था का निम्नांकित स्वरूप प्रकट होता है —

केन्द्रीय शासन-प्रबन्ध

1. **राजा**—चौहान शासन-व्यवस्था में राजा का पद सर्वोच्च था। चौहान शासक "राजा के दैवी अधिकार" के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। शिवालिक स्तंभ-लेख में विग्रहराज चतुर्थ को विष्णु का अवतार तथा "पृथ्वीराजविजय" में भी उसे "मधुद्विप (विष्णु) का अंश" माना गया है। हाँसी शिलालेख में पृथ्वीराज द्वितीय को तथा 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज तृतीय को राम का अवतार कहा गया है। किंतु राजा की यह दैवी कल्पना चौहान शासकों को स्वेच्छाचारी तथा उच्छृंखल नहीं बनाती थी। उनकी दैवी कल्पना उनके उत्कृष्ट गुणों के कारण थी। वे नैतिक सामाजिक आदर्श के संरक्षक थे तथा शत्रुओं से देश की रक्षार्थ वे सदैव संघर्ष के

लिए प्रस्तुत रहते थे। विग्रहराज चतुर्थ ने म्लेच्छों से देश की संस्कृति तथा धर्म की रक्षा कर भारत को "आर्यावर्त" बनाया था। "पृथ्वीराजविजय" के अनुसार धर्म से विमुख शासक को नरक का भागी कहा गया है।

अतः डॉ. दशरथ शर्मा[1] के अनुसार चौहान शासकों की स्वेच्छाचारिता पर तीन प्रकार का नियंत्रण था। पहला यह कि शासक के धर्मविमुख होने पर उसे अपनी निंदा का भय था। दूसरा शासक पर नियंत्रण मन्त्रिमण्डल का था। चौहान शासक अपने मन्त्रियों के परामर्श से शासन करते थे। "ललित विग्रहराज" में विग्रहराज चतुर्थ को हम्मीर (मुस्लिम आक्रमणकारी) के विरुद्ध युद्ध करने के पूर्व अपने मन्त्री श्रीधर तथा सेनापति सिंहवल से मंत्रणा करते हुए दिखलाया गया है। पृथ्वीराज तृतीय पर उसके मन्त्री कदम्बवास का काफी प्रभाव था। तीसरा नियन्त्रण तत्कालीन स्थानीय स्वायत्त शासन तथा परम्परा का था जिसका चौहान शासक आदर करते थे। प्रारम्भिक चौहान शासक 'भूप' या 'महाराजा' का विरुद धारण करते थे किन्तु बाद के शासकों की शक्ति तथा सत्ता का पता उनकी "परम भट्टारक—महाराजाधिराज—परमेश्वर" उपाधि से चलता है।

2. **युवराज तथा रानी**—शासन-व्यवस्था में राजा के बाद 'युवराज' अर्थात् राजा के ज्येष्ठ पुत्र का महत्त्व सबसे अधिक माना जाता था। कुछ अभिलेखों में राजा के साथ उसके युवराज का नाम भी संयुक्त रूप से अंकित मिलता है। यदि राजा किसी कारणवश स्वय को शासन के अयोग्य पाता था तो वह अपने युवराज के पक्ष में गद्दी त्याग देता था। उदाहरणार्थ अजयराज ने अपने युवराज अर्णोराज को गद्दी पर बैठा कर स्वयं संन्यास ले पुष्कर के वन में रहना आरम्भ कर दिया था। इसका कारण यह था कि शासक ऐसा बने जो अपनी शक्ति एवं स्फूर्ति से म्लेच्छों से देश की रक्षा कुशलता से कर सके।

चौहान शासकों की रानियाँ भी शासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। अजयराज की रानी सोमल्लदेवी के सिक्के इस बात का प्रमाण है। अभिलेखों से प्रकट होता है कि रानियाँ प्रायः दान देने तथा जौहर करने में उल्लेखनीय रहीं। नये अल्पायु शासक की संरक्षिका के रूप में कुछ चौहान रानियों ने प्रमुख भूमिका निभाई। सोमेश्वर की राजमाता कर्पूरदेवी की संरक्षिका के रूप में प्रशासन-कुशलता की प्रशंसा जयानक कवि ने की है।

3. **मन्त्रिमण्डल**—चौहान शासको के मन्त्रिमण्डल में निम्नांकित मन्त्री थे—

1. **महामंत्रिन या महामात्य**—यह मन्त्रिमण्डल का प्रमुख मंत्री था। विग्रहराज चतुर्थ के समय श्रीधर तथा सलक्षणपाल महामन्त्रिन थे। पृथ्वीराज तृतीय का महामन्त्रिन कदम्बवास की तो 'मण्डलेश्वर' उपाधि थी जो प्रकट करता है कि वह सामन्त भी था।

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 220)

2. **सेनापति या दण्डनायक**—विग्रहराज चतुर्थ का सिहवल तथा पृथ्वीराज तृतीय का भुवनायकमल्ल सेनापति थे।

3. **सन्धिविग्रहिक**—यह युद्ध तथा शान्ति का मन्त्री था। इसके अतिरिक्त वह राजकीय आदेश तथा परिपत्र भी प्रसारित करता था।

4. **कवि तथा पण्डितों का प्रभारी मन्त्री**—"पृथ्वीराज विजय" ग्रंथ से पद्मनाभ नामक पृथ्वीराज तृतीय के एक मन्त्री का पता चलता है जो विद्वानों का सत्कार करता था तथा उनकी गोष्ठियों का आयोजन करता था। इस पद का सृजन "कविवान्धव" विग्रहराज चतुर्थ ने किया था जो भारतीय इतिहास में एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

5. **पौराणिक**—यह अमात्य रणथम्भोर हम्मीर के समय पुरोहित का कार्य करता था। धार्मिक कार्यों का प्रभारी यही मन्त्री था।

मन्त्रिमण्डल का कार्य केवल परामर्श देने का था तथा अंतिम निर्णय राजा ही करता था। विग्रहराज तथा अर्णोराज द्वारा अपने मन्त्रियों के परामर्श को अस्वीकार करने के उदाहरण मिलते हैं। किन्तु मन्त्रिगण राज्य के संकटकाल में प्रमुख भूमिका निभाते थे। जब पृथ्वीराज द्वितीय निःसंतान मर गया था तो मन्त्रियों ने सोमेश्वर को गुजरात से लाकर गद्दी पर बैठाया था। सोमेश्वर की मृत्यु के बाद उसके अल्पायु पुत्र पृथ्वीराज तृतीय का संरक्षक पद उसकी विधवा रानी कर्पूरदेवी को मंत्रियों के परामर्श से ही दिया गया था।

उपरोक्त मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य केन्द्रीय अधिकारियों के नाम निम्नांकित थे—

1. **दूतक**—यह शासकीय आदेश की स्वीकृति स्थानीय अधिकारियों को प्रेषित करते थे।
2. **पुरोहित और व्यास**—ये धार्मिक मामलों में राजा के परामर्शक थे।
3. **प्रतिहार**—यह राजा से भेंट करने वाले व्यक्तियों की व्यवस्था करता था।
4. **भण्डागारिक**—यह राजा के भण्डार तथा कोष का प्रभारी था।
5. **खड्गग्राह**—यह राज-प्रासाद में राजा का अंग-रक्षक था।
6. **चाट-भाट**—सैनिक।
7. **रथ-हस्तादि नियोजिन**—रथ, हाथी आदि का प्रभारी।
8. **वहिकाधिकृत** (अक्षपटलिक)—यह लेखाधिकारी था।
9. **राज-वल्लभ**—राजदर्वार में प्रतिष्ठित व्यक्ति जैसे चंदवरदाई, पृथ्वीभट्ट आदि।

प्रान्तीय शासन-प्रवन्ध

विग्रहराज द्वितीय के समय शाकम्भरी राज्य (हर्ष अभिलेख के अनुसार) निम्नांकित "विषयों" में विभक्त था—

1. पट्टवधक (सीकर जिले का वर्तमान पटौड),

2. सरहकोट्ट (जोधपुर जिले में मारोठ में निकट सरगोट),

3. दर्भकक्ष (सीकर जिले में ढाका),

4. खट्टकूप (साँभर के निकट खाटू),

5. जयपुरा ।

ये "विषय" ग्राम-समूहों में विभक्त थे । प्रत्येक समूह इसके प्रमुख ग्राम से पुकारा जाता था । उदाहरणार्थ एक 12 ग्रामों के समूह का नाम था "तूणकूपक-द्वादशक" । बड़े समूह 84 ग्रामों के भी होते थे । चौहान-साम्राज्य के विस्तार के साथ 'विषयों' के अतिरिक्त दिल्ली तथा मरुकोट्ट जैसे 'मण्डल' नामक प्रशासनिक इकाइयाँ भी थीं जिनपर चौहानों द्वारा विजित सामन्त "मण्डलेश्वर" शासन करते थे । विषय तथा मण्डल के अतिरिक्त दुर्ग पृथक प्रशासनिक इकाइयाँ थी । पश्चिमोत्तर सीमा पर मुसलमानों के आक्रमणों से रक्षार्थ दुर्गों का विशेष सैनिक महत्त्व था, अतः उनके प्रभारी राजपरिवार के विश्वस्त व्यक्ति होते थे । हाँसी दुर्ग का अधिपति पृथ्वीराज द्वितीय का चाचा केल्हण तथा बाद में पृथ्वीराज तृतीय का भाई हरिराज था ।

'विषय' "प्रतिजागरणक" अर्थात् परगनों में विभक्त थे तथा अंतिम सबसे छोटी इकाई **"ग्राम-पंचायत"** थी । ग्राम तथा नगरों में स्थानीय स्वायत्त शासन हेतु एक सभा होती थी जिसे "महाजन" के नाम से पुकारा जाता था । इस का कार्य शांति-व्यवस्था रखना, दान-पत्रों पर साक्ष्य करना, स्थानीय शासन-नीति निर्धारित करना, कुछ कर वसूल करना आदि था । कुछ भूमि "जागीरदार या भोक्ता" के अधीन होती थी । जागीरदारों को अपने क्षेत्र में कर लेने का अधिकार था जिसके बदले में वे राजा की सैनिक सहायता करते थे । प्रांतीय तथा विषय के अधिकारियों में "पट्टकिल" (पटेल), "बलाधिप" (चुंगी का सैनिक अधिकारी), "तलार" (पुलिस अधिकारी), "सेलहथ" (राजस्व अधिकारी), "रक्षाकर" (चौकीदार), "बह्किाधिकृत" (लेखाधिकारी), "परिग्रहिण" (पेशकार) आदि प्रमुख थे जिनके नाम चौहान-अभिलेखों में मिलते हैं ।

पुलिस-व्यवस्था—ग्राम तथा जागीर में स्थानीय शासन का दायित्व पुलिस-व्यवस्था करना था । 'तलार' तथा 'रक्षाकर' अपराधों का पता लगा कर अपराधी की दण्ड-व्यवस्था करते थे । अपने क्षेत्र में शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व स्थानीय लोगों का था ।

राजस्व-व्यवस्था—राजस्व की आय निम्नांकित करों से होती थी—

1. तलाराभाव्य—नगर तथा ग्राम में शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने के लिये 'तलार' अधिकारी चुंगी का एक भाग कर के रूप में लेता था ।

2. सेलहथाभाव्य—यह 'सेलहथ' अधिकारी का चुंगी का भाग था ।

3. बलाधियाभाव्य—यह 'बलाधिय' का चुंगी का भाग था ।

4. दान या शुल्क—यह चुंगी-कर था जो राजस्व का प्रमुख स्रोत था। यह "दानमण्डपिका" (चुंगी का कार्यालय या चौकी) पर वसूल किया जाता था।

इनके अतिरिक्त अन्य करों में ये प्रमुख थे—'आदान' (चुंगी), 'लाग' (आयात कर), 'आत्मपाइला' (जागीरदार या भोक्ता का कर-भाग), 'देशबन्ध' (आय-कर), 'देवदाय' (धार्मिक दान), 'राजकीय योग' (वस्तु के रूप में कर), 'उद्रंग' (भूमि-कर), 'उपरिकर' (अतिरिक्त भूमिकर), 'दण्ड' (जुर्माना) आदि। साम्भर झील के नमक उत्पादन से प्राप्त आय तथा 'दिग्विजय' में विजित शासकों से प्राप्त धन चौहानों के राजस्व का भाग था।

न्याय-व्यवस्था—न्याय की सर्वोच्च सत्ता राजा में निहित थी। ग्रामों में ग्राम-पंचायत तथा विषयों में धर्माधिकरणों के पण्डित न्याय-कार्य करते थे। साक्ष्यों व अभिलेखों के आधार पर न्याय किया जाता था किन्तु कभी-कभी सत्य तथ्य जानने के लिए अपराधियों की कठोर परीक्षा भी ली जाती थी। ब्राह्मण अपराधियों को 'गर्दभ पत्र' प्रस्तुत करना पड़ता था।

सैनिक व्यवस्था—चौहान शासक प्रायः अनियमित सैनिक शक्ति पर निर्भर रहते थे क्योंकि जागीरदार अपनी सेना राजा की सहायतार्थ राजधानी में रखते थे। यदि ये सामंत राजा की सैनिक सहायता नहीं करते थे तो उनकी जागीर छीन ली जाती थी। फरिश्ता के अनुसार पृथ्वीराज तृतीय के समय लगभग 150 जागीरदार सामंत थे।

चौहान शासकों की स्थायी सेना काफी विशाल थी। मुसलमान आक्रमणकारी हम्मीर के विरुद्ध विग्रहराज चतुर्थ की सेना में 1,000 हाथी, 1,00,000 अश्वारोही तथा 10 लाख सैनिक थे। फरिश्ता ने पृथ्वीराज तृतीय की सेना में 3 लाख अश्वारोही तथा 3 हजार हाथी बतलाये हैं। युद्ध में सेनानायक हाथियों पर सवार होकर सेना-संचालन करते थे। हाथियों के बाद घोड़ों का महत्व था। राजस्थान मरुस्थल होने के कारण चौहान सेना में ऊँटों का उपयोग भी किया जाता था। हाँसी, तबरहिंद, समाना, नागौर, मण्डौर, सिवाना, जालौर, अजमेर, दिल्ली, नाडौल, कोहराम तथा सिरसा के दुर्गों का विशेष सैनिक महत्व था। शत्रु से घिर जाने पर जब पराजय की आशंका होती थी तो राजपूत स्त्रियाँ जौहर करती थीं तथा राजपूत वीर दुर्ग के द्वार खोल कर शत्रु से युद्ध में मर मिटते थे। सामंती-व्यवस्था होने के कारण युद्ध के समय चौहान सेना के शिविर सुसंगठित नहीं रह पाते थे। तराइन के द्वितीय युद्ध का उदाहरण इस बात का प्रमाण है।

चौहानों के समय धार्मिक दशा

चौहानों के समय हिन्दू तथा जैन धर्म की विशेष प्रगति हुई। जैनधर्म के आचार्य जिनदत्त सूरि को अर्णोराज ने काफी सम्मान दिया था। जैन आचार्यों के प्रभाव से चौहान राजाओं ने जैनधर्म की उन्नति में काफी योगदान किया। पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भौर के जैन मन्दिर पर तथा अजयराज ने अजमेर में पार्श्वनाथ मंदिर पर स्वर्ण-कलश चढ़ाया था। विग्रहराज चतुर्थ ने अजमेर में एक जैन-विहार निर्मित कराया तथा

उसने मास के कुछ दिनों में पशु-हिंसा पर रोक लगा दी। सोमेश्वर ने विजोलिया के जैन-मन्दिर को ग्राम-दान किया एवं पृथ्वीराज तृतीय ने जैनधर्मावलम्बियों को अपना अधिकारी बनाया तथा आचार्य जिनपति सूरि को "जयपत्र" प्रदान किया। जैनधर्म में जाति का भेदभाव नहीं था। यद्यपि वैश्य इस धर्म में अधिक दीक्षित थे किन्तु अन्य जातियों के लोग भी इसे मानते थे।

हिन्दू धर्म में ब्रह्मा, वैष्णव, शैव तथा शाक्त सम्प्रदायों की प्रगति हुई। चौहान-साम्राज्य के अन्तर्गत पुष्कर, खेड़, ओसिया, किराडू, रणपुर, विजोलिया आदि स्थानों पर ब्रह्मा की मूर्तियाँ तथा मन्दिर इस बात का प्रमाण है कि ब्रह्मा की उपासना का प्रचलन था। अधिकांश लोग वैष्णव धर्मावलम्बी थे। नाडोल में लक्ष्मण तथा शाकम्भरी में चामुण्डराज के वैष्णव मन्दिर प्रमुख थे। पृथ्वीराज द्वितीय तथा तृतीय स्वयं को राम का अवतार मानने में गर्व का अनुभव करते थे। अजयराज 'भागवत' अर्थात् वैष्णव आचार्य देववोधि को आश्रय देते थे। शैव धर्म का प्रचार व प्रसार काफी था। शाकम्भरी में "हर्षनाथ" (शिव) चौहानों के वंश के इष्टदेव थे। वाक्पति व सिंहराज ने पुष्कर में शिव-मन्दिर बनवाये जिनमें वाक्पति की माता रुद्राणी नित्य एक हजार दीपों का प्रकाश करती थी। पृथ्वीराज प्रथम ने सोमनाथ के यात्रियों के लिये "अन्नसत्र" की स्थापना की थी। अजयराज तथा अर्णोराज शैव धर्मावलम्वी थे और अनासागर झील के तट पर उन्होंने शिव-मन्दिर बनवाया। विग्रहराज चतुर्थ रचित "हरिकेलि नाटक" शिव-भक्ति का प्रतीक है। पृथ्वीराज द्वितीय की रानी सुघवा ने मेनाल (मेवाड़) में सुधवेश्वर मन्दिर बनवाया। सोमेश्वर का विरुद "प्रतापलंकेश्वर" था जो शिव-भक्त रावण के समान शौर्य का प्रतीक है।

शाक्त धर्म का प्रचलन भी चौहान राज्य में था। सकराइ (शंकरा) माता का मन्दिर आज भी तीर्थ-स्थल है। शाकम्भरी के चौहानों की इष्टदेवी "आशापुरी" माता विख्यात है। सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज तृतीय के सिक्कों पर उत्कीर्ण "आशावरी श्री सामन्तदेव" आशापुरी माता का द्योतक है। मण्डोर तथा केकिन्द में अष्टमातृका की मूर्तियाँ है। इस प्रकार चौहानों के समय जैन तथा हिन्दू-धर्म की काफी प्रगति हुई।

चौहानों के समय सामाजिक दशा

वर्ण-व्यवस्था—आलोच्य-काल में वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी। ब्राह्मणों का वर्चस्व था। ब्राह्मणों की उपजातियाँ श्रीमाली, नागर, पंचगौढ़, पंचद्रविड़, पुष्करना आदि का विवरण चौहान अभिलेखों में मिलता है। मुसलमानों के आक्रमणों के कारण ब्राह्मणों ने हिन्दू संस्कृति की रक्षार्थ वर्णव्यवस्था को कठोर बनाया। राजपूत शासक-वर्ग के थे। "कान्हड़देव प्रवन्ध" में 36 राजपूत वंशों का विवरण मिलता है जिनमें चौहान, बघेला, देवड़ा, सोलंकी, राठौड़, परमार, हूण, चावड़ा, डोडिया, जादव, गुहिल आदि प्रमुख थे। चौहानों के राज्यकाल के अन्तिम चरण में राजपूत स्वयं को क्षत्रिय कहने लगे यद्यपि वे अपने क्षत्रियेतर उद्गम को नहीं भूले थे। वैश्य

वर्ण में राजस्थान के अग्रवाल, महेश्वरी तथा ओसवाल प्रमुख थे। व्यापार तथा व्यवसाय करना उनका प्रमुख कार्य था। शूद्रों की कई उपजातियाँ थीं तथा वर्ण-व्यवस्था में उनका निम्न स्थान था। इन चार प्रमुख वर्णों के अतिरिक्त अहीर, कायस्थ, जाट, गूजर आदि अन्य वर्ण भी विकसित हो गये थे। हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था के गुण तथा दोषों को देखते हुए डॉ० दशरथ शर्मा[1] ने चौहान-काल के संदर्भ में कहा है कि—"हमारे आलोच्य-काल का अन्तिम चरण हिन्दू-धर्म के अवरुद्ध विकास का चित्र प्रस्तुत करता है। वर्ण-व्यवस्था का दुर्ग हिन्दू-धर्म के लिये शरण-स्थल तथा वन्दीगृह दोनों का कार्य करती थी।"

स्त्रियों की दशा—समाज में स्त्रियों की दशा प्रायः पुरुषों से हीन थी। सतीत्व पर इतना जोर दिया जाता था कि स्त्रियों में सती, जौहर तथा पर्दा प्रथाएँ ही प्रचलित हो गई। चौहान-अभिलेखों से प्रकट होता है कि राजपूतों में ये प्रथाएँ अधिक प्रचलित थीं। बहुविवाह प्रथा समाज का दुर्भाग्य था। अर्णोराज के दो रानियाँ तथा पृथ्वीराज तृतीय के अनेक रानियाँ थीं। अतः रनिवास में सपत्नीक कलह तथा षड्यन्त्र के कारण संघर्ष हुआ करते थे। विधवा-विवाह का प्रचलन नहीं था। कर्पूरदेवी का संरक्षक रूप में शासन करना तत्कालीन चौहान रानियों की प्रशासनिक-कुशलता प्रकट करता है।

वेशभूषा, खान-पान तथा उत्सव—चौहानों के समय स्त्री तथा पुरुष दोनों आभूषण–प्रिय थे। "हम्मीर महाकाव्य" से स्त्रियों के आभूषण व वस्त्र कुण्डल, नूपुर, अंगूठी, हार, दुकूल आदि का पता चलता है जो किराडू तथा आबू की मूर्तिकला से भी स्पष्ट होता है। स्त्रियों में अंगराग, सुगन्ध, कुंकुम आदि सौंदर्य प्रसाधनों का प्रचलन था। पुरुष वर्ग के अलंकार किरीट, हार, कुण्डल आदि के तथा वस्त्रों में अधोवसन एवं उत्तरीय प्रमुख थे। खान-पान की वस्तुओं में गेहूँ, चावल, जौ, दाल, ज्वार, तेल, घी, माँस, फल, मसाले आदि थे। जैन धर्म के प्रभाव से मांसाहार पर कुछ प्रतिबन्ध लग गया था। क्षत्रियों में आखेट, माँस, मदिरा आदि का प्रचलन था।

धार्मिक उत्सव तथा त्यौहारों में शिवरात्रि, अक्षय तृतीया, ग्रहण, नामकरण वसन्तोत्सव (होली), जैन प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा करते थे। इन स्थानों में पुष्कर, आबू, सांचौर, ओसिया, एकलिंग, एकराइ तथा हर्षनाथ लोकप्रिय थे। बाहर के स्थानों में सोमनाथ, कुरुक्षेत्र आदि प्रमुख थे।

चौहानों के समय साहित्यिक प्रगति

चौहान शासक अजयराज, अर्णोराज, विग्रहराज चतुर्थ तथा पृथ्वीराज तृतीय केवल महान् योद्धा ही नहीं थे बल्कि वे साहित्य-प्रेमी भी थे। उनके राज्याश्रय में अनेक विद्वान् व साहित्यकार रहते थे। विग्रहराज चतुर्थ कवियों द्वारा "कवि बान्धव"

1. *Dr Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 284)

के विरुद से पुकारा जाता था। उसने स्वयं "हरकेलि नाटक" की रचना की थी जिसमें अर्जुन के प्रायश्चित तथा शिव से उसके युद्ध का वर्णन है। यह नाटक शिलालेखों पर अंकित अजमेर के "ढाई दिन के झौंपड़े" (तत्कालीन सरस्वती मंदिर) से प्राप्त हुआ है। डॉ० कीलहॉर्न ने हरिकेलि नाटक की प्रशंसा करते हुए कहा है कि तत्कालीन शासक साहित्य-रचना में कालिदास तथा भवभूति के समान ख्याति प्राप्त करना चाहते थे। विग्रहराज चतुर्थ का राजकवि सोमदेव "ललित विग्रहराज" नाटक का रचयिता है। यह भी हरिकेलि नाटक की भाँति अजमेर से उपलब्ध हुआ है। इस नाटक में विग्रहराज चतुर्थ तथा इन्द्रपुर की राजकुमारी देसलदेवी के प्रणय तथा विग्रहराज व गजना के हम्मीर का संघर्ष चित्रित किया गया है।

पृथ्वीराज तृतीय का मंत्री पद्मनाथ कवियों तथा विद्वानों की गोष्ठी आयोजित करता था तथा उसने बादुला-शिलालेख की रचना की थी। पृथ्वीराज तृतीय के कश्मीरी कवि जयानक ने "पृथ्वीराज विजय" काव्य लिखा तथा चंदवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। चौहानों के समय अन्य साहित्यकारों की रचनाओं में आचार्य जिनवल्लभ कृत "अष्टसप्ताटिका", जिनदत्त कृत "उपदेशरसायन", जिनपति सूरि कृत टीका "संघपट्टक", जिनपाल उपाध्याय कृत "खरतरगच्छ पट्टावली", धर्मघोष सूरि कृत "धर्मकल्पद्रुम" आदि हैं। इसके अतिरिक्त काव्य तथा इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शिलालेखों में हर्ष अभिलेख तथा बिजोलिया अभिलेख के रचयिता क्रमशः धीरनाग तथा गुणभद्र थे।

उपरोक्त साहित्यिक प्रगति के अंतर्गत संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों भाषाओं के ग्रन्थ लिखे गये। इस प्रगति का श्रेय चौहान शासकों को है जो स्वयं भी साहित्य-रचना में प्रवीण थे।

चौहानों के समय में शिक्षा केन्द्र—चौहानों के समय के उपलब्ध स्रोतों से विदित होता है कि शिक्षा व्यवस्था अच्छी थी। उस समय "विद्यामठ" नामक संस्थाओं में विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे जिन्हें भोजन, वस्त्र आदि भी निःशुल्क दिया जाता था। विग्रहराज चतुर्थ द्वारा अजमेर में निर्मित "सरस्वती मंदिर" (वर्तमान ढाई दिन का झौंपड़ा) चौहान साम्राज्य के अंतर्गत ख्याति-प्राप्त-शिक्षा केन्द्र था। अजमेर के अतिरिक्त उस समय चित्तौड़, भीनमाल तथा आबू भी प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र थे। शिक्षक तथा शिक्षार्थी का संबंध सौहार्दपूर्ण था। शिक्षा प्राप्ति के बाद ज्ञान की कठोर परीक्षा 'पंडित सभा' या गोष्ठी में ली जाती थी। उत्तीर्ण विद्वानों को "जयपत्र" दिये जाते थे।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. विग्रहराज बीसलदेव की समकालिक सत्ताओं से राजनीतिक सम्बन्धों की परीक्षा कीजिए। (1974)

   Examine the political relations of Vigrahraj Bisaldev with his contemporary powers.

2. तृतीय पृथ्वीराज चौहान की सफलताओं तथा असफलताओं का पुनरीक्षण कीजिए। (1975–1976)
   Evaluate the failures and successes of Chauhan Prithviraj III or discuss the achievements and failures of Prithviraj III.
3. चाहमान चालुक्य के संघर्ष का विवरण दीजिये और यह बताइये कि किस प्रकार इस संघर्ष से विदेशी आक्रमणकारियों को सुविधा हुई। (1976)
   Describe the Chahman-Chalukya conflict and explain how it helped the foreign invaders.
4. चाहमान साम्राज्य के प्रसार में चतुर्थ विग्रहराज के योगदान का मूल्यांकन कीजिये। (1976)
   Form an estimate of the contributions of Vigrahraja IV to the growth of the Chahman empire.
5. तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज तृतीय की पराजय के कारणों का विवेचन कीजिये।
   Discuss the causes of the defeat of Prithviraj III in the second battle of Tarain.
6. चाहमानों की उत्पत्ति सम्बन्धी कौन से मत प्रचलित हैं ? इनमें से आप किस मत से सहमत हैं ? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
   What are the prevalent theories of the origin of Chahmans ? Which theory do you agree with ? Answer with arguments.
7. अजयराज के तुर्कों से संघर्ष का विवरण दीजिये।
   Describe the conflict of Ajayraj with Turks.
8. अर्णोराज की विजयों का उल्लेख करते हुए उसकी चालुक्यों से पराजय के कारण बतलाइये।
   Describe the conquests of Arnoraj and give the reasons of his defeat by Chalukyas.
9. चौहानों की शासन-व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिये।
   Evaluate the administrative system of Chauhans.
10. चौहानों के समय की सामाजिक, साहित्यिक तथा शैक्षिक प्रगति का विवरण दीजिये।
    Give an account of the social, literary and educational progress during Chauhan regime.
11. पृथ्वीराज तृतीय की उपलब्धियों का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।
    Form a critical estimate of the achievements of Prithviraj III.
12. विग्रहराज चतुर्थ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (1978)
    Write short note on Vigrahraj IV.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. Dr. Dashrath Sharma : Early Chauhan Dynasties.
2. Dr. Ray, H. C. : The Dynastic History of Northern India Vol. I & II.
3. Dr. Dashrath Sharma : Rajasthan Through the Ages.
4. डॉ. वी. एस. भार्गव : राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण
5. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास–प्रथम भाग
6. डॉ. पाठक, वी० एन० : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास
7. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास
8. डॉ. मनराल व डॉ. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास
9. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल

6 गाहड़वाल—गोविन्दचन्द्र तथा जयचन्द्र के विशेष सन्दर्भ में

(Gahadvalas with special reference to Govind Chandra and Jaichandra)

गाहड़वालों की उत्पत्ति
(Origin of Gahadvals)

• गाहड़वालों की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं क्योंकि कन्नौज और काशी के गाहड़वाल शासकों के वंश के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। इस वंश की उत्पत्ति के विषय में निम्नांकित मत प्रचलित हैं :—

1. **पालों से उत्पत्ति**—डॉ० हार्नले[1] का मत है कि गाहड़वाल गौढ़ प्रदेश के पाल वंश की एक शाखा है। उनकी मान्यता है कि "गौढ़—पाल" ही "गाहड़वाल" कहलाये। किन्तु इतिहासकारों ने इस मत को निराधार माना है।

2. **भारों से उत्पत्ति**—श्री आर० वी० रसेल[2] ने इस मत का प्रवर्त्तन किया कि गाहड़वाल गोरखपुर से बुन्देलखण्ड तथा सागर तक के क्षेत्र के निवासी 'भारो' का एक अभिजात्य वर्ग था। उन्होंने अपने मत के समर्थन में ईलियट महोदय की इस मान्यता का उल्लेख किया है कि इस क्षेत्र में गोरखपुर, आजमगढ़, जौनपुर, मिर्जापुर तथा इलाहाबाद स्थानों पर भारों ने अनेक भव्य प्रस्तर दुर्गों, बांधों तथा भवनों का निर्माण किया। इन्हीं महान् निर्माता भारों से गाहड़वालों की उत्पत्ति हुई। इस मत की पुष्टि अन्य स्रोतों से न होने के कारण इसे विद्वानों ने अमान्य किया है।

3. **राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति**—राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति के मत के प्रवर्त्तक पं० राम करन आसोपा[3] थे। इस मत के अनुसार गाहड़वालवंशी शासक चन्द्रदेव तथा चन्द्र राष्ट्रकूट एक ही व्यक्ति थे जिसका उल्लेख लखनपाल के बदायूं अभिलेख में किया गया है जिसमें किसी तिथि का अंकन नहीं है। इस मत का समर्थन श्री वी० एन०

1. Indian Antiquary, XIV (p. 98-101)
2. *R. V. Russel* : Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Vol. IV (p. 441-45)
3. पं० रामकरन आसोपा : मारवाड़ का मूल इतिहास (पृ. 32–39)

रेउ[1] तथा श्री जगदीश सिंह गहलोत[2] ने किया है। इस मत की पुष्टि में निम्नांकित तर्क दिये गये हैं :—

1. उ० प्र० के मिर्जापुर जिले के बीजापुर में माण्डा के गाहड़वालवंशी राजा स्वयं को राठौड़ वंश का मानते हैं। ये अपनी उत्पत्ति जयचन्द्र के भाई मानिकचन्द्र से बतलाते हैं।

2. कन्नौज का शासक जयचन्द्र राठौड़वंशी था।

3. चन्दवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' में जयचन्द्र का विरुद 'राठौड़' तथा 'कामधज' बतलाया है जो समानार्थक हैं।

4. लखनपाल के बदायूँ अभिलेख तथा चन्द्रावती के ताम्रपत्र में "चन्द्र" को पांचालदेश का प्रथम विजेता शासक बतलाया है।

उपरोक्त मत का खण्डन करते हुए विद्वानों ने निम्नांकित तर्क दिये हैं :—

1. माण्डा बीजापुर के राठौड़ राजा की उक्त मान्यता परवर्ती परम्परा पर आधारित है। इस मत की पुष्टि किसी पूर्ववर्ती साक्ष्यों से नहीं होती।

2. "पृथ्वीराज रासो" का वर्तमान स्वरूप सोलहवीं शताब्दी का है। अतः इसके आधार पर गाहड़वाल जयचन्द्र को राठौड़ नहीं माना जा सकता है।

3. गाहड़वालों की गणना राजपूतों के 36 राजवंशों में नहीं की जाती। "राजतरंगिणी" तथा "कुमारपाल चरित" में उसका कोई उल्लेख नहीं है।

4. श्री आर० एस० त्रिपाठी[3] ने पं० रामकरन आसोपा के मत का खण्डन करते हुए कहा है कि गाहड़वालों के किसी भी अभिलेख में उन्हें राठौड़ या राष्ट्रकूट नहीं कहा गया है।

5. राठौड़ों का गोत्र गौतम है जब कि गाहड़वालों का गोत्र कश्यप है। भिन्न गोत्री होने के कारण ही इनमें परस्पर विवाह हुए हैं। गाहड़वाल शासक गोविन्द चन्द्र ने राष्ट्रकूटवंशी राजकुमारी से विवाह किया था। अतः राठौड़ (राष्ट्रकूट) तथा गाहड़वाल वंश एक नहीं थे।

6. मारवाड़ के राठौड़ों का आदि पुरुष राव सीहा की मृत्यु 1273 ई० में तथा चन्द्र गाहड़वाल की मृत्यु 1193 ई० में हुई। इन तिथियों में 80 वर्ष का अन्तर इस बात का सूचक नहीं कि 'चंद्र' राठौड़ तथा गाहड़वाल वंशों के आदि पुरुष थे।

7. हथूण्डी शिलालेख (997 ई०) से स्पष्ट होता है कि मारवाड़ में राठौड़ों (राष्ट्रकूटों) की सत्ता बहुत पहले से स्थापित हो चुकी थी।

8. चन्दवरदाई द्वारा गाहड़वालों की गणना 36 राजवंशों में अपने ग्रन्थ

1. *B. N. Reu* : History of Rashtrakutas (p. 13)
2. जगदीशसिंह गहलोत : मारवाड़ का इतिहास
3. *R. S. Tripathi* : History of Kanauj (p. 299–300)

"पृथ्वीराज रासो" में न कर "अल्हा प्रस्ताव" में केवल गाहड़वालों का पृथक उल्लेख किया है।

9. गाहड़वालों के अधिकार, क्षेत्र के समीपवर्ती स्थानों पर ग्यारहवीं शताब्दी में राष्ट्रकूटों का अस्तित्व होना दोनों को एक ही वंश का सिद्ध नहीं करता।

10. श्री त्रिपाठी ने कालक्रम की दृष्टि से भी राष्ट्रकूट तथा गाहड़वालों का एकवंशी होना भ्रामक माना है। उनका कथन है कि चंद्र राष्ट्रकूट शासक की पाँचवी पीढ़ी में मदनपाल 12वीं शताब्दी में हुआ। अत: चंद्र का समय 11वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था जो चंद्र गाहड़वाल शासक से लगभग अर्द्ध शताब्दी पूर्व का था।

डॉ० रोमा नियोगी[1] ने भी राष्ट्रकूटों के गाहड़वालों की उत्पत्ति सम्बन्धी मत के खण्डन में निम्नांकित तर्क दिये हैं :—

11. राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) की भाँति गाहड़वाल सूर्यवंशी क्षत्रिय नहीं थे। गाहड़वालों के सबसे प्राचीन शिलालेख में अंकित श्लोक—"आसीदशीतद्युतिवंशजात क्षमापालमालासु दिवं गलासु"—में "जात" के पश्चात् विसर्ग न होने से यह अर्थ स्पष्ट होता है कि गाहड़वाल सूर्यवंश के पतन के पश्चात् सत्ता में आये। इसके अतिरिक्त गोविन्द चंद्र के दान-पत्रों में स्पष्ट अंकित है कि सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रियों के पतन के बाद गाहड़वाल सत्ता में आये। चंद्रदेव के चंद्रावती दान-पत्र में भी अंकित है कि प्रतिहार शासक देवपाल के उत्तराधिकारियों के विनाश के पश्चात् गाहड़वाल क्षत्रियों ने कान्यकुब्ज पर अधिकार किया।

12. टॉड महोदय ने 36 राजवंशों की चार वंशावलियों में गाहड़वालों को कोई स्थान नहीं दिया है। केवल पाँचवीं वंशावली में (जो खींची भाट मोघजी द्वारा प्रस्तुत की गई) गाहड़वालों को राठौड़ों की एक शाखा माना है। टॉड ने छठी वंशावली में गाहड़वालों को पृथक राजपूत वंश बतलाते हुए कहा है कि गाहड़वालों का राज्य काशी में था तथा वे राजस्थान के अन्य राजपूतों से अनभिज्ञ थे।

13. गाहड़वाल शासक गोविन्द चंद्र की रानी कुमारदेवी के तिथिरहित सारनाथ शिलालेख में दोनों वंशों का स्पष्ट उल्लेख पृथक किया गया है। कुमारदेवी की माता राष्ट्रकूटवंशी तथा उसका पति गोविन्दचंद्र गाहड़वालवंशी कहा गया है।

निष्कर्ष—उपरोक्त मतों तथा उनकी समीक्षा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गाहड़वाल सूर्य तथा चंद्रवंशी क्षत्रिय नहीं थे तथा राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश से उनकी उत्पत्ति नहीं हुई थी किन्तु वे क्षत्रिय थे। चंद्रावती अभिलेख तथा सारनाथ अभिलेख में गाहड़वालों को स्पष्ट क्षत्रियवंशी कहा गया है। श्री जैनारायन आसोपा[2]

1. *Dr. Roma Niyogi :* History of Gahadval Dynasty (p. 31–33)
2. *Jai Narain Asopa :* Origin of Rajputs (p. 183–84)

ने राष्ट्रकूटवंशी उद्दलदेवी के एक शिलालेख (1237 ई०) का उल्लेख करते हुए कहा है कि उद्दलदेवी का विवाह गाहड़वालवंशी महामण्डदेव से हुआ था अतः गाहड़वाल राष्ट्रकूटों तथा राठौड़ों से भिन्न एक पृथक क्षत्रिय वंश के थे ।

"गाहड़वाल" का अर्थ
(Meaning of Gahadval)

"गाहड़वाल" शब्द के अर्थ विभिन्न विद्वानों ने भिन्न रूप से किये हैं जो निम्नांकित हैं :—

1. उ० प्र० के मिर्जापुर जिले के गजेटियर में यह उल्लेख है कि कानतित का राजा स्वयं को गाहड़वालवंशी बतलाता था । इस राजा की मान्यता थी कि "गाहड़वाल" शब्द "ग्रहवार" का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है "पापग्रह का निवारण करने वाला" । यह उपाधि ययाति के पुत्र देवदास ने पापग्रह शनि पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में प्राप्त की ।

श्री आसोपा ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि "ग्रह" का अपभ्रंश "गिरह" होता है, न कि "गाहड़" जो कि गाहड़वालों के अभिलेखों में अंकित है ।

2. श्री विलियम क्रुक[1] का सुझाव है कि "गाहड़वाल" शब्द "गह्वर" या "गिरिगह्वर" शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ उन लोगों से है जो कि पहाड़ तथा गुफाओं के निवासी थे । क्रुक का मत है कि विष्णु पुराण में वर्णित "गह्वर-वासियों" से गाहड़वालों की उत्पत्ति हुई । श्री आसोपा ने इस मत का भी खण्डन करते हुए कहा है कि गह्वर जातिवाचक संज्ञा है जो किसी एक विशेष वर्ग का सूचक नहीं है ।

3. श्री वी० एन रेउ "गाहड़वाल" शब्द को एक विशेषण मानते हुए इसका अर्थ "बलवान" मानते हैं । किन्तु यह निराधार कल्पना मात्र है ।

4. श्री सी० वी० वैद्य[2] गाहवाल शब्द को दक्षिण भारत के गाहड़ नामक स्थान से संबद्ध करते हैं । श्री आर० सी० मजूमदार का मत है कि बंगाल के सेन तथा मिथिला के नान्यदेव की भाँति गाहड़वाल भी कर्नाटक के मूल निवासी थे क्योंकि एक कन्नड़ अभिलेख (994 शक सं०) में "गवरमप" स्थान का उल्लेख है जिससे "गाहड़वाल" शब्द बना । डॉ० आसोपा ने इस मत का खण्डन करते हुए इसका आधार "गाहड़वालों की राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति" मत बतलाया है जो भ्रामक है ।

5. **भौगोलिक उत्पत्ति**—उपरोक्त सभी मतों को निराधार सिद्ध करते हुए

1. *W. Crooke* : Tribes and Castes of North-West Province and Oudh, Vol. II (p. 371–73)
2. *C. V. Vaidya* : History of Medieval Hindu India, Vol. III (p. 217)

कुछ विद्वानों ने "गाहड़वाल" शब्द की भौगोलिक उत्पत्ति मानी है। डॉ० सत्य प्रकाश ने कहा है कि—"भौगोलिक इकाई के नाम से उत्प्रेरित गाहड़वाल शब्द की उत्पत्ति के सिद्धान्त को गाहड़वाल शिलालेखों से भी बल मिलता है। महाराजपुत्र गोविन्द चन्द्र के चार दान-पत्रों को छोड़कर अन्य किसी भी शिलालेख में गाहड़वाल नाम नहीं मिलता। ऐसा क्यों है ? इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि गाहड़वालों के उक्त चार शिलालेखों को छोड़ कर प्राय: सभी शिलालेख बनारस और उसके आस-पास के क्षेत्रों से प्राप्त किये गये तथा उक्त चार दान-पत्रों में प्रथम बार पंचाल देश तथा सारनाथ से इनका श्री गणेश हुआ। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवत: गाहड़वाल शब्द की उत्पत्ति भौगोलिक तो है, परन्तु दक्षिण की अपेक्षा उत्तर के पंचाल देश के अधिक निकट है।[1]

निष्कर्ष—श्री आसोपा[2] की भी यही मान्यता है कि अन्य राजपूत वंशों तथा अनेक अन्य जातियों की भाँति गाहड़वाल भी अपने मूल स्थान के नाम पर पुकारे गये। प्रारम्भ में गाहड़वालों ने वाराणसी, अयोध्या, इन्द्रप्रस्थ तथा गाधिपुर स्थानों पर अधिकार किया था। श्री आसोपा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि गाहड़वालों का मूल स्थान गाधिपुर था जहाँ से वे अन्यत्र गये तथा उसका नाम अपने साथ सम्बद्ध करने लगे। "गाधिपुर" शब्द का रूपान्तर प्राकृत में "गाहि-उर" तथा अपभ्रंश में "गाहड़" होता है। अत: "गाहड़वाल" शब्द की उनके मूल स्थान गाधिपुर से उत्पत्ति हुई। जिस प्रकार ओसियाँ से ओसवाल की उत्पत्ति हुई है। अत: श्री आसोपा का मत ही अधिक समीचीन है।

प्रारम्भिक गाहड़वाल शासक
(Early Gahadval Rulers)

डॉ० डी० सी० गाँगुली ने गाहड़वाल नरेश चन्द्रदेव का समीकरण चाँदराय से किया है।[3] जयपाल की पराजय के बाद भारतीय राजाओं ने मुस्लिम विजेता महमूद गजनवी को इतने हाथी उपहार में दिये कि कान्यकुब्ज में एक गजशाला स्थापित हो गई। महमूद गजनवी ने कान्यकुब्ज की इस गजशाला का प्रभारी चाँदराय को बनाया। विजेताओं के भारत से प्रस्थान करने के बाद स्थिति का लाभ उठाते हुए चाँदराय ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) पर अधिकार कर लिया किन्तु गजनी के सुल्तान को वह वायदे के अनुसार कर देता रहा। चाँदराय (चंद्रदेव) के उत्तराधिकारियों ने जब यह कर देना बन्द कर दिया तो 12वीं शताब्दी में गाहड़वाल राज्य पर मुसलमानों ने अनेक बार आक्रमण किये।

1. डा. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (p. 100)
2. पूर्वोक्त (पृ० 185)
3. आई. एच. क्यू. IX (p. 951)

चंद्रदेव और चाँदराय के समीकरण को निम्नांकित तर्कों के आधार पर निराधार माना गया है—

1. मुस्लिम साक्ष्यों—"दीवन-ए-हबीब अस-सियर" तथा "जमि-उत-तवारीख" में इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि सुल्तान ने चाँदराय को कर देने के लिए बाध्य किया था।

2. गाहड़वाल शासकों के अभिलेखों में "तुरुष्क दण्ड" का उल्लेख अवश्य किया गया है किन्तु यह दण्ड गजनी के सुल्तान को दिया जाता है, यह संदिग्ध है।

3. किसी भी साक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं होता कि मुसलमानों ने गाहड़वालों पर आक्रमण इसलिए किये कि उन्होंने कर देना बन्द कर दिया था।

अतः चंद्रदेव और चाँदराय का समीकरण करना निराधार है। श्री लक्ष्मीकांत मालवीय[1] का भी यही मत है—"दीवान ने केवल इतना ही लिखा है कि गजशाला-निरीक्षक के रूप में चाँदराय की नियुक्ति की गई। उसके बाद के जीवन, जैसे कन्नौज के शासक होने, के सम्बन्ध में वह बिलकुल मौन है। इससे प्रतीत होता है कि उसने इससे अधिक ऊँचा या अधिक महत्वपूर्ण पद नहीं प्राप्त किया। उसका तादात्म्य चंद्रदेव गाहड़वाल से करना चाहिए जिसका पिता 'नृप' अर्थात् सामन्त राजा था, प्रत्यक्षतः जिसके वंश की वाराणसी-अयोध्या प्रदेश में कुछ राजनीतिक साख थी।"

गाहड़वाल वंश के प्रारम्भिक शासकों का विवरण निम्नांकित है—

(1) यशोविग्रह (11वीं शताब्दी उत्तरार्ध)

गाहड़वाल वंश के राजाओं की सूची में प्रथम नाम यशोविग्रह का मिलता है। जिस समय गाहड़वाल वंश की स्थापना हुई वह उत्तरी भारत का संक्रांति काल था। गुर्जर-प्रतिहारों का पतन हो रहा था तथा भारत के मध्य तथा दक्षिण की शक्तियों के मध्य पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। ऐसी राजनीतिक परिस्थिति में किसी वीर महत्वाकांक्षी व्यक्ति के लिए अपनी शक्ति का परिचय दे सत्ता हथिया लेने का उपयुक्त अवसर था। अतः यशोविग्रह ने राजा देवपाल के वंशजों के नष्ट हो जाने के बाद कान्यकुब्ज (कन्नौज) पर अधिकार कर लिया। चंद्रावती दान-पत्रों में यशोविग्रह को पृथ्वी का विजेता स्वीकार किया गया है तथा उसके द्वारा पृथ्वी को राजदण्ड की प्रणयिनी बनाया गया। "दण्ड" तथा "प्रणयिनी" शब्दों के प्रयोग से विदित होता है कि यशोविग्रह ने कुछ भूमि पर विजय प्राप्त की और एक छोटे प्रदेश पर राज्य किया। उसकी कोई उपाधि न होना प्रकट करता है कि वह एक सामन्त राजा था। सम्भवतः वह कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण (1042–1070 ई०) का सामन्त था।

1. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ० 128)

(2) **महीचन्द्र**

यशोविग्रह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महीचंद्र (महीतल या महीयल) शासक बना। गाहड़वाल अभिलेखों में इसकी काफी प्रशंसा की गई है। उसकी उपाधि "नृप" अंकित है। यह उपाधि इस बात की सूचक है कि वह कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण या उसके पुत्र यशकर्ण का सामन्त था। रहन दानपत्र से प्रकट होता है कि उसने शत्रुओं को पराजित किया।

(3) **चन्द्रदेव** (1089–1104 ई०)

महीचंद्र के पश्चात् उसका पुत्र चंद्रदेव राजा बना। चन्द्रदेव गाहड़वालों की स्वतन्त्र सत्ता का वास्तविक संस्थापक हुआ। उसके चार अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर उसका राज्यकाल 1089 से 1104 ई० तक निश्चित किया जाता है। इन लेखों में यद्यपि उसके दान का उल्लेख है किन्तु उनके प्राप्ति-स्थलों के आधार पर उसके अधिकार-क्षेत्र की परिधि में काशी व अयोध्या सहित गंगा और सरयू (घाघरा) नदियों के तटवर्ती प्रदेश थे। कन्नौज उसकी राजधानी थी। अभिलेखों में उसका विरुद "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर" उसकी स्वतन्त्र सत्ता का द्योतक है। उसके पुत्र मदनपाल तथा पौत्र गोविन्दचन्द्र के बसही अभिलेख (1104 ई०) में अंकित हैं कि—"भोजराज के दिवंगत हो जाने एवं कर्ण की कीर्ति मात्र शेष रह जाने पर जब पृथ्वी अत्यन्त विपत्ति में पड़ गई तो उसने चंद्रदेव नामक राजा को विश्वासपूर्वक अपने रक्षक के रूप में अपनाया।"

विजयें—इस लेख से विदित होता है कि चन्द्रदेव कर्ण की मृत्यु (1073 ई) के बाद कन्नौज पर अधिकार कर स्वतन्त्र शासक बना। लेख में वर्णित पृथ्वी की विपत्ति का अर्थ है कि उस समय उत्तरी भारत पर तुर्कों के निरन्तर आक्रमण हो रहे थे। चन्द्रदेव ने काशी (वाराणसी), कान्यकुब्ज (कन्नौज), उत्तर कौशल (अयोध्या) और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) पर विजय प्राप्त कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। चन्द्रावती अभिलेख से विदित होता है कि उसने कलचुरि नरेशों की उपाधियाँ "नरपति" और "गजपति" धारण कीं। यह तथ्य इस बात का सूचक है कि उसने कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण के पुत्र यशकर्ण को पराजित कर विजित प्रदेशों पर अधिकार किया। इसके अतिरिक्त उसने "गिरिपति" व "त्रिशंकुपति" विरुद भी धारण किये।

चन्द्रदेव ने कन्नौज सम्भवतः वदायूँ अभिलेख में वर्णित वहाँ के शासक "गाधिपुराधिप" गोपाल को पराजित कर जीता। गोविन्द चन्द्र की रानी कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख से विदित होता है कि चन्द्रदेव से पराजित राजाओं की स्त्रियों के आँसुओं से यमुना नदी का जल और भी अधिक काला हो गया।" दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) के तोमरवंशी शासकों ने गाहड़वालों की अधीनता स्वीकार की थी। पांचाल प्रदेश (पश्चिमी उत्तर प्रदेश) चन्द्रदेव के अधिकार-क्षेत्र में था।

डॉ० रोमा नियोगी[1] के अनुसार चन्द्रदेव ने अपना सैनिक अभियान पूर्व में भी मगध पर अधिकार करने के लिए किया जहाँ पाल नरेश रामपाल का सामन्त भीमयशस् राज्य करता था। सन्ध्याकरनन्दी रचित "राम चरित" में "कान्यकुब्ज राज वाजीनी गण्ठन भुजंग:" से यह तथ्य स्पष्ट होता है। किन्तु साक्ष्यों के अभाव में पूर्वी प्रदेशों पर चन्द्रदेव की विजय संदिग्ध है।

मूल्यांकन—चन्द्रदेव को गाहड़वाल वंश की स्वतन्त्र स्थापना का श्रेय जाता है। वह वीर, साहसी तथा महत्वाकांक्षी शासक था जिसने काफी विस्तृत क्षेत्र को अपने अधीन किया। चन्द्रदेव को महादानी राजा होने का गौरव भी प्राप्त था। उसने कई बार "तुला पुरुष-महादान" किया। अभिलेखों के आधार पर उसने "देव प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की और वेद ध्वनि की रक्षा की जब वह समाप्त-प्राय थी। संकट से पृथ्वी का उद्धार करने के लिए और धर्म-मार्ग को प्रतिष्ठित करने के लिए ईश्वर ने उसको उत्पन्न किया।"

(4) मदनपाल (1104–1114 ई०)

राज्यारोहण—चन्द्रदेव का अन्तिम उपलब्ध शिलालेख 1100 ई० का है और उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी का प्रथम ज्ञात उत्कीर्ण लेख 1104 ई० का है। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रदेव की मृत्यु 1100 और 1104 ई० के मध्य हुई तथा मदनपाल का राज्यारोहण 1104 ई० तक हो चुका था।

चन्द्रदेव के शासनकाल के निम्नांकित 5 अभिलेख उपलब्ध होते हैं—

(1) बसही दानपत्र (1104 ई०),
(2) रहन दानपत्र (1109 ई०),
(3) बाहुवरा शिलालेख (1107 ई०)
(4) कमौली दानपत्र (1105 ई०)
(5) वाडेर शिलालेख (1107 ई०)

इनमें से प्रथम 4 अभिलेखों का सम्बन्ध तो मदनपाल से है किन्तु उन्हें उत्कीर्ण प्रकाशित कराने का कार्य मदनपाल के महाराज पुत्र गोविन्दचन्द्र ने राज-महिषी राल्हादेवी, पुरोहित जागुक, महत्तक बाल्हन तथा गांगेय एवं प्रतिहार गौतम की अनुमति से किया। केवल पाँचवाँ अभिलेख ही मदनपाल द्वारा उत्कीर्ण कराया गया है। मदनपाल के शासक होते हुए प्रथम चार अभिलेखों को गोविन्द चन्द्र ने दूसरों की अनुमति से उत्कीर्ण क्यों कराया? इस समस्या का समाधान डॉ० रोमा नियोगी[2] ने इस प्रकार किया है कि मदनपाल शारीरिक दुर्बलता एवं असाध्य व्याधि के कारण सक्रिय रूप से प्रशासन में भाग लेने में असमर्थ रहा होगा, अतः वह अपने राजकुमार गोविन्दचन्द्र तथा अन्य उच्चाधिकारियों के माध्यम से शासन कर रहा

1. *Dr. Roma Niyogi* : History of Gahadwal Dynasty (p. 50)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 55)

था। वस्तुत: मदनपाल ही शासक था। यह तथ्य पाँचवे बाडेर शिलालेख से प्रकट होता है जिसमें मदनपाल को 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्रीमान् मदनपालदेव" कहा गया है। फिर भी 1104 ई०, 1105 ई० और 1109 ई० में गोविन्दचन्द्र द्वारा दान देने का क्या अर्थ है? सम्भवत: मदनपाल ने अपने पुत्र को प्रशासन में सक्रिय भाग लेने की अनुमति दे दी थी तथा उसे अपने साथ युद्धों में प्रमुख भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया था। यही कारण है कि महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र की इन अभिलेखों में काफी प्रशंसा की गई है।

मुसलमानों का आक्रमण—रहन दानपत्र (1109 ई०) से विदित होता है कि गोविन्दचन्द्र ने अपने असाधारण युद्ध द्वारा हम्मीर को अपना बैर छोड़ने को विवश किया। बसही दानपत्र (1104 ई०) में अंकित है कि चन्द्रदेव ने कान्यकुब्ज को अपनी राजधानी बनाया। इन दोनों अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि दिसम्बर 1104 ई० और अक्टूबर 1105 ई० के मध्य कान्यकुब्ज (कन्नौज) मदनपाल के हाथ से निकल गया था। जिस आक्रमणकारी ने कान्यकुब्ज पर अधिकार किया और जिसे 'हम्मीर' शब्द की संज्ञा दी गई है, वह मुस्लिम साक्ष्यों के आधार पर समकालीन गजनी-लाहौर के यमीनी तुर्क सुल्तान मसूद तृतीय इब्न इब्राहीम (1099–1115 ई.) का एक सेनापति हाजी तुगतिगिन था।

"तबकाते–नासिरी"[1] के अनुसार सुल्तान तृतीय मसूद के समय उसका सेनापति हाजी तुगतिगिन गंगा नदी को पार कर उन स्थानों तक भारत में प्रवेश कर गया जहाँ सुल्तान महमूद गजनवी को छोड़कर अन्य कोई सेना लेकर नहीं पहुँच सका था। समकालीन कवि सलमान ने अपने ग्रन्थ "दीवाने सल्मां" में लिखा है कि— "इस्लाम से प्रेरित मसूद ने विशाल निर्भीक सेना खड़ी की और धर्मयुद्ध करने के लिए हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की तथा हिन्द के राजा मल्ही को बन्दी किया। हिन्द की राजधानी कन्नौज थी जिसको विधर्मी अपना आकर्षण-केन्द्र मानते थे''''विधर्मियों का यह प्रतिष्ठा-स्थान था। हिन्द की धनराशि इसमें एकत्र थी, जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्र में गिरती हैं। मल्ही के पास योद्धा, धन, गज और शस्त्र थे। सोचो कि इसके अतिरिक्त उसके पास और क्या था।"[2] इसमें वर्णित मल्ही का समीकरण विद्वानों ने मदनपाल से किया है। डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[3] का कथन है कि सल्मां ने मल्ही को हिन्द का राजा और कन्नौज को हिन्द की राजधानी कहा है, अतः मल्ही कन्नौज का गाहड़वाल राजा मदनपाल ही जान पड़ता है। बसही अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि 1104 ई० में मदनपाल ही कन्नौज पर शासन करता था। उसके तुर्क आक्रमणकारियों द्वारा बन्दी बनाये जाने पर महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र

1. रैवर्टी का अनुवाद (तबकाते–नासिरी) पृ. 107
2. इलियट; एच. आई. IV (p. 526–27)
3. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (p. 351–52)

को कठोर संघर्ष करना पड़ा जैसाकि रहन अभिलेख (1109 ई०) से पता चलता है कि—"बार-बार प्रदर्शित अपने रणकौशल से उसने हम्मीर को शत्रुता त्याग देने को विवश किया था।" इस अभिलेख में गोविन्दचन्द्र के बार-बार (मुहर्मुहुः) वीरता प्रदर्शित करने का जो उल्लेख है उससे प्रतीत होता है कि तुर्क आक्रमणकारियों के साथ उसका संघर्ष काफी दीर्घ समय तक चला।

मदनपाल के महासन्धिविग्रहिक लक्ष्मीधर रचित ग्रन्थ "कृत्यकल्पतरु" में उल्लेख है कि—"गोविन्दचन्द्र ने हम्मीर वीर को एक असमान युद्ध में मार डाला।" किन्तु डॉ० पाठक का मत है कि रहन अभिलेख तथा कृत्यकल्पतरु की ये घटनाएँ दो अवसरों की प्रतीत होती हैं जिनके समय को निश्चित करना कठिन है। डॉ. रोमा नियोगी का भी यही मत है कि ये दोनों घटनाएँ भिन्न समय की हैं।

अतः डॉ० सत्य प्रकाश[1] के अनुसार यह निष्कर्ष समीचीन जान पड़ता है कि—"कान्यकुब्ज पर मुस्लिम आक्रमण 1104 ई० में हुआ और मदनपाल ने असंख्य धन देकर आक्रमण से छुटकारा पाया। महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र अपने पिता के इस अपमान को सहन न कर सका और उसने 1105 ई० में विशाल सेना लेकर अभियान किया तथा विष्णुपुर में जो कान्यकुब्ज के क्षेत्र में था, एक ग्रामदान दिया। रहन दानपत्र से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है जिसमें यह स्वीकार किया गया है कि 1109 ई० तक गोविन्दचन्द्र ने अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया। वास्तव में बसही दानपत्र (1104 ई०) की तरह ही रहन दानपत्र (1109 ई०) में भी यमुना-तट पर एक गाँव देने की बात कही गई है जिससे यह प्रकट होता है कि गाहड़वाल सत्ता के अन्तर्गत सम्भवतः कन्नौज नगर ही नहीं उसके आस-पास का सारा क्षेत्र आ गया था।"

पालों से संघर्ष—जिस समय गाहड़वाल शासक मुस्लिम आक्रमणकारियों से संघर्परत थे उस समय सौभाग्य से चन्देल, कलचुरि और पाल शासक अपनी आंतरिक समस्याओं के समाधान में व्यस्त रहे। कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लेने के बाद महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र द्वारा गौड़ सेना के आक्रमण को विफल करने का उल्लेख रहन अभिलेख तथा "कृत्यकल्पतरु" दोनों में मिलता है। इनके अनुसार गोविन्दचंद्र ने "पाल शासक रामपाल के हाथियों की पाँतों को वीरतापूर्वक चीर डाला।" वस्तुतः यह युद्ध आक्रामक होने की अपेक्षा सुरक्षात्मक था।

गौड़ राजा रामपाल के जीवनी-लेखक सान्ध्यकरनन्दी रचित ग्रन्थ "रामचरित" के अनुसार रामपाल कौशल, कलिंग और कामरूप के अभियान के समय कान्यकुब्ज की ओर उन्मुख हुआ। सम्भवतः कान्यकुब्ज से अपनी पुरानी शत्रुता को स्मरण कर रामपाल ने गाहड़वालों पर आक्रमण करने के लिए एक सेना भेजी।

1. डा. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ 109)

इसी आक्रमण को विफल करने का उल्लेख रहन अभिलेख तथा "कृत्यकल्पतरु" में किया गया है। "कृत्यकल्पतरु" में लक्ष्मीधर ने महाराजकुमार गोविन्दचन्द्र की वीरता एवं साहस की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—"जिन हाथियों की गर्जना से पृथ्वीपति स्तंभित होते थे उन गौड़ हाथियों को गोविन्दचन्द्र ने क्रीड़ा मात्र से शंकित किया।" डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[1] ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि पालों से इस संघर्ष के फलस्वरूप रामपाल के मामा मथनदेव की पौत्री कुमारदेवी से महाराजकुमार गोविन्दचन्द्र का विवाह हुआ।

मूल्यांकन—मदनपाल यद्यपि स्वयं रुग्ण एवं अशक्त होने के कारण प्रशासन में सक्रिय भाग न ले सका किन्तु उसने अपने युवराज गोविन्दचन्द्र को प्रशासन एवं राज्य की प्रतिरक्षा में विधायक भूमिका निभाने में जिस दूरदर्शिता का परिचय दिया, वह सराहनीय है। यवनों के विरुद्ध जब वह पराजित हो बन्दी हुआ तो गोविन्दचन्द्र ने ही इस पराजय का बदला लेकर यवनों को सन्धि करने पर विवश किया। पालों के आक्रमण को विफल करने में भी गोविन्दचन्द्र ने अपने शौर्य का प्रदर्शन किया। मदनपाल ने अपने युवराज की सहायता से उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य सीमा को अक्षुण्ण बनाये रखा।

गोविन्द चन्द्र (1114–1154 ई०)
(Govind Chandra)

राज्यारोहण

मदनपाल की मृत्यु के पश्चात् उसकी रानी राल्हादेवी से उत्पन्न पुत्र गोविन्द चन्द्र गाहड़वाल राज्य का अधिपति बना। स्वतंत्र शासक के रूप में गोविन्दचन्द्र का कमौली से प्राप्त होने वाला प्रथम अभिलेख 1114 ई० का उपलब्ध होता है, अतः यही तिथि गोविन्दचन्द्र के राज्यारोहण की मानी जा सकती है। गोविन्दचन्द्र महाराजपुत्र (युवराज) के रूप में अपने पिता के समय भी प्रशासन के समस्त कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाता था। अभिलेखों में उसके लिए "समस्तराजप्रक्रियोपेत" का उल्लेख इसीलिए किया गया है। इसके अतिरिक्त युवराज के रूप में ही उसने अनेक रक्षात्मक युद्धों से गाहड़वाल राज्य की रक्षा कर उसकी प्रतिष्ठा स्थापित की। पश्चिमोत्तर दिशा से यमीनों और पूर्व की ओर से पालों के आक्रमणों का जिस वीरता, साहस तथा शौर्य से उसने सामना किया, इसका उल्लेख पूर्व में विस्तार से किया जा चुका है।

गाहड़वाल वंश का वह सबसे प्रतापी शासक सिद्ध हुआ। युवराजकाल में प्राप्त अनुभवों के आधार पर उसने अपने राज्य की सुरक्षा का उत्तम प्रबन्ध किया, उत्तर, पूर्व व दक्षिण दिशा में समीपवर्ती प्रदेशों पर अधिकार कर साम्राज्य-विस्तार किया, तत्कालीन उत्तरी व दक्षिणी भारत के सभी प्रमुख शासकों से उसने कूटनीतिक

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 135)

सम्बन्ध स्थापित किये, प्रशासन को सुसंगठित किया तथा धार्मिक एवं साहित्यक प्रगति की। उसकी उपलब्धियों के आधार पर वह उत्तरी भारत का सर्वप्रमुख सम्राट बन गया।

सैनिक-नीति

तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों में राज्य की सुरक्षा एवं राज्य-विस्तार की दृष्टि से गोविन्दचन्द्र ने एक सुविचारित एवं सुदृढ़ सैनिक-नीति निर्धारित की जो अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हुई। उसकी सैन्य-नीति के दो पक्ष थे—(1) प्रथम पक्ष सुरक्षात्मक था जो उसने पश्चिमोत्तर दिशा से होने वाले तुर्क आक्रान्ताओं के विरुद्ध अपनाया। डॉ० रोमा नियोगी[1] के अनुसार उसने अपने माण्डलिक सामन्तों—दिल्ली के तोमर, बदायूँ का राष्ट्रकूट शासक तथा कान्यकुब्ज में गाधिपुर-अधिपति गोपाल का वंश की सहायता से उसने राज्य की सुदृढ़ प्रतिरक्षा-व्यवस्था की। (2) दूसरा पक्ष आक्रामक नीति अपनाकर पूर्व, दक्षिण और उत्तर की दिशाओं में सैनिक अभियान करना तथा साम्राज्य-विस्तार करना था।

उसकी यह सैन्य-नीति राज्य-विस्तार एवं प्रतिरक्षा की दृष्टि से सफल रही। उसकी प्रतिरक्षात्मक नीति की प्रशंसा उसकी रानी कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख में अंकित है जिसमें कहा गया है कि—"दुष्ट तुरुष्क वीर से वाराणसी की रक्षा करने के लिये हर (शंकर) द्वारा नियुक्त हरि (विष्णु) का वह मानो अवतार था और वह अकेला ही व्यक्ति था जो उस कार्य को पूरा कर सकता था।"

गोविन्दचंद्र की सैनिक उपलब्धियाँ (विजयें)

गोविन्दचंद्र अत्यन्त वीर, साहसी तथा महत्वाकाँक्षी शासक था। अतः राज्यारूढ़ होते ही उसने अपने साम्राज्य-निर्माण हेतु पूर्व, उत्तर तथा दक्षिण दिशा में स्थित प्रदेशों पर सैनिक अभियान किए जो उसकी आक्रामक नीति के परिचायक थे। उसकी सैनिक उपलब्धियों का विवरण निम्नांकित है—

1. **सरयूपार की विजय**—गोविन्दचंद्र को पैतृक रूप में प्राप्त राज्य की सीमा वाराणसी (काशी) से कुछ उत्तर में, अयोध्या तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के उन क्षेत्रों तक सीमित था जो घाघरा (सरयू) नदी के दक्षिणी तट पर स्थित थे। अतः सर्वप्रथम उसने सरयू नदी के पार के प्रदेशों पर अधिकार करने हेतु अभियान किया। इसका प्रमाण पाली अभिलेख (1114 ई०) से मिलता है जिसमें उसे "नवराज्यगज" पर अधिकार कर लेने का श्रेय दिया गया है। इस अभिलेख के प्राप्ति स्थान तथा उसमें वर्णित स्थान पाली एवं ओग्वाल का समीकरण गोरखपुर जिले में घाघरा नदी के तट पर स्थित पालई तथा ऊनाडल नामक स्थानों से किया जाता है। इस अभिलेख में "सरवार" शब्द भी "सरयूपार" का रूपांतर प्रतीत होता है।[2] इस तथ्य की पुष्टि

1. *Dr. Roma Niyogi* : History of Gahadwal Dynasty.
2. पूर्वनिर्दिष्ट क्रमशः पृ० 354 तथा पृ० 111-112.

कीर्तिपाल के ताम्रपत्र (1111 ई०) से भी होती है जिसमें कीर्तिपाल का अधिकार क्षेत्र दर्द-गण्डकी प्रदेश था जो घाघरा और गण्डक नदियों के मध्य था। अतः इन साक्ष्यों के आधार पर डॉ० पाठक तथा डॉ० सत्यप्रकाश का मत है कि यह नवविजित प्रदेश जिसे पाली अभिलेख में "नवराज्यगज" के नाम से अभिहित किया गया है उसका समीकरण सरयूपार के प्रदेश से किया जाना समीचीन है। यह विजय गोविन्दचंद्र ने 1111 ई० तथा 1114 ई० के मध्य या तो युवराज के रूप में या स्वतन्त्र शासक के रूप में की थी। इस विजय की पुष्टि लाट अभिलेख (1146 ई.) से भी होती है जिससे विदित होता है कि गोगिन्दचंद्र ने सरयूपार के क्षेत्रों में ब्राह्मणों को भूमिदान किया। इस प्रकार गाहड़वाल राज्य-सीमा का विस्तार दरमण्डक प्रदेश (घाघरा और बड़ी घाघरा के मध्य) के शासक कीर्तिपाल को पराजित कर गण्डक नदी के तट तक कर लिया गया।

2. **पालों से संघर्ष**—पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि गोविन्दचंद्र ने युवराज के रूप में गौड़ सेना को पराजित किया था तथा सन्धि के फलस्वरूप उसका विवाह पाल नरेश रामपाल के मामा राष्ट्रकूट मथनदेव की पौत्री कुमारदेवी से हुआ था। पाल और गाहड़वालों के मध्य यह सन्धि एवं मित्रता चिरस्थायी न हो सकी क्योंकि गोविन्द्रचंद्र साम्राज्य-विस्तार हेतु महत्वाकाँक्षी था। गोविन्दचंद्र के मानेर शिलालेख (1126 ई०) से ज्ञात होता है कि उसने पटना (बिहार) के निकट मानेर पर अधिकार कर लिया था। इससे यह भी विदित होता है कि उसने मणियार पत्तला (पटना जिले के पश्चिमी भाग) के गुणाव और पडाली नामक ग्रामों का गणेश्वर शर्मा नामक ब्राह्मण को दान किया था। पालों के अधिकार-क्षेत्र को विजित करने का प्रमाण देवरिया जिले के लार अभिलेख (1126 ई०) से भी मिलता है जिसमें अंकित है कि गोविन्दचंद्र ने मुद्गगिरि (मुंगेर) में निवास करते हुए सरवार स्थित गोविसालक के पन्दलपत्तला में स्थित पोटाचवाड़ नामक ग्राम ठक्कुर श्रीधर नामक ब्राह्मण को दान दिया था। एक अन्य अभिलेख (जो गोरखपुर जिले से प्राप्त हुआ है तथा 1146 ई० का है) में भी गोविन्दचंद्र द्वारा मुद्गगिरि से एक ग्राम दान किए जाने का उल्लेख है।

उपरोक्त अभिलेखों से यह प्रकट होता है कि गोविन्दचंद्र ने अपना साम्राज्य पालों के अधिकृत क्षेत्र में पटना तथा मुंगेर (उत्तरी-पूर्वी बिहार) तक बढ़ा लिया था। डॉ० रोमा नियोगी[1] डॉ० सत्यप्रकाश[2] का मत है कि गोविन्दचंद्र की ये विजयें अस्थायी सिद्ध हुईं क्योंकि पाल नरेश मदनपाल ने उन्हें पुनः विजित कर लिया। पाल नरेश के पटना अभिलेख (1147 ई०) में पाल नरेश को मुंगेर प्रदेश का स्वामी बतलाया गया है। सम्भवतः गोविन्दचंद्र की मृत्यु के बाद यह प्रदेश पुनः

1. *Dr. Roma Niyogi* : History of Gahadwal Dynasty (p. 73)
2. डॉ० सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 113)

पालों के अधिकार में चला गया था। डॉ. पाठक का भी यही मत है। अतः गोविन्दचंद्र के शासन-काल में गाहड़वाल साम्राज्य की सीमा पाल क्षेत्र में पटना तथा मुंगेर (उत्तरी-पूर्वी विहार) तक पहुँच चुकी थी।

3. **कलचुरि क्षेत्रों की विजय**—जैसाकि आरम्भ में कहा जा चुका है कि कलचुरि साम्राज्य के भग्नावशेषों पर ही गाहड़वाल राज्य की स्थापना हुई थी, अतः कलचुरि नरेश की दुर्बलता के कारण उत्पन्न स्थिति का लाभ उठाकर गोविन्दचंद्र ने दक्षिण दिशा में स्थित त्रिपुरी के कलचुरि वंश से भी संघर्ष किया। पूर्व में विदित हो चुका है कि गोविन्दचंद्र के पितामह चंद्रदेव ने कलचुरि नरेश यशकर्ण को यमुना-तट पर पराजित कर उसे दक्षिण की ओर अपने राज्य का विस्तार करने पर विवश किया था। अतः गोविन्दचंद्र ने भी दुर्बल कलचुरि नरेशों से संघर्ष कर अपने साम्राज्य-विस्तार की नीति अपनाई। एक दानपत्र (1120 ई०) के अनुसार गोविन्दचंद्र ने अन्तराल पत्तला के करण्ड और करण्डतल्ल नामक दो ग्राम ठक्कुर वसिष्ठ नामक ब्राह्मण को दान किये। इसी अभिलेख में यह भी अंकित है कि पहले इन ग्रामों का दान कलचुरि नरेश यशकर्ण ने राजगुरु रुद्राशिव को दान किया था। अतः स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में कलचुरि सत्ता समाप्त हो कर गाहड़वाल सत्ता स्थापित हो गई थी। इस अभिलेख से एक और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट होता है कि गोविन्दचद्र ने सर्वप्रथम कलचुरियों द्वारा धारण किए जाने वाले विरुद "अश्वपति", "नरपति", "गजपति" तथा "राजत्रयाधिपति" स्वयं ने धारण किए तथा सार्वभौम सत्ता के सूचक अन्य विरुद "परमभट्टारक", "महाराजाधिराज", "परमेश्वर" तथा "परममाहेश्वर" भी धारण किए। इसके अतिरिक्त गोविन्दचंद्र ने कलचुरियों के समान ही अपनी मुद्राएँ (सिक्के) सोने, चाँदी तथा तांबे की प्रसारित कीं। इन मुद्राओं पर पूर्वतः "बैठी हुई लक्ष्मी" का चित्र उत्कीर्ण है। इससे यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि गोविंदचंद्र ने विजित प्रदेशों में स्वयं को कलचुरि साम्राज्य का उत्तराधिकारी मान कर कलचुरि विरुदों और मुद्रा प्रणाली को अपना लिया। यह विजित प्रदेश यमुना तथा सोन नदियों के मध्य स्थित था। यह सम्भावना प्रकट की जाती है कि यह पराजित कलचुरि नरेश गयकर्ण था।[1] इस प्रकार गाहड़वाल साम्राज्य की सीमा दक्षिण में यमुना तथा सोन नदियों के तट का स्पर्श करने लगी।

4. **दशार्ण (पूर्वी मालवा) की विजय**—नयनचन्द्र रचित ग्रन्थ "रम्भामञ्जरी नाटक" से विदित होता है कि गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण या पूर्वी मालवा विजय किया, उसी दिन उसके एक पौत्र उत्पन्न हुआ, अतः विजय के कारण उस पौत्र का नाम जयचन्द्र रखा गया। दशार्ण प्रदेश परमार वंश के आधिपत्य में था उस समय परमार शासक यशोवर्मन था। तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि यशोवर्मन

1. डॉ. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 137)

का शासन पतनोन्मुख था। डॉ० नियोगी[1] का कथन है कि इस समय परमार वंश की स्थिति अत्यन्त दुर्बल थी, अतः गोविन्दचन्द्र द्वारा परमारों से यह प्रदेश अधिकृत करना सम्भावित था। इस विजय की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से नहीं होती किन्तु उक्त साक्ष्य प्रामाणिक है। इस प्रकार दक्षिण में गाहड़वाल साम्राज्य-सीमा का और भी विस्तार हो गया।

5. **चन्देलों पर विजय**—दशार्ण पर विजय प्राप्त करने हेतु गोविन्दचन्द्र को चंदेल राज्य में होकर जाना पड़ा था, अतः दोनों में संघर्ष होना सम्भावित है। डॉ० पाठक का मत है कि इस समय चंदेल शासक मदन वर्मा था जिससे गोविन्दचंद्र का संघर्ष हुआ होगा। यद्यपि चदेल शासक जयवर्मन (1115–1120 ई०), पृथ्वीवर्मन (1120–1129 ई०) तथा मदनवर्मन (1129–1153 ई०) तीनों ही गोविन्दचंद्र के समकालीन थे किन्तु दशार्ण विजय के समय मदनवर्मन का शासनकाल था।

6. **यवन आक्रमण**—उपरोक्त विजयों में गोविन्दचंद्र की सैन्य-नीति आक्रामक रही किन्तु पश्चिम से तुर्क आक्रमणकारियों के विरुद्ध उसने प्रतिरक्षात्मक नीति का अवलम्बन किया। पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने की पूर्ण व्यवस्था उसने की थी क्योंकि उसके युवराजकाल में यमीनी तुर्कों के आक्रमण को वह सफलतापूर्वक विफल कर चुका था। उसकी रानी कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख में तुरुष्कों से वाराणसी की रक्षा हेतु हरि द्वारा गोविन्दचंद्र के रूप में जन्म लेने का उल्लेख किया गया है। डॉ० हेमचन्द्र राय[2] का मत है कि जब गोविन्दचन्द्र सम्राट बना तो पुनः यवन-आक्रमण हुए और इस समय उसने वाराणसी की रक्षा की। किन्तु मुस्लिम साक्ष्यों के अभाव में इन आक्रमणों का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। "तबकाते नासिरी" ग्रन्थ से विदित होता है कि इस समय गजनी के शासक उत्तराधिकार के युद्ध में उलझे हुए थे। इसके अतिरिक्त गोविन्दचन्द्र के माण्डलिक सामन्त दिल्ली के तोमर, बदायूँ के राष्ट्रकूट तथा कान्यकुब्ज में गाधिपुराधिपति गोपाल यवनों के आक्रमण का प्रतिरोध करने में पूर्ण समर्थ तथा सबल थे। अतः सारनाथ अभिलेख में वर्णित वाराणसी की यवनों से रक्षा करने के उल्लेख से यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि यवनों ने राजधानी वाराणसी (काशी) पर आक्रमण किया था। डॉ० रोमा नियोगी[3] का भी यही मत है। "उस समय वाराणसी तक किसी मुस्लिम सेना के प्रवेश की कोई सम्भावना नहीं थी। सारनाथ अभिलेख में वाराणसी का नाम इसलिए आया है कि वाराणसी न केवल गोविन्दचंद्र की सत्ता का ही केन्द्र था बल्कि धर्म, संस्कृति और विद्या का भी केन्द्र था।[4]

1. पूर्वनिर्दिष्ट
2. *Dr. H. C. Roy* : Dynastic History of Northern India (p. 529)
3. *Dr. Roma Niyogi* : History of Gahadwal Dynasty (p. 74)
4. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 138)

डॉ० सत्यप्रकाश की भी मान्यता है कि "जहाँ तक बनारस की रक्षा का सम्बन्ध है, इसके विषय में उपर्युक्त सम्भावनाओं के सन्दर्भ में यह निष्कर्ष निकालना ठीक प्रतीत होता है कि यवनों ने बनारस तक अभियान नहीं किया था वरन् गोविन्दचंद्र जैसे दूरदर्शी सम्राट ने अपने चारों ओर ऐसा व्यूहजाल रच दिया था जिससे वह अपनी राजधानी, धर्म और संस्कृति की आक्रमणकारियों से रक्षा कर सके।"[1]

साम्राज्य-विस्तार—उपरोक्त विजयों के कारण गोविन्दचंद्र के समय गाहड़वाल साम्राज्य का प्रचुर विस्तार होकर वह अपने चरम शिखर को प्राप्त कर चुका था। गोविन्दचंद्र के शासन-काल के अनेक उत्कीर्ण अभिलेखों (शिलालेख एवं दानपत्रों) के प्राप्ति-स्थलों के आधार पर तत्कालीन साम्राज्य-सीमा का आकलन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नयनचंद्र कृत "रम्भामंजरी' से दक्षिण में दशार्ण (पूर्वी मालवा) की विजय सुनिश्चित होती है। पूर्व में साम्राज्य सीमाएँ मुद्गगिरि (मुंगेर) तक, उत्तर-पूर्व में घाघरा और छोटी गण्डक के पार तक, उत्तर में महेत (गौंडा) तथा हिमालय की तराई तक तथा पश्चिम में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) तक विस्तीर्ण थीं। संक्षेप में गोविन्दचंद्र का साम्राज्य दिल्ली से लेकर मुंगेर तक और हिमालय की तराई से लेकर यमुना नदी के दक्षिण तक विस्तृत था। इसके अतिरिक्त दिल्ली के तोमर, बदायूँ के राष्ट्रकूट तथा कन्नौज के गाधिपुराधिपति उसके माण्डलीक सामंत थे।

गोविन्दचन्द्र की राजनीतिक (कूटनीतिक) उपलब्धियाँ

गोविन्दचंद्र की सैनिक नीति तथा उसकी सफलता का आधार उसकी राजनीतिक एवं कूटनीतिक प्रतिभा एवं योग्यता थी। उसने विवेकपूर्ण राजनयिक संबंधों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ की और अपने साम्राज्य का विस्तार किया। राज्य-हित के लिए उसने दूरस्थ एवं निकटस्थ सभी प्रमुख राज्यों से राजनयिक, साँस्कृतिक और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये जिसके प्रमाण उपलब्ध हैं। डॉ० मनराल तथा डॉ० मित्तल[2] का कथन है कि "दूरस्थ राज्यों की तुलना में समीपस्थ राज्यों से उसके सम्बन्ध अधिक गतिशील थे, जो गाहड़वाल राज्य के हित और विकास के लिए सहायक थे। गतिशीलता और राज्यहित के प्रति सतत् जागरुकता ही किसी भी सच्चे राजनयिक का दर्पण है और इस कसौटी पर कसने से गोविन्दचंद्र खरा उतरता है।"

पालों व कलचुरियों से सम्बन्ध—महाराजपुत्र (युवराज) के रूप में जब गोविन्दचंद्र प्रशासन में सक्रिय भाग ले रहा था, तब 1114 ई० के लगभग यमीनी तुर्कों के आक्रमणों से रक्षार्थ उसने पालों से मित्रता करना उचित समझा, पाल नरेश रामपाल से संधि कर उसने रामपाल के राष्ट्रकूट मामा मथनदेव की पौत्री कुमारदेवी

1. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 114-115)
2. डॉ. मनराल तथा डॉ. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (प. 88)

से विवाह किया। इस वैवाहिक सम्बन्ध से पूर्व में पाल शासक तथा दक्षिण में राष्ट्रकूट शासक उसके हितैषी बन गए और वह तुर्कों के पश्चिम से होने वाले आक्रमणों से अपने साम्राज्य की प्रतिरक्षा में समर्थ बना। इस वैवाहिक सम्बन्ध से उसे सरयूपार के प्रदेश को हस्तगत करने में सुविधा हुई तथा वह दक्षिण दिशा में कलचुरि तथा दशार्ण (पूर्वी मालवा) पर विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। इसके लिए उसने कलचुरि सामंतों को कूटनीति से अपने पक्ष में कर लिया। तुम्माण के कलचुरि नरेश जाजल्लदेव के रतनपुर अभिलेख (1114 ई०) में तुम्माण को "चंदि राजा से मित्रतावद्ध और कान्यकुब्ज राजकुमार से आदृत" कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि तुम्माण जो पूर्व में त्रिपुरी के कलचुरि (चेदियों) का सामन्त था, वह अब गोविंदचंद्र की कूटनीति से उसका मित्र बन कर स्वतंत्र शासक बन गया था। अतः जब गोविदचंद्र ने यमुना व सोन के मध्य क्षेत्र पर अभियान किया तो तुम्माण के कलचुरि नरेश जाजल्लदेव ने उसका प्रतिरोध नहीं किया।

इसके अतिरिक्त गोविंदचंद्र ने पालों से सन्धि व वैवाहिक सम्बन्ध को भी अपनी महत्वाकांक्षा के मार्ग में बाधक नहीं होने दिया। उसने रामपाल के अंतिम दिनों में अपनी शक्ति अर्जित कर पाल अधिकृत क्षेत्र में पटना तथा मुंगेर तक अपना अधिकार जमा लिया। यह उपलब्धि उस की गतिशील कूटनीति का परिणाम था जो गाहड़वाल-साम्राज्य की वृद्धि में सहायक हुई।

चन्देलों से सम्बन्ध – गोविंदचंद्र ने चंद्रात्रेय राज्य के चन्देलों से भी कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए। तत्कालीन चन्देल नरेश मदनवर्मन (1129-1163 ई०) के मऊ अभिलेख से ज्ञात होता है कि काशी के सम्राट (गोविंदचंद्र) से उसके मित्रवत् सम्बन्ध थे। इस अभिलेख में अंकित है कि "काशी का राजा भय के कारण, मित्रतापूर्ण व्यवहार के साथ उससे अपना समय बिताता था।"[1] "रम्भामंजरी नाटक" से गोविंदचंद्र द्वारा दशार्ण (पूर्वी मालवा) विजय की पुष्टि होती है। चन्देलों का राज्य गाहड़वाल राज्य तथा दशार्ण प्रदेश के मध्य स्थित था। अतः डॉ० लक्ष्मीकान्त मालवीय का मत है कि "चंद्रात्रेय राजा ने गोविंदचंद्र द्वारा मालवा विजय किए जाने में सहायता की हो।"[2] गोविंदचंद्र ने परमार तथा कलचुरि क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की थी। डॉ० पाठक की मान्यता है कि "ये दोनों वंश (परमार तथा कलचुरि) चन्देलों के शत्रु थे। अतः 'शत्रु के शत्रु से स्वाभाविक मित्रता' का सिद्धान्त कार्यान्वित कर गोविन्दचंद्र ने मदनवर्मन से मित्रता बनाए रखी हो यह सम्भव जान पड़ता है।" अस्तु, गोविंदचंद्र के चन्देलों से राजनीतिक सम्बन्ध उसकी कूटनीति का अंग थे जो गाहड़वाल-साम्राज्य के विस्तार में सहायक सिद्ध हुए।

1. मऊ शिलालेख—Antiquities of India I (p. 198)
2. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 140)

उपरोक्त समीपवर्ती राज्यों के साथ गाहड़वालों के सम्बन्ध का स्वरूप राजनीतिक था किंतु दूरस्थ राज्यों के साथ जो सम्बन्ध स्थापित किए गये वे मुख्यत: सांस्कृतिक थे।

चोल शासक से सम्बन्ध—चोल सम्राट कुलोतुंग प्रथम का गंगैकोंडचोलपुरम् से प्राप्त एक शिलालेख में यशोविग्रह से लेकर चंद्रदेव तक की गाहड़वाल शासकों की वंशावली उत्कीर्ण है। यद्यपि इस अभिलेख का तिथिसूचक अंश मिट गया है किन्तु इतिहासकारों का मत है कि यह लेख गाहड़वाल शासक गोविंदचंद्र के समय का है। डॉ० हेमचंद्र राय[1] का मत है कि सम्भवत: चोलों की उत्तर की ओर विस्तारवादी नीति तथा कलचुरियों से दोनों वंशों की शत्रुता ने इस मित्रता को फलीभूत होने में सहायता दी और यह सम्भव है कि गोविंदचंद्र चोल साम्राज्य में गया हो और उसी समय यह लेख उत्कीर्ण कराया हो। गोविन्दचंद्र के सेत-महेत अभिलेख (1119 ई.) से भी इन वंशों की मित्रता का प्रमाण मिलता है जिसमें गोविंदचंद्र द्वारा चोलदेश के साधु की प्रार्थना पर दान दिए जाने का उल्लेख है। अत: यह स्पष्ट होता है कि गोविंदचंद्र ने चोलों के साथ मित्रतापूर्ण सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किए थे।

गुजरात के चालुक्य (सोलंकी) शासक से सम्बन्ध—मेरुतुंग कृत "प्रबन्ध चितामणि" द्वारा विदित होता है कि चालुक्य नरेश सिद्धराज जयसिंह ने गोविंदचंद्र की राज सभा में एक दूत भेजा था।[2] यद्यपि इस ग्रंथ में काशी नरेश जयचंद्र का उल्लेख है किंतु, सिद्धराज जयसिंह (1094-1143 ई०) का समकालीन काशी का गाहड़वाल नरेश जयचंद्र (1170-1194 ई.) न होकर गोविंदचंद्र (1114-1154 ई.) रहा होगा। यह चालुक्य-गाहड़वाल मित्रता चालुक्य नरेश कुमारपाल के समय तक चलती रही। जयसिंहसूरी कृत "कुमारपालभूपाल चरित" ग्रंथ से पता चलता है कि कुमारपाल ने जीवहिंसा बन्द कराने के लिए अपने मन्त्रियों (दूतों) को काशी भेजा था। अत: ये सम्बन्ध भी विशुद्ध सांस्कृतिक थे।

कश्मीर नरेश से सम्बन्ध—कल्हण कवि द्वारा रचित ग्रंथ "राजतरंगिणी" में कश्मीर के राजा जयसिंह (1128-1149 ई०) के विषय में उल्लेख है कि "उसने बड़े-बड़े भूखण्डों पर अधिकार रखने के कारण शक्तिशाली कान्यकुब्ज और अन्य स्थानों के राजाओं को अपनी मित्रता से गौरवान्वित किया।"[3] इसमें उल्लिखित कान्यकुब्ज नरेश गोविंदचंद्र था। जयसिंह के महासांधिविग्रहिक मख कवि रचित "श्रीकण्ठचरित" ग्रंथ से ज्ञात होता है कि जयसिंह के मन्त्री अलंकार ने कश्मीरी पण्डितों और अधिकारियों की एक संगोष्ठी आयोजित की थी जिसमें गोविंदचंद्र द्वारा

1. *Dr. H. C. Roy* : Dynastic History of Northern India (p. 531)
2. मेरुतुंग : प्रवन्धचिन्तामणि (टौनवी), पृ. 94
3. कल्हण : राजतरंगिणी (अष्टम–श्लोक 2453)

प्रतिनियुक्त उसके सुहल नामक प्रतिनिधि ने भाग लिया था। अतः गाहड़वाल कश्मीर के इन सांस्कृतिक एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का श्रेय भी गोविंदचंद्र को है।

उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि गोविंदचंद्र ने अपने समकालीन प्रमुख शासकों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर अपनी दूरदर्शिता एवं कूटनीतिक प्रतिभा का परिचय दिया। डॉ० रोमा नियोगी का कथन है कि गोविंदचंद्र की सफलता का कुछ श्रेय उसके योग्य मन्त्रियों एवं राजकीय अधिकारियों को भी है।[1] इसका प्रमाण गोविंदचंद्र के महासान्धिविग्रहिक लक्ष्मीधर रचित ग्रंथ "कृत्यकल्पतरु" से मिलता है जिसमें कहा गया है कि लक्ष्मीधर की सहायता और मंत्र-महिमा ने राजा को यश प्राप्त करने में सहायता की।

साहित्यिक प्रगति

गोविंदचंद्र केवल तलवार और कूटनीति का धनी ही नहीं था बल्कि वह साहित्य-प्रेमी तथा साहित्यकारों एवं विद्वानों का आश्रयदाता भी था। "उसके समय कन्नौज का राज दरबार हर्ष और महेन्द्रपाल प्रतिहार के समय की ही तरह पुनः एक बार विद्या, संस्कृति और साहित्यिक क्रियाकलापों का केन्द्र हो गया।"[2] गोविंदचंद्र के उत्कीर्ण शिलालेखों एवं दानपत्रों में उसे "विविधविद्याविचारवाचस्पति" के विरुद से विभूषित किया गया है जो उसकी प्रकाण्ड विद्वत्ता का सूचक है। उसके महसांधि-विग्रहिक लक्ष्मीधर ने गोविंदचंद्र के आग्रह पर ही "कृत्यकल्पतरु" ग्रंथ की रचना की जिससे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य पक्षों की दशा पर प्रकाश पड़ता है। डॉ. त्रिपाठी के मतानुसार गोविदचंद्र की चार रानियों—नैनाकली-देवी, गोशालीदेवी, कुमारदेवी और वसन्तादेवी में से कुमारदेवी बौद्ध धर्मावलम्बी थी। यह तथ्य गोविंदचंद्र की धर्मसहिष्णुता का परिचायक है। उसके आश्रय में रहने वाले विद्वान सुहाला ने काश्मीर में आयोजित विचार-संगोष्ठी में भाग लिया था। सुहाला का कश्मीर के बौद्ध-समाज में काफी आदर था।

मूल्यांकन

गोविंदचंद्र गाहड़वाल वंश का ही नहीं अपितु अपने समय का महानतम् शासक था। उसने अपनी सैनिक योग्यता से अनेक पड़ौसी प्रदेशों को विजित किया तथा अनेक प्रमुख शासकों से कूटनीतिक एवं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर गाहड़वालवंश की प्रतिष्ठा एवं तत्कालीन राजनीति में अपने प्रभाव की अभिवृद्धि की। उसकी सैनिक उपलब्धियों में सरयूपार क्षेत्र 'नवराज्यगज', पाल-क्षेत्र पटना तथा मुंगेर, कलचुरियों के यमुना तथा सोन नदियों का मध्यक्षेत्र, दशार्ण (पूर्वी मालवा) एवं चन्देल-क्षेत्र की विजय द्वारा साम्राज्य वृद्धि और भवनों के आक्रमण से गाहड़वाल साम्राज्य की प्रतिरक्षा व्यवस्था प्रमुख है। अपने युवराज काल में प्राप्त उपलब्धियों के आधार पर गोविंदचंद्र ने प्रतिरक्षात्मक एव आक्रामक सैनिक नीति अपनाकर

1. *Dr. Roma Niyogi :* History of Gahadwal Dynasty (p. 80)
2. डॉ. पाठक वी० एन० : उत्तरी भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 360)

साम्राज्य-सीमा की अभिवृद्धि एवं प्रशासन को सुसंगठित किया। इसके अतिरिक्त विद्या एवं साहित्य के क्षेत्र में भी उसकी उपलब्धियाँ महत्त्वपूर्ण रहीं। उसकी "विविध विद्या विचार वाचस्पति" उपाधि इस तथ्य की सूचक है। सभी धर्मों के प्रति उसकी नीति सहिष्णुतापूर्ण थी। इसका प्रमाण उसकी रानियों का बौद्ध एवं वैष्णव धर्मावलम्बी होना है। "परम-माहेश्वर" होते हुए भी उसनें बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया। वह तीर्थ-स्थानों का रक्षक था। यवनों से वाराणसी (काशी) की रक्षा हेतु वह हरि का साक्षात् अवतार था। सारनाथ अभिलेख से इसकी पुष्टि होती है। उसके आश्रय में लक्ष्मीधर द्वारा रचित ग्रंथ "कृत्यकल्पतरु" तत्कालीन स्थिति का प्रामाणिक चित्रण करता है। अतः गोविंदचंद्र को तत्कालीन भारत का सर्वश्रेष्ठ एवं महान् सम्राट मानना सर्वथा उचित है।

गाहड़वाल वंश का अवसान तथा पतन

विजयचन्द्र (1155–1169 ई०)

राज्यारोहण—गोविन्दचंद्र की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र विजयचन्द्र सम्राट बना। यद्यपि शिलालेखों में गोविन्दचन्द्र के अन्य दो बड़े पुत्रों आस्फोटचंद्रदेव तथा राज्यपालदेव का उल्लेख दान देने के संदर्भ में मिलता है तथा बड़े पुत्र आस्फोटचन्द्र को युवराज कहा गया है किन्तु विजयचन्द्र के शासक बनने का कारण इतिहासकार यह मानते हैं कि या तो दोनों बड़े राजकुमार अपने पिता के समय ही मृत्यु को प्राप्त हो गए थे या उत्तराधिकार के युद्ध में विजयचन्द्र विजयी हुआ। विजयचन्द्र के चार अभिलेखों में प्रथम प्रकाशित अभिलेख 1168 ई० का है तथा गोविन्दचन्द्र का अन्तिम अभिलेख 1154 ई० का है। अतः विजयचन्द्र के राज्यारोहण की सम्भाव्य तिथि 1155 ई० हो सकती है। साहित्यिक ग्रन्थों में विजयचन्द्र को अन्य नामों विजयपाल अथवा मल्लदेव से भी पुकारा गया है। 1155 ई० से 1168 ई० तक विजयचन्द्र के किसी दान सम्बन्धी अभिलेख के न मिलने का कारण इतिहासकारों ने यह माना है कि सम्भवतः मुस्लिम आक्रमणों और दिल्ली के अपहरण के कारण विजयचन्द्र को अपना कोई शिलालेख उत्कीर्ण कराने का अवसर नहीं मिला।[1]

चन्दवरदाई कृत "पृथ्वीराज रासो" के अनुसार विजयचन्द्र ने कटक के सोमवंशी राजा मुकुन्ददेव को हराया और उसकी पुत्री से विवाह किया जिससे संयोगिता उत्पन्न हुई। इसी के आधार पर पता चलता है कि विजयचन्द्र ने दिल्ली नरेश अनंगपाल और पट्टनपुर नरेश भोलाभीम को हराया। किन्तु इन पराजित नरेशों में से कोई भी विजयचन्द्र का समकालीन नहीं था, अतः ये तथ्य कपोल-कल्पित हैं।

1. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 118)
   तथा लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 143)

मुसलमानों पर विजय—विजयचन्द्र के पुत्र जयचन्द्र के कमौली अभिलेख (1168 ई०) में विजयचन्द्र के विषय में कहा गया है कि "भुवन-दलन की क्रीड़ा के निवास-स्थान हम्मीर की नारियों के नेत्रों से, जलद के समान, बहती हुई धारा ने भू-लोक के तपन का अन्त किया।" यहाँ हम्वीर (अमीर) का तात्पर्य मुस्लिम शासक सम्भवतः सुल्तान खुसरोशाह (1150–60 ई०) अथवा खुसरो मलिक (1160–1186 ई०) से है जिसे विजयचन्द्र से पराजित होना पड़ा। खुसरो मलिक की सम्भावना अधिक है। मुस्लिम ग्रन्थों में इस पराजय का यद्यपि उल्लेख नहीं मिलता किन्तु तत्कालीन गजनी की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। गजनी के शासक खुसरोशाह के समय गुज्ज कबीले ने उस पर आक्रमण किया और गयासुद्दीन गौरी ने उसे गजनी से निकाल दिया। खुसरो शाह भारत में प्रवेश करने को विवश हो गया। उसने लाहौर को राजधानी बना कर पूर्वी क्षेत्र में राज्य का विस्तार किया। इसी प्रयास में वह विजयचन्द्र से पराजित हुआ। कमौली शिलालेख से इस युद्ध की तिथि 1168 ई० के पूर्व हो सकती है क्योंकि चाहमानों के सिवालिक स्तम्भ लेख (1164 ई०) तथा सोमेश्वर के बिजौलिया शिलालेख (1170 ई०) से यह विदित होता है कि चाहमान शासक विग्रहराज चतुर्थ (बीसलदेव) ने म्लेच्छों (मुसलमानों) को पराजित कर पंजाब के सिवाय सभी भारतीय प्रदेश उनसे मुक्त करा लिये। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है विजयचन्द्र ने 1164 ई० के पूर्व ही मुसलमानों पर विजय प्राप्त की होगी। इसके पश्चात् विग्रहराज ने दिल्ली पर अधिकार कर म्लेच्छों को हराया। दिल्ली गाहड़वालों के अधिकार से निकल जाने के कारण गाहड़वाल साम्राज्य को काफी धक्का लगा। अतः यह निश्चित है कि पहले विजयचन्द्र ने मुसलमानों को पराजित किया तथा उसके बाद चाहमानों से मुसलमान पराजित हुए क्योंकि दिल्ली पर चाहमानों का आधिपत्य हो जाने से देश की पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा का दायित्व गाहड़वालों की अपेक्षा चाहमानों का हो गया था।

लक्ष्मणसेन से संघर्ष—पश्चिमोत्तर सीमा पर विजयचन्द्र के मुसलमानों से संघर्ष में व्यस्त होने के समय गाहड़वाल साम्राज्य की पूर्वी सीमाएँ असुरक्षित हो गई थीं। अतः सेनवंश के कुमार लक्ष्मणसेन ने काशीराज (विजयचन्द्र) को पराजित किया। यह तथ्य माधाई नगर शिलालेख से विदित होता है। एक अन्य शिलालेख से भी पता चलता है कि लक्ष्मणसेन ने प्रयाग और पुरी में अपने कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये। किन्तु लक्ष्मणसेन की यह विजय स्थायी नहीं थी क्योंकि कमौली अभिलेख (1164 ई०) से स्पष्ट होता है कि विजयचन्द्र का काशी पर पूर्णरूप से अधिकार था और यहाँ से वह दानपत्र नि:सृत कर रहा था। इसके अतिरिक्त बिहार में सहसराम के निकटवर्ती क्षेत्र पर भी 1169 ई० में विजयचन्द्र का अधिकार महानायक प्रतापधवल के ताराचण्डी की मूर्ति पर अंकित अभिलेख (1169 ई०) से प्रकट होता है। बनारस सिहवर दानपत्र (1175 ई०) तथा बोधगया शिलालेख (1185 ई०)

से भी यह तथ्य पुष्ट होता है कि काशी (वनारस) पर विजयचन्द्र का अधिकार था। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि लक्षमणसेन ने विजयचन्द्र के तुरुष्कों से संघर्ष के समय अवसर का लाभ उठा कर गाहड़वाल साम्राज्य की पूर्वी सीमा के कुछ क्षेत्रों पर अस्थायी अधिकार कर लिया था किन्तु शीघ्र ही गाहड़वाली ने पूर्वतः इन क्षेत्रों को अधिकृत कर लिया और साम्राज्य सीमा दक्षिणपूर्व में सोन नदी तक वनी रही।

साम्राज्य-सीमा—इस प्रकार दिल्ली को छोड़कर विजयचन्द्र ने अपने समस्त पैतृक साम्राज्य की प्रतिरक्षा की। दिल्ली के तोमरवंशी शासक गाहड़वाल नरेश चन्द्रदेव के समय से ही गाहड़वालों की प्रभुसत्ता स्वीकार करते थे किन्तु शाकम्भरी चाहमान नरेश विग्रहराज चतुर्थ (वीसलदेव) के समय तोमरों ने गाहड़वालों की सत्ता त्याग कर चाहमानों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। सिवालिक तथा बिजोलिया अभिलेखों से यह तथ्य प्रमाणित होता है। तुरुष्कों के आक्रमण के कारण दिल्ली का देश की प्रतिरक्षा हेतु सामरिक महत्व था। अब तुरुष्कों के आक्रमण से देश-रक्षा करने का भार गाहड़वालों से चाहमानों पर स्थानान्तरित हो गया। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत की प्रमुख शक्ति गाहड़वालों की अपेक्षा अब चाहमान वन गए।

मूल्यांकन—विजयचन्द्र अपने पिता की भाँति ही वीर एवं साहसी था। उसके पुत्र जयचंद्र ने एक शिलालेख में उसकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि "जब वह तीनों दिशाओं में त्रिविक्रम की तरह घूमा तो उसके यश से बलवान राजाओं का भय तीव्र हो गया। वह तीन दिशाओं का विजेता था।"[1] ये तीन दिशाएँ थीं—पश्चिम में मुसलमान, दक्षिण-पूर्व में प्रतापधवल तथा पूर्व में सेन वंश, जिन पर उसने विजय प्राप्त की थी। इस प्रकार उसने अपने पैतृक साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया। उसने अपने पिता की भाँति अपनी प्रभुसत्ता प्रदर्शित करने हेतु "विविध-विद्यावाचस्पति" तथा "अश्वपति—नरपति—गजपति—राज्यत्रयाधिपति" विरुद धारण किये।

जयचन्द्र (1170–1194 ई०)
(Jai Chandra)

राज्यारोहण

कमौली शिलालेख के अनुसार जयचन्द्र का 1170 ई० में राज्यारोहण हुआ। वह विजयचन्द्र का उसकी रानी चन्द्रलेखा देवी से उत्पन्न हुआ था। राजशेखर कृत "प्रबन्धकोष" में उसका नाम "जयन्तचन्द्र" भी मिलता है। राज्यारोहण के पूर्व वह दो वर्ष तक (1168 से 1170 ई० तक) युवराज के रूप में प्रशासन में सक्रिय भाग ले चुका था। अभिलेख में उसके लिए अंकित "समस्तराजक्रियोपेत" शब्दों से इसकी पुष्टि होती है।

1. Antiquities of India IV (p. 120–21)

शासन-काल के स्रोत सन्दर्भ—जयचंद्र ने 18 शिलालेख उत्कीर्ण कराये जिसमें दो तो स्वयं उससे सम्राट के रूप में संबंधित हैं तथा शेष उसके पिता विजयचंद्र के दान से सम्बद्ध हैं। ये अभिलेख अधिकांशतः काशी (बनारस) के निकटवर्ती क्षेत्रों से उपलब्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त जयचंद्र के शासन-काल के स्रोत-संदर्भों में चंदवरदाई कृत "पृथ्वीराज रासो", विद्यापति कृत "पुरुष-परीक्षा, मेरुतुंग कृत "प्रवन्ध चितामणि", नयनचद्र कृत "रम्भामंजरी", राजशेखर कृत "प्रवन्धकोष", जयानक भट्ट कृत "पृथ्वीराज विजय" चंद्रशेखर कृत "सुर्जन चरित" आदि साहित्यिक ग्रन्थ अब्दुलफजल कृत "अइने अकवरी", हसननिजामी कृत "ताज-उल-मसीर", फरिश्ता कृत "तारीखे-फरिश्ता" इब्न अथीर, "तबकाते नासिरी" आदि इतिहास ग्रन्थ एवं इतिहासकार हैं जिनसे जयचंद्र के समकालीन शासकों से सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है।

तत्कालीन भारतीय राजनीति में जयचन्द्र की भूमिका
(Part played by Jaichandra in Contemporary Politics)

1. **चन्देल राज्य से सम्बन्ध**—जयचंद्र के चंदेल राज्य से सम्बन्ध के विषय में साक्ष्यों से परस्पर विरोधी प्रमाण मिलते हैं। नयनचंद्र कृत "रम्भामंजरी" में जयचंद्र की भुजाओं की तुलना "मदनवर्मन की राज्यश्री रूपी हाथी को बांधने के लिये खम्भ" से की गई है। इससे यह प्रकट होता है कि जयचंद्र ने चंदेल राजा मदन वर्मन को पराजित किया था किन्तु मदनवर्मन (1129–1163 ई०) और जयचंद्र (1170–1194 ई०) समकालीन शासक नहीं थे। अतः यह सम्भावना हो सकती है कि युवराज के रूप में जयचंद्र ने मदन वर्मन को हराया हो।

"पृथ्वीराज रासो" के "आल्हा प्रस्ताव" से विदित होता है कि चंदेल नरेश परमर्दिदेव (परमाल) जब अपने वनाफर वीरों आल्हा तथा ऊदल के साथ चाहमान नरेश पृथ्वीराज तृतीय से जिस युद्ध में पराजित हुआ था, उसमें जयचंद्र के परमर्दिन की सहायता की थी।[1] इस घटना की पुष्टि की कि पृथ्वीराज चौहान ने परमर्दिदेव को हराया था, पृथ्वीराज के मदनपुर अभिलेख (1184 ई०) से होती है। अतः यह सम्भावना है कि जयचंद्र ने परमर्दिदेव की इस युद्ध में सहायता की हो क्योंकि परमर्दिदेव का पितामह मदनवर्मन गाहड़वाल नरेश गोविन्दचंद्र अथवा विजयचंद्र का मित्र था और चाहमान नरेश विग्रहराज चतुर्थ (वीसलदेव) ने दिल्ली के तोमरों को गाहड़वालों की अधिसत्ता छोड़कर अपनी अधीनता स्वीकार करने को विवश किया था, अतः गाहड़वाल-चाहमानों के सम्बन्ध कटु हो गये थे। इन परिस्थितियों में जयचंद्र ने पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध परमर्दिदेव चंदेल की सहायता अवश्य की होगी। इस घटना से गाहड़वाल–चाहमान सम्बन्ध भी कटु होते गये जो देश के लिये दुर्भाग्यपूर्ण थे क्योंकि मुहम्मद गौरी ने इन सम्बन्धों का लाभ उठाकर चाहमानों और गाहड़वालों को पृथकतः सरलता से पराजित कर दिया तथा देश में मुस्लिम सत्ता स्थापित कर ली।

1. चन्दवरदाई : पृथ्वीराज रासो (पृ. 2507-2615)

2. **सेनवंशी शासक से सम्बन्ध**—सेनवंशी नरेश लक्ष्मणसेन पूर्व दिशा में जयचंद्र का प्रतिद्वन्द्वी था। राजशेखर कृत "प्रवन्ध कोष" से विदित होता है कि जयचंद्र और लक्ष्मणसेन के मध्य संघर्ष हुआ जो अनिर्णित रहा। जयचंद्र ने सेन राज्य पर आक्रमण सैनिक अभियान किया किन्तु दोनों में किसी की विजय अथवा पराजय के पूर्व ही वह काशी वापस आ गया। इन दोनों शासकों में बिहार पर अपना अधिकार जमाने की प्रतिस्पर्धा थी। अतः इसी का परिणाम यह संघर्ष रहा होगा। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है 1169 ई० में सहसराम के निकटवर्ती क्षेत्र पर गाहड़वाल नरेश विजयचन्द्र का अधिकार था। जयचंद्र के शिवहर ताम्रपत्र (1175 ई०) से विदित होता है माखरपत्तला से सम्बन्वित पटना-दीनापुर क्षेत्र पर उसकी सत्ता स्थापित थी। जयचंद का वोध गया से प्राप्त एक अभिलेख (1183–1192 ई०) भी सूचित करता है कि गया तक उसका अधिपत्य था। इन अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि जयचंद्र पूर्व में अपने साम्राज्य की सीमाओं की सेन शासकों से रक्षा करने में समर्थ रहा। मुस्लिम इतिहासकारों के कथन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जयचद्र 1193 ई० में कन्नौज और वनारस (काशी) में पूर्ण प्रभुता सम्पन्न शासक के रूप में शासन कर रहा था।

किन्तु उपरोक्त साक्ष्यों के विपरीत लक्ष्मणसेन और उसके पुत्र विश्वरूपसेन के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि लक्ष्मणसेन ने काशीराज को हराया और वाराणसी तथा प्रयाग में अपने विजय-स्तम्भों की स्थापना की। डॉ० रमेशचंद्र मजूमदार का मत है कि यह काशीराज जयचंद्र था जिससे लक्ष्मणसेन ने गया के आसपास के क्षेत्र छीन लिये। किन्तु डॉ० विशुद्धान्द पाठक[1] ने यह तर्क देते हुए कि लक्ष्मणसेन के शासन-काल का प्रारंभिक वर्ष अज्ञात है, अपना मत व्यक्त किया है कि लक्ष्मणसेन की ये विजयें जयचंद्र के मुहम्मद गौरी से पराजित हो जाने के वाद हुई थी न कि जयचंद्र के शासन-काल में। डॉ० रोमा नियोगी[2] भी यही मत रखती हुई कहती हैं कि जयचंद्र ने 1194 ई० तक शासन किया जव कि लक्ष्मणसेन इसके वाद भी शासन करता रहा, अतः यह सम्भव है कि गाहड़वालों की पतनावस्था में सेन सम्राट ने प्रयाग तक अभियान किया था। किन्तु इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता।

3. **कलचुरि शासकों से सम्वन्ध**—त्रिपुरी के कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण के वाद ऐसा कोई नरेश इस वंश में नहीं हुआ जो उल्लेखनीय रहा हो। जयचद्र के समकालीन कलचुरि नरेश जयसिंह और विजयसिंह थे। यद्यपि विजयसिंह को "सम्राट" कहा गया है किन्तु उसके अभिलेखों में कलचुरियों का गाहड़वालों से किसी भी प्रकार के संघर्ष का उल्लेख नहीं है। गोविन्दचंद्र ने कलचुरियों के जिस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। उसे पुनः अधिकृत करने का प्रयास भी किसी कलचुरि नरेश ने वाद में नहीं किया।

1. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (पृ० 367)
2. *Dr. Roma Niyogi* : History of Gahadwal Dynasty

4. चालुक्यों से सम्बन्ध—जयचंद्र का समकालीन गुजरात का चालुक्य (सोलंकी) शासक भीमदेव था। कुमारपाल चालुक्य नरेश के बाद मालवा के परमार वंशी शासक अपने खोये हुए प्रदेश चालुक्यों से पुनः प्राप्त करने में लगे हुए थे। भीमदेव ने मुहम्मद गौरी के प्रथम आक्रमण को विफल कर दिया था, ऐसा मुस्लिम साक्ष्यों से ज्ञात होता है। गौरी के आक्रमण के समय न तो पृथ्वीराज चौहान ने और न गाहड़वाल नरेश जयचन्द्र ने भीमदेव की सहायता की थी। यह कृत्य इन दोनों नरेशों की अदूरदर्शिता का परिचायक है जिसका परिणाम उन्हें भुगतना पड़ा और देश को विदेशी शक्ति का गुलाम होना पड़ा। अन्य किसी भी साक्ष्य से चालुक्य और गाहड़वालों के सम्बन्धों पर प्रकाश नहीं पड़ता।

5. चाहमान नरेश पृथ्वीराज तृतीय से सम्बन्ध—उपलब्ध स्रोतों से गाहड़वाल–चाहमान सम्बन्धों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। "पृथ्वीराज रासो" के अनुसार चाहमान नरेश ने जयचन्द्र को भी पराजित किया किन्तु यह अतिशयोक्तिपूर्ण *विवरण निराधार है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि दिल्ली के राजा अनंगपाल की* मृत्यु के बाद उसका नाती पृथ्वीराज तृतीय उसका उत्तराधिकारी था। पृथ्वीराज का समकालीन गाहड़वाल शासक जयचंद्र भी अत्यन्त शक्तिशाली था। जयचंद्र ने दिग्विजय कर उसके उपलक्ष में राजसूय–यज्ञ किया और अपनी सुन्दर पुत्री संयोगिता का स्वयंवर किया।

संयोगिता–स्वयंवर—चंदवरदाई कृत "पृथ्वीराज रासो", विद्यापति कृत "पुरुष-परीक्षा" मेरुतुंग कृत "चिन्तामणि" ग्रन्थों में संयोगिता स्वयंवर और पृथ्वीराज चौहान द्वारा उसके अपहरण की कथा का वर्णन है किन्तु किसी साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं होती। "पृथ्वीराज विजय" में भी प्रकारांतर से ऐसी ही कथा का उल्लेख है। अबुलफजल कृत "आइन-ए-अकबरी" और चंद्रशेखर कृत "सुर्जन चरित" में भी इसका उल्लेख है। संयोगिता–स्वयंवर की कथा तथा उसकी ऐतिहासिकता के विषय में विस्तार से विवेचन पूर्व में चाहमान वंश से संबंधित अध्याय में किया जा चुका है। अतः उसकी पुनरावृति अनावश्यक है। संयोगिता प्रकरण के संबंध में चंदवरदाई के अतिश्योक्तिपूर्ण विवरण में डॉ० दशरथ शर्मा ने संदेह व्यक्त करते हुए गाहड़वाल–चाहमान वैमनस्य के संदर्भ में इस प्रकार को सम्भाव्य माना है।[1] पृथ्वीराज चौहान और जयचंद्र की परम्परागत शत्रुता चाहमान-चन्देल युद्ध में सहायक गाहड़वालों की पराजय, वीसलदेव द्वारा गाहड़वालों के माण्डलीक दिल्ली के तोमरों पर चाहमान आधिपत्य, दोनों नरेशों की महत्त्वाकांक्षा एवं विस्तारवादी नीति से पुष्ट होती है। इसका परिणाम दोनों को मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय भुगतना पड़ा। दोनों में प्रत्यक्ष संघर्ष का प्रमाण किसी साक्ष्य से नहीं मिलता। दोनों का वैमनस्य इस सीमा तक पहुँच गया था कि मुहम्मद गौरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान की पराजय एवं हत्या

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 96-99)

के समाचार सुनकर जयचंद्र इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अपनी राजधानी कन्नौज में दीपावली मनाई। "पृथ्वीराज प्रवन्ध" ग्रन्थ से यह तथ्य प्रकट होता है।

कन्नौज पर मुहम्मद गौरी का आक्रमण
(Mohammad Ghori's invasion of Kanauj)

गजनवी के सुल्तान—जैसा कि "चाहमान वंश" अध्याय में विस्तार से कहा गया है कि गुज्ज कवीले के आक्रमणों से घवराकर यामिनी सुल्तान खुसरो शाह को गजनी छोड़कर भारत की ओर अभियान करना पड़ा। इस घटना के 12 वर्ष वाद गौर के सुल्तान ग्यासुद्दीन मुहम्मद इब्न साम ने गजनी पर अधिकार कर लिया तथा अपने भाई मुईजुद्दीन इब्न साम को वहाँ का सुल्तान नियुक्त किया। इस नये सुल्तान ने पूर्व की ओर भारत में वढ़ने की उस परम्परागत नीति को अग्रसर किया जिसे महमूद गजनवी प्रारम्भ कर चुका था। "तवकाते नासिरी" से विदित होता है कि सुल्तान ने कच्छ को पार कर अनहिलपट्टन तथा मुल्तान की ओर 1178 ई० में अभियान किया किन्तु गुजरात के चालुक्य शासक भीमदेव ने उसे वापिस लौटने को विवश कर दिया। इसके वाद सुल्तान ने खुसरो मलिक को हराकर तथा 1187 ई० में लाहौर पर अधिकार कर यामिनीवंश को समाप्त कर दिया।

तरायन के युद्ध—मुहम्मद गौरी के गुजरात व नाडौल आक्रमण के समय पृथ्वीराज चौहान ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। डॉ० एच० सी० रे[1] का मत है कि चाहमानों ने अपने पड़ौसी नाडौल और गुजरात की कोई सहायता नहीं की और वे मुस्लिम आक्रमणकारियों का नग्न नृत्य मौन होकर देखते रहे। किन्तु जब गौरी ने तवर-हिन्द पर अधिकार कर लिया तो पृथ्वीराज सचेत हुआ और तरायन के प्रथम युद्ध (1191 ई०) में उसने अपने सामन्त दिल्ली के तोमर नरेश गोविन्दराम के साथ गौरी को पराजित कर भगा दिया। पृथ्वीराज ने इस घटना से कोई लाभ न उठाया और अगले वर्ष 1192 ई० में गौरी पुनः तरायन के मैदान में आ धमका। युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुआ तथा मारा गया। पृथ्वीराज को अपनी संकीर्ण नीति का परिणाम भुगतना पड़ा।

कन्नौज पर गौरी का आक्रमण—जयचंद्र भी पृथ्वीराज की भाँति संकीर्ण-नीति के रोग से पीड़ित रहा। पृथ्वीराज को हराने के वाद गौरी की दृष्टि भारत के सवसे धनी प्रदेश अन्तर्वेदी पर पड़ी जहाँ कि जयचंद्र शासन कर रहा था। मुस्लिम इतिहासकार तथा साहित्यिक ग्रन्थों से तत्कालीन भारत का सर्वश्रेष्ठ शासक जयचंद्र ही था तथा उसकी सैनिक शक्ति असीम थी। गोविन्दचंद्र तथा विजयचंद्र के अभिलेखों में गाहड़वाल साम्राज्य की अश्वारोही और गज सेना की अत्यन्त प्रशंसा की गई है। चंदवरदाई ने जयचंद की सेना का वर्णन करते हुए लिखा है कि—"सेना का अग्रिम भाग जव युद्ध क्षेत्र में पहुँच जाता था तो सेना का पिछला

1. *Dr. H. C. Ray* : Dynastic History of Northern India (p. 1087)

भाग प्रस्थान भी नहीं कर पाता था।" मुस्लिम इतिहासकार के अनुसार जयचंद्र का साम्राज्य विस्तार चीन की सीमाओं से लेकर मालवा तक तथा पूर्व में सागर से लेकर लाहौर तक था। यद्यपि यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण है किन्तु इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि मुसलमान जयचंद्र की महानता से प्रभावित थे। "ताज-उल-माथिर" ग्रन्थ से विदित होता है कि "जयचन्द्र की सेना वालुका-कणों की तरह अगणित थी।" एक अन्य समकालीन मुस्लिम ग्रन्थ "कामिल-उत-तवारीख" के अनुसार जयचन्द्र की सेना में 700 हाथी, 10 लाख सैनिक और अनेक शासक थे। फरिश्ता ने "तारीखे-फरिश्ता" में उसकी सेना की विशालता की पुष्टि की है। अतः जयचंद्र उस समय का अत्यन्त शक्ति सम्पन्न नरेश था।

चन्दबरदाई कृत "पृथ्वीराज रासो", विद्यापति कृत "पुरुष परीक्षा" और नयनचन्द्र कृत "रम्भामंजरी" ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि 1193 ई० के चंदवार युद्ध के पूर्व जयचन्द्र ने कई वार मुहम्मद गौरी को पराजित किया था जिसे मुसलमान इतिहासकार छोटी मुठभेड़ें मात्र मानते हैं। हसन निजामी कृत "ताजुल माथिर" के अनुसार दिल्ली, कोल और अजमेर को जीतने के बाद गौरी ने 50 हजार सैनिकों को कुतबुद्दीन ऐबक के नेतृत्व में गाहड़वाल राज्य पर आक्रमण करने को भेजा। इस दल ने "धर्म के शत्रुओं की सेना को पराजित किया" अर्थात् गाहड़वाल राज्य पर स्थित प्रतिरक्षा हिन्दू सेना को हराया और लूट का सामान और वन्दी लेकर यह दल चला गया।[1]

इस घटना की सूचना मिलते ही जयचंद्र ने मुस्लिम अधिकृत क्षेत्र पर आक्रमण करने हेतु एक विशाल सेना के साथ अभियान किया। यह युद्ध 1194 ई० में चन्दवार नामक स्थान पर हुआ। जयचंद्र की सेना सारे युद्ध-क्षेत्र में मेघों की तरह छा गई और मुस्लिम सैनिक साहस से युद्ध करने लगे। "ताजुल माथिर" के अनुसार "विधर्मी अपनी संख्या के बल पर टिके थे, मुसलमान अपने साहस पर और धर्मनिष्ठों की विजय हुई।" मुहम्मद गौरी ने 50 हजार शस्त्र-कवचधारी घुड़सवारों के साथ तीखा आक्रमण किया। युद्ध के प्रथम दौर में तुर्क आक्रांता अत्यन्त भयभीत हो गये किन्तु फरिश्ता के अनुसार "हाथी पर सवार अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए जयचंद्र युद्ध कर रहा था। कुतुवुद्दीन के धनुष से निकला वाण सम्राट के हृदय में लगा और तत्काल ही उसकी मृत्यु हो गई।"[2] यह समाचार सुनते ही हिन्दू सेना भाग खड़ी हुई। गाहड़वाल सेना पराजित हुई और जयचंद्र मारा गया।

आक्रमण का परिणाम—चन्दावर युद्ध में गाहड़वालों की पराजय एवं जयचंद्र की मृत्यु के बाद आक्रामकों ने "स्त्रियों और बच्चों को छोड़कर" किसी को भी मारने से नहीं छोड़ा। "उनके हाथ लूट का इतना अधिक धन लगा कि उसे देखते

1. *Illiot and Dowson* : History of India (p. 278–79)
2. फरिश्ता : तारीख-ए- फरिश्ता (Illiot, p. 251)

हुए आँखें थक जाती थीं।" मुसलमानों ने कन्नौज से आगे बढ़ कर फतेहपुर के निकट असनी के उस दुर्ग को लूटा जिसमें जयचंद्र के राज्य का समस्त धन संग्रहीत था। आक्रामकों ने इसके बाद बनारस को लूटा और वहाँ के 1000 मंदिरों को ध्वस्त कर उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी कर दीं। इस प्रकार चन्दावर युद्ध का परिणाम भारत के विरुद्ध निर्णायक रहा। गाहड़वाल साम्राज्य का पतन हो गया। तत्कालीन "हिन्दू राजाओं की आपसी संकीर्णता तथा एक दूसरे से प्रतिशोध की भावना से भारत का पतन हुआ। रासो का कथन है कि जयचंद्र ने पृथ्वीराज को कुचलने के लिए गजनी के सुल्तान को आमन्त्रित किया था। प्राय: स्वीकार नहीं किया जाता। डॉ० आर० सी० मजूमदार का यह कथन ठीक प्रतीत होता है कि महमूद गजनवी की पंजाब में विजय के बाद भारत पर हमला अनिवार्य ही था।"[1]

मूल्यांकन—जयचंद्र अपने समय का अत्यन्त शक्तिसम्पन्न शासक था तथा गाहड़वाल वंश का प्रतापी राजा था। वीरता, साहस तथा शौर्य का प्रमाण उसकी दिग्विजय एवं राजसूय यज्ञ से मिलता है। उसकी विस्तारवादी नीति उसकी महत्वाकांक्षा की परिचायक थी। उसने अपने पैतृक साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया किन्तु दूरदर्शिता एवं कूटनीतिक योग्यता के अभाव में वह गाहड़वंश के पतन का कारण भी बना।

तत्कालीन भारतीय राजनीति में उसका योगदान प्रमुख रहा। उसने चदेल राज्य से मैत्री सम्बन्ध रखे, सेनवंशी शासक का अपने राज्य के अतिक्रमण करने में प्रतिरोध किया, कलचुरि तथा चालुक्यों से उसके सम्बन्ध ठीक बने रहे किन्तु चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय से ही उसके सम्बन्धों में उत्तरोत्तर कटुता बढ़ती गई। दोनों की महत्वाकांक्षा, विस्तारवादी नीति तथा वैमनस्य के कारण मुसलमान आक्रांताओं ने उन्हें सरलता से पराजित कर देश में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। यदि चाहमान–गाहड़वाल शक्तियाँ परस्पर सहयोग एवं मैत्रीभाव से रहते तो भारत का इतिहास बदल जाता और विदेशी शक्ति भारत में पैर जमाने में असमर्थ रहती।

इस परिणाम के लिए जयचंद को दोषी नहीं माना जा सकता क्योंकि तत्कालीन भारतीय राजनीति में उसने अपनी महत्वाकाँक्षा की पूर्ति हेतु अन्य शासकों की भाँति अपने साम्राज्य के हित में कार्य किया। किन्तु दूरदर्शिता एवं कूटनीतिक योग्यता का अभाव उसके व्यक्तित्व में अवश्य था।

(8) हरिश्चन्द्र (1198 ई०)

यद्यपि चन्दावर युद्ध के बाद जयचंद की पराजय तथा मृत्यु से गाहड़वाल साम्राज्य ध्वस्त हो गया था किन्तु उसकी सत्ता संकुचित क्षेत्र में कुछ समय तक बने रहने के प्रमाण मिलते हैं। मुहम्मद गौरी ने अपनी विजय से समस्त गाहड़वाल क्षेत्र पदाक्रांत अवश्य किया था किन्तु उसने कन्नौज पर अधिकार नहीं किया। वह असीम

1. डा. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (p. 125)

धन-सम्पत्ति लूट कर तथा धार्मिक स्थानों को नष्ट कर वापस लौट गया। जौनपुर जिले में स्थित मछलीशहर तहसील से जयचंद्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का एक दानपत्र प्राप्त हुआ है जिसकी तिथि 1198 ई० है तथा उसमें हरिश्चन्द्र के विरुद 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर माहेश्वर", "अश्वयति-गजपति-नरपति-राजत्रयाधिपति-विविध विधावाचस्पति" आदि अंकित है। अतः यह स्पष्ट होता है कि हरिश्चंद्र एक प्रभुसत्तासम्पन्न सम्राट था। इसकी पुष्टि 1197 ई० के रणकश्री विजयकर्ण के मिर्जापुर जिले के बेलखरा अभिलेख से भी होती है। हरिश्चंद्र का आधिपत्य मिर्जापुर, वाराणसी, जौनपुर के क्षेत्र पर होना सिद्ध होता है। हरिश्चंद्र के बाद और कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता जिसमें उसके उत्तराधिकारियों का उल्लेख हो। इस प्रकार राजपूत शासकों की परस्पर वैमनस्यता के कारण उनकी प्रतिष्ठा नष्ट-भ्रष्ट हो गई तथा भारतीय धन-सम्पदा को विदेशी आक्रांताओं ने लूटा और मंदिरों को ध्वस्त किया।

गाहड़वालों को प्रशासन-व्यवस्था
(Administration of Gabadwals)

केन्द्रीय शासन-व्यवस्था

सामन्त व्यवस्था—गाहड़वाल शासकों की अपने पूर्ववर्ती प्रतिहार शासकों के समान ही शासन-व्यवस्था थी। उनकी भाँति उन्होंने भी साम्राज्य को दो भागों में विभक्त किया था—(1) प्रत्यक्ष रूप से शासित प्रदेश, तथा (2) अप्रत्यक्ष रूप से सामंतों से प्रशासित क्षेत्र। सामंती व्यवस्था के अन्तर्गत सामंत अपने क्षेत्रों में समस्त अधिकारों का उपभोग करते थे किन्तु आवश्यकतानुसार राजा की सैनिक सहायता करते थे।

राजा का पद—यह पद पैतृक था। शासक की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र ही उत्तराधिकारी होता था। गाहड़वाल शासकों के विरुद "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" उनकी प्रभुसत्तासम्पन्न होने के सूचक हैं, विरुद "सामंतराज चक्र" या "राजचक्रवर्तिन" उनके चक्रवर्ती शासक होना प्रकट करते हैं, विरुद "अश्वपति-गजपति-नरपति-राजत्रयाधिपति" कलचुरि नरेशों की भाँति उनकी सैनिक शक्ति के द्योतक हैं तथा विरुद "विविध विद्यावाचस्पति" उनकी विद्वत्ता एवं विद्या प्रेमी होना प्रकट करते हैं।

राजा को दान देने का अधिकार था। उनके समय प्राचीन परम्पराओं और विधि-विशेषज्ञों के मतानुसार कानून बनते थे तथा न्याय-व्यवस्था तदनुकूल थी। प्रमुख युद्धों में राजा सेनापति का कार्य करता था। चन्दावर युद्ध में जयचंद्र का उदाहरण इसका प्रमाण है। लक्ष्मीधर ने "कृत्यकल्पतरु"[1] के अनुसार राजा के

1. लक्ष्मीधर : कृत्यकल्पतरु (भूमिका p. 40, 76 व 82)

कर्त्तव्य थे—व्यापार की उन्नति, उत्तम औषधियों का आयात तथा धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करना।

राजमहिषी तथा युवराज—राजमहिषी का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उन्हें अभिलेखों में सभी राजकीय अधिकारों से मंडित दिखाया गया है। गोविन्दचन्द्र की पट्टमहादेवी गोसल्लादेवी ने कर मुक्त ग्राम दान किये थे।[1] मदनपाल की रानी राल्हादेवी ने भी दान दिये थे। राजमहिषियों का निजी कोष भी होता था जो मछली शहर दानपत्र से विदित होता है।

युवराज का पद भी महत्वपूर्ण था। उसे भी ग्रामदान देने का अधिकार था। गाहड़वाल अभिलेखों में युवराज आस्फोटचंद्र और जयचंद्र ने ग्राम दान किये हैं। वे राजा की स्वीकृति से दान देते थे। महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र तो युद्ध एवं प्रशासन में राजा की समस्त शक्तियों का प्रयोग करते थे जो उनकी योग्यता का सूचक है।

मन्त्रिमण्डल तथा अधिकारी वर्ग—"राजपुरुष" नामक अधिकारी स्वयं राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे किन्तु अन्य अधिकारी ग्रामों से ही चुनाव द्वारा नियुक्त होते थे।[2] प्रमुख मन्त्री तथा अधिकारी निम्नांकित होते थे जिनका विवरण गाहड़वाल अभिलेखों तथा तत्कालीन साहित्य ग्रन्थों में मिलता है—

1. **मन्त्रिन्**—गोविन्दचन्द्र के मन्त्री व महासान्धविग्रहिक लक्ष्मीधर ने अपने ग्रन्थ "कृत्यकल्पतरु" में कहा कि राजा की सफलता की कुन्जी उसके हाथ में थी और यह मन्त्रीश्वर भी था। इससे प्रकट होता है कि गाहड़वालों के समय एक से अधिक मंत्री होते थे तथा उनका परामर्श राजा की सफलता हेतु मूल्यवान था। लक्ष्मीधर ने मंत्री की योग्यताओं में—व्यक्तित्व भव्य और आकर्षक, तीक्ष्ण विचार-शक्ति, शान्त स्वभाव, शस्त्रनीति व ज्ञान में निपुण तथा उच्चकुलोत्पन्न को स्वीकार किया है। मंत्रिन् का पद पैतृक भी तथा और योग्यता पर भी आधारित था।

2. **पुरोहित**—इसका कार्य धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करना था। लक्ष्मीधर ब्राह्मणवंशी वेदों का ज्ञाता, इतिहास व धर्मशास्त्रों का मर्मज्ञ, ज्योतिष विशेषज्ञ और विभिन्न धार्मिक क्रियाओं में पारंगत व्यक्ति को ही पुरोहित पद के योग्य मानता है। डॉ० सत्य प्रकाश का मत है कि पुरोहित युवराज का गुरु भी होता था।

3. **प्रतिहार**—परम्परागत द्वारिका के समान ही प्रतिहार के कर्त्तव्य थे यह राजदरबार का प्रमुख अधिकारी था। गाहड़वालों के समय प्रतिहार का कर्त्तव्य दान देने के समय भी प्रमुख था।

4. **सेनापति**—लक्ष्मीधर ब्राह्मण या क्षत्रिय को ही सेनापति पद के लिए उपयुक्त मानता है। उसके अनुसार सेनापति को अच्छे वंश का होना चाहिए, शस्त्रों में धुरन्धर, गजों के प्रयोग में निपुण, युद्ध रचना एवं व्यूह-निर्माण का ज्ञानी तथा

1. कौमलि दानपत्र (Antiquities of India, IV, p. 101)
2. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (p. 129)

विभिन्न प्रकार की सेनाओं को नियन्त्रण करने की शक्ति से युक्त होना चाहिए।[1] गाहड़वालों की सेना अत्यन्त विशाल थी जिसकी प्रशंसा मुस्लिम इतिहासकारों ने भी की है। अतः उसे संचालन करने हेतु उपयुक्त सेनापति की नियुक्ति की जाती थी।

5. **भण्डागारिक**—यह अधिकारी कोषाध्यक्ष अथवा समाहर्ता का कार्य करता था। डॉ० सत्य प्रकाश का मत है कि उस समय राजस्व मुद्रा के रूप में न लिया जाकर वस्तु के रूप में उगाया जाता था। अतः इस कोष का उचित समायोजन करने का श्रेय इसी अधिकारी को था। वह राज परिवार के सदस्यों के निजी कोष का परिवीक्षण भी करता था।

6. **अक्षपटलिक**—यह राज्य की आय-व्यय का विवरण रखता था। लक्ष्मीधर के अनुसार अधिकारी को मनुष्यों के चरित्र को समझने तथा उपज के सही आँकड़े एकत्रित करने की निपुणता भी अर्जित करनी पड़ती थी।। तत्कालीन दान-पत्रों में 'कारिणक' और 'कायस्थ' को इनका लेखक बतलाया गया है। अतः ये लिपिक वर्ग के थे।

7. **भिषक**—यह स्वास्थ्य अधिकारी था। लक्ष्मीधर तो इसे 'प्राणाचार्य' के नाम से भी पुकारता है। बनारस दानपत्र में भिषक का उल्लेख है।

8. **नैमित्तिक**—यह अधिकारी ज्योतिषी होता था। वह राज्य-कार्य के लिए शुभ तिथियों का निर्धारण करता था।

9. **अन्तपुरिक**—यह अन्तःपुर का अध्यक्ष होता था।

10. **दूत**—यह राजा का अन्य शासकों के दरबार में प्रतिनिधि होता था। इसे 'राजपुरुष' की श्रेणी में माना गया है।

11. **महासान्धविग्रहिक**—यह अधिकारी शान्ति तथा सन्धि के कार्यों में राजा को कूटनीतिक एवं सामयिक परामर्श देता था।

गाहड़वाल शिलालेखों में मन्त्रियों तथा अधिकारियों को वेतन के बदले कर मुक्त भूमि तथा उपहार देने का उल्लेख है।

प्रान्तीय शासन व्यवस्था

केन्द्रीय प्रशासन की भाँति राज्य की छोटी इकाइयों में कुछ अधिकारियों का विवरण प्राप्त होता है। राज्य **विषयों** में विभक्त था। चन्द्रावती अभिलेख में **"विषय अधिकारी पुरुष"** का उल्लेख है जो विषयों में राजा के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। यह पद केन्द्र और प्रान्तों को परस्पर सम्बद्ध करने का कार्य करता था।

'विषय' जिलों में विभक्त थे जिसका अधिकारी 'पाठक' होता था। जिला

1. *लक्ष्मीधर : कृत्यकल्पतरु (p. 164)*

'पट्टलों' में विभक्त थे जिनके अधिकारी 'पट्टलिक' कहलाते थे। कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख में इसका उल्लेख है।

नगर-शासन—शिलालेखों में नगर के अधिकारी को "पट्टन अधिकारी पुरुष" कहा जाता था। दानपत्रों में इसे स्वतन्त्र अधिकारी के रूप में दिखलाया गया है जो यह प्रकट करता है कि नगर-प्रशासन प्रान्तों के अधीन नहीं था बल्कि सीधे राजा के नियन्त्रण में था।

ग्राम-व्यवस्था—ग्राम का मुखिया 'महत्तम' कहलाता था। सम्भवत: इसका चुनाव ग्राम-सभा करती थी।

आय के साधन[1]

शिलालेखों के आधार पर राजस्व की आय के निम्नांकित प्रमुख कर साधन थे—

(1) भागभोग कर उपज कर था जो मुद्रा और वस्तु के रूप में लिया जाता था, (2) हिरण्य आयकर था, (3) देशबन्ध कर साक्षी जमानत पर अनुपस्थिति पर यह लिया जाता था, (4) निधि-निक्षेप कर उस धन पर लिया जाता था जिसका कोई स्वामी नहीं होता था, (5) आकर खानों और धातुओं पर कर था, (6) जल-कर तथा गोकर, (7) लवण कर, (8) प्रवणि कर ग्राम में शान्ति व्यवस्था हेतु लिया जाता था, (9) प्रवण कर मार्ग कर था, (10) तुरुष्क दण्ड आक्रमण से रक्षा हेतु लिया जाता था, (11) कूटक कर, (12) विषयदान कर।

इस प्रकार गाहड़वालों की शासन-व्यवस्था अत्यन्त सुगठित एवं प्रभावी थी। प्रतिहारों के समान किन्तु कुछ परिवर्तन तथा परिवर्धन के साथ इस व्यवस्था को क्रियान्वित किया जाता था। शिलालेखों में इस शासन-व्यवस्था को लोक कल्याणकारी होने के कारण प्रशंसा की गई है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. गाहड़वालों की उत्पत्ति सम्बन्धी कौन से मत प्रचलित हैं ? राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति सम्बन्धी मत की समीक्षा कीजिए।
   What are the prevalent theories of the origin of Gahadwals ? Evaluate the theory regarding Rashtrakut origin.
2. प्रारम्भिक गाहड़वाल शासकों में चन्द्रदेव की क्या उपलब्धियाँ थीं ? इनका मूल्यांकन कीजिए।
   What were the achievements of the early Gahadwal ruler Chandradev ? Evaluate them.
3. गाहड़वाल शासक मदनपाल के समय मुसलमानों के आक्रमण से राज्य की प्रतिरक्षा हेतु महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र की क्या भूमिका रही ? उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर इसका विवेचन कीजिये।

1. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (पृष्ठ 132–33)

What role did the crown-prince Govindchandra play in defending his kingdom from the Muslim invasion during Madanpal's reign ? Discuss it on the basis of available evidences.

4. गोविन्दचन्द्र गाहड़वाल की राजनीतिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का आलोचनात्मक विवरण दीजिये। (1974)
Give a critical review of the political and cultural achievements of Govindchandra Gahaḍwal.
5. एक साम्राज्य निर्माता के रूप में गोविन्दचन्द्र का मूल्यांकन कीजिये। (1976)
Evaluate Govindchandra as an empire builder.
6. गोविन्दचन्द्र गाहड़वाल के जीवनकृत एवं उपलब्धियों का निरूपण कीजिये। (1977)
Describe the career and achievements of Govindchandra Gahadwal.
7. तत्कालीन भारतीय राजनीति में जयचंद्र गाहड़वाल की भूमिका का परीक्षण कीजिये। (1975)
Examine the part played by Jayachandra Gahadwal in the contemporary Indian politics.
8. समकालीन राजनीति में जयचंद्र गाहड़वाल की भूमिका की समीक्षा कीजिये। उसके क्या परिणाम हुए ? (1976)
Review the part played by Jayachandra Gahadwal in the contemporary, politics. What were its results ?
9. प्रतिहारों तथा गाहड़वालों के काल में कन्नौज साम्राज्य के प्रशासन का वर्णन कीजिये। (1976)
Describe the administration of Kanauj empire during the reign of Pratiharas and Gahadwals.
10. गाहड़वाल कौन थे ? समकालीन राजनीति में जयचंद्र की भूमिका का सर्वेक्षण कीजिये। (1978)
Who were the Gahadwals ? Review the part played by Jayachandra in contemporary politics.
11. निम्नांकित पर टिप्पणी लिखिये—
(क) कन्नौज पर मुहम्मद गौरी का आक्रमण,
(ख) 'गाहड़वाल' शब्द की व्युत्पत्ति,
(ग) 'तबकात-ए-नासिरी',

(घ) लक्ष्मीधर कृत 'कृत्यकल्पतरु',
(च) कुमारदेवी का सारनाथ शिलालेख,
(छ) दिल्ली के तोमर शासक तथा गाहड़वाल,
(ज) विजयचन्द्र ।

Write short notes on the following— (1976)

(a) Muhammad Gouri's invasion of Kanauj,
(b) Meaning of 'Gahadwal',
(c) "Tabqate-e-Nasiri",
(d) "Krityakalptaru" by Laxmidhar,
(e) Sarnath Inscription of Kumardevi,
(f) Tomar rulers of Delhi and Gahadwals,
(g) Vijayachandra.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ-ग्रन्थ.

1. Dr. Roma Niyogi : History of Gahadwal Dynasty
2. D. H. C. Ray : Dynastic History of Northern India
3. डॉ० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूत काल
4. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास
5. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास
6. डॉ. मनराल एवं डॉ. मित्तल : राजपूत-कालीन उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास
7. Jai Narayan Asopa : Origin of Rajputs
8. वी० सी० पाण्डेय : उत्तर भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

7 गुजरात के चालुक्य–जयसिंह, सिद्धराज और कुमारपाल के विशेष संदर्भ में

(Chalukyas of Gujrat with special reference to Jai Singh, Siddhraj and Kumarpal)

चालुक्यों की उत्पत्ति
(Origin of Chalukyas)

चालुक्य शासकों के प्रारम्भिक शिलालेखों, ताम्रपत्रों एवं साहित्यिक ग्रंथों में चालुक्य शब्द के अनेक रूपान्तर मिलते हैं—यथा—चौलुक्य, चालुक्य, चुलुक्य चालुक्का, चुलुक्का, तथा चुलुग। चालुक्य शब्द का हिन्दी रूपान्तर सोलंकी अथवा सोलंखी है।[1] यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि बादामी, कल्याणी और वेंगी के चालुक्यों का गुजरात के चालुक्यों से कोई सम्बन्ध था अथवा नहीं। गुजरात के चालुक्य-अभिलेखों में इस सम्बन्ध का कोई उल्लेख नहीं है। श्री सी० वी० वैद्य[2] बादामी के चालुक्यों को अन्हिलवाड़ (गुजरात) के चालुक्यों से भिन्न मानते हैं किंतु श्री ओझा दोनों को एक ही वंश का मानते हैं।

चालुक्यों की उत्पत्ति के विषय में निम्नांकित मत प्रचलित हैं—

1. **अग्निवंशी उत्पत्ति**—गुर्जर-प्रतिहारों, परमारों, चाहमानों तथा चालुक्यों की आबू के पर्वत पर वशिष्ठ के यज्ञ-कुण्ड से उत्पत्ति का पूर्व के अध्यायों में विस्तार से उल्लेख किया जा चुका है। यह कथा चंदवरदाई कृत "पृथ्वीराज रासो" में वर्णित है। किंतु रासो की प्राचीनतम प्रतियों में इसका कोई उल्लेख नही है। अत: इसे बाद में चारणों द्वारा प्रतिक्षेपित मानते हुए इसके आधार पर टॉड, क्रुक, जैक्सन, कैम्पबैल, इन्द्रजी, डॉ० डी० आर० भण्डारकर और स्मिथ की मान्यताएँ ग्राह्य नहीं है। इस मान्यता के अनुसार अग्निकुल-वंश उन हूण और गूजर विदेशी आक्रमणकारियों की सन्तान थे जो भारत में आकर यहाँ के समाज मे अग्नि द्वारा शुद्ध कर या अन्य

1. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकियो का प्राचीन इतिहास (p. 1)
2. *C. V. Vaidya* : History of Medieval India, Vol. III (p. 14)

पद्धति से समाहित कर लिए गये। कनिंघम महोदय ने भी एक कथा का उल्लेख करते हुए यह मत प्रकट किया है कि ब्रह्मा के अंश से सोलंकी का जन्म हुआ जिसका नाम चालुकाराय था। ब्रह्मा की हथेली (चुलुक) से उत्पन्न वीर चालुक्य कहलाया।

डॉ० सत्यप्रकाश उक्त मत का खण्डन करते हुए उचित निष्कर्ष निकालते हैं—"अग्निकुल का सिद्धान्त विश्वसनीय नहीं है····रासो के आधार पर बहुत से इतिहासकार इस सिद्धान्त से प्रभावित हुए हैं····किंतु व्यूलर, सामलदास, ओझा, हलदर तथा डॉ० दशरथ शर्मा रासो की ऐतिहासिकता में संदेह करते हैं। इसके अतिरिक्त चौलुक्य शिलालेखों के रचनाकार, वहाँ के विद्वान और टीकाकार सभी अग्निकुल के सिद्धान्त से परिचित थे परन्तु उन्होंने परमारों के साथ चौलुक्यों को अग्निकुल से सम्बन्धित क्यों नहीं किया? इसका हम उत्तर यही दे सकते हैं कि अग्निकुल का सिद्धान्त परमारों से किसी सीमा तक भले ही जोड़ा जाये परन्तु चालुक्यों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था।"[1] "पृथ्वीराज रासो" में वर्णित अनेक अनैतिहासिक बातें जिसमें अग्निकुल से उत्पत्ति की कथा भी है, बीकानेर कोर्ट लाइब्रेरी में उपलब्ध रासो की प्राचीनतम प्रतिलिपि में नहीं है। स्वयं चालुक्यों के किसी अभिलेख में भी इसका उल्लेख नहीं है। श्री जयनारायन आसोपा[2] का कथन है कि—'प्राचीनकाल में सूर्य तथा चंद्र वंशी क्षत्रिय थे किंतु अग्निवशी क्षत्रियों के विषय में हमें पहली बार जानकारी मिली है, यद्यपि प्राचीन साहित्य में आग्नेय, अग्निय, अग्निवैष्य तथा अग्निस्तम्भ वंशियों का उल्लेख है।" अतः उक्त मत काल्पनिक व निराधार है जो दैवी उत्पत्ति के प्रति दुराग्रह प्रतीत होता है।

2. विदेशी गुर्जरों से उत्पत्ति—डॉ० डी० आर० भण्डारकर का मत है कि चालुक्य हूणों की एक शाखा खजर (गुर्जर) थे, अतः गुर्जरों के कारण लाट प्रदेश गुर्जरत्रा या गुजरात कहलाने लगा।[3] जैक्सन का कथन है कि प्रतिहार, चाहमान, परमार और चालुक्य उस विशाल विदेशी दल के साथ भारत आये जिसका नेतृत्व गुर्जर कर रहे थे। जैम्स कैम्पबेल का भी यही मत है कि इन्हीं विदेशी आक्रामकों को अग्निकुण्ड से शुद्ध कर क्षत्रिय बनाया गया ताकि वे ब्राह्मणों की बौद्धों तथा उनके विदेशी संरक्षकों से रक्षा कर सकें।

यह मत भी ग्राह्य नहीं क्योंकि चालुक्य मूलराज के शासक बनने के पूर्व भी 'गुर्जराः' शब्द आधुनिक गुजरात के लिए प्रयुक्त होता था। इसके अतिरिक्त गुर्जर शब्द का तत्कालीन प्रयोग जाति या कबीले के अर्थ में नहीं अपितु प्रदेश के रूप में होता था। उक्त मत के विरुद्ध यह तथ्य भी है कि गुर्जर नामक किसी विदेशी जाति के भारत पर आक्रमण कर प्रवेश करने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है तथा

1. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (p. 255)
2. *Jai Narain Asopa* : Origin of the Rajputs (p. 48)
3. Indian Antiquary Vol. XL (p. 24)

इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि गुर्जर मूलतः विदेशी थे। अतः चालुक्यों की विदेशी गुर्जरों से उत्पत्ति का मत निराधार है।

डॉ० ए० के० मजूमदार[1] यद्यपि डॉ० भण्डारकर के मत का खण्डन तो करते हैं किंतु वे स्वयं चालुक्यों की उत्पत्ति विदेशी मध्य एशिया के सुग्द के शक-कुषाणों से मानते हैं। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि पहलवी भाषा के सोंद और सुलिक शब्दों का ही रूपान्तर शुलिक और चुलिक थे किंतु वे सुग्द लोगों का भारत से कोई सम्बन्ध प्रमाणित नहीं कर सके। अतः इनका मत भी ग्राह्य नहीं।

3. **चंद्रवंशी उत्पत्ति**—सोलंकी (चालुक्य) नरेश विक्रमदेव के शिलालेख (1076 ई०) से विदित होता है कि चालुक्य वंश की उत्पत्ति चंद्रवंश से हुई। इसकी पुष्टि वीरनरायण मन्दिर अभिलेख, कुलोतुंग के ताम्रपत्र और चोलदेव के अभिलेख (1143 ई०) से भी होती है। किंतु इनमें से कोई भी साक्ष्य प्रत्यक्षरूप से गुजरात के चालुक्यों से सम्बन्धित नहीं है। डॉ० सत्यप्रकाश[2] इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि—"शिलालेखों के आधार पर चालुक्य सोमवंशी (चंद्र) क्षत्रिय थे जिसकी पुष्टि द्वयाश्रम काव्य से भी होती है।" किंतु इस मत का समर्थन अन्य इतिहासकार नहीं करते।

4. **ब्रह्मा के चुलुक से उत्पत्ति**—कुमारपाल के शासन के दो उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा के चुलुक (जल-पात्र) से चालुक्यों की उत्पत्ति हुई। वड़नगर प्रशस्ति में अंकित है कि दनु के पुत्रों से रक्षार्थ देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना कि जो उस समय संध्या हेतु आसन पर बैठे थे। ब्रह्मा ने गंगाजल स भरे अपने चुलुक (पात्र) से चालुक्य नामक वीर की उत्पत्ति की जिसने अपने कीर्ति प्रवाह से त्रिलोक को पवित्र किया। वह वीर चालुक्य जाति का प्रवर्तक हुआ। मेरुतुंग कृत "प्रवन्ध चिन्तामणि", बालचंद्र सूरि कृत "वसन्तविलास", जयसिंह सूरि कृत "कुमारपाल-भूपाल चरित्र" तथा बिल्हण कृत "विक्रमांकदेव चरित" में उक्त कथा का उल्लेख किया है। इस प्रकार यह मत तत्कालीन उस मनोवृत्ति का परिचायक है जो राजवंशों की उत्पत्ति किसी पौराणिक या महाकाव्य के वीर पुरुष से संबद्ध करते थे ताकि दैवी उत्पत्ति द्वारा राजवंशों की प्रतिष्ठा हो सके। अतः यह मत अनैतिहासिक एवं काल्पनिक है।

5. **भौगोलिक उत्पत्ति**—श्री जयनरायन आसोपा[3] का मत है कि चालुक्य आग्नेय कबीले के ब्राह्मण थे जो शास्त्र त्याग कर अस्त्र ग्रहण कर क्षत्रिय बन गए और अग्निवंशी क्षत्रिय कहलाने लगे। गुजरात के चालुक्य (सोलंकी) मूलतः उड़ीसा प्रदेश में खोंडमल से प्रवाहित होने वाली नदी चलिकी (चुलुकी) के तटवर्ती प्रदेश

1. *Dr. A. K. Majumdar* : Chalukyas of Gujrat (p. 13)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 256)
3. *Dr. Jai Narain Asopa* : Origin of Rajputs (p. 52-54)

के निवासी थे। अपने निकासस्थल पर यह नदी हथेली अर्थात् चुलुक के आकार की है, अतः इसका नाम चुलुकी था। इस प्रदेश से ये गुजरात आये और वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। अतः प्रदेश की भौगोलिक विशिष्ठता के कारण अपने मूल स्थान के नाम से वहाँ के निवासी पुकारे जाने लगे। गुजरात की अनेक जातियों में भी सोलंकी नाम से कुछ वर्ग पुकारे जाते हैं। अतः चालुक्य या सोलंकी शब्द की उत्पत्ति भौगोलिक है तथा चालुक्य राजवंश मूलतः ब्राह्मण थे जो बाद में क्षत्रिय बन गये थे। यह मत ही तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

मूल निवास स्थान एवं वंश-परम्परा
(Original Home and Pedigree)

चालुक्यों के मूल स्थान के विषय में उपरोक्त भौगोलिक उत्पत्ति का मत दृश्टव्य है। वंश-परम्परा के सम्बन्ध में तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों से अवगति मिलती है। जयसिंह सूरि कृत "कुमारपाल चरित" में चालुक्यवंश के मूलपुरुष का नाम चालुक्य बताया है जिसे मधुपद्म का राजा और अनेक शत्रुओं का विजेता कहा गया है। किंतु इस का प्रमाण अन्य किसी साक्ष्य से नहीं मिलता। 13वीं शताब्दी में कृष्णाजी कृत "रत्नमाला" में उल्लेख है कि कान्यकुब्ज के कल्याणकटक नामक स्थान पर भूयड नामक राजा राज्य करता था। उसने गुजरात के राजा चावोत्कट को आक्रमण कर मार डाला। उसकी विधवा रानी रूपसुन्दरी वन में भाग गई जहाँ उसने वनराज नामक पुत्र को जन्म दिया। यही वनराज चपोत्कट वंश का संस्थापक था। भूयड के उत्तराधिकारियों के नाम क्रमशः कर्णादित्य, चंद्रादित्य, सोमादित्य, भुवनादित्य और राजि हैं। राजि ने अन्हिलवाड़ (गुजरात) पर आकर वहाँ के चपोत्कटवंशी अंतिम नरेश सामन्तसिंह की बहिन से विवाह कर मूलराज को जन्म दिया। इस ग्रन्थ में उन स्थितियों का उल्लेख नहीं किया गया जिनमें मूलराज ने अन्हिलवाड़ पर आधिपत्य किया।

मेरुतुंग कृत "प्रबन्धचिन्तामणि" में भी मूलराज के पिता राजि का सम्बन्ध कान्यकुब्ज के कल्याणकटक नामक स्थान से सम्बद्ध किया है। राजि वहाँ के राजा भूयराज (हेमचंद्र राय[1] के अनुसार भुवनादित्य) का पौत्र था। डॉ. अ. कु. मजूमदार[2] "प्रबन्धचिन्तामणि" के भूमराज और "रत्नमाला" के भूयड का समीकरण करते हैं। उपरोक्त वंश परम्परा सम्बन्धी विवरण में चालुक्यों का तत्कालीन सम्राट गुर्जर-प्रतिहारों से सम्बन्ध तथा कल्याणकटक स्थान की स्थिति स्पष्ट नहीं होती। फिर भी चालुक्यों के गुजरात में संस्थापित राज्य के प्रथम शासक मूलराज की वंश-परम्परा पर प्रकाश अवश्य पड़ता है।

1. *Dr. H. C. Roy* : Dynastic History of Northern India Vol. II (p. 935)
2. *Dr. A. K. Majumdar* : Chalukyas of Gujrat (p. 19)

चालुक्य-शासक
(Chalukya Rulers)

चालुक्य-शासकों का विवरण निम्नांकित है—

1. मूलराज (941-996 ई०)

राज्यारोहरण—गुजरात की चालुक्य शाखा का संस्थापक मूलराज था। उसके अधिकार में सारस्वत मण्डल (रत्नपुर के देहगम नामक स्थान) ही था किन्तु अपनी महत्वाकांक्षा एवं साहस के आधार पर उसने गुजरात पर अधिकार किया। मूलराज के पिता राजि को 'महाराजाधिराज' कहा गया है जो यह प्रकट करता है कि गुर्जर-प्रतिहारों की पतनावस्था में उनका सामन्त राजि स्वतन्त्र हो गया था।

गुजराती अनुश्रुतियों से ज्ञात होता है कि मूलराज ने अपने मामा पंचाशर के शासक चापोत्कट सामन्तसिंह को मार कर अन्हिलवाड़ की राजगद्दी हथिया ली। कुमारपाल की बड़नगर प्रशस्ति से विदित होता है कि मूलराज करों में कमी कर प्रजा में प्रिय हो गया। उसके कादि अभिलेख में अंकित है कि उसने "सारस्वत क्षेत्र अपनी बाहुओं की शक्ति से जीता।" मेरुतुंग कृत "प्रबन्धचिन्तामरिण" में स्पष्ट उल्लेख है कि वह अपने मद्यप मामा सामन्तसिंह की हत्या कर सिंहासन पर बैठा। इन साक्ष्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूलराज राजसिंहासन का अपहर्त्ता था, विजेता नहीं।[1]

विजयें—मूलराज एक महत्वाकांक्षी शासक था। अतः उसने अनेक सैनिक अभियान कर अपने राज्य का विस्तार किया। उसकी प्रमुख विजयें निम्नांकित हैं—

1. **सूरक्षेत्र और कच्छ पर विजय**—मूलराज ने सूरक्षेत्र और कच्छ पर आक्रमण कर वहाँ के शासक क्रमशः गृहरिपु तथा लक्ष को हराया और उसके क्षेत्र अधिकृत किये। इसकी पुष्टि हेमचंद्र कृत "द्वयाश्रयकाव्य" से होती है जिसके अनुसार अपने मन्त्रियों की सलाह से मूलराज ने सूरक्षेत्र पर आक्रमण किया और वहाँ के अपने सामन्त गृहरिपु को मार डाला। गृहरिपु के साथ कच्छ का शासक लक्ष भी मूलराज से पराजित हुआ। मेरुतुंग कृत "प्रबन्धचिन्तामरिण" में कहा गया है कि कच्छ नरेश लक्ष लाखाफूलड़ का पुत्र था जिसने मूलराज की सेना को ग्यारह बार पराजित किया किन्तु बारहवीं बार मूलराज ने उसे एक दुर्ग में घेर कर मार डाला। मूलराज के कच्छ-संघर्ष का विवरण "कीर्तिकौमुदी", "वसन्तविलास" तथा "सुकृत-संकीर्तन" ग्रन्थों में भी मिलता है।

अतः इन साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि मूलराज ने सूरक्षेत्र और कच्छ के शासकों को पराजित किया किन्तु यह संदिग्ध है कि उसने इन क्षेत्रों पर अपना स्थायी अधिकार किया। उसने इन क्षेत्रों के कुछ प्रदेशों पर ही अधिकार किया।

1. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (p. 348)

2. **शाकम्भरी के चौहानों से संघर्ष**—मेरुतुंग की "प्रबन्धचिन्तामणि" के अनुसार सपादलक्ष (शाकम्भरी) के चौहान शासक (विग्रहराज द्वितीय) तथा लाट-नरेश वारप ने एक ही समय मूलराज पर आक्रमण किया। अपने मन्त्रियों की की सम्मति से मूलराज ने कच्छ के कन्था दुर्ग में शरण ली। "पृथ्वीराज विजय" ग्रन्थ में भी इस घटना का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि विग्रहराज द्वितीय सैनिक अभियान करता हुआ भृगुकच्छ पहुँचा जहाँ उसने आशापुरी माता का मन्दिर बनवाया। कन्था दुर्ग में छिपने का उद्देश्य मूलराज का यह था कि जब विग्रहराज आशापुरी माता के दर्शन हेतु आयेगा तो वह उस पर आक्रमण करेगा किन्तु उसकी यह चाल सफल न हुई। अन्ततः मूलराज ने विग्रहराज के पास उसके शिविर में जाकर उससे प्रार्थना की कि वह बारवा के आक्रमण के समय उसका साथ न दे। विग्रहराज ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली जिसके कारण मूलराज ने बारवा को सरलता से पराजित कर दिया। यह देख कर चौहान नरेश वापस लौट गया।

3. **लाट प्रदेश की विजय**—मेरुतुंग के अनुसार वारप तिलिंग-नरेश का सेनापति था। सम्भवतः 973 ई० में राष्ट्रकूट नरेश कोक्कल को पराजित कर पश्चिमी चालुक्य राजा तैल द्वितीय ने वारप को अपना सामन्त बनाया और उसे लाट प्रदेश का प्रभारी बना दिया। हेमचन्द्र कृत "द्वयाश्रय" के अनुसार मूलराज ने वारप पर आक्रमण कर उसे हराया और लाट प्रदेश को अधिकृत किया।

4. **मालवा के परमारों से संघर्ष**—लाट प्रदेश पर अधिकार करने के बाद मूलराज का संघर्ष मालवा के परमार शासक वाक्पति से हुआ। उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि परमार शासक मुंज ने लाट प्रदेश पर विजय प्राप्त की थी। अतः मूलराज द्वारा लाट प्रदेश अधिकृत करने के कारण उसका संघर्ष वाक्पति से हुआ। मुंज के राजकवि पद्मगुप्त के अनुसार मुंज के आक्रमण के कारण गुर्जर राजा मूलराज की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई। उसने आहार और जल के बिना बड़ा कष्टमय जीवन बिताया। बीजापुर के शिलालेख के अनुसार मुंज के भीषण युद्ध के कारण मूलराज की शक्ति नष्ट हो गई और मूलराज को राष्ट्रकूट नरेश धवल ने शरण दी। डॉ० अशोक कुमार मजूमदार का कथन है कि 946 ई० तक उज्जैन गुर्जर-प्रतिहारों के अधिकार में था किन्तु 973 ई० में वह परमारों के अधीन हो गया क्योंकि इसी वर्ष उज्जैन से मुंज ने एक दानपत्र उत्कीर्ण कराया। अतः डॉ० सत्यप्रकाश[1] का कथन ही उपयुक्त प्रतीत होता है कि "मुंज ने जिस गुर्जर शासक को मृत्यु के घाट उतारा वह गुजरात का मूलराज नहीं था वरन् गुर्जर प्रतिहार वंश का कोई शासक था।"

5. **आबू पर विजय**—राष्ट्रकूट नरेश धवल के शिलालेख (997 ई०) से ज्ञात होता है कि उसने आबू नरेश धरणीवराह को आश्रय दिया जबकि वह मूलराज

1. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (पृ० 260)

से पराजित हो आबू से भगा दिया गया था। बाद में मूलराज ने धरणीवराह को अपना माण्डलिक बना लिया होगा क्योंकि धरणीवराह का पौत्र मूलराज के पौत्र का माण्डलिक था।

6. कलचुरियों से युद्ध—बिल्हरी चेदि उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि कलचुरि राजा युवराज ने लाट की नारियों के ललाटों को अलंकृत किया और युवराज के पुत्र लक्ष्मणराज ने समुद्र में स्नान कर सोमेश्वर की पूजा की। अतः प्रतीत होता है कि युवराज ने लाट प्रदेश पर आक्रमण किया था। कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण के गोहवाँ दानपत्र में उसको लाट और गुर्जर राजा पर विजय प्राप्त करता हुआ बतलाया गया है। लक्ष्मणराज मूलराज का समकालीन शासक था। अतः यह सम्भावना प्रतीत होती है कि सोमनाथ जाने के पूर्व लक्ष्मणराज ने मूलराज को पराजित किया हो।

राज्य विस्तार—शिलालेखों के आधार पर मूलराज के राज्य में वीरमग्राम, चनसन, पटन और मेहसाना तालुका सम्मिलित थे तथा उसकी राजधानी अन्हिलपट्टन थी। बलेरा अभिलेखों के अनुसार उसने लाट प्रदेश से नर्मदा तक का क्षेत्र विजित किया था। इस प्रकार उत्तर में संचौर और सूरक्षेत्र व कच्छ से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक का प्रदेश उसके अधिकार में था।

मूल्यांकन—मूलराज को गुजरात के चालुक्य वंश के संस्थापक होने का श्रेय प्राप्त है। अपनी वीरता, साहस तथा कूटनीति से उसने काफी विस्तृत क्षेत्र को विजित कर अपने राज्य में सम्मिलित किया। श्रीधर की देवपट्टन प्रशस्ति में मूलराज के जनहित कार्यों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि उसने शरणार्थीगृहों, विद्यालयों, अन्न-सत्रों, बाजारों, नगरों, ग्रामों, जलाशयों, कुओं आदि का निर्माण कराया तथा उनकी देखरेख के लिए अधिकारी नियुक्त किये। उसने करों को कम कर कृपकों का कष्ट दूर किया। वह एक कुशल प्रशासक था। उसके कुल पुरोहित सील तथा मन्त्री वीर का उल्लेख शिलालेखों में है। 976 ई० में उसने चामुण्डराज को युवराज नियुक्त किया और उसे राजसत्ता सौंप दी। सरस्वती के तट पर श्रीस्थल या सिद्धपुर नामक स्थान पर 997 ई० में चिता में भस्म होकर उसने अपनी इहलीला समाप्त की।

(2) चामुण्डराज (997–1009 ई०)

जैसा कि पूर्व में कहा गया है चामुण्डराज 976 ई० से ही युवराज पद पर आसीन हो समस्त राज्य-कार्यों में सक्रिय भाग ले रहा था। राज्याभिषेक के समय उसकी काफी आयु थी। युवराज के रूप में ही उसने अनेक दान दिए। हेमचन्द्र के अनुसार मूलराज के शासन-काल में बारप को हराने का श्रेय चामुण्ड को दिया गया है क्योंकि वह युद्ध का नेतृत्व कर रहा था।

परमार शासक सिन्धुराज से संघर्ष—मालवा का परमार शासक सिन्धुराज चामुण्डराज का समकालीन था। सिन्धुराज के राजकवि पद्मगुप्त ने लिखा है कि सिन्धुराज ने लाट प्रदेश पर भी विजय प्राप्त की। वड़नगर प्रशस्ति में कहा गया है

कि सिन्धुराज को चामुण्डराज ने बुरी तरह पराजित किया तथा उसके यश को हर लिया। वसन्तपाल तेजपाल प्रशस्ति के अनुसार चामुण्डराज ने अपने शत्रु राजकुमारों का शीश काट कर इस पृथ्वी का शृंगार किया। जयसिंह सूरि कृत "कुमारपाल भुवनपाल चरित" में कहा गया है कि सिन्धुराज की चामुण्डराज ने हत्या कर दी। सिन्धुराज की इस पराजय से गुर्जर नरेश का प्रभाव आबू और मेवाड़ में बढ़ गया।

लाट प्रदेश के लिए पश्चिमी चालुक्यों से संघर्ष—जब चामुण्डराज सिन्धुराज से संघर्षरत था तो पश्चिमी चालुक्यों ने लाट पर अधिकार कर लिया और वारप के पुत्र गोग्गिराज को वहाँ के सिंहासन पर बैठाया। पश्चिम चौलुक्यों के विवरणों में सत्याश्रय द्वारा चामुण्डराज को पराजित करने का उल्लेख है। इस प्रकार चामुण्डराज के समय लाट प्रदेश गुजरात के चालुक्यों के हाथ से निकल गया।

(3) वल्लभराज (1009 ई०)

हेमचंद्र के अनुसार चामुण्डराज के तीन पुत्र थे—वल्लभराज, दुर्लभराज और नागराज। वड़नगर प्रशस्ति में चालुक्य शासकों की सूची में वल्लभराज का नाम सम्मिलित है किन्तु कुछ शिलालेखों में नहीं है। हेमचंद्र कृत "सिद्ध हेमचंद्र" में वल्लभ की प्रशस्ति दी हुई है। वल्लभराज का राज्यकाल अत्यन्त अल्प था, अतः कुछ सूचियों में उसका नाम नहीं है। उसकी मृत्यु उसके पिता चामुण्डराज के जीवन में हुई। चामुण्डराज के सिंहासन त्यागने के बाद वल्लभ का राज्याभिषेक हुआ था।

"अभयतिलकगणि" तथा "प्रवन्ध चिन्तामणि" ग्रन्थों में वल्लभराज द्वारा मालवा पर आक्रमण करने तथा धारा को घेरने का उल्लेख है किन्तु हेमचन्द्र द्वारा रचित प्रशस्ति में नहीं है तथा यह कहा गया है कि मालवा आक्रमण के पूर्व उसकी मृत्यु हो गई थी। वल्लभराज की मृत्यु के बाद चामुण्डराज ने अपने दूसरे पुत्र दुर्लभराज को सिंहासन पर बैठाया और वह स्वयं नर्मदा तट पर शुक्ल तीर्थ को लौट गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

(4) दुर्लभराज (1009–1023 ई०)

दुर्लभराज की प्रमुख उपलब्धि लाट की पुनर्विजय थी। वड़नगर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि क्रोध से उसकी भ्रकुटि तन गई तथा लाट देश का उसने विध्वंस कर दिया। जयसिंह सूरि कृत "कुमारपाल भुवनपाल चरित" से इसकी पुष्टि होती है। त्रिलोचनपाल के सूरत दानपत्र में भी अंकित है कि गोग्गिराज के पुत्र कीर्तिपाल ने अपना राज्य खो दिया। कीर्तिपाल के एक अन्य लेख से विदित होता है कि 1018 ई. तक दुर्लभराज ने लाट प्रदेश पुनः हस्तगत कर लिया। दुर्लभराज के उत्तराधिकारी भीम प्रथम के दान-पत्र से विदित होता है कि कच्छ चालुक्य राज्य का अंग था।

(5) भीम प्रथम (1024–1064 ई०)

राज्यारोहण—हेमचन्द्र के अनुसार दुर्लभराज सन्तानहीन था, अतः उसने अपने छोटे भाई नागराज के पुत्र भीम क राज्याभिषेक किया। 1024 ई. में दुर्लभराज और नागराज दोनों की मृत्यु हो गई। भीम प्रथम ने तत्कालीन राजनीति में

कूटनीतिक प्रतिभा के कारण अपने सभी शत्रुओं को शक्तिहीन कर दिया। भीम प्रथम के समय महमूद गजनवी का आक्रमण प्रमुख घटना थी।

महमूद गजनवी का सोमनाथ पर आक्रमण (1025 ई०)
(Mahmud Gajanavi's invasion of Somnath)

आक्रमण के कारण तथा उसकी तैयारी—भीम के गद्दी पर बैठने के एक वर्ष बाद ही महमूद गजनवी ने गुजरात पर आक्रमण किया। दुर्भाग्यवश चौलुक्य-अभिलेखों में इस आक्रमण का कोई उल्लेख नहीं मिलता। मुस्लिम साक्ष्यों के आधार पर ही इस आक्रमण का विवरण मिलता है। मुस्लिम लेखक अलगर्दीजी ने 1048 ई. में अपने ग्रन्थ "किताब-जैनुल-अखबार" में सर्वप्रथम इस आक्रमण का उल्लेख किया है जिसका अनुवाद डॉ० एच० सी० रे[1] ने किया है। गर्दीजी लिखता है कि समुद्र के किनारे बसे सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण करने में महमूद को अत्यन्त दुर्गम और कष्टमय मार्ग से गुजरना पड़ा। अलबेरुनी सोमनाथ पर आक्रमण के कारण का उल्लेख करता हुआ लिखता है कि महमूद को समुद्री मार्ग से आने वाले व्यापारियों से सोमनाथ की ख्याति सुनने को मिली। उसे यह भी बताया गया कि सोमनाथ की मूर्ति वही है जिसे रसूल ने कबा से हटाया था और जो अदन होकर सोमनाथ आ गई। इसके अतिरिक्त महमूद को सोमनाथ मंदिर में अपार धन सम्पत्ति एकत्रित होने का पता भी लगा। अतः उसने मूर्ति तोड़ने तथा धन लूटने की योजना बनाई।

आक्रमण मार्ग—इब्न-उल-अतहर ने 1230 ई० में अपनी पुस्तक "तारीख-उल-कामिल" में लिखा है कि "महमूद ने सोमनाथ-आक्रमण की तैयारी मुल्तान में की। वह 30 हजार घोड़े लेकर 1025 ई. में मुल्तान से चला। 30 हजार ऊँटों पर उसने पानी और भोजन सामग्री रखवाई। मरुस्थल पार कर उसने एक दुर्ग जीता और अन्हिलवाड़ पहुँचा जहाँ का राजा नगर छोड़कर अपनी रक्षार्थ एक दुर्ग में भागकर छिप गया। महमूद सोमनाथ की ओर बढ़ गया।" रेगिस्तानी मार्ग में जिस दुर्ग को उसने जीता था, वह जेसलमेर के 10 मील उत्तर-पश्चिम में लोद्रवा का दुर्ग था। वहाँ से वह मल्लानी होता हुआ अन्हिलपाटन पहुँचा। गर्दीजी, निजामुद्दीन तथा बदायुनी का कथन है कि परमदेव ने महमूद के लौटते समय उसका मार्ग अवरुद्ध किया। फरिश्ता के अनुसार नहरवाल के शासक परमदेव ने महमूद को लौटती बार रोका तथा परमदेव के वंश के भीम द्वितीय ने भी सुल्तान महमूद का विरोध किया। डॉ० सत्य प्रकाश[2] ने इन साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि "परमदेव और कोई नहीं, भीम प्रथम था।" अन्हिलवाड़ राजधानी छोड़ कर भाग जाना कुछ इतिहासकारों की दृष्टि में कायरतापूर्ण कार्य था किन्तु डॉ० ए० के० मजूमदार[3] के

1. *Dr. H. C. Ray* : Dynastic History of Northern India, Vol. II. (p. 253)
2. डा० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास, राजपूतकाल (p. 263)
3. *Dr. A. K. Majumdar* : Chalukyas of Gujrat (p. 45)

मतानुसार भीम प्रथम द्वारा अन्हिलवाड़ छोड़कर कन्था दुर्ग में चला जाना सुल्तान महमूद की विशाल सेना द्वारा क्षिप्रगति आक्रमण से अन्हिलवाड़ की सुरक्षा करने का बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य था।

फरिश्ता का कथन है कि महमूद मुल्तान से अजमेर पहुँचा किन्तु वहाँ के दुर्ग को जीतना कठिन समझ कर वह अन्हिलवाड़ चला गया किन्तु डॉ० हेमचन्द्र राय इस कथन को विश्वसनीय नहीं मानते क्योंकि महमूद अजमेर के शक्तिशाली चौहानों से संघर्ष करना नहीं चाहता था, अतः अन्हिलवाड़ जाने के पूर्व वह अजमेर नहीं गया। वे "तारीखे-अल्फी" के कथन में विश्वास करते हैं कि महमूद जैसलमेर के रास्ते से अन्हिलवाड़ पहुँचा। दुर्गम रेगिस्तानी मार्ग के कारण ही वह पानी और खाद्य सामग्री ऊँटों पर लाद कर मुल्तान से चला था। डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[1] का मत है कि—"इन दुर्गम और अप्रयुक्त मरुस्थल मार्गों से होकर आगे बढ़ने के महमूद के निश्चय का मुख्य उद्देश्य था कि वह भीम को युद्ध की तैयारी का कोई मौका न देकर चौलुक्यों की राजधानी में एकाएक घुस जाये। वह इस उद्देश्य में पूर्ण सफल भी रहा।"

सोमनाथ-आक्रमण—महमूद जब अन्हिलपाटन से सोमनाथ जा रहा था तो मार्ग में मोधेरा नामक स्थान पर चालुक्य सेना ने उसे रोकने का असफल प्रयत्न किया। वहाँ से वह देलवाड़ होता हुआ 6 जनवरी 1026 ई० को सोमनाथ पहुँचा। मुस्लिम लेखकों के अनुसार महमूद ने सोमनाथ के चारों ओर से दुर्ग को घेर लिया। गर्दीजी के अनुसार दुर्ग का शासक भाग कर एक द्वीप में छिप गया। अगले दिन सीढ़ी लगाकर महमूद की सेना दुर्ग में प्रवेश कर गई। 8 जनवरी को युद्ध हुआ। अपने मंदिर की रक्षा करते हुए 50 हजार हिन्दू युद्ध में मारे गये। गर्दीजी के अनुसार महमूद ने शिवजी की मूर्ति नींव से खोदकर निकाल ली। महमूद ने मूर्ति को निकाल कर जमीन पर पटक दिया और उसे तोड़ कर छोटे टुकड़ों में बिखेर दिया। कुछ टुकड़ों को वह ऊँटों पर लाद कर गजनी ले गया जहाँ उन्हें मस्जिद की सीढ़ियों में लगा दिया गया ताकि नमाज के लिए जाते हुए मुसलमानों के पैरों के नीचे वह पड़ें। मंदिर को लूटकर काफी धन वह अपने साथ ले गया। "तारीखे-उल्की" तथा "तारीखे-फरिश्ता" ग्रन्थों में दिये इस उल्लेख को अब विद्वान् स्वीकार नहीं करते कि ब्राह्मणों और पुजारियों ने महमूद से धन लेकर मूर्ति न तोड़ने की प्रार्थना की वरन् सत्य यह है कि मूर्ति खोखली थी और उसमें हीरे-जवाहरात भरे हुए थे और महमूद ने उसे तलवार के एक वार में ही तोड़ डाला।

महमूद के लौटने का मार्ग—महमूद गजनवी सोमनाथ 15 दिन के लगभग रुका। गर्दिजी का कथन है कि परमदेव (भीम) भारतीय नरेश महमूद का मार्ग रोके खड़ा था। अतः महमूद ने अपनी पराजय के भय से गजनी का सीधा मार्ग छोड़कर संकटपूर्ण मार्ग चुना। वह मंसूरा होते हुए मुल्तान गया। मार्ग में उसके

1. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 503)

बहुत से सैनिक भूख और प्यास से मर गये।[1] मंसूरा जाते समय खोन्दमीर के अनुसार उसने एक किला जीता जिसमें नहरवाल या अन्हिलपाटन के राज्यपाल ने शरण ले रखी थी। भीम के आक्रमण से बचने के लिए महमूद ने कच्छ व सिन्ध का मार्ग अपनाया था। ऐसा कहा जाता है कि सोमनाथ मंदिर को नष्ट करने का बदला लेने के लिए एक भारतीय ने महमूद को जलरहित मरुस्थल की ओर जाने को प्रेरित किया। महमूद की सेना के पिछले भाग को जाटों ने खूब तंग किया। फरिश्ता का यह कथन कि लौटते समय महमूद ने भीम पर आक्रमण किया, अन्य साक्ष्यों से पुष्ट नहीं होता। इस अभियान में महमूद को छः महीने लगे।

भीम की सिन्ध-विजय—हेमचन्द्र के अनुसार दो सैनिकों के यह कहने पर कि सिन्ध का राजा हम्मुक और चेदि राजा भीम की आज्ञा का पालन नहीं करते और अपमान करते हैं, भीम ने सिन्धु नदी पर पुल बनवा कर अपनी सेना पार की तथा सिन्ध के राजा हम्मुक को परास्त कर उसे अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया।[2] मरुतुंग के कथन से भी भीम की सिन्ध-विजय की पुष्टि होती है। हेमचन्द्र भीम द्वारा इस अभियान में सैंधवों तथा कच्छों की पराजय का उल्लेख करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी काठियावाड़ में सैंधव वंश राज्य कर रहा था जैसा कि सैंधवों के पट्टों से विदित होता है और हम्मुक सैंधव राजा था। महमूद के गजनी लौटने के बाद ही भीम ने सिन्ध विजय की होगी।

आबू पर विजय—मूलराज पूर्व में आबू से उसके शासक धरणीवराह को बाहर खदेड़ चुका था। धरणीवराह का पौत्र धंधुक मूलराज के पौत्र दुर्लभ का माण्डलिक था किन्तु धंधुक के विद्रोह करने पर भीम ने उसको परास्त किया और विमल को आबू का दण्डपति नियुक्त किया। बाद में विमल के आग्रह पर भीम ने धंधुक को आबू में पुनः स्थापित किया। धंधुक को परमार शासक भोज का समर्थन प्राप्त था, अतः उसने दुबारा विद्रोह किया क्योंकि धंधुक के पुत्र पूर्णपाल के एक उत्कीर्ण लेख (1042 ई०) में उसे "महाराजाधिराज" विरुद के साथ अर्बुद मंडल का शासक कहा गया है। किन्तु विमल के एक उत्कीर्ण लेख (1062 ई०) से स्पष्ट होता है कि आबू पुनः भीम के अधिकार में था और वह 13वीं सदी तक चालुक्य राज्य का अंग बना रहा। सम्भवतः परमार शासक भोज की मृत्यु के कारण भीम को आबू पुनः जीतना सरल हो गया था।

भीनमाल के परमारों से संघर्ष—सुन्धा पर्वत पर उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि परमारों की भीनमाल शाखा का कृष्णदेव उस समय तक भीम का बन्दी था किन्तु नाडुल्य के चाहमान शासक अणहिल्ल ने भीम को परास्त कर कृष्णदेव को मुक्त कराया। इसके बाद कृष्णदेव के अभिलेखों में उसे महाराजाधिराज की उपाधि से स्वतन्त्र शासक कहा गया है।

1. Indian History Quarterly IX (p. 941–42)
2. हेमचन्द्र : द्वयाश्रय काव्य (8 : p. 117–24)

नाडुल्य के चाहमानों से संघर्ष—भीम के समय चालुक्यों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण चालुक्य-चाहमान संघर्ष भीम के पुत्र कर्ण के समय तक चलता रहा। सुन्धा पर्वत लेख में भीम की चाहमान अहिल्ल द्वारा पराजय का स्पष्ट उल्लेख है। अहिल्ल के चाचा अणहिल्ल ने भी (जो अहिल्ल के बाद शासक बना) भीम को हराया। सुन्धा लेख से ही ज्ञात होता है कि अणहिल्ल के पुत्र बालाप्रसाद ने भीनमाल के परमार राजा कृष्णराज को भीम के कारावास से छुड़ाया। बालाप्रसाद के छोटे भाई जिन्दुराज या जेन्द्रराज ने सान्डेराव और शन्डेरक स्थानों पर भीम की सेना को हराया। ऐसा प्रतीत होता है कि भीम इन युद्धों में आक्रामक रहा और चाहमान सुरक्षात्मक युद्ध लड़ रहे थे।

मालवा के परमारों से संघर्ष—भीम के समकालिक प्रतिद्वन्दी नरेश थे—परमार भोज (1010–1055 ई०) तथा चेदि का कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण (1041–1072 ई०)। अतः सत्ता के लिए इन तीनों महत्वाकांक्षी नरेशों में बारी-बारी से युद्ध हुए किन्तु कूटनीति से भीम अपने इन दोनों शत्रुओं को नष्ट करने में सफल रहा। सर्वप्रथम भीम और भोज का संघर्ष हुआ। पहले तो भोज भीम को दबाने में कुछ सफल रहा किन्तु बाद में भीम भोज के सभी शत्रुओं का एक संघ बनाकर मालवा पर आक्रमण कर भोज की शक्ति क्षीण कर दी। भीम को इस कार्य में अधिक सहायता अपने मित्र कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण से मिली किन्तु लक्ष्मीकर्ण के अधिक शक्तिसम्पन्न हो जाने पर भीम ने उसके विरुद्ध भी संघ निर्मित किया। इस बार भीम का सहायक भोज परमार का उत्तराधिकारी जयसिंह द्वितीय था। इस प्रकार भीम ने अपनी कूटनीतिक प्रतिभा से तत्कालीन राजनीति में अपना प्रमुख स्थान बना लिया।

मेरुतुंग[1] कृत "प्रबन्ध चिन्तामणि" से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में भोज और भीम की मित्रता थी किन्तु भोज ने इस मैत्री-सन्धि को भंग कर गुजरात पर उस समय आक्रमण कर दिया जब वहाँ अकाल पड़ रहा था। भीम ने अपने गुप्तचरों द्वारा भोज की इस योजना का पता लगा लिया और भोज को इस आक्रमण से विरत करने के लिए उसने अपने सांधिविग्रहिक दामर को भेजा। दामर ने भोज की राजधानी धारा में एक नाटक आयोजित किया जिसमें भोज को भी आमन्त्रित किया गया। इस नाटक में भोज का ध्यान उस दृश्य की ओर आकर्षित किया गया जिसमें तिलंग प्रदेश के चालुक्य राजा तैलप (द्वितीय) ने परमार राजा मुंज को मारकर अपनी राजधानी में सूली पर लटका दिया था। यह देखकर भोज ने अपने आक्रमण की दिशा गुजरात की अपेक्षा कल्याणी के चालुक्यों की ओर मोड़ दी। इसी समय दामर ने भोज को एक जाली पत्र दिखलाया जिसमें लिखा था कि भीम मालवा पर आक्रमण हेतु भोगपुर पहुँच गया है। अतः भोज ने दामर से निवेदन किया कि वह

1. मेरुतुंग : प्रबन्ध चिन्तामणि (पृष्ठ 41)

किसी तरह भीम के अभियान को रोक दे। इस प्रकार दामर अपनी कूटनीति से भोज के गुजरात पर आक्रमण को रोक सका।

बाद में जब भीम सिन्ध-विजय करने में व्यस्त हो गया तो भोज ने कुलचंद्र नामक एक दिगम्बर को गुजरात के विरुद्ध भेजा। कुलचंद्र ने अनहिलपाटन को लूटा और नष्ट कर राज प्रासाद के फाटक के सामने कौड़ियाँ बो दी जिससे भोज को अशांति हुई कि अब मालवा से धन का बहाव गुजरात की ओर होगा। भोज और भीम ने फिर से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये। भीम का प्रभाव मालवा में बढ़ता गया। एक दिन कुछ गुजराती सैनिकों ने भोज को घेर लिया जब कि वह अपने इष्टदेव की पूजा कर लौट रहा था। मेरुतुंग ने इस तथ्य का उल्लेख किया है।[1] भीम ने मालवा पर आक्रमण करने के लिए कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण से मित्रता कर ली और यह तय कर लिया कि विजित प्रदेश को वे दोनों आपस में बराबर बाँट लेंगे। मालवा पर आक्रमण किया गया। भीम युद्ध की अवधि में ही मर गया। परमार पराजित हुए। भोज की इस पराजय का उल्लेख शिलालेखों में भी मिलता है। बड़नगर प्रशस्ति में अंकित है कि—"भीम अपने शत्रुओं के लिए भयानक और अपने मित्रों के लिए स्नेहमय था। इसमें क्या आश्चर्य था कि उसके अश्व जो पाँच पगों की निष्पत्ति में अत्यन्त कुशल थे, शीघ्रता से मालवा की राजधानी धारा पहुँचे।" सोमेश्वर[2] का कथन है कि भीम ने धारा के राजा को पराजित किया और उसे जीवनदान दिया। वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति में उत्कीर्ण है कि "इस आक्रमण से भोज के हृदय से लक्ष्मी, मुख से सरस्वती तथा हाथों से तलवार छूट गई।" अरिसिंह और बालचंद्र भी अपने ग्रन्थ "सुकृत संकीर्तन" में लिखते हैं कि भीम की विजय हुई। जयसिंह कृत "कुमारपाल भुवनपाल चरित" में लिखा है कि—"भीम की महानता के समक्ष भोज की भुजा कमल की तरह सूख गई।" भोज की यह पराजय 1055 ई० के लगभग हुई प्रतीत होती है।

कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण से संघर्ष—मेरुतुंग के अनुसार लक्ष्मीकर्ण ने भोज की सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। भीम ने अपने सन्धिविग्रहिक दामर को लक्ष्मीकर्ण से आधा धन मांगने को भेजा। दामर ने अपने सैनिकों की सहायता से सोते हुए कर्ण को घेर लिया। कर्ण ने सोने की एक शिला देकर भीम को संतुष्ठ किया। हेमचंद्र भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। किन्तु इस कथन में संदेह होता है क्योंकि लक्ष्मीकर्ण के रेवा अभिलेख में अंकित है कि "जब कर्ण गुजरात गया तो गुर्जर नारियों के गालों पर आंसू बहने लगे।" इसकी पुष्टि पिंगल श्लोक से भी होती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि भोज की पराजय के बाद कलचुरियों से भीम के सम्बन्ध कटु हो गये थे।

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 41)
2. सोमेश्वर : कीर्तिकौमुदी (2 : p. 17–20)

मूल्यांकन—उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भीम एक वीर, साहसी तथा महत्वाकांक्षी शासक था। अपने समकालीन अन्य शक्तिशाली शासकों—परमार भोज, कलचुरिकर्ण तथा कल्याणी का चालुक्य नरेश की शक्ति को जिस प्रकार भीम ने क्षीण किया, वह उसकी कूटनीतिक प्रतिभा का परिचायक है। "भीम कूटनीति के प्रयोग में अत्यन्त कुशल था तथा राजनीतिक क्षेत्र में उसने बड़ी से बड़ी सत्ताओं से सफलतापूर्वक लोहा लिया।"[1] डॉ० सत्यप्रकाश ने भी लिखा है कि—"वास्तव में लक्ष्मीकर्ण को अपनी ओर मिला कर भोज को पराजित करने में भीम ने अत्यधिक कूटनीति से कार्य लिया और उस युग के नैपोलियन को अपने संकेतों पर चलाया।"[2]

भीम एक वीर, महत्वाकांक्षी तथा कूटनीति में निष्णात शासक ही नहीं था बल्कि वह महान् निर्माता भी था। उसने अपने सामन्त विमल द्वारा ऋषभदेव की स्मृति में आबू में दिलवाड़ा जैन मंदिर का निर्माण करवाया जो स्थापत्य कला का अद्भुत नमूना है। उसने पतन में दो और मंदिरों—भीमेश्वर तथा भट्टारिका का निर्माण कराया जिसे बाद में मुसलमानों ने नष्ट किया। उसके शासन काल में एक मस्जिद अहमदाबाद में बनाई गई जो भारत में सर्वप्रथम ज्ञात मस्जिद है। उसकी रानी उदयमती ने "रानी की नाप" नामक एक बावड़ी बनवाई जो कला की दृष्टि से सहस्त्रलिंग सरोवर से भी उत्कृष्ट है।

भीम की दो रानियाँ थीं—उदयमती और बकुलादेवी। बकुलादेवी का प्रारंभिक जीवन वैश्या का था किन्तु भीम उसमें अधिक अनुरक्त था। भीम के तीन पुत्र थे। बड़ा पुत्र मूलराज उसके जीवन-काल में ही मर गया था। दूसरा पुत्र क्षेमराज या हरियाल बकुलादेवी से उत्पन्न था जिसे भीम राजा बनाना चाहता था किन्तु उसने राजा बनने से अस्वीकार कर दिया। अतः सबसे छोटा पुत्र कर्ण शासक बना।

(6) कर्ण (1065–1093 ई०)

राज्यारोहण—जैसा कि पूर्व में कहा गया है बकुलादेवी से उत्पन्न पुत्र क्षेमराज ने राजा बनना स्वीकार नहीं किया तो छोटा पुत्र कर्ण शासक बना। हेमचंद्र का यह कथन कि क्षेमराज ने स्वेच्छा से राजा बनना नहीं चाहा, विश्वसनीय नहीं है क्योंकि क्षेमराज की माता एक वैश्या रही थी तथा क्षेमराज के दधिस्थली जाकर रहना तथा उसके पुत्र देवप्रसाद का उसकी सेवा में भेजा जाना संदेह उत्पन्न करता है। डॉ० सत्यप्रकाश का मत है कि—"कर्ण ने सिंहासन प्राप्त करने के लिये वंश, स्थिति और शक्ति सबका लाभ उठाया और क्षेमराज और उसके पुत्र को सिंहासन से दूर हटा दिया और संभवतः यही कारण था कि कर्ण का पुत्र सिद्धराज

1. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ० 512)
2. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ० 267)

जयसिंह क्षेमराज के प्रपौत्र कुमारपाल से अत्यधिक घृणा करता थ
को अपने राज्यारोहरण के लिये कुछ संघर्ष करना पड़ा था।

परमारों से संघर्ष—परमार शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मालव शा भोज की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी उदादित्य ने शासक बनते ही तीन राजाओं को हराया जिनमें से एक कर्ण था। इसकी पुष्टि गुजराती लेखकों से होती है। किन्तु कुछ विरोधी साक्ष्य भी मिलते हैं जिनसे कर्ण द्वारा मालवा नरेश की पराजय प्रकट होती है। कुमारपाल के चित्तौड़ शिलालेख में अंकित है कि कर्ण ने मालवा-नरेश को सूदकूप दर्रे में पराजित किया। अरिसिंह[2] का कथन है कि कर्ण ने मालवा-नरेश को हराकर उससे नीलकण्ठ की मूर्ति छीन ली। अतः यह संभावित है कि पहले तो कर्ण की मालवा-नरेश पर विजय हुई किन्तु बाद में उसकी पराजय हुई। चाहमान और परमार अभिलेखों से कर्ण की पराजय की पुष्टि होती है। उदयादित्य के पुत्र जगद्देव के एक शिलालेख से भी विदित होता है कि—"उदयादित्य ने आबू के निकट गुर्जरों और उनके राजा कर्ण को पराजित किया।"[3]

कलचुरियों से संघर्ष—गोआ के कदम्बवंश के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कदम्ब नरेश शश्ठ द्वितीय पश्चिमी चालुक्यों का महामण्डलेश्वर था किन्तु कलचुरि सेनापति ने उसे हराया। शश्ठ के पुत्र और उत्तराधिकारी जयकेशी ने अपनी पुत्री मयणल्लदेवी का विवाह कर्ण से कर दिया। हेमचंद्र, मेरुतुंग तथा विल्हण ने इस विवाह का विवरण दिया है। विल्हण ने इस राजकुमारी का नाम कर्ण सुन्दरी लिखा है। इन लेखकों के अनुसार मयणल्लदेवी चंद्रपुर के कदम्ब राजा जयकेशी की पुत्री थी। यह विवाह 1070 ई० में हुआ। जयकेशी के पिता और प्रपिता दोनों सोमनाथ के भक्त थे। जयकेशी के प्रपिता गुहिल्लदेव द्वितीय जब समुद्री मार्ग से सोमनाथ जा रहा था तो उसका जहाज नष्ट हो गया और उसे गोआ के एक मुसलमान व्यापारी के यहाँ शरण लेनी पड़ी। स्थल मार्ग से सोमनाथ जाने के लिये उसने मयणल्लदेवी का विवाह गुजरात नरेश कर्ण से कर दिया जिससे जयसिंह सिद्धराज का जन्म हुआ।

इस वैवाहिक सम्बन्ध के कारण कर्ण ने कदम्ब नरेश के शत्रु कलचुरि नरेश यशकर्ण को पराजित कर लाट प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यह अधिकार तीन वर्ष तक रहा क्योंकि त्रिविक्रमपाल ने कर्ण से लाट छीन लिया। बाद में जयसिंह सिद्धराज ने लाट विजित कर उसे गुजरात राज्य का स्थायी अंग बना लिया।

नाडुल्ल के चौहानों से संघर्ष—जब कर्ण अन्य कार्यों में व्यस्त था तो उसके परम्परागत शत्रु नाडुल्य के चौहानों ने उस पर आक्रमण किया। सुन्धा पर्वत अभिलेख से विदित होता है कि नाडुल्ल के चौहान नरेश पृथ्वीपाल ने कर्ण की सेना

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 268)
2. अरिसिंह : सुकृत संकीर्तन (पृ० 2 : 23)
3. Epigraphica Indica (22 : 54-63)

को पराजित किया और उसके भाई तथा उत्तराधिकारी ने बलपूर्वक अणहिलपुरा पर अधिकार कर लिया।

भीलों से संघर्ष—भाटों के अनुसार कर्ण ने कच्छ प्रदेश में स्थापित घुमक्कड़ जनजाति भीलों के राजा आशा को हराया और मार डाला। ये भील कच्छ से साबरमती नदी तक फैले हुए थे।

मृत्यु एवं मूल्यांकन—"हम्मीर महाकाव्य" से ज्ञात होता है कि कर्ण की मृत्यु चाहमान नरेश दुर्लभराज से युद्ध करते हुए हो गई थी किन्तु "पृथ्वीराज विजय" से विदित होता है कि कर्ण दुर्लभराज के बाद भी जीवित रहा।

कर्ण अपने पिता की भाँति आक्रामक युद्ध करता रहा। वीर एवं साहसी होने के अतिरिक्त वह परम धर्मनिष्ठ शैव तथा निर्माता भी था। भीलों को हरा कर उसने कोद्र्वा देवी का मंदिर बनवाया। उसने कर्णावती नगर की स्थापना की तथा कर्णेश्वर मंदिर, कर्णसागर सरोवर, अणहिलपाटन का कर्णमेरु मंदिर और रुपिन नदी पर बांध भी बनवाये। वह शैव होते हुए भी जैन धर्मावलम्बियों का आदर करता था। वह जैन आचार्य वर्धमान सूरि का आश्रयदाता था। कुमारपाल के एक शिलालेख में उसके सौंदर्य का वर्णन करते हुए उसे "रूपश्री जितन्मन्मथ" तथा भीम द्वितीय के शिलालेख में "कामिनीकंदर्प" के विरुद से सुशोभित किया गया है। उसका अन्य विरुद्ध "त्रैलोक्यमल्ल" था।

जयसिंह सिद्धराज (1094–1142 ई०)
(Jai Singh Siddhraj)

राज्यारोहण—जयसिंह सिद्धराज कर्ण का रानी मयणल्लदेवी से उत्पन्न पुत्र था। उसके बाल्यकाल का विवरण देते हुए हेमचन्द्र तथा मेरुतुंग ने कहा है कि सिद्धराज के जन्म के समय कर्ण काफी वृद्ध हो चुका था और कर्ण की कठोर तपस्या के फलस्वरूप उसका जन्म हुआ था। अतः कर्ण ने तीन वर्ष की अल्पायु में ही सिद्धराज का राज्याभिषेक कर दिया और कुछ दिन बाद ही कर्ण की मृत्यु हो गई। हेमचन्द्र के अनुसार कर्ण की चिता के साथ ही उसके सौतेले निष्कासित भाई क्षेमराज का पुत्र देवप्रसाद भी भस्म हो गया।[1]

हेमचन्द्र का उक्त विवरण संदेहास्पद है क्योंकि वह अपने आश्रयदाता जयसिंह सिद्धराज को अपने प्रतिद्वन्दी देवप्रसाद का हत्यारा तथा देवप्रसाद के पुत्र त्रिभुवनपाल के प्रति घृणा रखने वाला कह कर लांछन लगाना नहीं चाहता था। इतिहासकारों का मत है कि उत्तराधिकार के लिये हुए संघर्ष में जयसिंह सिद्धराज की माता एवं संरक्षिका मयणल्लदेवी और मंत्री शान्तु की कूटनीति से देवप्रसाद को मार डाला गया और उसके पुत्र त्रिभुवनपाल को अन्हिलपाटन में कठोर नियंत्रण

1. हेमचन्द्र : द्वयाश्रय काव्य (10 : 90)
   मेरुतुंग : प्रबंधचिंतामणि (पृ० 54–55)

में रखा गया।[1] यह संभाव्य है कि देवप्रसाद ने सिंहासन का अपहरण करने का प्रयत्न किया हो किन्तु उसकी योजना विफल हो वह मौत के घाट उतार दिया गया हो। मयणल्लदेवी ने मंत्री शान्तु की सहायता से रानी उदयमती के भ्राता मदनपाल को भी मरवा डाला। मयणल्लदेवी अपने पुत्र जयसिंह सिद्धराज के अल्प-व्यस्कताकाल में संरक्षिका के पद पर बनी रही और राज्य कार्य संचालित करती रही।

जयसिंह सिद्धराज की विजयें

जयसिंह सिद्धराज एक महान् विजेता था। उसने अनेक सैनिक आक्रामक अभियानों का सफलतापूर्वक संचालन कर अपने साम्राज्य की अभिवृद्धि की। गुजरात के चालुक्य नरेशों में वह सबसे महान् शासक था। उसके समय राज्य की सीमा अपने चरम शिखर पर थी। उसकी विजयों का यद्यपि तिथिक्रम से वर्णन करना कठिन है किन्तु उपलब्ध साक्ष्यो के आधार पर उनका विवरण निम्नांकित है: —

1. **सौराष्ट्र नरेश खंगार पर विजय**—सम्भवत: सिद्धराज ने सर्वप्रथम सौराष्ट्र पर ध्यान केन्द्रित कर उसे विजित किया। सूरक्षेत्र अथवा गिरनार (सौराष्ट्र) के आभीरवंशी राजा (राणक) खंगार को उसने पराजित किया। मेरुतुंग[2] के अनुसार "आभीर राणक" खंगार पर विजय पाने में सिद्धराज ग्यारह बार असफल हो चुका था। बारहवी बार सिद्धराज ने स्वयं उसके विरुद्ध अभियान कर उसे पराजित किया और मार डाला। सौराष्ट्र में सिद्धराज के विजय-अभियान में खंगार बाधा उपस्थित कर विद्रोह एवं उपद्रव कर रहा था, अतः उसे पराजित करना आवश्यक था। 'प्रभाकर चरित'' ग्रंथ से विदित होता है पूर्व में खंगार के विरुद्ध सिद्धराज कीर्तिपाल और मंत्री उदय को भेजा था किन्तु वे सफल नहीं हुए। उदयन युद्ध में मारा भी गया। इस ग्रन्थ में खगार को 'नवघन' कहा गया है। सोमेश्वर का कथन है कि सिद्धराज ने सूरक्षेत्र के शासक खंगार की शक्ति को कणों में बिखेर दिया। जिनप्रभ सूरि ने कहा है कि सिद्धराज ने गिरनार के शासक खगार को मौत के घाट उतार दिया तथा सज्जन नामक व्यक्ति को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। इन साक्ष्यों से यह निश्चित होता है कि सिद्धराज ने खंगार को पराजित कर उसके अधिकृत प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया किन्तु सिद्धराज के एक अन्य उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि आभीरों के विरुद्ध कुमारपाल को एक दूसरा अभियान भेजना पड़ा। अत: सौराष्ट्र प्रदेश के विद्रोही आभीरों पर सिद्धराज को सदैव कठोर नियंत्रण रखना पड़ा। भाटों की एक जनश्रुति के अनुसार खंगार पर आक्रमण का कारण यह बतलाया गया है कि खगार एक सुन्दरी से विवाह करना चाहता था जिसे सिद्धराज भी चाहता था। किन्तु वह स्त्री अपने पति के प्रति निष्ठावान बनी रही।

1. डा. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ. 271)
2. मेरुतुंग : प्रबंध चिंतामणि (पृ॰ 64–65)

2. नाड्डौल के चाहमानों पर विजय—सुन्धा पर्वत अभिलेख से ज्ञात होता है कि नाड्डौल के चाहमान शासक जिन्दुराज के पुत्र आशाराज ने मालवा के युद्ध में सिद्धराज की सहायता की थी। इसी लेख से यह भी प्रकट होता है कि सिद्धराज ने आशाराज को सामन्तीय स्तर स्वीकार करने को विवश किया। आशाराज के 1143 ई० के एक उत्कीर्ण लेख से पता चलता है कि आशाराज महाराजाधिराज जयसिंह के कमल-चरणों पर जीवित है।[1] सुन्धा पर्वत तथा किराडू शिलालेखों में अंकित है कि सिद्धराज ने नाड्डौल के चाहमानों पर कस कर नियन्त्रण कर रखा था। अतः यह स्पष्ट होता है कि नाड्डौल नरेश आशाराज अन्त तक सिद्धराज का माण्डलिक शासक बना रहा। पूर्व से चले आरहे चालुक्य-चाहमान संघर्ष की इस प्रकार सिद्धराज ने निर्णायक समाप्ति की।

3. शाकम्भरी के चाहमानों से संघर्ष—शाकम्भरी के चाहमान नरेश अर्णोराज ने मालवा के परमार राजा नरवर्मन के विरुद्ध सिद्धराज की सहायता की थी। यह तथ्य सिद्धराज के शाकम्भरी से अच्छे सम्बन्धों का सूचक है। पूर्व में शाकम्भरी नरेश विग्रहराज तृतीय द्वारा चालुक्य कर्ण के विरुद्ध परमार शासक उदयादित्य की सहायता करने से चालुक्य-चाहमान सम्बन्ध कटु हो गये थे।

शाकम्भरी के चाहमानों को अजयराज के समय से ही तुर्कों के आक्रमणों का सामना करना पड़ता रहा। अर्णोराज के समय तुर्कों ने नागौर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। किंतु तुर्कों के नागौर से हटते ही सिद्धराज जयसिंह ने नागौर को अधिकृत कर लिया। यह तथ्य "प्रभावक चरित" ग्रन्थ से विदित होता है। यह घटना 1121 ई० की है। हेमचंद्र के "द्वयाश्रयकाव्य" से ज्ञात होता है कि अर्णोराज को जयसिंह के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। इस कथन की पुष्टि सोमेश्वर ने भी की है। उसके ग्रन्थ "कीर्तिकौमुदी" से विदित होता है कि जयसिंह सिद्धराज ने अपनी पुत्री का विवाह अर्णोराज से किया।[2] जयानक के ग्रन्थ "पृथ्वीराज विजय" के अनुसार भी अर्णोराज की दो रानियों में से एक रानी गुर्जर थी। टीकाकार जोनराज ने लिखा है कि जयसिंह की पुत्री कांचनदेवी का विवाह अर्णोराज से हुआ जिसका पुत्र सोमेश्वर अपने नाना सिद्धराज के यहाँ रहता था। साँभर शिलालेख से भी प्रमाणित होता है कि सिद्धराज ने अर्णोराज को पराजित किया।

उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर यह प्रकट होता है कि तुर्कों से संघर्षरत होने के कारण चाहमान नरेश अर्णोराज के कुछ क्षेत्र—नागौर व साँभर पर सिद्धराज जयसिंह ने अधिकार कर लिया था किंतु मालवा पर अधिकार करने के लिए सिद्धराज अर्णोराज को मित्र बनाये रखना चाहता था। अतः कूटनीतिक सम्बन्ध बनाने के

1. Epigraphica Indica (11 : p. 32)
2. सोमेश्वर : कीर्तिकौमुदी (2 : p. 27-28)

लिए सिद्धराज ने अधिकृत चाहमान प्रदेश अर्णोराज को वापस दे दिए और उससे अपनी पुत्री कांचनदेवी का विवाह कर दिया। मेरुतुंग कृत "प्रबंधचिंतामणि" से ज्ञात होता है कि सिद्धराज ने सपादलक्ष के साथ 'अनेकलाख' दान (पुत्री के दहेज) में अर्णोराज को दिए। अर्णोराज ने इस वैवाहिक सम्बन्ध के कारण मालवा-विजय में सिद्धराज की सहायता की। किंतु यह मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अधिक समय तक न चल सका। अर्णोराज से रुष्ट हो कांचनदेवी अपने पुत्र सोमेश्वर के साथ अन्हिलवाड़ चली गई। सिद्धराज ने अर्णोराज से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखे किंतु चालुक्य नरेश कुमारपाल के समय चाहमान-चालुक्य संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

4. **मालवा के परमारों पर विजय**—जयसिंह सिद्धराज की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सैनिक उपलब्धि मालवा के परमार शासकों पर विजय थी। इस विजय के अनेक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। हेमचंद्र[1] का कथन है कि एक योगिनी ने सिद्धराज को कलिका-पूजा हेतु मालवा जाने तथा मालवा नरेश यशोवर्मन से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने हेतु कहा किंतु सिद्धराज ने अपनी सैनिक शक्ति से मालवा में प्रवेश किया। उज्जैन नगर के बाहर सिप्रा-तट पर यशोवर्मन से उसका युद्ध हुआ जिसमें यशोवर्मन पराजित हुआ और समस्त अवन्ति प्रदेश सिद्धराज ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। मेरुतुंग[2] ने इस विजय का भिन्नरूप में वर्णन किया है। उसका कथन है कि सिद्धराज ने अपने मन्त्री मुंजल के परामर्श से धारा के दुर्ग को घेर कर नगर को अपने अधिकार में किया। मालवा नरेश यशोवर्मन पराजित हो बन्दी बना। सोमेश्वर कृत "सुरथोत्सव" से विदित होता है कि सिद्धराज ने परमारों को हरा कर नरवर्मन के नगर धारा को विजित किया और यशोवर्मन को लकड़ी के पिंजड़े में बंदी बना लिया। बालचंद्र कृत "बसन्तविलास" में लिखा है कि सिद्धराज धारा के अभागे राजा को एक लकड़ी के पिंजड़े में डालकर अपनी राजधानी अन्हिलपाटन लाया। अरिसिंह कृत "सुकृतसंकीर्तन" का कथन है कि सिद्धराज ने धारा के राजा यशोवर्मन को बन्दी बनाया। जयसिंह सूरि कृत "कुमारपाल भुवपाल चरित" तथा जिनमण्डल कृत "कुमारपाल प्रबंध" से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

इन साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त शिलालेखों से भी मालवा-विजय की पुष्टि होती है। सिद्धराज के गाला शिलालेख (1137 ई०) में उसे "अवन्तिनाथ" कहा गया है।[3] दोहद लेख में लिखा है कि सिद्धराज ने मालवा-नरेश को कारागार में डाल दिया। कुमारपाल की बड़नगर प्रशस्ति से पता चलता है कि सिद्धराज ने दर्पयुक्त मालवा-नरेश के पगों में शृंखला डाली। वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति में भी इस विजय का उल्लेख है। उज्जैन से प्राप्त एक शिलालेख में अंकित है कि सिद्धराज ने

1. हेमचन्द्र : द्वयाश्रयकाव्य (14 : p. 5–74)
2. मेरुतुंग : प्रबन्धचिन्तामणि (p. 85-86)
3. Indian Antiquary (6 : p. 191)

बलपूर्वक अवन्तिमण्डल पर अधिकार किया और उस प्रदेश को महादेव के प्रशासन में रखा।

इस प्रकार इन साक्ष्यों से यह प्रकट होता है कि सिद्धराज का परमारों से संघर्ष काफी दीर्घ समय तक (साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार 12 वर्ष तक) चला। यह संघर्ष परमार नरेश नरवर्मन (1094-1133 ई०) के समय आरम्भ हुआ और यशोवर्मन की पराजय से समाप्त हुआ। इस अभियान में सिद्धराज की सहायता नाड्डुल के चौहान शासक आशाराज तथा शाकम्भरी के चौहान नरेश अर्णोराज ने की थी। मालवा-विजय सम्भवत: 1136 ई० के लगभग हुई क्योंकि दो वर्ष बाद के एक अभिलेख के अनुसार उस समय मालवा पर महादेव नामक एक चालुक्य राज्यपाल शासन कर रहा था। पंचमहाल तथा दोहद पर जयसिंह ने इसलिये कठोर नियन्त्रण रखा कि ये स्थान गुजरात से मालवा जाने वाले मार्ग पर स्थित थे। इस क्षेत्र में जयसिंह ने अपने वाहिनीपति केशव को सेनापति नियुक्त किया। यह तथ्य दोहद के उत्कीर्ण लेख (1140 ई०) से प्रकट होता है।

यशोवर्मन के पुत्र जयवर्मन ने महाराजाधिराज का विरुद धारण कर लिया था। अत: श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय[1] का मत है कि उसने सिद्धराज से मालवा के कुछ क्षेत्र को मुक्त करा लिया था। किन्तु अन्य साक्ष्यों से इसकी पुष्टि न होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धराज की मृत्यु के बाद जब गुजरात में उत्तराधिकार का संघर्ष चला, वल्लाल ने उज्जैन पर अधिकार कर लिया था। अतः डॉ० विशुद्धानन्द पाठक[2] का मत ही समीचीन जान पड़ता है कि—"सिद्धराज का यह अधिकार (मालवा पर) उसके जीवन पर्यंत (1142 ई० तक) बना रहा और वह सही रूप में पश्चिमी भारत का सार्वभौम हो गया। मेरुतुंग का भी यही कथन है कि सिद्धराज ने यशोवर्मन को मालवा में रहने की अमुमति नहीं दी बल्कि अपना अधिकार स्थापित किया।"[3]

5. चन्देलों से संघर्ष—मालवा पर सिद्धराज के अधिकार हो जाने पर चन्देल नरेश मदनवर्मन से उसका संघर्ष होना अवश्यमभावी हो गया। कालिंजर अभिलेख से ज्ञात होता है कि मदनवर्मन ने गुर्जर नरेश को इस प्रकार पराजित किया जिस प्रकार कृष्ण ने कंस को किया था। मऊ शिलालेख से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। किंतु चालुक्य अभिलेखों से सिद्धराज की विजय प्रकट होती है। "कुमारपाल चरित" ग्रन्थ के अनुसार सिद्धराज ने महोबा नरेश मदनवर्मन को पराजित किया। "कीर्तिकौमुदी" ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि सिद्धराज धारा से कालिंजर गया। चंदवरदाई के "पृथ्वीराज रासो" से भी यही तथ्य प्रमाणित होता है।

1. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 372)
2. डा० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (पृष्ठ 518)
3. मेरुतुंग : प्रबन्धचिन्तामणि (p. 87 : 115)

अतः उपरोक्त परस्पर विरोधी साक्ष्यों से यह प्रकट होता है कि सिद्धराज को चन्देलों के विरुद्ध स्थायी सफलता नहीं मिली और सम्भवतः दोनों में संधि हो गई।

6. **गाहड़वालों से सम्बन्ध**—मऊ लेख के अनुसार गाहड़वालों और चन्देलों में परस्पर शत्रुता थी। अतः सिद्धराज ने चन्देलों के विरुद्ध गाहड़वालों से मित्रता करली। जयचंद्र के समय रचित ग्रंथ "रम्भामंजरी" ग्रन्थ से विदित होता है कि—"जयचंद्र के बाहु मदनवर्मन की राज्यश्री रूपी देवी को जो गज के समान थी, बाँधने के लिए स्तम्भ स्वरूप थे।" सिद्धराज का समकालीन गाहड़वाल नरेश गोविन्दचंद्र था। अत. यह प्रतीत होता है कि जयचंद्र ने अपने प्रपिता गोविन्दचंद्र के इस अभियान में भाग लिया था। मेरुतुंग का कथन है कि सिद्धराज का एक कूटनीतिक अभिकर्त्ता बनारस के राजा जयचंद्र की राजसभा में रहता था।

7. **पश्चिमी चालुक्यों से सम्बन्ध**—कल्याणी के पश्चिमी चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ट के उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि उसने 1089 ई., 1105 ई., 1114 ई., 1121 ई. तथा 1122 ई. में गुर्जरों पर विजय प्राप्त की और लाट प्रदेश पर अधिकार कर लिया। किंतु इन विजयों का कोई स्थायी परिणाम नहीं निकला। क्योंकि जयसिंह सिद्धराज के तलवाड़ा शिलालेख से विदित होता है कि उसने "परमर्दि" को चूर किया। परमर्दि का समीकरण विक्रमादित्य षष्ट से किया जाता है। अतः कल्याणी के चालुक्यों और गुजरात के चालुक्यों में सम्भवतः सीमावर्ती संघर्ष होते रहे जिनका कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकला।

8. **सिन्ध-विजय**—दोहद शिलालेख के अनुसार सिद्धराज ने सिन्धुराज पर भी विजय प्राप्त की। सोमेश्वर कृत "कीर्तिकौमुदी" में सिन्धुराज की पराजय का वर्णन किया गया है। इतिहासकारों का मत है कि सिद्धराज ने सिंध के किसी स्थानीय मुसलमान शासक को अपनी अश्वसेना से पराजित किया। मेरुतुंग कृत "प्रबन्ध चिन्तामणि" के इस कथन से कि "सिद्धराज ने म्लेच्छों को जादू की क्रियाओं से भयभीत कर दिया था", यही तथ्य प्रकट होता है। सिंध का यह पराजित शासक सुमरा जाति का कोई मुसलमान शासक था।

9. **बर्बरक पर विजय**—उज्जैन के उत्कीर्ण लेख (1138 ई०) में सिद्धराज को "बर्बरक जिष्णु" की उपाधि दी गई है जिससे प्रकट होता है कि उसने बर्बरक नामक किसी राक्षस राजा पर विजय प्राप्त की। हेमचन्द्र कृत "द्वयाश्रय काव्य" में बर्बरक को राक्षस बताया गया है जो सरस्वती नदी के तट पर स्थित श्रीस्थल तीर्थ के ब्राह्मणों को लूट कर तंग करता था। सिद्धराज ने द्वन्द्व युद्ध में बर्बरक को जीत कर उसे रस्सी से बाँध दिया किन्तु उसकी पत्नी पिंगलिका की प्रार्थना पर उसकी हत्या नहीं की। बर्बरक ने अनेक उपहार देकर सिद्धराज की अधीनता स्वीकार कर ली। जनश्रुतियों के अनुसार भूत-पिशाच की शक्ति वाले बर्बरक पर विजय के कारण जयसिंह को सिद्धराज की उपाधि से विभूषित मानते हैं। किन्तु यह मत

मान्य नहीं है क्योंकि पूर्व अभिलेखों में भी जयसिंह की उपाधि "सिद्धश्चक्रवर्ती" दी गई है।

साम्राज्य-विस्तार
(Extent of Siddhraj's Empire)

सिद्धराज की उपरोक्त विजयों के फलस्वरूप गुजरात का चालुक्य साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। जयसिंह सिद्धराज अपने समय का सबसे महान् विजेता था। इसके समय चालुक्य साम्राज्य की सीमाएँ गुजरात तथा कच्छ-काठियावाड़ से बाहर अवन्ति और राजपूताना प्रदेश तक विस्तृत हो गई थी। सिद्धराज के विभिन्न शिलालेखों—भीनमाल, दक्षिणी राजपूताना के अन्तर्गत तलवारा, जोधपुर जनपद मे बाली व साँभर, काठियावाड़ के अन्तर्गत गाला व गिरनार, कच्छ के अन्तर्गत भद्रेश्वर, पंचमहल के अन्तर्गत दोहद, ग्वालियर में उदयपुर तथा उज्जैन के प्राप्ति स्थानों से साम्राज्य-विस्तार की पुष्टि होती है। सिद्धराज ने अपने सफल सैनिक अभियानों से राज्य का विस्तार किया। आबू के आशाराज ने उसकी अधीनता स्वीकार की, शाकम्भरी के चौहानों के प्रदेश साँभर पर कुछ समय अधिकार रखा, मालवा की राजधानी धारा तथा उज्जैन साम्राज्य मे सम्मिलित थी, सिन्ध पर विजय प्राप्त की तथा सौराष्ट्र के खंगार को अधीन बनाया। लाट प्रदेश तथा दक्षिणी राजपूताने में गोडवाड़ प्रदेश सिद्धराज के साम्राज्य में सम्मिलित था। इस प्रकार केन्द्र प्रशासित क्षेत्र मे अधीन माण्डलिक प्रदेशों को सम्मिलित करते हुए जयसिंह सिद्धराज के समय चालुक्य-साम्राज्य अत्यन्त विशाल एवं विस्तीर्ण था।

सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रगति (Cultural & Literary Progress)

जयसिंह सिद्धराज एक कुशल सेनानायक और महान् विजेता ही नहीं था बल्कि वह प्रजाहितकारी कार्यों तथा सांस्कृतिक प्रगति में अत्यन्त रुचि रखने वाला शासक भी था। उसने सोमनाथ के तीर्थ-यात्रियों पर वहुलोड़ नगर में उगाये जाने वाले कर को समाप्त कर दिया। इस प्रकार इस कर से राज्य-कोष को 72 लाख रुपये की वार्षिक आय होने वाली धनराशि की हानि उठाकर भी उसने लोगों की धार्मिक भावना का आदर किया। उसने अनेक ब्राह्मणों को करमुक्त किया।

सिद्धराज प्रजा के साथ समानता तथा उदारता का व्यवहार करता था। एक बार एक रंगशाला में एक चने बेचने वाला सामान्य व्यक्ति नाटक देखते समय उसके कंधों पर हाथ रख कर नाटक देखता रहा व उससे पान भी लेता रहा।

जयसिंह शैव धर्मावलम्बी था। उसने सिद्धपुर में एक रुद्र महालय बनवाया जिसमें उसने अश्वपति, नरपति और गजपति राजाओं की मूर्ति के समक्ष हाथ जोड़े हुए अपनी मूर्ति भी स्थापित की। इस मन्दिर पर ध्वजारोहण करते समय जैनग्रन्थों के अनुसार उसने जैन प्रासादों की पताकाएँ उतरवा दीं किन्तु अन्य साक्ष्यो से यह प्रमाणित होता है कि वह धर्मनिरपेक्ष एवं धर्मसहिष्णु शासक था। हेमचन्द्र के

'द्वयाश्रय काव्य" के अनुसार वह सोमनाथ दर्शन के साथ ही नेमिनाथ के चैत्य के दर्शन हेतु भी गया। उसका पक्षपातरहित होना इस बात से प्रकट होता है कि उसने श्वेताम्बर देवसूरि और दिगम्बर कुमुदचन्द्र के शास्त्रार्थ में निर्णायक का कार्य किया। मुहम्मद औफी[1] का कथन है कि कुछ हिन्दू अग्निपूजकों ने खम्भात में स्थित एक मस्जिद को आपसी झगड़ों के बाद गिरा दिया और मुसलमानों को मार डाला। खुतबा पढ़ने वाले खतीब द्वारा जयसिंह से इसकी शिकायत करने पर जयसिंह ने स्वयं गुप्त रूप से जाकर देखा और शिकायत सही पाई। उसने अपराधियों को दंडित कर मस्जिद बनाने के लिए एक लाख बालोत्र अपने कोष से दिये। औफी ने लिखा है कि उसने ऐसी धर्म-सहिष्णुता का वृतान्त पहले कभी नहीं सुना।

सिद्धराज अनेक कवियों एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। इनमें हेमचन्द्र सर्वाधिक प्रतिभावान था। मालवा-विजय में सिद्धराज को अनेक हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई जिन्हें वह गुजरात लाया। इनमें से एक पुस्तक "सरस्वती कण्ठाभरण" व्याकरण ग्रन्थ जैसे ग्रन्थ की रचना हेतु उसने अपने विद्वानों को कहा। हेमचन्द्र ने इस कार्य को स्वीकार किया और कश्मीर से आठ व्याकरण ग्रन्थ मँगा कर उसने एक व्याकरण ग्रन्थ की रचना की जिसका नाम आश्रयदाता के अनुसार "सिद्धहेम" रखा। सिद्धराज इस ग्रन्थ को देखकर प्रसन्न हुआ और उसने हेमचन्द्र की पूजा कर उसका सम्मान किया। हेमचंद्र ने एक अन्य ऐतिहासिक महत्व के ग्रन्थ 'द्वयाश्रय काव्य' की रचना की। इसके अतिरिक्त सिद्धराज के आश्रय में श्रीपाल ने "कुमारपाल की वड़नगर-प्रशस्ति" की रचना की। श्रीपाल को सिद्धराज अपना भाई और कवि चक्रवर्ती या कवीन्द्र कहता था। श्रीपाल की अन्य रचना का नाम "वेरोचनपराजय" है। हेमचन्द्र का शिष्य रामचन्द्र भी उस समय का प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार था। इसके अतिरिक्त "कविशिखा" का रचयिता आचार्य जयमंगल, "मुद्रित कुमुदचन्द्र" नाटक का लेखक यशचन्द्र, सिद्धराजवर्णना" का रचयिता वर्धमान, श्वेताम्बर आचार्य देवसूरि आदि विद्वान भी सिद्धराज की राज्य-सभा को सुशोभित करते थे। सिद्धराज के समय जैन धर्म एवं दर्शन की काफी प्रगति हुई। सिद्धराज का धार्मिक गुरु भाव वृहस्पति था जिसे वह मालवा-विजय के बाद गुजरात लाया था।

जयसिंह सिद्धराज एक महान् भवन-निर्माता भी था। उसके द्वारा निर्मित रुद्रमहालय मन्दिर भारत के भव्य मन्दिरों में प्रख्यात है। सौराष्ट्र में उसके राज्यपाल सज्जन ने तीन वर्ष के राजस्व का अपहरण कर बिना स्वीकृति के एक नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया किन्तु सिद्धराज ने मन्दिर के सौन्दर्य को देखकर सज्जन के अपराध को क्षमा कर दिया। सिद्धराज ने सहस्त्रलिंग सरोवर का निर्माण कराया। इस सरोवर के चारों ओर 1008 मन्दिरों में शिवलिंगों की स्थापना की गई है तथा सरोवर के सामने एक कीर्तिस्तम्भ निर्मित है। इस सरोवर के समीप एक "उपाध्याय शिक्षा गृहम्" का निर्माण किया गया था जिसमें शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता

1. *Illiot & Dowson* : History of India as told by its own Historian (p 163–164)

था। सिद्धराज की अन्य वास्तुकला की कृति सरस्वती नदी के तट पर दशावतार नारायण का मन्दिर है।

इस प्रकार जयसिंह सिद्धराज गुजरात के चालुक्य वंश का सबसे प्रतापी शासक हुआ जिसके समय चालुक्य साम्राज्य की चहुँमुखी प्रगति हुई। जयसिंह निःसन्तान मृत्यु को प्राप्त हुआ।

कुमारपाल (1143–1172 ई०)
(Kumarpal)

प्रारम्भिक जीवन

जयसिंह सिद्धराज की मृत्यु तथा कुमारपाल के राज्यारोहण के मध्य कुछ समय तक गुजरात का इतिहास संघर्षमय रहा है। उपलब्ध स्रोतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुमारपाल के विषय में जितना साहित्य लिखा गया है, उतना किसी अन्य भारतीय शासक के विषय में नहीं मिलता। कुमारपाल के अत्यन्त निकट सम्पर्क में रहने वाले जैनाचार्य हेमचन्द्र का साक्ष्य अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।

हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'द्वयाश्रय काव्य' में लिखा है कि चालुक्य नरेश भीम प्रथम का पुत्र क्षेमराज था और क्षेमराज का पुत्र देवप्रसाद तथा पौत्र त्रिभुवनपाल था। क्षेमराज युवावस्था से ही तपस्यापरायण था। अतः जब उसे सिंहासन प्रदान किया गया तो उसने उसे ग्रहण नहीं किया और वह एकान्तवास हेतु दधिस्थली चला गया। चालुक्य नरेश कर्ण ने उसकी देखभाल करने हेतु उसके पुत्र देवप्रसाद को उसके पास भेज दिया। कर्ण की मृत्यु की सूचना पाकर देवप्रसाद ने स्वयं को भस्म कर लिया और अपने पुत्र त्रिभुवनपाल को सिद्धराज के संरक्षण में रखा। त्रिभुवनपाल ने सिद्धराज की निष्ठापूर्वक सेवा की। त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल था। "अभयतिलकमणि" ग्रन्थ से विदित होता है कि भीम प्रथम का ज्येष्ठ पुत्र मूलराज, द्वितीय पुत्र क्षेमराज तथा कनिष्ठ पुत्र कर्ण था। हेमचन्द्र ने कुमारपाल के हीन कुल का उल्लेख नहीं किया क्योंकि वह कुमारपाल का राजकवि और गुरु था।

मेरुतुंग रचित "प्रबन्ध चिन्तामणि" से ज्ञात होता है कि भीम ने पट्टन की बकुलादेवी नामक एक नर्तकी को अपने अन्तःपुर में रख लिया था। बकुलादेवी का पुत्र हरिपाल तथा हरिपाल का पुत्र त्रिभुवनपाल था जिसके कुमारपाल नामक पुत्र हुआ। जयसिंह सूरि कृत "कुमारपालभूपाल चरित" से विदित होता है कि भीम की दो पत्नियों से क्रमशः ज्येष्ठपुत्र क्षेमराज और कनिष्ठ पुत्र कर्ण हुए। भीम ने राजा दशरथ की भाँति कर्ण की माता को वचन दिया कि उसका पुत्र शासक बनाया जायेगा। क्षेमराज ने कर्ण को राज्य दिया। क्षेमराज के पुत्र देवप्रसाद को कर्ण ने दधिस्थली दिया। देवप्रसाद का पुत्र त्रिभुवनपाल तथा पौत्र कुमारपाल था। जिनमण्डल का कथन है कि भीम की दो रानियाँ थीं—बकुलादेवी तथा उदयमती। बड़ी रानी

बकुलादेवी का पुत्र क्षेमराज था किन्तु छोटी रानी उदयमती को प्रसन्न रखने के लिए भीम ने उसके पुत्र कर्ण को राज्य दिया।

उपरोक्त साक्ष्यों में मेरुतुंग द्वारा दी गई कुमारपाल की वंशावली शिलालेखों के आधार पर त्रुटिपूर्ण है। कुमारपाल के चित्तौड़ शिलालेख से हेमचंद्र द्वारा दी गई वंशावली की पुष्टि होती है। मेरुतुंग द्वारा कुमारपाल की हीन कुलोत्पत्ति का उल्लेख किसी आधार पर किया गया प्रतीत होता है क्योंकि प्रभाचन्द्र ने भी देवप्रसाद को कर्ण का भतीजा न बताकर उसे 'बंधु' कहा है। हेमचन्द्र का यह कथन भी संदिग्ध है कि क्षेमराज ने सिंहासन स्वेच्छा से त्याग दिया और देवप्रसाद ने कर्ण की मृत्यु से शोकाकुल हो स्वयं को भस्म कर लिया। अतः यह प्रतीत होता है कि निम्न उत्पत्ति के कारण सिद्धराज कुमारपाल से घृणा करता था किन्तु सिद्धराज द्वारा कुमारपाल के बहनोई कृष्णराज को सेनापति पद देना और कुमारपाल के भाई कीर्तिपाल को नवघन के विरुद्ध सैनिक अभियान पर भेजना यह प्रकट करता है कि सिद्धराज कुमारपाल के सारे परिवार से घृणा नहीं करता था। कुमारपाल के प्रति उसका आक्रोश केवल इसलिए था कि वह राजसिंहासन के लिए एक प्रत्याशी था। मेरुतुंग ने लिखा है कि नीच कुलोत्पन्न कुमारपाल का उत्तराधिकारी होना सिद्धराज के लिये असह्य था और इसीलिये वह कुमारपाल के विनाश हेतु सदैव प्रयत्नशील रहा।

हेमचन्द्र ने कुमारपाल द्वारा सिद्धराज की मृत्यु के बाद सिंहासनारूढ़ होने का ही उल्लेख किया है। किन्तु अन्य साक्ष्यों से प्रकट होता है कि सिद्धराज के कोप से बचने के लिए कुमारपाल को भागकर विभिन्न स्थानों पर शरण लेनी पड़ी। यशपाल कृत नाटक "मोहराज पराजय" से विदित होता है कि कुमारपाल ने सकल भू-मंडल में भ्रमण किया। प्रभाचंद्र ने इस भ्रमण का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार सिद्धराज को दैवी प्रेरणा से ज्ञात हुआ कि कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी बनेगा तो अतः उसने कुमारपाल के विनाश का प्रयास किया किन्तु कुमारपाल भिक्षु वेश में भाग गया। जब वह अन्य साधुओं के साथ सिद्धराज के आमंत्रण पर राजधानी आया तो सिद्धराज ने साधुओं के पैर धोते समय कुमारपाल के पैर में कमल, ध्वज और छत्र के चिह्न देखकर उसे पहिचान लिया। कुमारपाल ने गुप्तचरी से बचने के लिये भाग कर हेमचन्द्र के घर पर शरण ली। इसके बाद वह आलि नामक किसान के यहाँ छिपा। इस प्रकार अपनी जान बचाते हुए वह कैम्बे आया और हेमचन्द्र के साथ रहा। हेमचंद्र ने सात वर्ष बाद उसके राजा बनने की भविष्यवाणी की और उसे कुछ धन देकर विदा किया। कुमारपाल कापालिक के भेष में यात्रा करता रहा। उसकी पत्नी भोपलदेवी और बच्चे उसके साथ हो गये। सिद्धराज की मृत्यु की सूचना पाते ही कुमारपाल राजधानी गया और हेमचन्द्र तथा अपने बहनोई कृष्णदेव कान्हडदेव की सहायता से सिंहासन पर बैठ गया। मेरुतुंग ने भी लगभग ऐसा ही वर्णन किया है।

सूरि, जिनमदन तथा चरित्र सुन्दर ने भी किया है।[1] किन्तु इतिहासकार इस प्रसंग को युद्ध का कारण स्वीकार नहीं करते क्योंकि कुमारपाल ने अपनी सभी विजयों के बाद जैन धर्म स्वीकार किया था।

हेमचन्द्र कृत "द्वयाश्रयकाव्य" के अनुसार कुमारपाल ने अर्णोराज पर आक्रमण कर उसे पराजित किया तथा अर्णोराज की पुत्री जल्हण से विवाह कर सन्धि की। प्रभाचन्द्र के अनुसार सपादलक्ष के धृष्ठ राजा अर्णोराज पर कुमारपाल ने आक्रमण हेतु प्रयाण किया किन्तु वह अजमेर (अजयमेरु) पर अधिकार न कर सका। कुमारपाल ने इस प्रकार अर्णोराज के विरुद्ध ग्यारह बार असफल सैनिक अभियान किये। बारहवीं बार कुमारपाल अर्णोराज पर विजय पाने में सफल हुआ। अर्णोराज का सहायक सिद्धराज का दत्तक पुत्र चारुभट (चाहड़) भी पराजित हुआ। मेरुतुंग ने इस युद्ध का वर्णन करते हुए कहा है कि चाहड़ ने गुजरात की सेना के एक भाग तथा कुमारपाल के महावत को अपनी ओर मिला लिया किन्तु कुमारपाल ने इस षड़यन्त्र को निष्फल कर चाहड़ तथा अर्णोराज को बंदी बना लिया। अन्य जैन लेखकों (जयसिंह सूरि, राजशेखर तथा जिनमंडल) ने भी ऐसा ही विवरण दिया है। जयसिंह सूरि के अनुसार इस युद्ध में कुमारपाल ने अर्णोराज को द्वन्द्व युद्ध कर पराजित किया और उसे एक पिंजड़े में वन्दी बना कर रखा।

हरविलास शारदा[2] चाहमान-चालुक्य संघर्ष को दो चरणों में विभक्त कर उसके निम्नांकित कारण बतलाते हैं—

(1) प्रथम युद्ध में अर्णोराज आक्रामक था क्योंकि वह सिद्धराज के दत्तक पुत्र चाहड़ को गुजरात का शासक बनाना चाहता था। इस युद्ध में कुमारपाल ने पराजित हो अपनी बहिन देवलदेवी का विवाह अर्णोराज से किया।

(2) दूसरा युद्ध 1150 ई० में देवलदेवी के प्रति अर्णोराज के दुर्व्यवहार के कारण हुआ।

डॉ० सत्य प्रकाश ने उक्त युद्ध के दो चरणों में होना तो स्वीकार किया है किन्तु इन युद्धों के कारणों को उचित नहीं बतलाया क्योंकि अर्णोराज को चाहड़ की बजाय अपने पुत्र सोमेश्वर को गुजरात का राजा बनाने का पक्ष लेना चाहिए था। इसके अतिरिक्त "पृथ्वीराज विजय" के अनुसार कुमारपाल के कोई बहिन नहीं थी तथा कुमारपाल ने जैन धर्म भी काफी समय बाद अपनाया था। वस्तुतः युद्ध के कारण राजनीतिक थे। अर्णोराज ने कुमारपाल को दुर्बल समझ कर पुरानी शत्रुता का बदला लेने हेतु गुजरात पर आक्रमण किया था। यह युद्ध दो भागों में हुआ, इसकी शिलालेखों से भी पुष्टि होती है। यशोधवल के आबू शिलालेख (1145 ई०) से

1. "प्रबंधकोष" (p. 50), "कुमारपाल चरित" (p. 199), "कुमारपाल प्रबंध" (p. 40), तथा "कुमारपाल चरित" (p. 37)

2. *Harbilas Sharda* : Speeches and Writings (p. 258–86)

प्रकट होता है कि प्रथम युद्ध कुमारपाल के सिंहासन पर बैठने के साथ ही प्रारम्भ हो गया। अर्णोराज ने जब गुजरात पर आक्रमण हेतु अभियान किया तो वह कुमारपाल से आबू पर्वत के निकट पराजित हुआ। आबू के शासक विक्रमसिंह ने कुमारपाल के साथ विश्वासघात किया था, अतः कुमारपाल ने उसे पदच्युत कर उसके भतीजे यशोधवल को आबू का शासक बनाया। कुछ समय बाद 1150 ई० में अर्णोराज ने मालवा के शासक बल्लाल को गुजरात पर आक्रमण हेतु तैयार कर लिया। अर्णोराज ने नाडुल्य पर अधिकार कर लिया। कुमारपाल ने अपने दो सामंतों को बल्लाल के विरुद्ध भेजा तथा वह स्वयं अर्णोराज के विरुद्ध अजमेर की ओर बढ़ा और उसने नाडुल्य तथा पाली पर अधिकार कर लिया। अजयमेरु (अजमेर) दुर्ग के निकट कुमारपाल व अर्णोराज का युद्ध हुआ। यद्यपि अर्णोराज और चाहड़ ने कुमारपाल के महावत तथा सामंत कल्हण को अपनी ओर मिला लिया था किन्तु कुमारपाल की सतर्कता के कारण युद्ध में अर्णोराज व चाहड़ पराजित हो बन्दी बना लिये गये। अर्णोराज को अपनी पुत्री जल्हण का विवाह कुमारपाल से करना पड़ा। इस अपमान को अर्णोराज अधिक समय तक सहन न कर सका क्योंकि रुग्णावस्था में उसके पुत्र जगदेव ने उसकी हत्या कर दी। बड़नगर और वेरावल प्रशस्ति तथा कुमारपाल के चित्तौड़ शिलालेख (1150 ई०) से कुमारपाल की विजय की पुष्टि होती है।

(ख) **चाहमान शासक विग्रहराज चतुर्थ से संघर्ष**—अर्णोराज की मृत्यु के बाद भी चाहमान-चालुक्य संघर्ष चलता रहा। चाहमान शासक विग्रहराज चतुर्थ ने अपने पिता के अपमान का बदला लेने हेतु कुमारपाल द्वारा अधिकृत सीमावर्ती प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। बिजोलिया शिलालेख से ज्ञात होता है कि विग्रहराज चतुर्थ ने सर्वप्रथम सज्जन नामक कुमारपाल के एक सामंत को पराजित कर मार डाला। सज्जन का समीकरण सूरक्षेत्र में सिद्धराज द्वारा नियुक्त सामंत से किया जाता है किन्तु जयसिंह सूरि और जिनमदन के ग्रन्थों से विदित होता है कि कुमारपाल ने सज्जन नामक प्रशासक को चित्रकूट (चित्तौड़) में नियुक्त किया था। अतः दूसरी सम्भावना उचित प्रतीत होती है कि विग्रहराज चतुर्थ ने चित्तौड़ को सज्जन से अधिकृत किया। इसकी पुष्टि चित्तौड़ शिलालेख (1151 ई०) तथा सोमतिलक सूरि कृत "कुमारपालदेव चरित" से होती है। विग्रहराज ने 1135 ई० तक जावालिपुर (जालौर) को ज्वालापुर, पल्लिका को पाली (तुच्छ गाँव) और नाडुल्ल को नड्वल (नरकुल या सरकण्डा) में परिवर्तित कर दिया।[1] इससे स्पष्ट होता है कि विग्रहराज ने इन स्थानों के कुमारपाल के सामंतों को पराजित कर उन्हें अधिकृत किया। अजमेर संग्रहालय की चौहान प्रशस्ति से इसकी पुष्टि होती है कि विग्रहराज ने कुमारपाल को हरा कर "करवालपाल" की स्थिति में पहुँचा दिया। किन्तु बाद

1. Epigraphica Indica (36 : 21, p. 150)

में विग्रहराज और कुमारपाल में समझौता हो गया। मेरुतुंग के अनुसार चालुक्य दरबार में एक चाहमान सांधिविग्रहिक रहने लगा। 1170 ई० तक चाहमान तथा चालुक्यों के सम्बन्ध शांतिपूर्ण हो गये जब शाकम्भरी का शासक सोमेश्वर बन गया।

2. आबू के परमारों से संघर्ष—हेमचंद्र के अनुसार जब कुमारपाल अजमेर की ओर सैनिक अभियान कर रहा था तो आबू के परमार नरेश विक्रमसिंह से उसका युद्ध हुआ। अजारी शिलालेख (1145 ई०) से ज्ञात होता है कि कुमारपाल ने विक्रमसिंह के स्थान पर उसके भतीजे यशोधवल को आबू का शासक बनाया। प्रभाचंद्र, जयसिंह सूरि तथा जिनमदन भी विक्रमसिंह के विश्वासघात का विवरण देते हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि अजमेर-अभियान के समय विक्रमसिंह ने कुमारपाल को मारने का षड्यन्त्र किया था, अतः अजमेर से लौटते समय कुमारपाल ने विक्रमसिंह को हराकर यशोधवल को शासक बनाया जिसने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। विक्रमसिंह अणहिलपाटन लाया गया और कारागार में डाल दिया गया। यह घटना 1143 और 1145 ई० के मध्य की है।

3. नाडुल्ल के चाहमानों से संघर्ष—नाडुल्ल का चाहमान शासक आशाराज सिद्धराज का सामंत था। आशाराज के बाद उसका भतीजा रत्नपाल तथा रत्नपाल के बाद उसके पुत्र रायपाल ने नाडुल्ल पर शासन किया। 1141 ई. तथा 1145 ई. के शिलालेखों से इसकी पुष्टि होती है। 1145 ई० के बाद रायपाल के अभिलेख न मिलना इस बात का सूचक है कि रायपाल द्वारा अर्णोराज का साथ देने से कुमारपाल ने नाडुल्ल पर अधिकार कर वहाँ अपना दण्डनायक वैजल्लदेव नियुक्त किया। 1151 से 1159 ई. के शिलालेखों से यह तथ्य विदित होता है। 1161 ई. में कुमारपाल ने आल्हण को नाडुल्ल का सिंहासन सौंप दिया। सुन्धा पर्वत शिलालेख से आल्हण द्वारा कुमारपाल की ओर से सौराष्ट्र के उपद्रव-दमन का पता चलता है। 1171 ई० के एक लेख से ज्ञात होता है कि आल्हण का पुत्र कल्हण कुमारपाल का सामंत था। इस प्रकार नाडुल्ल के चाहमानों द्वारा अधीनता स्वीकार करने पर उन्हें सामंत के रूप में शासन करने दिया गया।

4. किराडू के परमारों से संघर्ष—किराडू उत्कीर्ण लेख (1161 ई०) से विदित होता है कि किराडू के परमार शासक सोमेश्वर की राजनिष्ठा से सन्तुष्ट हो कुमारपाल ने उसे अपने पद पर पुष्ट किया। सोमेश्वर ने जज्जक के जैसलमेर तथा जोधपुर के दुर्ग छीने और उसे कुमारपाल की अधीनता स्वीकार करने को विवश किया। इस प्रकार 1148 से 1161 ई० तक किराडू परमार सोमेश्वर के अधिकार में रहा। 1152 ई० के कुछ पूर्व किराडू और नाडुल्ल पर आल्हण का अधिकार था किन्तु बाद में सोमेश्वर द्वारा अधीनता स्वीकार करने पर कुमारपाल ने किराडू सोमेश्वर को सौंप दिया।

5. मालवा नरेश बल्लाल से संघर्ष—वड़नगर प्रशस्ति (1151 ई०) से ज्ञात

होता है कि कुमारपाल ने मालवा नरेश वल्लाल को परास्त किया और उसका सिर अपने महल के सिंहद्वार पर लटका दिया। हेमचंद्र ने लिखा है कि जिस समय अर्णोराज कुमारपाल पर आक्रमण हेतु आ रहा था तो पूर्व सन्धि के अनुसार वल्लाल को पारा नदी के निकट अर्णोराज से मिलना था किन्तु यह सम्भव नहीं हो सका। इसका कारण यह था कि कुमारपाल ने अपने दो सेनापतियों-विजय और कृष्ण को वल्लाल के विरुद्ध भेज कर उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। अर्णोराज को पराजित करने के बाद जब कुमारपाल लौटा तो उस समय भी वल्लाल अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ तथा कुमारपाल के दोनों सामंत विजय और कृष्ण भी वल्लाल से मिल गये। कुमारपाल सिद्धराज द्वारा मालवा-विजय के कारण मालवा पर अपना अधिकार करना चाहता था। अतः उसने एक विशाल सेना अपने ब्राह्मण सेनापति कक, आबू के परमार सामंत यशोधवल तथा नाडुल्ल के चाहमान सामंत आल्हण के साथ वल्लाल पर आक्रमण को भेजी तथा उसे पराजित कर दिया। आबू शिलालेख[1] के अनुसार कुमारपाल के अधीन आबू के सामंत यशोधवल ने वल्लाल का शीश धड़ से अलग कर दिया। डॉ० दशरथ शर्मा[2] वल्लाल को मारने का श्रेय चाहमान सामंत आल्हण को देते हैं। यह घटना सम्भवतः 1150–1151 ई० की है। अतः मालवा पर पुनः चालुक्यों का अधिकार हो गया। इसकी पुष्टि मालवा में कुमारपाल द्वारा नियुक्त राज्यपालों महासाधनिक और लुणपसक के नामों का उदयपुर से प्राप्त अभिलेखों में उल्लेख होने से होती है। वल्लाल के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के मत से वह कोई स्थानीय सरदार था जिसने मालवा पर अशांत परिस्थितियों में अधिकार कर लिया था किन्तु प्रतिपाल भाटिया[3] का मत है कि वल्लाल नाम होयसलों से सम्बन्धित प्रतीत होता है जो जयवर्मन (1142–1143ई) के समय मालवा पर आक्रमण करने वाली सेना के साथ आया था तथा मालवा में ही रह कर वहाँ का शासक बन गया।

6. कौंकण नरेश मल्लिकार्जुन पर विजय—मल्लिकार्जुन उत्तरी कौंकण का शिलाहार शासक था। मेरुतुंग ने लिखा है कि कुमारपाल को यह अप्रिय लगा जब उसने सुना कि मल्लिकार्जुन स्वयं को राजपितामह कहता है। किन्तु यह युद्ध का पर्याप्त कारण प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः कुमारपाल की विस्तारवादी नीति के कारण ही कौंकण पर आक्रमण किया गया था। हेमचंद्र[4] के विवरण के अनुसार इस युद्ध में कुमारपाल ने भाग नहीं लिया वल्कि उसके सामंतों ने कौंकण विजय की और मल्लिकार्जुन का वध किया। मेरुतुंग, सोमेश्वर, अरिसिंह, प्रभाचंद्र, जयसिंह सूरि

1. Indian Antiquary (LB–10)
2. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 186)
3. *Pratipal Bhatia* : The Parmaras (p. 125)
4. हेमचंद्र : द्वयाश्रयकाव्य (6 : 40–72)

तथा जिनमदन सभी लेखकों ने मल्लिकार्जुन की पराजय का वर्णन दिया है किन्तु भेद केवल इतना है कि कुछ ने एक तथा कुछ ने दो युद्धों का वर्णन दिया है। मल्लिकार्जुन के शीश काटने का श्रेय अरिसिंह कृत "सुकृत सकीर्तन" के अनुसार उदयन के पुत्र व सेनापति आम्रभट (आम्बड़) को है, जयानक भट्ट कृत "पृथ्वीराज विजय" के अनुसार अर्णोराज के पुत्र सोमेश्वर को है तथा "तेजपाल-प्रशस्ति" के अनुसार यह श्रेय आबू नरेश यशोधवल को दिया गया है।

इन सभी विवरणों से यह प्रकट होता है कि कुमारपाल ने मल्लिकार्जुन को पराजित किया किन्तु यह कार्य दो बार सैनिक अभियान भेजने के बाद सम्पन्न हुआ। प्रथम अभियान का नेतृत्व आम्बड़ ने किया किन्तु अनुभवहीन होने के कारण पराजित हुआ। हेमचंद्र के विवरण से इसकी पुष्टि होती है। दूसरे अभियान में यशोधवल तथा सोमेश्वर ने सक्रिय भूमिका निभाई। सेनापति आम्बड़ को कुमारपाल ने कौंकण विजय के उपलक्ष में "राजपितामह" का विरुद देकर सम्मानित किया। डॉ० पाठक के मतानुसार मल्लिकार्जुन को वास्तव में सोमेश्वर ने ही मारा किन्तु सेनापतित्व आम्बड़ के हाथ में होने के कारण जैन लेखकों ने उसे ही सारा श्रेय दिया। मल्लिकार्जुन के उत्तराधिकारी अपरादित्य द्वितीय के शिलालेख (1187 ई०) में उसे महाराजाधिराज कौंकण चक्रवर्ती कहा गया है। अतः इस तिथि तक कौंकण चालुक्यों की दासता से मुक्त हो गया था।

7. **सौराष्ट्र के विद्रोह का दमन**—मेरुतुंग[1] के अनुसार कुमारपाल ने उदयन के नेतृत्व में एक सैनिक अभियान सौराष्ट्र के शासक सुमवरा (सौंसर) के विरुद्ध भेजा किन्तु उदयन पराजित हुआ और उसे घायल अवस्था में शिविर में लाया गया। जयसिंह सूरि और जिनमदन भी ऐसा ही विवरण देते हैं। किन्तु उदयन का इस युद्ध में भाग लेना अनैतिहासिक है क्योंकि प्रभाचंद्र के अनुसार सिद्धराज के शासनकाल में नवघन के विरुद्ध युद्ध करते हुए उदयन की मृत्यु हो गई थी। अतः प्राची अभिलेख के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूरक्षेत्र (सौराष्ट्र) में आभीरों न कुछ विद्रोह किया था जिसे शान्त करने के लिए कुमारपाल ने गुमदेव को नियुक्त किया। सुन्धा पर्वत अभिलेख से भी इसकी पुष्टि होती है कि नाडुल्ल के चौहान सामंत अल्हादन ने सौराष्ट्र के पर्वतीय क्षेत्रों में होने वाले विद्रोह के दमन में कुमारपाल की सहायता की। भगवानलाल इन्द्र के मत में सौंसर कोई मेहर सरदार था किन्तु डॉ० अ० कु० मजूमदार उसे सौराष्ट्र के उपद्रवी सरदारों का कोई प्रतिनिधि मानते हैं।

8. **डाहल के राजा से संघर्ष**—मेरुतुंग[2] के अनुसार जब कुमारपाल सोमनाथ की तीर्थयात्रा पर जा रहा था, उस समय उसे डाहल के राजा कर्ण द्वारा गुजरात पर

1. मेरुतुंग : प्रबंध चिंतामणि (4 : p. 86)
2. मेरुतुंग : प्रबंधचिंतामणि (p. 96)

आक्रमण हेतु अभियान की सूचना मिली। हेमचंद्र की भविष्यवाणी के अनुसार कर्ण का हार एक वृक्ष की शाखा में फँस गया और उसकी मृत्यु हो गई। प्रभाचंद्र कृत "प्रभावक चरित" के अनुसार कर्ण कल्याण कटक का राजा था। इस साक्ष्य के अनुसार कर्ण का सम्बन्ध पश्चिमी चौलुक्यों की राजधानी कल्याणी से होता है जो सम्भाव्य नहीं क्योंकि पश्चिमी चौलुक्य इतने दुर्बल थे कि वे कुमारपाल जैसे शक्तिशाली शासक के विरुद्ध आक्रमण करने का दु:साहस नहीं कर सकते थे। मेरुतुंग डाहल के राजा कर्ण की तुलना कलचुरि नरेश गयाकर्ण से करता है किन्तु कलचुरि भी उस समय आक्रमण करने की स्थिति में नहीं थे। अतः इतिहासकार इस प्रसंग का कोई राजनैतिक महत्त्व नहीं मानते।[1]

साम्राज्य विस्तार

कुमारपाल के उपरोक्त युद्धों के विवरण से उसके समय साम्राज्य-विस्तार की रूपरेखा का आकलन किया जा सकता है। यह स्पष्ट होता है कि कुमारपाल ने जयसिंह सिद्धराज से विरासत में प्राप्त साम्राज्य-सीमा की रक्षा हेतु अनेक युद्ध किये। शाकम्भरी के चौहानों से संघर्ष द्वारा यह स्पष्ट होता है कि कुमारपाल ने अर्णोराज को हराकर उसके ऊपर अपना वर्चस्व स्थापित किया किन्तु चाहमान शासक विग्रहराज चतुर्थ ने कुमारपाल द्वारा विजित चौहान प्रदेशों को पुन: अधिकृत कर लिया। जैसा पूर्व में कहा जा चुका है कि कौंकण अधिक समय तक चालुक्यों की दासता में नहीं रहा।

कुमारपाल की विजयों का जैन लेखकों ने अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख किया है जो अभिलेखों के आधार पर पुष्ट नहीं होता। जयसिंह सूरि कृत "कुमारपाल भूपाल चरित" ग्रन्थ के अनुसार कुमारपाल द्वारा दिग्विजय करने का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि कुमारपाल का जावालिपुर के नायक ने स्वागत किया, अर्णोराज ने उसकी पूजा की, फिर उसने कुरुमंडल जाकर गंगा-तट पर विश्राम किया, मालवा विजय की, फिर आभीर-विजय और प्रकाश नगरी के सरदारों को अधीन किया, तदुपरान्त उसने विन्ध्य-प्रदेश से कर वसूल कर लाट देश के राजा को हराया, फिर सुराष्ट्र विषय पर अधिकार किया, इसके वाद उसनें कच्छ व सिन्ध के राजाओं को पराजित किया, आगे चलकर उसने मुल्तान व शकों के राजाओं को हराया, इसके वाद वह जालन्धर व मरुस्थल होते हुए गुजरात लौट आया। जयसिंह सूरि के अनुसार कुमारपाल की साम्राज्य सीमा पूर्व में गंगा, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत, पश्चिम में सिंध और उत्तर में तुर्क देश तक थी। किन्तु पूर्व और उत्तर दिशा की ओर उसकी विजयों का कोई अभिलेखीय प्रमाण नहीं मिलता। डॉ० पाठक ने अभिलेखों और साहित्यिक साक्षों के आधार पर कुमारपाल की साम्राज्य-सीमा "पश्चिम में सौराष्ट्र और कच्छ,

1. डा. विशुद्धानंद पाठक : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (पृ. 538)

उत्तर में प्राचीन जोधपुर और उदयपुर के राज्यों के कुछ भागों सहित चित्तौड़ से जैसलमेर तक और पूर्व में भिलसा अथवा उसके कुछ आगे तक" विस्तृत मानी है।

कुमारपाल का धर्म

कुमारपाल द्वारा जैन धर्म ग्रहण करने का उल्लेख सभी जैन लेखकों ने किया है तथा उसे जैन-धर्म का संरक्षक माना है। राज्यारोहण के लिए हुए संघर्ष एवं कष्ट के दिनों में कुमारपाल जैनाचार्य हेमचन्द्र तथा मंत्री उदयन की सहायता के लिए कृतज्ञ था और तत्कालीन धार्मिक प्रतिस्पर्धा की स्थिति में यह स्वाभाविक है कि कुमारपाल जैन धर्म के प्रति उन्मुख हुआ था। हेमचन्द्र कृत "महावीर चरित" में उल्लेख किया गया है कि कुमारपाल अपनी विजय-यात्रा के पश्चात् हेमचन्द्र के पास गया और उससे जैन सिद्धान्तों को समझ कर धर्म परिवर्तन किया। सोमप्रभ का भी कथन है कि ब्राह्मणों की धर्म व्याख्या से असन्तुष्ट हो हेमचन्द्र के प्रभाव से कुमारपाल ने जैन धर्म ग्रहण किया। "मोहराज पराजय" नाटक में कुमारपाल के धर्म-परिवर्तन का कृपासुन्दरी के साथ उसके विवाह के रूप में वर्णन किया गया है। जिनमंडल के अनुसार यह विवाह 1159 ई० में हुआ। कुमारपाल के जैन मंत्रियों—वस्तुपाल तथा तेजपाल ने आबू के दिलवाड़ा स्थित जैन मंदिरों का निर्माण कराया।

डॉ० पाठक[1] का मत है कि जैन लेखकों का यह दावा कि कुमारपाल ने जैन धर्म ग्रहण कर अपना धर्म छोड़ दिया था, वह इस उद्देश्य से प्रेरित जान पड़ता है कि शैव तथा अन्य धर्मों के ऊपर जैन धर्म का वर्चस्व दिखाया जाये। वस्तुत: कुमारपाल अनेक पूर्ववर्ती हिन्दू नरेशों—कोशलराज प्रसेनजित तथा हर्ष की भाँति सभी धर्मों के तत्वों को जानने के लिए प्रयत्नशील रहा प्रतीत होता है किंतु वह आजीवन ब्राह्मण धर्म मतावलम्बी बना रहा। कुमारपाल शैव मतावलम्बी के रूप में विख्यात था। हेमचंद्र के "द्वयाश्रम काव्य" से ज्ञात होता है कि कुमारपाल ने शिव केदारनाथ और सोमनाथ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया और कुमारेश्वर का मन्दिर बनवाया। कुमारपाल के सभी अभिलेख शिववंदना से प्रारम्भ हुए हैं। भावबृहस्पति के वेरावल उत्कीर्ण लेख (1169 ई०) में कुमारपाल को "माहेश्वर-नृप आग्रणि:" कहा गया है। हेमचंद्र स्वयं कुमारपाल को "परमाहर्त्त" कहता है। यद्यपि जैन धर्म के प्रभाव अनुसार कुमारपाल ने कुछ दिनों पर पशु-हत्या बन्द की थी किंतु इसका उल्लेख करने वाले अभिलेख में भी कहा गया है कि कुमारपाल ने अपनी सारी विजयें 'शंकर और पार्वती की कृपा" से प्राप्त कीं। कुछ अभिलेखों में उसे "उमापतिवरलब्धप्रसाद" का विरुद दिया गया है। अत: डॉ० पाठक का मत समीचीन जान पड़ता है कि—"वह (कुमारपाल) सभी धर्ममतावलम्बियों के लिए अपना था। निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि अपने समय के जैन विद्वानों, विशेषत: हेमचंद, के चारित्रिक गुणों और विद्वत्ता के प्रभाववश कुमारपाल जैन धर्म

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 539-40)

के प्रति काफी कृपालु और उन्मुख तो था, किन्तु उसने अपने परिवार में प्रारम्भ से ही मान्य शैव धर्म का त्याग नहीं किया।"

कुमारपाल के अन्तिम दिन—जयसिंह सूरि के अनुसार कुमारपाल अपने दोहित्र प्रतापमल्ल को उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहता था। जब यह सूचना उसके भतीजे अजयपाल को मिली तो उसने कुमारपाल के अस्वस्थ होने पर उसे विषयुक्त दूध पिला दिया। कुमारपाल की इस विष के प्रभाव से 1173 ई० में मृत्यु हुई। किन्तु इतिहासकार इस कथन को विश्वसनीय नहीं मानते।

अजयपाल (1173–1176 ई०)

राज्यारोहण—कुमारपाल के मन में अन्त समय तक यह द्विविधा बनी रही कि उसका उत्तराधिकारी उसके भतीजे अजयपाल तथा दोहित्र प्रतापमल्ल में से कौन हो। जैन-वर्ग अजयपाल की जैन विरोधी भावनाओं के कारण अप्रसन्न था किन्तु शैवों ने उसे अपने नेता के रूप में राजा बनाना चाहा। जयसिंह सूरि द्वारा कुमारपाल को विष दिये जाने की घटना संदिग्ध है क्योंकि प्रभाचंद्र तथा मेरुतुंग जैसे समकालीन लेखकों ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया। प्रतीत होता है कि बाद में यह प्रसंग हेमचंद्र के प्रभाववश जोड़ दिया गया है। 1173 ई० में कुमारपाल की मृत्यु के पश्चात् अजयपाल शासक बना।

धार्मिक मान्यताएँ—अजयपाल ने शासनारुढ़ होते ही अपने जैन शत्रुओं को दण्डित किया। उसके अभिलेखों में उसे "परममाहेश्वर" की उपाधि से विभूषित किया गया है जो उसके शैव होने की पुष्टि करती है। डॉ० पाठक ने अभिलेखों तथा 'सुरथोत्सव' ग्रन्थ के आधार पर कहा है कि अजयपाल के समय "वैदिक धर्म का वृक्ष पुन: बढ़ने लगा" और ब्राह्मण पुरस्कृत हुए किंतु अरिसिंह, बालचंद्र व उदयप्रभ समकालिक लेखक तथा "वस्तुपाल तेजपाल-प्रशस्ति" उसकी निन्दा न कर उसका गुणगान करते हैं। इससे प्रकट होता है कि अजयपाल ने केवल अपने जैन विरोधियों को समाप्त किया, जैन धर्म को नहीं। माणिक्यचन्द्र कृत "पार्श्वनाथ चरित" से विदित होता है कि वर्धमान ने जैन सिद्धान्तों की व्याख्या से कुमारपाल और अजयपाल के दरबार को प्रकाशित किया। अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अजयपाल ने शैव धर्म का पालन करते हुए भी जैन धर्म तथा जैन विद्वानों का आदर किया।

अजयपाल की विजयें

1. शाकम्भरी के चाहमानों से संघर्ष—भीम द्वितीय के दानपत्रों में अजयपाल को "करदीकृत्य सपादलक्ष क्षमापाल" विरुद दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि अजयपाल ने अपने समकालीन शाकम्भरी के चाहमान नरेश सोमेश्वर को पराजित किया। अरिसिंह[1] का कथन है कि सपादलक्ष के राजा ने एक रजत मण्डप उपहार अजयपाल को भेजा। "कीर्तिकौमुदी" के अनुसार अजयपाल ने जांगल प्रदेश के राजा

1. अरिसिंह : सुकृत संकीर्तन (2 : p. 44–45)

से एक स्वर्ण मण्डप तथा उसके मत्त हाथियों को छीना। वालचंद्र लेखक ने भी इस की पुष्टि की है। अतः यह निश्चित है कि अजयपाल ने चाहमान नरेश सोमेश्वर को पराजित कर उसे कर देने पर विवश किया।

2. **चित्तौड़ नरेश सामन्तसिंह से संघर्ष**—आबू प्रशस्ति (1230 ई०) के एक श्लोक से विदित होता है कि जब सामन्तसिंह ने गुर्जर नरेश (अजयपाल) की शक्ति भंग की, तब प्रह्लादन की तलवार ने गुर्जर राजा की प्रतिरक्षा की। गुर्जर राजा का अजयपाल से तथा सामन्तसिंह का चित्तौड़ के गुहलोत नरेश सामन्तसिंह से समीकरण किया जाता है। "सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी" ग्रन्थ से विदित होता है कि अजयपाल ने शत्रुसेना को एक संकीर्ण घाटी में परास्त किया। इस युद्ध में अजयपाल को एक गहरा घाव लगा। आबू-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि पहले सामन्तसिंह ने अजयपाल को परास्त किया किंतु बाद में अजयपाल ने प्रह्लादन की सहायता से सामन्तसिंह को हराया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुमारपाल की मृत्यु के बाद सामन्तसिंह ने चित्तौड़ प्रदेश को चालुक्यों की अधीनता से मुक्त कराने का प्रयत्न किया था। कुम्भलगढ़ शिलालेख तथा आहाड़ दानपत्र से विदित होता है कि इस युद्ध से चालुक्यों का अधिकार चित्तौड़ पर बना रहा।

मूल्यांकन—अजयपाल का तीन वर्ष का अल्प शासनकाल असफल नहीं कहा जा सकता। उसने चालुक्य साम्राज्य को पूर्ववतः अक्षुण्ण बनाये रखा। उसका शासन अत्याचारपूर्ण नहीं था जैसा कि कुछ जैन लेखकों ने बतलाया है। उदयपुर शिलालेख से विदित होता है कि उसका साम्राज्य मालवा से भिलसा तक विस्तीर्ण था। उसने एक विशाल सेना सुगठित की थी जो बाद में मुस्लिम आक्रमणकारी के प्रतिरोध करने में सफल रही।

मूलराज द्वितीय (1176–1178 ई०)

राज्यारोहण अजयपाल के पश्चात् उसका पुत्र मूलराज द्वितीय शासक बना। गुजराती लेखकों ने उसे बालमूलराज भी कहा है। उसकी रानी नाईकी, जो चंदेल परमर्दिदेव की पुत्री थी, ने मेरुतुंग के अनुसार गाडरारघट्ट में मुसलमानों से युद्ध किया।[1] मूलराज ने केवल तीन वर्ष शासन किया किन्तु उसके शासन-काल की प्रमुख घटना तुरुष्कों से युद्ध था।

तुरुष्कों से संघर्ष—सोमेश्वर, बालचंद्र तथा अरिसिंह लेखक मुसलमानों (तुरुष्कों) के आक्रमण का विवरण देते हुए उन पर मूलराज की विजय बतलाते हैं। मेरुतुंग के अनुसार मूलराज की रानी नाईकी देवी ने घाट पर म्लेच्छों से युद्ध किया और उन्हें पराजित किया। फोवर्स, बूलर, जैक्सन तथा हबीबुल्लाह इतिहासकारों का मत है कि यह मुस्लिम आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी था। किंतु किराडू शिलालेख के अनुसार मुस्लिम आक्रमण की तिथि 1178 ई० है जो भीम द्वितीय के शासन-काल

1. मेरुतुंग : प्रबन्धचिन्तामणि (पृ. 97)

की है। कुछ विद्वान लाहौर के शासक खुसरो मलिक को तथा डॉ. रे सिंध के शासक सुमवरा को मुस्लिम आक्रमणकारी बतलाते हैं।

डॉ० सत्यप्रकाश[1] का मत उचित प्रतीत होता है कि 1178 ई० में मुहम्मद गौरी को मूलराज ने ही पराजित किया क्योंकि भीम द्वितीय भी इसी वर्ष गद्दी पर बैठा, अतः मुस्लिम लेखकों ने भ्रमवश मूलराज की जगह इस विजय का श्रेय भीम द्वितीय को दिया है। डॉ० पाठक[2] का भी यही मत सुन्धा पर्वत अभिलेख तथा "तबकाते नासिरी" ग्रन्थ के आधार पर है कि मुहम्मद गौरी का आक्रमण 1178 ई. में मूलराज द्वितीय के समय ही हुआ। मूलराज ने अपने छोटे भाई भीम द्वितीय को युद्ध का नेतृत्व सौंपा था जिस ने गाडरारघट्ट अर्थात् काशहृद की घाटी में मुहम्मद गौरी को पराजित किया।

मालवा पर अभियान—मूलराज के समय की दूसरी प्रमुख घटना मालवा नरेश विन्ध्यवर्मन के विद्रोह का दमन करना है। सोमेश्वर[3] का कथन है कि चालुक्य सेनापति कुमार ने विन्ध्यवर्मन को हराकर मालवा विजय किया। सम्भवतः गुजरात में 1178 ई० के अकाल और मुस्लिम आक्रमण का लाभ उठाते हुए मालवा के सामन्त विन्ध्यवर्मन ने गुजरात पर आक्रमण कर मालवा को स्वतन्त्र कराने का प्रयास किया था किन्तु वह असफल रहा।

भीम द्वितीय (1178–1241 ई०)

राज्यारोहण—मूलराज द्वितीय की 2-2½ वर्ष की अल्प अवधि के शासनकाल के पश्चात् 1178 ई० में मृत्यु हो गई। अतः उसके बाद उसका छोटा भ्राता भीम द्वितीय बालक अवस्था में ही शासक बना। इसीलिए भीम का 62-63 वर्षों का शासन-काल अत्यन्त दीर्घ समय तक रहा। उसके राज्यारोहण के समय चालुक्य साम्राज्य में वे सभी प्रदेश थे जिन्हें कुमारपाल ने अपने शौर्य से साम्राज्य में सम्मिलित किया था। किंतु आन्तरिक तथा वाह्य परिस्थितियों के कारण भीम द्वितीय के शासनकाल में चालुक्य साम्राज्य का अधःपतन हो गया। उसे आन्तरिक विद्रोहों तथा वाह्य शक्तियों—चाहमान, होयसल, यादव, परमार तथा मुस्लिम आक्रामक के आक्रमणों का सामना करना पड़ा।

शाकम्भरी चाहमान नरेश पृथ्वीराज तृतीय से संघर्ष—भीम का सर्वप्रथम संघर्ष चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय से हुआ। चन्दबरदायी ने इस संघर्ष का विवरण देते हुए अनेक अनैतिहासिक तथ्य दिए हैं। उसके अनुसार भीमदेव ने नागौर पर अधिकार किया, पुनः पृथ्वीराज ने नागौर अधिकृत किया, भीमदेव ने सोमेश्वर की हत्या की तथा पृथ्वीराज तृतीय ने भीम द्वितीय को हराया तथा मार डाला।

1. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (p. 287)
2. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० 544)
3. सोमेश्वर : सुरथोत्सव (15 ; प० 36–38)

चंदवरदायी के ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो" में वर्णित ये तथ्य तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाते। क्योकि भीम द्वितीय के राज्यारोहण के पूर्व ही सोमेश्वर की मृत्यु हो गई थी, भीम छोटी आयु में स्वयं युद्ध नहीं कर सकता था एवं भीमदेव की पृथ्वीराज द्वारा मारे जाने की बात भी असत्य है क्योंकि भीम 1239 ई० में जीवित था। किंतु नागौर के लिए चाहमान-चालुक्य युद्ध होना सत्य जान पड़ता है क्योंकि इसकी पुष्टि चारलू (बीकानेर) से प्राप्त दो शिलालेखों से होती है जिनमें चाहमानों के सामन्त दो मोहिल वीरों का नागौर युद्ध में 1184 ई० में मारा जाना बतलाया गया है। यह तथ्य प्रह्लादन कृत "व्यायोगपार्थपराक्रम" ग्रन्थ में भी उल्लिखित है कि भीम और पृथ्वीराज तृतीय के मध्य नागौर और आबू के निकट दो युद्ध हुए। इस ग्रन्थ से विदित होता है कि आबू के परमार सामन्त धारावर्ष पर पृथ्वीराज ने आक्रमण किया किन्तु "प्रबन्धचिन्तामणि" के अनुसार भीम द्वितीय के मन्त्री जगद्देव प्रतिहार को इस युद्ध में सफलता नहीं मिली। वेरावल प्रशस्ति से इसके विपरीत तथ्य प्रकट होता है कि जगद्देव पृथ्वीराज की कमलरूपी रानियों के लिए चंद्रमा के समान था। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों को कोई सफलता नहीं मिली और उनमें सन्धि हो गई। जिनपाल कृत "खरतरगच्छपट्टावली" से यह पुष्ट होता है कि यह युद्ध 1184 ई० में हुआ और सन्धि हो गई।

होयसलों का आक्रमण—होयसल नरेश विष्णुवर्धन के पश्चात् उसका पुत्र बल्लाल द्वितीय 1173 ई० में सिंहासन पर बैठा। उसके उत्कीर्ण लेखों से विदित होता है कि जब वह समर यात्रा पर निकलता था तो गुर्जर कांपते थे तथा उसने गुर्जर और मालवों को परास्त किया। वेलगामि शिलालेख (1192 ई०) से ज्ञात होता है कि उसने बलपूर्वक मालवा पर अधिकार किया। उसके एक अन्य शिलालेख (1199 ई०) से पता चलता है कि मालवराज और गुर्जर सम्राट दोनों को उसने युद्ध में पराजित किया। किन्तु उपलब्ध साक्ष्यों से यह सिद्ध नहीं होता कि इन युद्धों से गुर्जरो (भीम द्वितीय) को कोई विशेष क्षति पहुँची हो। होयसलों के ये अभियान लाट प्रदेश को लूटने के उद्देश्य से किये गये प्रतीत होते हैं।

यादवों का आक्रमण—यादव राजा भिल्लम ने भीम द्वितीय पर आक्रमण किया। सुन्धा पर्वत अभिलेख से विदित होता है कि चाहमान सामन्त कल्हण ने दक्षिण के राजा भिल्लम को पराजित किया। भिल्लम के मुतगि अभिलेख (1189 ई०) से इसकी पुष्टि होती है कि मालवा, बराल, कलिंग, गुर्जर, चोल, गौड़, पांचाल, अंग, वंग तथा नेपाल भिल्लम के भय से त्रस्त रहते थे तथा भिल्लम ने मालवों और गुर्जरों को हराया। अतः यह सम्भाव्य प्रतीत होता है कि भिल्लम दक्षिणी मारवाड़ तक बढ़ आया हो और उसने भीम को पराजित किया हो, किन्तु भीम की सहायता उसके सामन्त कल्हण ने कर भिल्लम को पराजित किया। भिल्लम के पुत्र जैतुगी (1191-1210 ई०) ने लगभग 1200 ई० में पुनः गुर्जरों को पराजित किया।

गुजरात पर कुतुबुद्दीन का आक्रमण (1197 ई०)—पूर्व में कहा गया है कि 1178 ई० में आबू के निकट काशह्रद के मैदान में भीम से पराजित होने के बाद तुर्कों को 20 वर्ष तक गुजरात पर आक्रमण करने का साहस न हुआ। किन्तु तराइन युद्ध (1192 ई०) में चौहान पृथ्वीराज तृतीय की पराजय तथा चन्दावर युद्ध (1194 ई०) में गाहड़वाल चयचन्द की हार के वाद तुर्कों का प्रतिरोध करने वाली कोई शक्ति उत्तरी भारत में शेप नहीं रह गई थी। अतः तुर्कों ने जब हरिराज चौहान को हराकर अजमेर पर अधिकार किया तो उनका संघर्ष गुजरात के चालुक्यों से होना अवश्यम्भावी हो गया।

मुस्लिम इतिहासकार हसन निजामी कृत "ताजुल-मसीर" ग्रन्थ से कुतवुद्दीन तुर्क सेनापति के आक्रमण का विवरण मिलता है। इसके अतिरिक्त फरिश्ता इतिहासकार भी इसकी पुष्टि करता है। जब कुतुब्रुद्दीन को यह सूचना मिली कि नहरवाल (अन्हिलपट्टन) के राव के एक सामन्त जेतवन ने हाँसी के दुर्ग पर अधिकार कर लिया है तो तुरन्त ही उसने हाँसी दुर्ग पर आक्रमण कर उसे अधिकृत कर लिया। हसन निजामी के अनुसार जेतवन मारा गया किन्तु फरिश्ता के अनुसार जेतवन भाग कर गुजरात पहुँच गया। इसके वाद कुतुवुद्दीन अजमेर पर अधिकार करता हुआ गुजरात की ओर वढ़ा। भीम के सेनापति जेतवन ने दुर्ग की रक्षा की किन्तु वह कुतुवुद्दीन से पराजित हो मारा गया। भीम राजधानी छोड़ कर भाग गया। कुतुवुद्दीन लूट में प्राप्त असंख्य धन लेकर दिल्ली लौट गया। फरिश्ता के अनुसार भीम की सहायतार्थ अनेक हिन्दू राजाओं ने युद्ध में भाग लिया। जब कुतुवुद्दीन पराजित हो अजमेर के दुर्ग में छिप गया तव मुहम्मद गौरी ने गजनी से कुतुवुद्दीन की सहायतार्थ विशाल सेना भेजी जिसकी सहायता से कुतुवुद्दीन ने भयंकर युद्ध किया। फरिश्ता के अनुसार इस युद्ध में 15,000 हिन्दू सैनिक मारे गये तथा 20,000 वन्दी वना लिये गये। कुतुवुद्दीन गुजरात में अपना प्रतिनिधि छोड़ कर दिल्ली चला गया किन्तु गुजरात पर मुसलमानों का आधिपत्य अधिक दिनों नहीं रह सका। उपलव्ध साक्ष्य के अनुसार 1201 ई० में भीम अन्हिलपट्टन का शासक वन गया। आगामी 100 वर्षों तक मुसलमानों ने गुजरात पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

परमार आक्रमण—मालवा के राजा विन्ध्यवर्मन के उत्तराधिकारी सुभटवर्मन ने चालुक्यों से पूर्व पराजय का पूरा बदला लिया। होयसल, यादव तथा कुतुवुद्दीन के आक्रमणों का लाभ उठा कर सुभटवर्मन ने चालुक्य अधिकृत लाट प्रदेश पर आक्रमण किया तथा वहाँ के शासक सिंह को अधीनता स्वीकार करने को विवश किया। सिंह चालुक्यों का सामन्त था। लाट पर अधिकार करने के वाद सुभटवर्मन ने गुजरात पर अभियान किया और वह अन्हिलवाड़ तथा सोमनाथ तक वढ़ गया। सोमनाथ के चालुक्य अधिकारी श्रीधर ने सुभटवर्मन को पराजित कर पीछे लौटने पर विवश किया। इसकी पुष्टि श्रीधर के एक अभिलेख (1216 ई०) से होती है।

इसी समय भीम द्वितीय के मन्त्री लवणप्रसाद ने विशाल सेना एकत्रित कर सुभटवर्मन को गुजरात पर आक्रमण करने से विमुख कर दिया। "कीर्तिकौमुदी", "प्रबन्ध चिन्तामणि" तथा दमोई अभिलेख से लवणप्रसाद के इस शौर्यपूर्ण कार्य की पुष्टि होती है।

सुभटवर्मन के उत्तराधिकारी अर्जुनवर्मन के समय गुजरात की आन्तरिक स्थिति खराब हो गई थी। लगभग 1201 ई० के पूर्व भीम द्वितीय को गद्दी से हटा कर जयसिंह नामक व्यक्ति शासक बन गया। 1223 ई० के एक शिलालेख में उसे "गुर्जर पति" कहा गया है किन्तु चालुक्य साम्राज्य के प्रान्तपाल भीम को ही अपना शासक मानते रहे। इसी समय अर्जुनवर्मन ने गुजरात पर आक्रमण कर जयसिंह को गुजरात से भगा दिया। बाद में दोनों में सन्धि हो गई और जयसिंह ने अपनी पुत्री विजयश्री का विवाह अर्जुनवर्मन से कर दिया। भोपाल दानपत्र के अनुसार 1213 ई० में अर्जुनवर्मन भड़ौंच पहुँच गया था, अतः इस आक्रमण की तिथि 1210 से 1213 ई० के मध्य रही होगी।

आन्तरिक विद्रोह तथा चौलुक्य सत्ता का अवसान—बाह्य आक्रमणों के कारण अनेक सामन्त भी स्वतन्त्र होने का उपक्रम करने लगे। सिंहण के आक्रमण के समय मारवाड़ में उदयसिंह, सोमसिंह और धारावर्ष क्रमशः जालौर, गोडवाड़ और चन्द्रावती में विद्रोह करने लगे। मेवाड़ के शासक जैत्रसिंह (1213-1256 ई०) ने भी चालुक्य-दासता से मुक्त होने का प्रयास किया और स्वयं को 'महाराजाधिराज' कहने लगा। सौराष्ट्र में भीमसिंह स्वतन्त्र हो गया।

भीम द्वितीय के मन्त्री लवणप्रसाद तथा वीरधवल ने इन आन्तरिक विद्रोहों का दमन किया। किन्तु भीम की इन पर आत्मनिर्भरता के कारण उसकी सत्ता दुर्बल हो गई। इसी कारण जैत्रसिंह नामक किसी व्यक्ति ने गद्दी पर अधिकार कर लिया जो कुछ समय तक रहा। जैत्रसिंह के अभिलेखों में उसे "महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, उमापतिवरलब्ध प्रौढ़प्रसाद, तथा चौलुक्यकुलकल्पवल्लभीः विस्तारदीप्त अभिनव सिद्धराज" कहा गया है। जैत्रसिंह के समय ही परमार राजा अर्जुनवर्मन ने गुजरात पर आक्रमण किया।

भीम द्वितीय की सत्ता का अपहरण वस्तुतः उसके जैन मन्त्रियों लवणप्रसाद तथा उसके पुत्र वीरधवल ने किया। "कीर्तिकौमुदी" तथा "सुकृत संकीर्तन" ग्रन्थों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। लवणप्रसाद तथा राणक वीरधवल धवलक अथवा धौलक में पूर्ण स्वतन्त्र थे। भीम की मृत्यु के बाद 1243 ई० में वीरधवल के पुत्र वीसलदेव अन्हिलवाड़ का स्वतन्त्र शासक हो गया। भीम द्वितीय ने स्वेच्छा से अपना अधिकार लवणप्रसाद और उसके पुत्र वीरधवल को सौंप दिया क्योंकि उसके शासन-काल में लवणप्रसाद और उसके पुत्र वीरधवल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अरिसिंह के अनुसार भीम ने वीरधवल को युवराज नियुक्त किया। भीम के जीवनकाल

में ही वीरधवल की मृत्यु हो गई थी, अतः वघेल वंश का दावा गुजरात के सिंहासन पर हो गया।

त्रिभुवनपाल (1242 ई०)

भीम द्वितीय की मृत्यु के बाद त्रिभुवनपाल शासक बना। अन्हिलपट्टन उसकी राजधानी थी। "दूताङ्गद" नाटक से ज्ञात होता है कि उसके राज्य में सोमनाथ सम्मिलित था। त्रिभुवनपाल के अल्पकालीन शासन के बाद वघेलों का शासन आरम्भ हुआ। उसकी मृत्यु के बाद भीम के वंश का अन्त हो गया।

चालुक्यों का पराभव एवं बघेल वंश

बघेल वंश चालुक्य वंश की ही एक शाखा थी जो मूलराज प्रथम की शाखा से भिन्न थी। बघेल नाम अणहिलपट्टन के दक्षिण-पश्चिम में 10 मील दूर स्थित व्याघ्रपल्ली (व्याघ्र की मांद) नामक स्थान पर कहलाया। बघेल वंश का प्रथम महत्वपूर्ण व्यक्ति अर्णोराज था जो चालुक्य सामन्त था, उसने प्रान्तीय राज्यपालों के विद्रोह-दमन में प्राण गँवाये। उसका पुत्र लावण्यप्रसाद भीम द्वितीय का महामण्डलेश्वर तथा राणक था। लावण्यप्रसाद के पुत्र वीरधवल ने गुजरात पर किये गये अनेक आक्रमणों से साम्राज्य की रक्षा की। वीरधवल के बाद उसका पुत्र वीसलदेव महामण्डलेश्वर व राणक नियुक्त किया गया।

वीसलदेव—भीम की मृत्यु के बाद कैम्बे में उसने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। बाद में त्रिभुवनपाल को हरा कर वह गुजरात का शासक बन गया। वीसलदेव ने मेवाड़ पर सफल सैनिक अभियान किया तथा यादव सेनापति राम के आक्रमण से राज्य की रक्षा की। बाद में वह लाट प्रदेश के शासक सिंहन के उत्तराधिकारियों कृष्ण और महादेव से पराजित हुआ। होयसल वंश से उसकी मित्रता थी। उसका मुख्यमन्त्री नागर ब्राह्मण था। वह ब्राह्मण-धर्म का अनुयायी था। उसके दरबार में अरिसिंह, अमरचन्द्र, यशोधर और सोमेश्वर जैसे साहित्यकार व कवि रहते थे। वीसलदेव ब्राह्मण धर्मावलम्बी होते हुए भी जैन धर्म का आदर करता था।

अर्जुनदेव—वीसलदेव के पश्चात् उसके भाई प्रतापमल्ल का पुत्र अर्जुनदेव शासक बना। उसके राज्य का विस्तार अणहिलपट्टन से कच्छ तक था जिसमें काठियावाड़ भी सम्मिलित था। उत्तर में ईदर तक राज्य-सीमा थी। अर्जुनदेव के बाद राम सिंहासन पर बैठा किन्तु अपनी मृत्यु के पूर्व राम ने अपने भाई शारङ्गदेव को उत्तराधिकारी बनाया।

शारंगदेव—गुजरात के संकट के समय शारङ्गदेव ने वाराह की भाँति गुर्जर प्रदेश का उद्धार किया। उस समय मालवा पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण तथा मंगोलों के भारत पर आक्रमण हो रहे थे। शारङ्गदेव ने आबू नरेश समरसिंह को हटा कर उसके स्थान पर प्रतापसिंह को शासक बनाया। समरसिंह शत्रुदल से जा मिला जो बघेल शासकों के लिए अनिष्टकर सिद्ध हुआ।

कर्ण—शारङ्गदेव के पश्चात् राम का पुत्र कर्ण शासक बना। उसके शासन-काल के तीसरे वर्ष मे ही अलाउद्दीन खिलजी का आक्रमण हुआ जिसके लिए कर्ण सावधान नहीं था। चारण परम्परा के अनुसार कर्ण ने अपने नागर मन्त्री माधव की पत्नी का अपहरण किया। अत: माधव ने मुसलमानों से मिलकर गुजरात पर आक्रमण कराया। मेरुतुंग कृत "विचार-श्रेणी" ग्रन्थ से विदित होता है कि माधव के विश्वासघात के कारण गुजरात पर आक्रमण हुआ। कर्ण को भाग कर एक किले मे शरण लेनी पड़ी। बाद में आशापल्ली के निकट हुए युद्ध में कर्ण पराजित हुआ तथा उसके राजप्रासाद की महिलायें आक्रामकों के हाथ पड़ गई। इस प्रकार चालुक्य वंश का पराभव हो गया।

गुजरात के चालुक्यों की शासन-व्यवस्था

तत्कालीन साहित्य एवं उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर गुजरात के चालुक्यों की शासन-व्यवस्था निम्नांकित थी—

राजा—उत्तरी भारत के समकालीन राजवंशों की भाँति चालुक्य शासक भी राज्य की सर्वोच्च सत्ता थी। उसमें कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा व्यवस्थापिका की सभी शक्तियाँ निहित थी। चौलुक्य शासकों ने विभिन्न विरुद धारण किये यथा—उमापतिवरलब्ध, परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, चक्रवर्ती, गुर्जरधराधीश्वर, परमाहर्त आदि। इन विरुदो से चालुक्य शासक की शक्ति तथा उनके दैवी रूप की प्रतीक थी। किन्तु ये शासक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी नही थे। इसके अतिरिक्त शासक युद्ध मे प्रधान सेनापति का कार्य करता था।

युवराज—यह पद महत्त्वपूर्ण था। साधारणत: ज्येष्ठ पुत्र ही युवराज बनाया जाता था। यदि कोई शासक नि:संतान होता तो यह पद भतीजे या छोटे भाई को दिया जाता था।

केन्द्रीय अधिकारी—अत्यन्त विस्तीर्ण गुर्जर साम्राज्य की व्यवस्था हेतु उसे विभिन्न इकाइयो मे विभक्त कर दिया था। साम्राज्य मण्डलों (प्रान्तों) में तथा प्रांत स्थानीय शासन मे विभक्त थे। केन्द्रीय अधिकारी निम्नांकित थे—

1. **महामात्य**—महामात्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकारी था जो वाली शिलालेख के अनुसार राजा का परामर्शदाता भी होता था।

2. **महामहुर्मतिका**—यह राज-ज्योतिषी होता था।

3. **महालक्षपटलिक**—यह राज्य के समस्त अभिलेखो की व्यवस्था करता था।

4. **महासन्धिविग्रहिक**—यह कूटनीतिक पद था जिसका सम्बन्ध युद्ध और शांति से था।

5. **महामण्डलेश्वर**—यह मण्डल का प्रशासक होता था।

6. **महासैधानिक**—यह नगर का पुलिस अधिकारी था।

7. **महाप्रधान**—यह राणक भी कहलाता था।

8. दण्डनायक—ये अधिकारी सेनापति या राज्यपाल पदों पर नियुक्त होते थे।

9. देशरक्षक—यह अधिकारी पुलिस या दण्डपाशिक या प्रांतीय व्यवस्था का प्रभारी था।

10. अधिष्ठानक—यह न्याय विभाग का उच्चाधिकारी था।

राज्य कर्मचारियों तथा अधिकारियों को राजकोष से ही वेतन मिलता था। सामन्तवादी प्रथा भूस्वामी के रूप में नहीं बल्कि सैनिक सेवाओं के लिए प्रचलित थी। साम्राज्य मण्डलों (प्रांतों) में विभक्त था। शिलालेखों से दधिप्रद, गुर्जर, लाट, अवन्ति, कच्छ, सत्यपुरा, सारस्वत, सूरक्षेत्र आदि मण्डलों के नाम मिलते हैं। मण्डल का अधिकारी महामण्डलेश्वर था। मण्डल विषयों अथवा पाठकों में विभक्त थे। अभिलेखों के अनुसार उस समय शृङ्गरिक, चालीसा, दंडदाही, धानदोहरा, ग्रमभट्ट आदि विषय थे। पाठक ग्रामों में विभक्त थे जो प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी।

नगर-शासन—नगर का प्रशासन "पंचकुल" नामक संस्था करती थी। पंचकुल के सदस्यों में पुरोहित, महाजन, वासिजियक तथा नावनितक प्रमुख थे। ये करों की स्वीकृति दे कर शासन-व्यवस्था करते थे।

ग्राम-शासन—ग्राम के प्रमुख अधिकारियों में सिलाहासतो, तालरा, हिन्दीपक, प्रतिसरक, वालाधि, वोलपिक तथा मनडावी के पदों का उल्लेख अभिलेखों में किया गया है।

भूमिकर—अभयतिलकजानी के अनुसार अधिकारियों द्वारा ग्रामों से जो कर उगाहे जाते थे उनमें शुल्क (चुंगीकर), यात्रीकर, मद्य व द्यूत कर, सन्तानविहीन की सम्पत्ति, खान व वन कर, आर्थिक दण्ड, न्याय कर तथा क्रय-विक्रय कर प्रमुख थे।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. जयसिंह सिद्धराज की जीवनी और उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये। (1976).
   Give an account of the career and achievements of Jaisingh Siddhraja.
2. गुजरात के चालुक्यों की उत्पत्ति के कौन से मत से आप सहमत हैं? सतर्क उत्तर दीजिये।
   Which theory of the origin of Chalukyas of Gujrat is acceptable to you ? Give arguments to support your answer.
3. "जयसिंह सिद्धराज के समय चालुक्य राज्य-सीमा चरम शिखर पर थी।"—सिद्धराज की विजयों के सन्दर्भ में इस कथन की समीक्षा कीजिये।

"Chalukya empire was at its zenith in the reign of Jaisingh Siddhraj."
Discuss this statement in the context of Siddhraj's conquests.

4. कुमारपाल के चाहमानों से संघर्ष का विवरण देते हुए उसकी विजयों का मूल्यांकन कीजिये।
Describe Kumarpal's conflict with Chahamans and evaluate his conquests.

5. कुमारपाल के धर्म की व्याख्या करते हुए उसकी धर्मसहिष्णुता का परिचय दीजिये।
Discuss religious faith of Kumarpal and his attitude of religious tolerance.

6. सिद्धराज एवं कुमारपाल के समय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रगति का महत्व प्रकट कीजिये।
Bring out the significance of the cultural and literary progress during the reigns of Siddharaj and Kumarpal.

7. मूलराज द्वितीय तथा भीम द्वितीय के तुरुष्कों से संघर्ष के कारणों, घटनाओं तथा परिणामों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिये।
Describe in brief the causes, events and results of the conflict of Mularaj II and Bhim II with the Turks.

8. निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—
(क) चालुक्यों का मूलस्थान,
(ख) महमूद गजनवी का सोमनाथ-आक्रमण,
(ग) सोमेश्वर कृत "कीर्तिकौमुदी",
(घ) द्वयाश्रय काव्य,
(च) "तेजपाल-प्रशस्ति",
(छ) गुजरात पर कुतुबुद्दीन का आक्रमण,
(ज) चालुक्यों का पराभव,
(झ) कुमारपाल चालुक्य। (1978)
Write short notes on the following—
(a) Original home of Chalukyas.
(b) Mahmud Gazanavi's invasion of Somanath.
(c) "Kirti-Kaumudi" by Someshwar.
(d) "Dvyashrya Kavya."
(e) "Tejpal Prashasti."
(f) Qutbuddin's invasion of Gujrat.
(g) Decline of Chalukyas.
(h) Kumarpal Chalukya.

9. जयसिंह सिद्धराज के जीवनवृत्त एवं उपलब्धियों का निरूपण कीजिये। (1978)

Sketch the career and achievements of Jayasingh Siddhraj.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकियों का प्राचीन इतिहास
2. Jai Narayan Asopa : Origin of the Rajputs.
3. Dr. A. K. Majumdar : Chalukyas of Gujrat.
4. Dr. H. C. Ray : Dynastic History of Northern India.
5. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास
6. डॉ० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास—राजपूत काल
7. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास
8. हेमचंद्र : द्वयाश्रय काव्य
9. मेरुतुंग : प्रबन्ध चिन्तामणि

8 परमार—मुन्ज तथा भोज के विशेष सन्दर्भ में

(Paramaras with special reference to Munja and Bhoja)

परमारों की उत्पत्ति
(Origin of Paramaras)

प्रथम अध्याय में राजपूतों की उत्पत्ति संबंधी विभिन्न मतों की समीक्षा विस्तार से की जा चुकी है। अन्य राजपूत वंशों की भाँति परमारों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मत प्रचलित हैं जिनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं :—

1. अग्निवंश मत—पद्मगुप्त ने अपने ग्रन्थ "नवसाहसाङ्क-चरित" में परमारों की उत्पत्ति सम्बन्धी कथा इस प्रकार दी है[1]—"एक दिन आबू पर्वत पर वशिष्ठ ऋषि की कामधेनु गाय विश्वामित्र चुराकर ले गये। इस पर वशिष्ठ ने क्रोधित हो एक अग्निकुण्ड बनाया और उसमें उनके द्वारा आहुति देने पर एक किरीट व कांचन कवच धारण किये हुए वीर का जन्म हुआ जिसने विश्वामित्र से कामधेनु छीन कर पुनः वशिष्ठ को दी। वशिष्ठ ने इस वीर का नाम परमार अर्थात् "शत्रु संहारक" रखा। इसी वीर से परमार वंश की उत्पत्ति हुई।" धनपाल कृत "तिलक मंजरी" में भी यह कथा वर्णित है।

टॉड महोदय ने भाटों के आधार पर इसी प्रकार एक कथा उद्धृत की है—"राक्षसों ने जब देवताओं के यज्ञ को अपवित्र करना अरंभ किया तो देवताओं की प्रार्थना पर महादेव ने अग्नि-कुण्ड से चार वीर उत्पन्न किये। इनमें से प्रथम को द्वार पर नियुक्त कर उसका नाम प्रतिहार रखा, दूसरे का नाम चौलुक्य, तीसरे को परमार तथा चौथे को चाहमान के नाम से पुकारा।"

अबुलफजल[2] कृत "आईने अकबरी" ग्रन्थ में भी परमारों की उत्पत्ति अग्नि-कुण्ड से बतलाई गई है। अभिलेखों में भी इसका उल्लेख है। उदयपुर-प्रशस्ति (1072 ई०) नागपुर शिलालेख, पूर्णपाल का वसन्तगढ़ शिलालेख, आबू पर्वत

1. पद्मगुप्त : नवसाहसांक चरित (11 : श्लोक 64–76)
2. अबुल फजल : आईने-अकबरी (2 : 214)

शिलालेख, पटनारायण शिलालेख व अर्थूना शिलालेख में इसका उल्लेख किया गया है।

उपरोक्त मत परंपरागत कथाओं के आधार पर काल्पनिक है जिसका उद्देश्य परमारों की दैवी उत्पत्ति सिद्ध करना है। परमारों को अग्निवंशी कहने का कारण डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा[1] यह मानते हैं कि परमारों के पूर्वज "धूमराज" के नाम के आधार पर 'धूम्र' और 'अग्नि' को एक साथ मिला कर परमारों को अग्निवंशी मान लिया गया। किन्तु यह तर्क उचित नहीं क्योंकि परमारों के पूर्वज धूमराज का उल्लेख करने वाले अभिलेखों के पूर्व ही "नवसाहसांक चरित" में परमारों का सम्बन्ध आबू के अग्नि-कुण्ड से जोड़ दिया गया था। अतः यह मत निराधार है।

2. **विदेशी उत्पत्ति का मत**—अधिकांश विद्वान् जिनमें वाटसन, फोवर्स, कैम्पल, भण्डारकर व इव्टसन प्रमुख हैं, विभिन्न तर्क देकर परमारों को विदेशी उत्पत्ति का सिद्ध करते हैं। इनका मत है कि भारत में आने वाली विदेशी जातियों—शक, हूण, सिथियल आदि को अग्नि द्वारा शुद्ध कर उनका भारतीयकरण किया गया। पूर्व में राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति की समीक्षा करते समय विस्तार से इस मत की निस्सारता सिद्ध की जा चुकी है। अतः यह मत भी स्वीकार करने योग्य नहीं।

3. **राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति का मत**—तीसरा प्रमुख मत परमारों की दक्षिण निवासी राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति सम्बन्धी है। डॉ० गांगुली[2] सीयक द्वितीय केहर्सोल अभिलेख (948 ई०) के आधार पर परमारों की उत्पत्ति मान्यखेठ के राष्ट्रकूटों से मानते हैं। उनका तर्क है कि वाक्पति मुंज ने अमोघवर्ष, श्रीवल्लभ और पृथ्वीवल्लभ जैसी राष्ट्रकूट उपाधियाँ धारण की थी। अबुलफजल[3] कृत "आइने-अकवरी" ग्रंथ में भी उल्लेख है कि परमारवंश का संस्थापक धंजी (धनंजय) ने दक्षिण से आकर मालवा पर अधिकार किया। डॉ० गांगुली का मत है कि राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द *तृतीय ने अपने वंश के एक अधिकारी उपेन्द्र कृष्णराज को मालवा में नियुक्त किया* जो परमार वंश का संस्थापक हुआ।

परमारों के एक शिलालेख के अतिरिक्त अन्य किसी में भी उन्हें राष्ट्रकूटवंशी होने का उल्लेख न होना उपरोक्त मत को संदिग्ध बनाता है। हरसोल शिलालेख (948 ई०) में परमारों को राष्ट्रकूटों से उत्पन्न बताया गया है। इस तर्क में भी कोई बल नहीं कि तत्कालीन चक्रवर्ती शासक अपना सम्बन्ध पौराणिक वीरों से जोड़ते थे। डॉ० पाठक[4] हरसोल शिलालेख से राष्ट्रकूट उत्पत्ति मानना इस खंडित

1. डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा : राजपूताना का इतिहास (भाग 1 पृ. 79)
2. *Dr. D. C. Ganguli* : History of the Parmar Dynasty (p. 7)
3. अबुलफजल : आइने अकवरी (अंग्रेजी अनुवाद p. 160)
4. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (p. 555-57)

शिलालेख का गलत अर्थ लगाना मानते हैं। इसी प्रकार "आइने अकबरी" में उल्लिखित धनंजय का परमार शिलालेखों में उनका पूर्वज होना नहीं पाया जाता। डॉ० सत्य प्रकाश[1] इस मत के विषय में कहते हैं कि—"जब तक कोई साक्ष्य प्रकाश में नहीं आ जाता तब तक परमारों को राष्ट्रकूटों से जोड़ा जा सकता है।" श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय[2] भी परमारों की उत्पत्ति राष्ट्रकूटों से मानने के पक्ष में हैं।

4. ब्राह्मणों से उत्पत्ति—डॉ० पाठक का कथन है कि परमार वशिष्ठ ऋषि से किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध थे। वे अपना गोत्र संबंध वशिष्ठ से जोड़ते हैं। इस मत का आधार हलायुध कृत "पिंगलसूत्र वृत्ति" ग्रन्थ में वाक्पति मुन्ज को "ब्रह्मक्षत्र कुलीन" होने का उल्लेख है। सेन, गुहिलोत और चाहमान क्षत्रियों की भाँति परमार भी ब्रह्मक्षत्र कुलीन थे अर्थात् उनके पूर्वज तो ब्राह्मण थे किन्तु बाद में वे किसी कारणवश ब्राह्मणों के शास्त्र छोड़ कर शस्त्र धारण कर क्षत्रिय बन गये। "अतः परमारों को मूलतः वशिष्ठ ब्राह्मण और बाद में वशिष्ठगोत्री क्षत्रिय स्वीकार करना चाहिए।" डॉ० पाठक का यह मत अधिक समीचीन जान पड़ता है।

परमारों का मूल निवास-स्थान
(Original Home of Paramaras)

अग्निकुल मत के अनुसार आरंभ में परमारों का मूल निवास स्थान आबू के आसपास रहा हो किन्तु ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर परमारों का राज्य उज्जैन के लगभग 70 मील दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ था। पहले उस प्रदेश पर राजपूतों की प्रतिहार शाखा राज्य करती थी। मालवा पाल–प्रतिहार-राष्ट्रकूट त्रिसंघर्ष का स्थल बना रहा। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय ने प्रतिहार शासक नागभट्ट से मालवा विजित किया। संजन पट्टों से इसकी पुष्टि होती है कि गोविन्द तृतीय ने मालवा जीत कर वहाँ अपने भृत्यों को नियुक्त किया। श्री लक्ष्मीकांत मालवीय[3] का मत है कि मालवा का यह शासक सम्भवतः परमार वंश का संस्थापक उपेन्द्र–कृष्णराज था। अतः परमार दक्षिण भारत से आकर मालवा में स्थापित हुए। परमारों की चार शाखाओं का आधिपत्य मालवा, बागड़ प्रदेश, आबू पर्वत और जोधपुर संभाग (जालौर और भीनमाल) में था। इनमें से मालवा के परमार प्रमुख थे। इस शाखा के शासकों का विवरण निम्नांकित है :—

प्रारंभिक परमार शासक
(Early Paramara Rulers)

(1) उपेन्द्र (808–817 ई०)

उपेन्द्र (कृष्णराज) परमार वंश का संस्थापक था। डॉ० गांगुली के

1. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल (पृष्ठ 223)
2. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 154)
3. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 157)

मतानुसार वह राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय का सामन्त था। "नवसाहसांक चरित" तथा "उदयपुर प्रशस्ति" से ज्ञात होता है कि उपेन्द्र यज्ञों के लिये प्रसिद्ध था और वह दानी राजा था। उसने प्रजा के करों के बोझ को कम किया। उसने अपना शासन 808 से 812 ई० के मध्य आरम्भ किया। अनुमान है कि उसने 817 ई० तक राज्य किया। उदयपुर प्रशास्ति के अनुसार उसने अपने निजी शौर्य से राजत्व का उच्चपद प्राप्त किया। उसके दरबार में सीता नामक एक कवियित्री रहती थी जिसने उसकी प्रशंसा में काव्य-रचना की है।

(2) वैरिसिंह प्रथम (818–842 ई०)

उपेन्द्र के दो पुत्र थे—वैरिसिंह और डम्बरसिंह। वैरिसिंह मालवा का शासक बना तथा डम्बरसिंह बागड़ (बांसवाड़ा) का सामन्त बना। उदयपुर प्रशस्ति में वैरिसिंह की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसने अपनी यशकीर्ति के अंकन के लिये सारी पृथ्वी पर जयस्तम्भों की स्थापना की। वह सामन्त के रूप में ही शासन करता रहा।

(3) सीअक प्रथम (843–893 ई०)

शिलालेखों मे सीअक प्रथम को महान् विजेता के रूप में बतलाया गया है किन्तु अन्य कोई विवरण नहीं मिलता। वह एक साधारण शासक ही था।

(4) वाक्पति प्रथम (894–920 ई०)

आगामी शासक कृष्णराज अर्थात् वाक्पति प्रथम था। उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि अवन्ति प्रदेश पर उसका पूर्ण आधिपत्य था और वीरता तथा युद्ध-कौशल में उसकी तुलना इन्द्र से की गई है। उसकी सेना ने गंगा का जल पिया। किन्तु विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण है। वह महेन्द्रपाल प्रतिहार शासक का सामन्त था जिसने पालों के विरुद्ध युद्ध किया। वाक्पति द्वितीय मुंज के अभिलेख में उसे "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" की उपाधि दी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूटों के आक्रमण से उत्पन्न स्थिति में वाक्पति प्रथम ने प्रतिहारों की अधीनता से मुक्त हो अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी।

(5) वैरिसिंह द्वितीय (921–945 ई०)

वाक्पति प्रथम के बाद उसका पुत्र वज्रटस्वामी वैरिसिंह द्वितीय के नाम से शासक बना। श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय तथा डॉ० सत्यप्रकाश उसे राष्ट्रकूटों का माण्डलिक बतलाते हैं किन्तु डॉ० पाठक के मतानुसार परमारों ने गुर्जर प्रतिहारों की अधीनता से मुक्ति पाने का प्रयास वाक्पति प्रथम के समय से करना आरम्भ कर दिया था। वैरिसिंह ने राष्ट्रकूट व प्रतिहारों के ह्रास और पतन का लाभ उठाया और धारा की विजय की। प्रतिहार नरेश महीपाल प्रथम ने राष्ट्रकूट अभियान से मुक्ति पाकर धारा से वैरिसिंह को हरा कर अपना आधिपत्य स्थापित किया। महीपाल की सहायता उसके कलचुरी सामन्त गुणाम्बिबोध के पौत्र भामान ने की। महीपाल प्रथम के उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ शिलालेख से विदित

1. Antiquities of India (7 : p. 45)

होता है उस समय मांडू और उज्जैन पर प्रतिहारों का अधिकार था। परमार शासक वैरिसिंह ने मान्यखेत के राष्ट्रकूटों से सैनिक सहायता प्राप्त कर प्रतिहार महेन्द्रपाल द्वितीय को धारा से हटा कर उस पर पुनः अधिकार किया। उदयपुर प्रशस्ति में अंकित है—कि"राजा (वैरिसिंह) ने सूचित किया कि यह विख्यात धारा है, जब उसने असिधारा से शत्रु-समूह का वध किया।"

(6) हर्ष सीअक द्वितीय (945–972 ई०)

वैरिसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सीअक द्वितीय, जो हर्ष के नाम से भी विख्यात था, गद्दी पर बैठा। वह प्रथम शासक था जिसने "महाराजाधिराजपति" और "महामाण्डलिक चूड़ामणि" की उपाधियाँ धारण कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता प्रदर्शित की।

सौराष्ट्र के चालुक्यों से संघर्ष—क्योंकि सौराष्ट्र का चालुक्य शासक अवन्ति वर्मन द्वितीय (योग) गुर्जर प्रतिहारों का सामन्त था और उसने वैरिसिंह के विरुद्ध प्रतिहारों का पक्ष लिया था, अतः सीअक द्वितीय ने राष्ट्रकूटों के खेड़क मण्डल (वर्तमान खेड़ा, गुजरात) के शासक का सहयोग पाकर योग पर आक्रमण किया। हरसोल शिलालेख के अनुसार सीअक को पूर्ण सफलता मिली।

हूणों से संघर्ष—"नवसाहसांक चरित"[1] के अनुसार सीअक द्वितीय ने हूण राजकुमारों का वध कर उनके अन्तपुर को विधवाओं से भर दिया। श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय के मतानुसार यह हूण राजकुमार जज्जप का उत्तराधिकारी था। जज्जप को योग के पिता बलवर्मन ने पूर्व में परास्त किया था। डॉ० पाठक का कथन है कि हूणों का क्षेत्र परमार राज्य में दक्षिण-पूर्व में इन्दौर और महू के आसपास का प्रदेश था जिसे सीअक ने जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। हूणों से यह संघर्ष दसवीं शताब्दी तक चलता रहा।

चन्देलों से संघर्ष—खजुराहो शिलालेख (954 ई०) से विदित होता है कि जेजाकभुक्ति के चंदेल शासक यशोवर्मन (925–950 ई०) ने अपनी राज्य-सीमा मालवा नदी के तट पर स्थित भास्वत (भिलसा) तक बढ़ाली थी। इस अभिलेख में अंकित है कि वह "मालवों के लिए यम था"। ऐसा प्रतीत होता है कि सीअक द्वितीय ने पश्चिम में अपने राज्य के विस्तार का प्रयास किया किन्तु वह अपने इस प्रयास में असफल रहा।

मान्यखेट के राष्ट्रकूटों से संघर्ष—राष्ट्रकूटों की शक्ति का क्रमशः ह्रास हो रहा था। अतः राष्ट्रकूट नरेश ने खोटिग्ग पर आक्रमण किया। उसका सहायक वागड़ का सामन्त कंक था। नर्मदा के तट पर कलिघट्ट नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ जिसमें कंक मारा गया किन्तु खोटिग्ग की पराजय हुई। सीअक पराजित राजा का पीछा करता हुआ उसकी राजधानी मान्यखेट पहुँचा और उसे लूटा। इसकी पुष्टि

1. पद्मगुप्त : नवसाहसांक चरित (11 : श्लोक 90)

धनपाल कृत ग्रन्थ "पाइलगच्छी" से होती है। "नवसाहसांक चरित" तथा "उदयपुर प्रशस्ति" में भी सीअक की इस विजय का उल्लेख किया गया है। किन्तु सीअक मान्यखेट दुर्ग को विजित न कर सका क्योंकि श्रवणवेलगोला समाधि पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि इस दुर्ग की रक्षा युवराज गंग (मारसिंह द्वितीय) ने की। इस प्रकार राष्ट्रकूटों के पतन में परमारों ने मुख्य भूमिका निभाई।

मूल्यांकन—श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय के शब्दों में सीअक द्वितीय का यह मूल्यांकन समीचीन है कि—"सीअक परमार राज्य का वास्तविक संस्थापक तथा अपने वंश का प्रथम चक्रवर्ती शासक था। एक तुच्छ स्थानीय राजा के पद से उसने अपनी विलक्षणता और सामरिक दक्षता से अपने युग के अग्रतम शासकों में स्थान पाने में सफल हुआ। उसने अपने पीछे एक विशाल साम्राज्य छोड़ा, जिसका विस्तार उत्तर में बाँसवाड़ा राज्य तक, पूरब में भिलसा तक, दक्षिण में गोदावरी नदी तक और पश्चिम में माही तक था।"[1]

पद्मगुप्त के अनुसार सीअक द्वितीय ने अपने शासनकाल के अन्त में स्वेच्छा से सिंहासन त्याग कर अपने पुत्र वाक्पति द्वितीय (मुंज) को गद्दी पर बैठाया और स्वयं ने ऋषि-जीवन ग्रहण कर लिया। उसके दूसरे कनिष्ठ पुत्र का नाम सिंधुराज था।

परमार साम्राज्य का उत्कर्ष : वाक्पति द्वितीय (मुंज) (973–996 ई०)

Vakpati II (Munja)

राज्यारोहण

सीअक द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र वाक्पति द्वितीय (मुंज) 973 ई० के लगभग गद्दी पर बैठा। "नवसाहसाँक चरित" से जैसा विदित होता है सीअक ने अपना अन्तिम समय तपस्या में व्यतीत करने का निश्चय कर वाक्पति मुंज का स्वयं राज्यारोहण किया। तत्कालीन साहित्य एवं अभिलेखों के आधार पर वाक्पति की उपाधियाँ "श्रीवल्लभ", "अमोघवर्ष" तथा "पृथ्वीवल्लभ" राष्ट्रकूट नरेशों की भाँति थीं। वह "उत्पल" तथा "मुंज" के नाम से भी विख्यात था।

मेरुतुंग[2] वाक्पति के जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख करता है। सीअक द्वितीय निःसन्तान था। जब वह एक दिन वन में भ्रमण कर रहा था तो उसे मुंज-घास की एक झाड़ी में एक नवजात शिशु पड़ा हुआ दिखाई दिया। उसने तुरन्त उसे स्नेह से उठा लिया और उसे गोद लेकर उसका पालन-पोषण किया। मुंज घास में पाये जाने के कारण उसका नाम मुंज रखा गया। कुछ दिन बाद सीअक के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सिंधुराज रखा

1. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ० 168)
2. मेरुतुंग : प्रवंधचिंतामणि (p. 30)

गया किन्तु उसके बाद भी सीयक का स्नेह मुंज के प्रति पुत्रवत् बना रहा और उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया। सीयक ने मुंज से कहा कि सिन्धुराज के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार रखे तथा उसे अपने बाद गद्दी पर बैठाये। यद्यपि मेरुतुंग की इस कथा की पुष्टि अन्य किसी साक्ष्य से नहीं होती किन्तु यह सत्य है कि मुंज के बाद सिन्धुराज ही शासक बना। सम्भवतः मुंज ने अपने पिता के वचनों का पालन किया।

मुंज की विजयें तथा साम्राज्य-निर्माण

वाक्पति मुंज परमार साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। "उसके सिंहासनारूढ़ होते ही मालवा में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। जीवन के हर एक क्षेत्र में एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ और देश में धन और साधनों की वृद्धि हुई। साम्राज्य दृढ़ किया गया और प्रशासन एक दृढ़ नींव पर आधारित किया गया। इस समय से आगे परमार राजाओं ने केवल विजय के लिए सामरिक अभियानों तक ही अपने कार्यों को सीमित न रखा, बल्कि अपनी जनता के सांस्कृतिक विकास और सामाजिक कल्याण की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया। मालवा की जनता एक दृढ़ राष्ट्र में परिवर्तित हुई।"[1]

वाक्पति मुंज को सिंहासनारूढ़ होते ही अपने शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों की अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। उसने अनेक सैनिक अभियान कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसकी सैनिक उपलब्धियाँ निम्नांकित हैं—

1. **कलचुरियों से संघर्ष**—मुंज का समकालीन चेदि का कलचुरि शासक युवराज द्वितीय (975–1000 ई०) था। वह अपने पिता लक्ष्मण की भाँति वीर और कूटनीतिज्ञ न था। अतः उसकी दुर्बलता का लाभ उठा कर मुंज ने चेदि राज्य पर आक्रमण कर युवराज को पराजित किया और उसकी राजधानी त्रिपुरी पर अधिकार कर लिया। उसका सम्पूर्ण राज्य परमारों के अधीन हो गया। "उदयपुर प्रशस्ति" तथा चौलुक्य नरेश विक्रमादित्य पंचम के कौथम दानपत्र से मुंज की कलचुरि राज्य पर विजय की पुष्टि होती है।[2]

2. **गुहिल तथा चाहमान नरेशों से संघर्ष**—मुंज ने मेदपाट (मेवाड़) के गुहिलवंशी नरेश शक्तिकुमार (977 ई०) पर आक्रमण कर उसे पराजित किया और उसकी राजधानी आघाट (वर्तमान उदयपुर रेलवे स्टेशन के समीप आहाड़) को लूटा। हस्तिकुण्डी (हथुण्डी) के राष्ट्रकूट शासक धवल के बीजापुर अभिलेख (997 ई०) के अनुसार शक्तिकुमार ने भाग कर हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट शासक धवल के यहाँ शरण ली। मुंज का मेवाड़ पर अधिकार हो गया।

1. डॉ. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 170)
2. Antiquities of India (1 : p. 235)
   & Indian Antiquary (16 : p. 23)

इस विजय से प्रोत्साहित होकर मुंज ने नाडुल्ल के चाहमान शासक बलिराज पर आक्रमण किया और उससे आबू पर्वत और किराडू के प्रदेश छीने। इसकी पुष्टि चालुक्य विक्रमादित्य के कौथम दानपत्र से होती है जिसमें उत्कीर्ण है कि उत्पल (मुंज) के पहुँचने पर मारवाड़ की जनता काँपने लगी। पद्मगुप्त के एक श्लोक में भी मारवाड़ में मुंज के आतंक का वर्णन किया गया है। मुंज ने अपने इस नवविजित प्रदेश को अपने राजवंश के राजकुमारों में बाँट दिया। उसने अपने पुत्र अरण्यराज को अर्बुद (आबू) प्रदेश का शासक बनाया, दूसरे पुत्र चंदन को जालोर का राजा बनाया तथा अपने भतीजे दूसल को भीनमाल का शासक बनाया। बलिराज ने नाडुल्ल की सफलतापूर्वक रक्षा की। सुन्धा पर्वत अभिलेख से इसकी पुष्टि होती है।

3. **हूणों से संघर्ष**—इसके पश्चात् उत्पल (मुंज) ने हूणों का दमन किया। मालवा, राजपूताना तथा पंजाब के कई भागों में हूणों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। परमारों के विरुद्ध वे विद्रोह करते रहे। मुंज के गाओन्री अभिलेख से विदित होता है कि उसने हूणों पर विजय प्राप्त कर कुछ क्षेत्र पर अधिकार किया। ये क्षेत्र इन्दौर, मऊ और होसंगाबाद जिलों में स्थित थे। मुंज द्वारा हूणों की पराजय की पुष्टि चालुक्य विक्रमादित्य पंचम के कौथम अभिलेख से होती है।

4. **गुजरात के चालुक्यों से संघर्ष**—मुंज का समकालीन गुजरात का चालुक्य नरेश मूलराज प्रथम (941–997 ई०) था। मूलराज प्रथम पर मुंज ने आक्रमण कर उसे भी पराजित किया। बीजापुर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि मुंज के प्रबल आक्रमण से घबराकर मूलराज सपरिवार मारवाड़ की मरुभूमि में भाग गया। उसने हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट नरेश धवल के यहाँ शरण ली। धवल ने उसकी सहायता की। पद्मगुप्त के अनुसार मूलराज की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी और उसने बिना आहार तथा जल के अत्यन्त कष्ट में दिन काटे।

5. **लाट से संघर्ष**—गुजरात विजय के बाद मुंज ने लाट प्रदेश (माही और ताप्ती नदीयों के मध्य का प्रदेश) पर सैनिक अभियान किया। इस समय लाट प्रदेश का शासक बारप्पा कर्णाट के चौलुक्य नरेश तैलप द्वितीय का सेनापति था। मुंज को इस अभियान में बारप्पा पर निर्णायक विजय प्राप्त हुई। उदयपुर प्रशस्ति से इस विजय का प्रमाण उपलब्ध होता है।

6. **कर्णाट के चालुक्यों से संघर्ष**—पूर्व में मुंज का पिता सीयक द्वितीय कर्णाट-आक्रमण के समय राष्ट्रकूट खोटिग्ग द्वारा मारसिंह की सहायता से पीछे हटने पर विवश हुआ था। खोटिग्ग के उत्तराधिकारी कर्कराज के समय कर्णाट के चौलुक्य नरेश तैलप द्वितीय ने राष्ट्रकूटों पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया और राष्ट्रकूट साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। अतः राष्ट्रकूट साम्राज्य पर अधिकार जमाने की प्रतिद्वंदिता में परमार—चौलुक्य संघर्ष अवश्यमभावी हो गया। यह संघर्ष कई वर्षों तक चलता रहा। तैलप के निलगुण्ड शिलालेख (982 ई०) के

अनुसार तैलप द्वितीय के नाम को सुन कर राजा उत्पल (मुंज) किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता था। मेरुतुंग[1] के अनुसार मुंज ने तैलप को छः बार पराजित किया किंतु यह पराजय निर्णायक नहीं थी। अन्त में तैलप के अनवरत छुटपुट आक्रमणों से तंग आकर मुंज ने उसे पूर्णरूप से ही पराजित करने की योजना बनाई। मुंज के मन्त्री रुद्रादित्य ने मुंज को इस आक्रमण को न करने की सलाह दी और भविष्यवाणी की कि यदि वह गोदावरी नदी पार करेगा तो यह उसका दुर्भाग्य होगा।

किंतु तैलप ने इस सलाह पर कोई ध्यान न दिया और वह कर्णाट के चालुक्यों की राज्य-सीमा में प्रवेश करता चला गया। इस पर रुद्रादित्य ने आत्मदाह कर लिया। मुंज दर्प में बढ़ता ही चला गया और अपनी कूटनीतिक अज्ञानता का परिचय दिया। तैलप द्वितीय ने छल का आश्रय लेकर मुंज को पराजित कर बन्दी बना लिया। मेरुतुंग ने अपने ग्रन्थ "मुंज-प्रबन्ध" में मुंज की दयनीय स्थिति का विवरण दिया है। मुंज एक रस्सी से बाँधा गया और एक लकड़ी के पिंजड़े में रख कर कारागृह में डाल दिया गया। मुंज के मन्त्रियों ने उसे कारागृह से भगा ले जाने के लिए एक सुरंग बनाई किंतु मुंज का तैलप की पुत्री मृणालवती से प्रेम हो जाने के कारण मुंज ने उसे सारी योजना बता दी। किंतु मृणालवती के विश्वासघात के कारण यह योजना निष्फल रही और मुंज को मौत के घाट उतार दिया गया। मुंज को मारने के पूर्व तैलप ने उसे अनेक अपमानजनक कष्ट दिये। उसे रस्सियों से बाँध कर अपना दैनिक भोजन माँगने के लिए द्वार-द्वार जाने की आज्ञा दी। मुंज इस अपमान से अभिभूत हो अपने भाग्य को कोसता था व रोता था। अन्त में तैलप के भृत्यों ने उसका वध कर दिया। उसको वृक्ष पर लटकाकर वध कराने के बाद मुंज का सिर सूली में पिरोकर तैलप ने दही में डुबोकर अपने आँगन में रखा और अपने दर्प का पोषण किया। इस की पुष्टि चौलुक्यों के अभिलेखों तथा विक्रमादित्य पंचम के कौथम दानपत्र से होती है। विक्रमादित्य षष्ठ के गडग शिलालेख में भी इस बात का उल्लेख है। अबुल-फजल कृत "आइनेअकबरी" में इस बात का उल्लेख है कि मुंज का प्राणांत दक्षिण में हुआ। परमारों से युद्ध में तैलप की सहायता उसके माण्डलिक भिल्लम द्वितीय ने की जो परमार राज्य की सीमा पर स्थित दक्षिणी खानदेश का शासक था। भिल्लम के संगमनेर ताम्रपट्ट से मुंज की पराजय विदित होती है। इस प्रकार मुंज को पराजित कर दक्षिण में चौलुक्य साम्राज्य स्थापित करने की तैलप की महत्त्वाकांक्षा पूरी हुई।

मुंज का साम्राज्य-विस्तार—उपरोक्त विजयों के फलस्वरूप मुन्ज ने परमार साम्राज्य का अभूतपूर्व विस्तार किया। उसके साम्राज्य की सीमा पूर्व में कलचुरि राज्य से लेकर पश्चिम में गुजरात तक तथा उत्तर में मेवाड़ से लेकर दक्षिण में मारवाड़ तक विस्तीर्ण थी। गुजरात, लाट तथा हूण प्रदेश उसके साम्राज्य में

1. मेरुतुंग : प्रबंधचिंतामणि (पृ० 34-35)

सम्मिलित थे। केवल कर्णाट के शासक तैलप से पराजित होने के कारण उसकी सैनिक उपलब्धियों का महत्व कम नहीं होता क्योंकि उसकी यह पराजय छलपूर्ण थी।

मुंज की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ—एक महत्वाकांक्षी, वीर एवं साहसी शासक होते हुए भी मुंज सांस्कृतिक विकास के प्रति जागरुक था। वह स्वयं एक महान् कवि था तथा साहित्यकारों एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके समय संस्कृत साहित्य की प्रचुर प्रगति हुई। उसके दरबार में पद्मगुप्त, धनंजय भट्ट, हलायुध, धनिक, धनपाल, शोभन तथा अन्य अनेक विद्वान कवि एवं साहित्यकार सम्मानित थे।

मुंज एक महान् निर्माता भी था। उसके निर्मित मालवा में अनेक सरोवर हैं जिसमें धारा का "मुंजसागर" आज भी दर्शनीय है। उसके द्वारा निर्मित अनेक मन्दिर और बांध उज्जैन, महेश्वर, ओंकेटमान्धाता और धर्मपुरी में स्थित हैं।

मुंज की उपलब्धियों का मूल्यांकन

लक्ष्मीकान्त मालवीय[1] ने मुंज का मूल्यांकन करते हुए यह उचित कहा है कि—"उसने साम्राज्य दृढ़ किया और प्रशासन एक दृढ़ नींव पर आधारित किया.... उसने जनता के सांस्कृतिक विकास और सामाजिक कल्याण की ओर भी ध्यान दिया। मालवा की जनता एक राष्ट्र में परिणत हुई।" डॉ० सत्यप्रकाश के मतानुसार—"राजा और निर्माता के रूप में मुंज अपने समय का महान् शासक था।"[2]

मुंज की उपाधि "कविमित्र" थी जो उसकी काव्य प्रतिभा एवं काव्य-प्रेम का परिचायक है। उदयपुर प्रशस्ति में कहा गया है कि—'अपने वक्तव्य, उच्च कवित्व, तर्कशक्ति तथा शास्त्रों और आगमों के ज्ञान से वाक्पति राजदेव सज्जनों से सर्वदा प्रशंसित होता रहता था।" एक अभिलेख के अनुसार मुंज "कविवृप" (कवियों में सांड अर्थात् श्रेष्ठ) कहा गया है। उसने "मुंजप्रतिदेशव्यवस्था" नामक भूगोल का एक ग्रन्थ लिखा था किंतु वह अब अप्राप्य है। मेरुतुंग ने तैलप के कारावास-काल में मुंज द्वारा कल्याणी की सड़कों पर भिक्षा मांगते हुए जिन सुभाषितों का उल्लेख किया है वे काव्य के उत्कृष्ठ उदाहरण हैं। अतः डॉ. पाठक[3] कथन का समीचीन है कि—"मुंज ने साहित्य-सर्जन और बौद्धिक विकास की वह परम्परा स्थापित की, जो उसके भ्रातज भोज के समय अपनी चरमोन्नति को प्राप्त कर मालवा, विशेषतः धारा, को भारतवर्ष की साहित्यिक राजधानी बनाने में सफल हुई।"

सिन्धुराज (996–1010 ई.)

राज्यारोहण—वाक्पति द्वितीय मुंज के बाद उसका छोटा भाई सिंधुराज

1. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (p. 170)
2. डॉ. सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल (पृ० 230)
3. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ० 575)

शासक वना जिसका कारण पूर्व में चर्चित हो चुका है। यद्यपि मुंज के दो पुत्र अरण्यराज तथा चंदन क्रमशः आबू तथा जालौर के शासक थे और जीवित थे किंतु मुंज द्वारा अपने पिता सीअक द्वितीय को दिये गये वचन के अनुसार मुंज ने अपने भाई सिंधुराज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

सिंधुराज के सैनिक अभियान

1. **लाट के चौलुक्यों से युद्ध**—"नवसाहसाङ्क चरित" से ज्ञात होता है कि सिंधुराज ने लाट के शासक बारप्पा के उत्तराधिकारी गोंगिराज को पराजित किया। लाट कल्याणी के चालुक्यों का सामन्त-क्षेत्र था। अतः गोंगिराज ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित की किन्तु सिंधुराज ने उसे अधिकृत कर लिया।[1]

2. **कोंकण से संघर्ष**—लाट को विजय कर सिंधुराज समुद्र तट होते हुए कोंकण प्रदेश गया और वहाँ के शिलाहारवंशी शासक अरिकेशिन (केशिदेव) पर आक्रमण किया और उसे विजित किया।

3. **गुजरात के चालुक्यों से संघर्ष**—"वसन्तपाल तेजपाल-प्रशस्ति" से विदित होता है कि सिंधुराज ने लाट विजय से प्रोत्साहित हो गुजरात पर आक्रमण किया किन्तु वहाँ के शासक चामुण्डराज से पराजित हुआ। इस प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि चामुण्डराज ने अपने शत्रु राजकुमारों का शीश काट कर पृथ्वी का श्रृंगार किया। जयसिंह सूरि[1] के अनुसार चामुण्डराज ने सागर की तरह उन्मत्त सिंधुराज को मौत के घाट उतार दिया। बड़नगर प्रशस्ति से भी सिंधुराज की पराजय की पुष्टि होती है। किंतु यह विश्वसनीय नहीं कि सिंधुराज चामुण्डराज से मारा गया।

4. **हूणों से संघर्ष**—"उदयपुर-प्रशस्ति" तथा "नवसाहसांक चरित" से विदित होता है कि सिंधुराज ने हूणों को पराजित किया। सिंधुराज ने वागड़ प्रदेश (बांसवाड़ा तथा डूंगरपुर) के अपने माण्डलिक परमार शासक के लिए गुहिलों से विजित किया।

5. **नागवंश से सम्बन्ध**—"नवसाहसांक चरित" के अनुसार बस्तर के नागवंश के शासक वज्रराज (वैरगढ़ मध्यप्रदेश) के शासक मानवंशी शासकों के विरुद्ध सिंधुराज से सहायता मांगी। सिंधुराज ने शिलाहार नरेश अपराजित के साथ उसकी सहायतार्थ अभियान किया और मान नरेश को मार कर रत्नावली पर अधिकार कर लिया। नागों ने अपनी पुत्री शशिप्रभा का विवाह सिंधुराज से कर दिया।

6. **मुरल-विजय**—पद्मगुप्त ने सिंधुराज द्वारा मुरल राज्य की विजय का उल्लेख किया है। डॉ० पाठक के मतानुसार मुरल राज्य अपरान्त और केरल के मध्य में सह्याद्रि के पास स्थित था। किंतु यह विजय केवल धर्म-विजय प्रतीत होती है।

1. *Dr. H. C. Roy* : Dynastic History of Northern India (p. 860)
2. जयसिंहसूरि : कुमारपाल भुवपाल चरित (1 : श्लोक 31)

मुरल कल्याणी के चालुक्यराज सत्याश्रय (997–1008 ई०) तथा राव राजा चोल (985–1014 ई०) के विरुद्ध युद्धों में इतना व्यस्त था कि वह सिंधुराज से अपने राज्य की रक्षा न कर सका।

मूल्यांकन—उपरोक्त विजयों से सिंधुराज की वीरता एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्ति प्रकट होती है। सैनिक उपलब्धियों के कारण सिंधुराज मुंज और भोज के बीच एक उल्लेखनीय शासक हुआ। वह मुंज की भाँति सांस्कृतिक क्षेत्र में भी एक कुशल शासक सिद्ध हुआ। उसके राजाश्रय में अनेक कवि एवं विद्वान रहते थे। उसने नवसाहसांक, कुमारनारायण, अवन्तीश्वर, अवन्तितिलक, परमारमहीभृत और मालवराज विरुद धारण किये। अतः यह स्पष्ट होता है कि सिंधुराज एक अत्यन्त कुशल शासक था।

भोज (1010–1055 ई०)
(Bhoja)

राज्यारोहण

मोडासा ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि 1010 ई० के लगभग सिंधुराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र भोज शासक बना। मेरुतुंग का यह कथन निराधार प्रतीत होता है कि मुंज ने भोज के विषय में यह भविष्यवाणी सुनकर कि वह तीन दिन तक राज्य करेगा, उसे मार डालने की आज्ञा दी। किन्तु भोज संसार की असारता से संबंधित श्लोक भेजने पर मुंज को दुख हुआ और उसने उसे युवराज घोषित किया।

भोज के राज्यारोहण के समय अभिलेखों तथा अलबरूनी के साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परमार साम्राज्य की सीमा उत्तर में बांसवाड़ा और डूंगरपुर तक, पूर्व में भिलसा तक, दक्षिण में गोदावरी नदी तथा खानदेश और कोंकण तक और पश्चिम में वर्तमान गुजरात के खैरा जिले तक विस्तीर्ण थी। राजधानी धार से उज्जैन स्थानान्तरित कर दी गई थी। भोज का प्रधान मंत्री रोहक था और उसके सेनापति कुलचंद्र, साड और सुरादित्य थे। राज्यारोहण के समय भोज की अवस्था 15 वर्ष की थी। भोज अपने समय का उत्तरी भारत का महान् शासक सिद्ध हुआ। भोज ने साम्राज्यवादी नीति अपना कर अनेक अभियान किये।

भोज की सैनिक उपलब्धियाँ

"उदयपुर प्रशस्ति" में उत्कीर्ण है कि भोज ने चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोग्गल राजा भीम, कर्णाट, लाट और गुर्जर के राजाओं तथा तुर्कों की विजयें कीं। इस प्रशस्ति से इन विजयों का काल-क्रम ज्ञात नहीं होता, अतः अन्य साक्ष्यों के आधार पर इन विजयों का काल एवं सैनिक अभियानों की दिशा सहित विवरण निम्नांकित है :—

1. **कर्णाट के चालुक्यों से संघर्ष**—मेरुतुंग के अनुसार जैसा कि पूर्व में उल्लेख

किया जा चुका है भोज के सैनिक अभियान की दिशा गुजरात के चालुक्य नरेश भीम के दूत दामर की कूटनीति से गुजरात की अपेक्षा कर्णाट प्रदेश की ओर कर दी। डॉ० पाठक[1] ने अभिलेख में दी गई तिथियों के आधार पर यह कहा है कि भोज ने अपने सहयोगी त्रिपुरी के कलचुरि राजा गांगेयदेव विक्रमादित्य और दक्षिण के चोलराज राजेन्द्र की सहायता से कौंकण विजय हेतु कर्णाट प्रदेश के मार्ग से जाने के लिये चौलुक्यों के उत्तरी प्रदेश पर कुछ समय अधिकार किया। बाँसवाड़ा तथा वेतवा अभिलेख (1020 ई०) से भोज द्वारा कौंकण विजय पर्व मनाये जाने का उल्लेख है। उस समय कल्याणी नरेश जयसिंह द्वितीय (1015–1042 ई०) भोज का समकालीन था। भोज के सामन्त यशोवर्मन के कल्वन अभिलेख में कर्णाट, लाट तथा कौंकण पर भोज की विजय दिखलाई गई है। "भोज चरित" के अनुसार भोज ने तैलप का घोर अपमान करने के बाद मौत के घाट उतार दिया तथा अपने चाचा मुंज की हत्या का प्रतिशोध लिया। किन्तु भोज का समकालीन गुजरात नरेश भीम (1022–1064 ई०) तथा कर्णाट का समकालीन शासक जयसिंह थे। अतः भोज द्वारा पराजित कर्णाट नरेश जयसिंह ही था।

यद्यपि उपरोक्त साक्ष्यों से भोज की कर्णाट पर प्रारंभिक विजयों के प्रमाण मिलते हैं किन्तु बाद में चालुक्य नरेश जयसिंह द्वारा भोज पराजित हुआ जिसका उल्लेख जयसिंह के बेलगांव अभिलेख (1019 ई०) तथा कुलेनुर अभिलेख में किया गया है। इस अभिलेख में जयसिंह को "भोजरूपी कमल के लिये चन्द्र" कहा गया है। मीरज अभिलेख (1024 ई०) तथा जयसिंह के सामन्तों के अभिलेखों से भी विदित होता है कि जयसिंह ने कौंकण व मालवों पर विजय प्राप्त की। चालुक्य अभिलेखों से यह तथ्य प्रकट होता है कि भोज आक्रामक था और चालुक्य प्रतिरक्षात्मक युद्धों में सफल रहे। जयसिंह द्वारा कौंकण-विजय का उद्देश्य कलचुरि-चोल-मालवा सेनाओं के संघ को विच्छिन्न करना था।

परमार-कर्णाट चालुक्य शत्रुता बनी रही और जयसिंह के पुत्र व उत्तराधिकारी सोमेश्वर प्रथम (1044–1068 ई०) के समय भी संघर्ष हुआ। जब अपने अनेक युद्धों से भोज की शक्ति क्षीण हो चुकी तो सोमेश्वर ने भोज के विरुद्ध अभियान किया। विल्हण[2] का कथन है कि इस अभियान से डर कर भोज अपनी राजधानी से भाग गया जिस पर चालुक्यों ने अधिकार कर लिया। सोमेश्वर के अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने धारा पर विजय प्राप्त की। सोमेश्वर ने अपने सहयोगियों–नागदेव, गुण्डमय, जेमरस और माधव—की सहायता से मालव को रौंद डाला और धारा को धूलधूसरित किया। किन्तु यह सफलता स्थायी नहीं थी क्योंकि भोज पुनः मालवा का अधिकारी हो गया। कर्णाट के चालुक्यों से पराजय का भोज के सफल सैनिक अभियानों तथा मालवा की प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। सीताबल्दी स्तम्भ लेख

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 583)
2. विल्हण : विक्रमांकदेव चरितम (1 : श्लोक 91–94)

(1087 ई०) से विदित होता है कि चालुक्य साम्राज्य की उत्तरी सीमा नागपुर तक विस्तीर्ण थी। अतः यह संभावना प्रतीत होती है कि सोमेश्वर प्रथम ने परमारों के राज्य का दक्षिणी भाग अंशतः चालुक्यों के अधिकार में आ गया था।

2. **लाट प्रदेश से संघर्ष**—कल्वन अभिलेख तथा उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि भोज ने लाट प्रदेश पर विजय प्राप्त की। पूर्व में लाट नरेश वारप परमारों की अधीनता स्वीकार करता था किन्तु भोज के समय वारप के पौत्र तथा गोंगिराज के पुत्र कीर्तिराज लाट का शासक था। अतः भोज ने कीर्तिराज को युद्ध में पराजित किया। कीर्तिराज के पौत्र त्रिलोचनपालन के सूरत अभिलेख से विदित होता है कि शत्रुओं ने थोड़े समय के लिये उसकी यशःकीर्ति छीन ली। यशोवर्मन के कल्वन अभिलेख में कहा गया है कि वह नासिक जिले में 1500 ग्रामों पर भोज द्वारा नियुक्त प्रशासक था। अतः भोज ने कीर्तिराज को अपदस्थ कर यशोवर्मन को शासक बनाया। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भोज ने अपने दक्षिणी सैनिक अभियान में सर्वप्रथम लाट पर अधिकार किया।

3. **कौंकण पर विजय**—लाट विजय कर भोज ने समुद्र-तट होते हुए कौंकण पर आक्रमण कर उसे विजित किया। कौंकण का विस्तार बम्बई अहाते के थाना जनपद से मद्रास अहाते तक था। इस प्रदेश के उत्तरी भाग में शिलाहारवंशी नरेशों का राज्य था। परमार शासक सिंधुराज के समय शिलाहार नरेश के उससे मित्रतापूर्ण संबंध थे और शिलाहार नरेश ने मानों के विरुद्ध सिंधुराज की सहायता की थी किंतु भोज के संबंध तत्कालीन शिलाहार शासक अरिकेशिन (केशिदेव) से अमैत्रीपूर्ण हो गये, अतः भोज ने केशिदेव पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। केशिदेव के थाना अभिलेख से ज्ञात होता है कि केशिदेव का राज्य सम्पूर्ण कौंकण प्रदेश था जिसमें पुरी आदि 1400 ग्राम सम्मिलित थे। भोज ने केशिदेव को अपनी अधीनता स्वीकार करने को विवश किया। कौंकण-विजय का उत्सव भोज ने मालवा लौटने पर भव्य रूप से किया और ब्राह्मणों को उदारतापूर्वक दान दिया। भोज के बाँसवाड़ा तथा बेतवा अभिलेखों (1020 ई०) से इसकी पुष्टि होती है। परमारों के माण्डलिक के रूप में शिलाहार नरेशों ने बारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक किया जब गुजरात के चालुक्यों ने कौंकण पर अधिकार कर लिया। किंतु डॉ० पाठक[1] का मत है कि परमारों का कौंकण पर अधिकार अधिक समय तक नहीं रहा। जयसिंह द्वितीय (1024 ई०) के मीरज अभिलेख से ज्ञात होता है कि जयसिंह ने सप्त-कौंकणों के अधिपतियों का सारा धन छीनकर कोल्हापुर स्कंधावार में निवास किया। अतः यह संभावित है कि 1024 ई० के पूर्व ही जयसिंह कौंकण को भोज के आधिपत्य से मुक्त करा चुका था।

4. **इन्द्ररथ पर विजय**—उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि भोज ने

1. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ० 585)

इन्द्ररथ को हराया। इन्द्ररथ का समीकरण डॉ० सत्य प्रकाश[1] उड़ीसा के आदिनगर के उसी शासक से करते हैं जिसका उल्लेख राजेन्द्र चोल (1012–1042 ई०) के तिरुवालुंगाडु अभिलेख (1018 ई०) तथा तिरुमलै उत्कीर्ण लेख (1025 ई०) में किया गया है। प्रथम अभिलेख से विदित होता है कि चोल राज के सेनापति ने चंद्रवंशमणि नरेश इन्द्ररथ पर विजय प्राप्त की जिसने विशाल सेना से उसका सामना किया था। द्वितीय अभिलेख से ज्ञात होता है कि चोलराज ने प्रसिद्ध आदिनगर के युद्ध में चंद्रवंश के नरेश इन्द्ररथ को सपरिवार वंदी बनाया। आदिनगर का वर्तमान नाम मुखलिंगम है जो मद्रास अहाते के गंजम जनपद में स्थित है। श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय[2] का मत है कि यह आदिनगर गंगवंशी नरेशों की राजधानी थी और इन्द्ररथ गंगवंशी शासक था। भोज की इन्द्ररथ पर विजय 1018 ई० के पूर्व सुई प्रतीत होती है।

5. **तोग्गल तथा तुरुष्कों पर विजय**—उदयपुर प्रशस्ति से पता चलता है कि भोज ने तोग्गल और तुरुष्कों पर विजय प्राप्त की। प्रतिपाल भाटिया[3] का मत है कि तोग्गल नाम अभारतीय है, अतः वह महमूद गजनवी का कोई सेनानायक था। उदयपुर प्रशस्ति में अंकित है कि भोज के भृत्यों ने तुरुष्क को हराया। यह तुरुष्क महमूद गजनवी का कोई सेनानायक था जो सोमनाथ-आक्रमण (1025 ई०) के वाद मार्ग में राजा परमारदेव की सेना के प्रतिरोध के भय से अपना मार्ग वदलने पर विवश हुआ। परमारदेव का समीकरण परमार नरेश भोज से किया जाता है किन्तु यह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता कि भोज ने चालुक्यों के क्षेत्र में मुसलमानों का प्रतिरोध किया। मुसलमान इतिहासकार निजामुद्दीन अहमद[4] के इस कथन से भी पुष्टि होती है कि महमूद गजनवी का प्रतिरोध चालुक्य भीम ने किया था जिसके कारण महमूद ने सीधा रास्ता छोड़कर सिंध के रास्ते मंसूरा और मुल्तान जाने का निश्चय किया। अतः यह संभाव्य नहीं कि भोज ने चालुक्य–क्षेत्र में प्रवेश कर महमूद का सामना किया। श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय यह संभावना व्यक्त करते हैं कि भोज ने दिल्ली के राजा की मुसलमानों के विरुद्ध सहायतार्थ अपनी सेना भेजी थी। स्पष्ट साक्ष्यों के अभाव में इस विषय में कुछ भी निर्णयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। भोज के समय मुसलमानों ने मालवा पर कभी भी आक्रमण नहीं किया था। डॉ० सत्य प्रकाश का फरिश्ता के आधार पर यह मत है कि 1008 ई० में जब महमूद ने आनंदपाल पर आक्रमण किया तो आनंदपाल ने भारतीय राजाओं का एक संघ बनाया जिसमें उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज और दिल्ली के शासकों ने

1. डा० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास, राजपूतकाल (p. 233)
2. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 18 3)
3. *Pratial Bhpatia* : The Paramaras (p. 82–83)
4. निजामुद्दीन अहमद : तवकाते-अकवरी (p. 15–16)

अपनी सेनाएँ मुसलमानों के विरुद्ध भेजी। अतः उनका मत है कि भोज ने इस संघ में भाग लिया।

6. **कलचुरि नरेश गांगेयदेव पर विजय**—कलवन अभिलेख तथा उदयपुर प्रशस्ति में भोज के चेदी राज्य के कलचुरि नरेश पर विजय का उल्लेख है। "पारिजात मंजरी" से इसकी पुष्टि होती है।[1] भोज के समकालीन कलचुरि नरेश गांगेय–विक्रमादित्य (1019–1042 ई०) तथा उसका पुत्र व उत्तराधिकारी कर्ण (1041–1072 ई०) थे। पूर्व में कहा जा चुका है कि परमार नरेश वाक्पति मुंज ने चेदि प्रदेश के कलचुरि नरेश युवराज द्वितीय को भगाकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। किन्तु कुछ समय बाद ही कलचुरियों ने अपने राज्य को अधिकृत कर लिया। कायरता के कारण युवराज द्वितीय के स्थान पर उसके पुत्र कोकल्ल द्वितीय को राजा चुना गया। गंग–विक्रमादित्य कोकल्ल द्वितीय का उत्तराधिकारी था जो भोज का समकालीन था। पूर्व में यह भी बतलाया जा चुका है कि गंग ने कर्णाट प्रदेश पर आक्रमण करने के लिये भोज तथा राजेन्द्र चोल से मैत्री-संगठन स्थापित किया था किंतु इस आक्रमण में इस मैत्री-संगठन की चालुक्य जयसिंह द्वितीय से पराजय हुई।

इसके पश्चात् मैत्री-संगठन भंग हो गया और परमार-कलचुरियों की पुरानी शत्रुता भड़क उठी। दोनों ही प्रतिहार साम्राज्य के प्रदेशों पर अधिकार करने के प्रतिद्वंदी थे तथा उनकी राज्य सीमाएँ परस्पर मिलती थीं। गंग-विक्रमादित्य महत्वाकांक्षी शासक था। उसने अपनी राज्य-सीमा पूर्व में बनारस तक बढ़ा ली थी। गंग को पराजित किया। इसी विजय का उपरोक्त साक्ष्यों में उल्लेख है। "पारिजात-मंजरी" में कहा गया है कि भोज ने "गांगेय की पराजय का उत्सव मनाकर अपने मनोरथों को पूर्ण किया।"

गंग–विक्रमादित्य के पुत्र कर्ण के समय भी परमार-कलचुरि संघर्ष चलता रहा। कर्ण ने चालुक्य भीम से मैत्री कर पूर्व तथा पश्चिम से एक ही समय मालवा पर आक्रमण किया। किन्तु मेरुतुंग[2] के अनुसार जब तक भोज जीवित रहा कर्ण को कोई स्थायी लाभ नहीं हो सका।

7. **चंदेलों से संघर्ष**—भोज का समकालीन चंदेल शासक विद्याधर (1025–1040 ई०) था। परमार राज्य की उत्तर-पूर्व सीमा पर जेजाक मुक्ति के चंदेलों का राज्य था जिसकी राजधानी महोबा थी। विद्याधर अत्यन्त वीर और युद्ध-कुशल था। उसने कन्नौज के प्रतिहार शासक राज्यपाल को हराया था और उसका वध किया था। उसकी शक्ति का लोहा कलचुरि गंग-विक्रमादित्य भी मानता था। विद्याधर की अधीनता में ग्वालियर तथा दूबकुण्ड के कछवाहे थे। अतः भोज अपने

1. Antiquities of India (p. 101 and 235)
2. मेरुतुंग : प्रबन्ध चिन्तामणि (पृ० 74)

राज्य का उत्तर में विस्तार विद्याधर से कारण नहीं कर सका। यद्यपि परमार अभिलेखों में चंदेलों से भोज के किसी संघर्ष का उल्लेख नहीं है किन्तु चंदेलों के महोवा अभिलेख में अंकित है कि—"कलचुरि चंद्र और भोज ने विद्याधर की वैसी ही पूजा की जैसे कोई शिष्य अपने गुरु की करता है।" डॉ० गांगुली[1] की मान्यता है कि भोज की विद्याधर से कोई मुठभेड़ हुई जिसमें भोज पराजित हुआ। किंतु यह तथ्य अन्य किसी साक्ष्य से प्रमाणित नहीं होता।

8. **ग्वालियर के कच्छपघातों से संघर्ष**—भोज की विद्याधर से संघर्ष में असफलता मिलने पर भी उसकी कन्नौज अभियान की लालसा बनी रही। इस उद्देश्य में सफल होने की दो बाधाएँ थीं—दूवकुण्ड के कच्छपघात तथा ग्वालियर के कच्छपघात शासक जो विद्याधर की अधीनता स्वीकार करते थे और कन्नौज अभियान के मार्ग पर स्थित थे। दूवकुण्ड के कच्छपघात शासक अभिमन्यु से भोज ने मित्रता कर ली क्योंकि दोनों कन्नौज के प्रतिहारों के शत्रु थे किन्तु ग्वालियर के कच्छपघात शासक कीर्तिराज को वह अपने पक्ष में न कर सका। अभिमन्यु के पौत्र विक्रमसिंह के दूवकुण्ड अभिलेख (1088 ई०) में कहा गया है कि भोज ने अभिमन्यु की अश्वों, रथों तथा अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में प्रवीणता की प्रशंसा दूर-दूर तक फैलाई। स्पष्ट है कि भोज के कन्नौज-अभियान में दूवकुण्ड नरेश अभिमन्यु ने उसकी सहायता की।

भोज ने ग्वालियर के कच्छपघात शासक कीर्तिराज पर सैनिक अभियान किया किन्तु उसकी पराजय हुई। कच्छपघात महीपाल के सास-बहू अभिलेख से ज्ञात होता है कि कीर्तिराज ने मालवा के राजकुमार के असंख्य दल को पराजित किया।

9. **कन्नौज पर आक्रमण**—यद्यपि भोज कीर्तिराज से पराजित हुआ किन्तु वह कन्नौज पर सैनिक अभियान करने में समर्थ हुआ। उदयपुर प्रशस्ति तथा मेरुतुंग कृत "प्रवन्ध चिन्तामणि" से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भोज ने कन्नौज के गुर्जर नरेश को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। यह गुर्जर नरेश सम्भवतः यशपाल था।

10. **चाहमानों से संघर्ष**—सपादलक्ष की चाहमान शाखा का शासक वीर्यराम था जो भोज का समकालीन था। "पृथ्वीराज विजय"[2] से विदित होता है कि—"अवन्ति के भोज ने वीर्यराम के गौरव को नष्ट किया।" इससे स्पष्ट होता है कि भोज ने चाहमानों को पराजित किया।

नाडुल्ल शाखा के चाहमान शासक अणहिल्ल से भी भोज का संघर्ष हुआ किन्तु भोज पराजित हुआ और उसका सेनापति साढ़ इस युद्ध में मारा गया।[3]

1. *Dr. D. C. Ganguly*, : History of the Parmar Dynasty (p. 75)
2. जयानक भट्ट : पृथ्वीराज विजय (5 : श्लोक 67)
3. Antiquities of India (p. 75)

डॉ० दशरथ शर्मा[1] की मान्यता है कि भोज कुछ समय तक ही शाकम्भरी पर अधिकार रख सका और नाडुल्ल के चाहमान शासक अणहिल्ल की सहायता से वीर्यराम का पुत्र चामुण्डराज शाकम्भरी का राज्य प्राप्त कर सका।

11. **गुजरात के चालुक्यों से संघर्ष**—हेमचंद्र[2] के अनुसार एक बार जब गुजरात का चालुक्य नरेश चामुण्डराज काशी की यात्रा पर गया तो मार्ग में मालवा नरेश ने उसका बड़ा अपमान किया। जब वह यात्रा से लौटा तो उसने अपने पुत्र वल्लभराज को मालवा पर सैनिक-अभियान के लिए भेजा किन्तु वल्लभराज की चेचक से मृत्यु हो गई। इस तथ्य की पुष्टि एक अभिलेख तथा मेरुतुंग कृत "प्रबन्ध चिन्तामणि", अरिसिंह कृत "सुकृत संकीर्तन" और जयसिंह कृत "सुकृत-कीर्ति कल्लोलिनी" ग्रन्थों से होती है। इन साक्ष्यों में उल्लिखित मालवा-नरेश भोज नहीं हो सकता क्योंकि चालुक्य नरेश चामुण्डराज (997–1009 ई०) तथा वल्लभराज (1009 ई०) भोज के समकालीन नहीं थे।

भोज का समकालीन चालुक्य नरेश दुर्लभराज (1009–1024 ई०) तथा भीम प्रथम (1024–1064 ई०) थे। हेमचंद्र दुर्लभराज के साथ भोज के संघर्ष का विवरण देता है किन्तु इसकी पुष्टि अन्य साक्ष्य से नहीं होती।

दुर्लभराज के बाद उसके उत्तराधिकारी भीम प्रथम से भोज का संघर्ष चला। हेमचंद्र के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों से भीम की विजय का उल्लेख दिया गया है। मेरुतुंग[3] के अनुसार पहले भीम और भोज में मित्रता थी किन्तु बाद में भोज ने विश्वासघाती युद्ध किया। एक बार जब अनावृष्टि से गुजरात में अकाल पड़ा तो भोज ने इस संकट के अवसर पर गुजरात पर आक्रमण की तैयारी की। किन्तु भीम के दूत दामर ने कूटनीति से इस आक्रमण की दिशा तैलप के क्षेत्र की ओर कर दी। दूसरी बार जब भीम सिन्ध पर आक्रमण-अभियान में व्यस्त था तो इस स्थिति का लाभ उठाकर भोज ने अपने सेनापति कुलचंद्र को अणहिलपट्टन लूटने के लिए भेजा। कुलचंद्र ने राजधानी को लूटा और राजप्रासाद के घड़ीस्तम्भ के सिंहद्वार पर कौड़ियाँ बो दी और वहाँ के प्रशासन से बलपूर्वक एक विजय-अभिलेख लिया। इससे गुजरात को इतनी क्षति पहुँची कि "कुलचंद्र की लूट" कहावत के रूप में प्रसिद्ध हो गई। उदयपुर प्रशस्ति में भोज की इस विजय की पुष्टि होती है। वड़नगर प्रशस्ति के अनुसार भीम अपने मित्रों के लिए स्नेहमय और शत्रुओं के लिए भयानक था। उसके शीघ्रगामी अश्व मालवा की राजधानी पहुँचे। सोमेश्वर[4] के अनुसार भीम ने धारा के राजा को पराजित किया और उसे जीवनदान दिया। "वस्तुपाल-तेजपाल

1. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties (p. 34–35)
2. हेमचन्द्र : द्वयाश्रय काव्य (p. 521–22)
3. मेरुतुंग : प्रबंधचितामणि (पृ० 41)
4. सोमेश्वर : कीर्तिकौमुदी (2 : श्लोक 16–18)

प्रशस्ति" में अंकित है कि इस आक्रमण से भोज के हृदय से लक्ष्मी, मुख से सरस्वती और हाथों से तलवार छूट गई। अरिसिंह और वालचंद्र[1] भी भीम की विजय की पुष्टि करते हैं। जयसिंह[2] का कथन है कि भीम की महानता के समक्ष भोज की भुजा कमल की तरह सूख गई। किन्तु इन गुजराती साक्ष्यों से अधिक विश्वसनीय मेरुतुंग तथा उदयपुर प्रशस्ति हैं जिसके अनुसार भोज आक्रामक था और उसके भृत्य कुलचंद्र ने भीम पर विजय प्राप्त कर उसकी राजधानी लूट ली। भोज ने इस युद्ध में वागड़ के अपने परमार सामंत सत्यराज का उपयोग किया और आबू के परमार शासक धन्धुक को भीम के विरुद्ध भड़का दिया। धन्धुक भीम का सामंत था। किन्तु वाद में विमल मंत्री के माध्यम से वह भीम की अधीनता में हो गया। भोज ने पुनः धन्धुक के पुत्र पूर्णपाल को भीम के विरुद्ध विद्रोह करने को उकसा दिया।[3]

सिन्ध से लौटने के बाद भीम ने भोज की शक्ति को नष्ट करने का प्रयास किया। भोज की शक्ति कलचुरि कर्ण व कर्णाट चौलुक्य सोमेश्वर के आक्रमणों से क्षीण हो रही थी। भीम ने आबू पर पुनः अधिकार किया। मेरुतुंग का कथन है कि एक वार जव भोज धारा नगर की सीमा पर स्थित कुलदेवी के मंदिर में पूजा को गया तो गुजराती सैनिकों ने उसे घेर लिया किन्तु वह किसी प्रकार जान वचाकर लौटा। भीम ने मालवा पर आक्रमण कर उसे दो भागों में बाँट कर अधिकार करने के उद्देश्य से कलचुरि नरेश कर्ण से मित्रता कर ली। दो अनुभवी सेनापतियों ने भोज पर आक्रमण किया। मेरुतुंग के अनुसार यद्यपि भोज ने युद्ध किया किन्तु वह युद्ध की अवधि में ही मर गया। उदयपुर प्रशस्ति में भी भोज की पराजय का उल्लेख है। इस प्रकार उत्तरी भारत के एक महान् शासक भोज का अन्त हुआ।

भोज का साम्राज्य-विस्तार

भोज की महान् विजयों से परमार साम्राज्य का विस्तार हुआ। उसने वाक्पति मुंज के समय की राज्य-सीमाओं को अक्षुण्ण रखते हुए अपना राजनीतिक प्रभाव सुदूर प्रदेशों तक विस्तृत किया। डॉ. पाठक के मतानुसार भोज की साम्राज्य-सीमा "पूर्व में कलिंग और चेदि, उत्तर और पूर्वोत्तर में ग्वालियर होते हुए सारा उत्तर प्रदेश और विहार का कुछ भाग, पश्चिम में लाट और वहाँ से समुद्री किनारे होते हुए अपरांत और कोंकण तथा उत्तर व उत्तर-पश्चिम में मेवाड़ और मारवाड़ का वहुत वड़ा भाग एक समय उसकी अधीनता स्वीकार करता था।"[4] भोज के समय परमार साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर था।

1. अरिसिंह : सुकृत संकीर्तन (2 : श्लोक 17–20)
2. जयसिंह : कुमारपाल–भुवपाल चरित (1 : श्लोक 34)
3. *Pratipal Bhatia* : The Parmaras (p. 89–90)
4. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पृ. 593–94)

भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

भोज एक महान् योद्धा एवं विजेता ही नहीं था बल्कि वह अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए भी विख्यात था। उसने अपनी राजधानी उज्जैन से हटाकर धारा नगर में स्थापित की जिसे विद्या और कला का केन्द्र बनाया गया। वह एक महान् निर्माता था। उसने अनेक मंदिरों, भवनों, नगरों व सरोवरों का निर्माण कराया। उसने केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुण्डीर, काल, रुद्र और अनल के मंदिर बनवाये। "उदयपुर प्रशस्ति" के शब्दों में भोज ने "सच्चे अर्थ में विश्व को जगती अर्थात् वास्तु स्थान बना दिया।" धारा नगरी में चौराहों पर निर्मित 84 मंदिर थे जिनमें "शारदा सदन" प्रमुख था। "शारदा सदन" सरस्वती भवन और "भोजशाला" के नाम से भी विख्यात था। यहाँ अनेक देशों से आये हुए विद्वान् और कवियों का जमघट लगा रहता था। इसकी शिलाओं पर अर्जुनवर्मन का "पारिजात मंजरी" नामक नाटक उत्कीर्ण है तथा उसकी दीवारों पर भोजकृत "कूर्मशतक" भी उत्कीर्ण है जिसके अनुकरण पर अन्य नरेशों ने अन्य ग्रन्थ भी उत्कीर्ण कराये। इस भवन के निकट सरस्वतीकूप (आजकल नाम अक्लकुई) था। धारा में भोज ने अपनी विजयों के उपलक्ष में एक विजय स्तम्भ स्थापित किया था जिसे 1405 ई० में दिलावरखाँ गोरी ने तुड़वा दिया और उसके स्थान पर लाट मस्जिद बनवा दी। भोज ने "भोजपुर" नामक नगर बसाया जो भोपाल से 16 मील दूर अवस्थित है। इसी नगर में भोज द्वारा निर्मित "भोजपुर सरोवर" था जिसे माण्डू के सुल्तान शाह हुसैन ने तुड़वा दिया। कल्हण कृत "राजतरंगिणी" में उल्लेख है कि भोज द्वारा भेजे हुए स्वर्ण से कश्मीर के एक व्यापारी पद्मगुप्त ने "कपटेश्वर सरोवर" बनवाया। भोज नित्य कपटेश्वर (कोटेर) के पापसूदन तीर्थ के जल से स्नान करता था। यह जल पद्मगुप्त द्वारा भेजा जाता था। धारा और माण्डू की प्राचीरें भोज ने ही बनवाई थी। भोज द्वारा निर्मित अनेक मन्दिरों एवं भवनों को बाद में मुसलमानों ने नष्ट कर दिया।

भवन-निर्माता के अतिरिक्त भोज की प्रसिद्धि एक कवि एवं साहित्य-प्रेमी के रूप में है। वह स्वयं एक उच्च कोटि का कवि था और राजनीति, दर्शन, ज्योतिष, वास्तुविद्या, व्याकरण, चिकित्सा शास्त्र आदि विषयों का मर्मज्ञ था। उसके रचित 24 ग्रन्थ के लगभग हैं। वह "कविराज" की उपाधि से विख्यात था। भोज कृत ग्रन्थों में व्याकरण और अलंकार शास्त्र के ग्रन्थ "सरस्वती कण्ठाभरण", "शृंगार प्रकाश" और "प्राकृत व्याकरण" हैं; योग शास्त्र का ग्रन्थ "पातंजलभोगसूत्रवृत्ति (राजमार्त्तण्ड)", काव्य और नाटक के ग्रन्थ "कूर्मशतक", "चम्पूरामायण" और "शृंगारमंजरी", शिल्पशास्त्र के ग्रन्थ "समरांगण सूत्रधार" और "कृत्यकल्पतरु" हैं, शैवागम ग्रन्थ "तत्त्व प्रकाश", ज्योतिष और वैद्यक के ग्रन्थ "भुजबल निबन्ध" व "राजमृगांक" हैं, तथा कोष-ग्रन्थ "नाममालिका" और शब्दानुशासन" हैं।

भोज के आश्रय में अनेक कवि एवं विद्वान् रहते थे जिनमें भास्कर भट्ट,

"विक्रमांकदेव चरित" का रचयिता विल्हण, "हनुमन्नाटक" का रचयिता दामोदर मिश्र, "पाइललच्छी" "तिलक मंजरी" का रचयिता धनपाल आदि प्रमुख थे। विल्हण कवि को इस बात का दुःख रहा कि वह धारा भोज की मृत्यु के बाद पहुँचा।

दानशीलता में भी भोज अद्वितीय था। कश्मीर का कवि कल्हण लिखता है कि कश्मीर-नरेश और भोज दोनों ही दानोत्कर्ष के कारण "कविबान्धव" कहलाते थे। भोज की दानशीलता इतनी प्रसिद्ध हुई कि बाद में मेरुतुंग, वल्लाल भट्ट और फरिश्ता ने अतिरंजित अनुश्रुति चला दी है कि भोज प्रत्येक श्लोक के रचयिता कवि को एक लाख का पुरस्कार देता था।

भोज अपनी प्रजा के साथ अनेक आनन्द-प्रमोद के उत्सव भी मनाता था। फरिश्ता के अनुसार वह वर्ष में दो बार बड़ा प्रीतिभोज आयोजित करता था जो 40 दिन चलता था जिसमें भारत के विख्यात संगीतज्ञ और नर्तक सम्मिलित होते थे, भोजन और मदिरा का वितरण होता था और अन्त में भोज सभी अतिथियों को नये वस्त्र और 10 मिस्कल उपहारस्वरूप देता था। भोज की दानशीलता और उदारता उसके द्वारा उज्जैन-पट्ट पर उत्कीर्ण इस नीति-वचन से भली भाँति प्रकट होती है—"धन विजली की चमक की तरह या जल के बिन्दु की तरह चंचल है। उसके दो सद्फल या उपयोग हैं—एक तो दान-कार्यो में लगाना और दूसरा उसके द्वारा दूसरे मनुष्यों की कीर्ति को बनाये रखना।"

मूल्यांकन

इस प्रकार भोज एक वीर योद्धा, विजेता, साम्राज्य-निर्माता, कवि, साहित्य-प्रेमी, भवन-निर्माता, दानवीर तथा लोक कल्याणकारी शासक था। डॉ० पाठक[1] का कथन है कि—"अनेक युद्धों के विजेता और समसामयिक राजनीति में सतत् रुचि लेने वाले "महाराजाधिराज कविराज शिष्ट शिरोमणि धारेश्वर" श्री भोजदेव की ये साहित्यिक कृतियाँ उसकी असीम शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति की ओर निर्देश करती हैं।" एक कवि ने भोज की मृत्यु पर कहा था—"आज भोजराज के दिवगंत हो जाने पर धारा निराधार हो गई है, सरस्वती निरालम्ब हो गई है और सभी पण्डित (अपने आश्रम से) टूट गये हैं।" डॉ० पाठक की मान्यता है कि ग्यारहवीं शती का पूर्वार्द्ध भारतीय इतिहास में भोज का युग कहा जा सकता है। डॉ. गांगूली[2] ने भोज की महानता को इन शब्दों में प्रकट किया है—"जीवन के विभिन्न रंगों में भोज की ये उपलब्धियाँ उसके मध्यकाल के सर्वोच्च शासकों में स्थान दिलाने के दावे का समर्थन करती हैं।" श्री लक्ष्मीकान्त मालवीय ने भोज का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि—"विजेता के रूप में, कवि के रूप में और भवन-निर्माण के कुशलता के

1. पूर्वनिर्दिष्ट (पृ. 597)
2. *Dr. D. C. Ganguli* : History of Paramar Dynasty (p. 80)

रूप में वह प्राचीन भारत के सम्राटों में उच्च स्थान पाने का अधिकारी है। कल्याण-कारी सम्राट के रूप में उसकी समता करने वाला प्राय: कोई नहीं है। अपने पीछे उसने एक स्थायी छाप छोड़ी है जो आज भी जीवित है।"[1] वस्तुत: भोज अपने समय का उत्तर भारत का महान् शासक था।

परमार साम्राज्य का अवसान
(Decline of Paramara Empire)

जयसिंह (1055–1077 ई०)

भोज का पुत्र जयसिंह जब सिंहासनारूढ़ हुआ तो वह चौलुक्यों और कलचुरियों की सेनाओं से घिरा हुआ था। विवश होकर जयसिंह ने अपने संकट से मुक्त होने के लिए कर्णाट के नरेश सोमेश्वर से सहायता की प्रार्थना की। सोमेश्वर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की क्योंकि वह कलचुरि नरेश कर्ण के आक्रमणों के विरुद्ध मालवा को प्राचीर के रूप में खड़ा करना चाहता था। अत: सोमेश्वर ने अपने पुत्र एवं सेनापति विक्रमादित्य को जयसिंह की सहायतार्थ भेजा। युद्ध में विक्रमादित्य विजयी हुआ और उसने जयसिंह को मालवा के सिंहासन पर स्थापित किया।

चोलों से संघर्ष—सोमेश्वर की सहायता के कारण जयसिंह उसका घनिष्ठ मित्र बन गया। अत: जब विक्रमादित्य ने चौलुक्यों की राजधानी वैंगी पर आक्रमण किया तो जयसिंह ने भी उसकी सहायता की। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने वैंगी पर अधिकार कर लिया किन्तु कुछ समय बाद चौलुक्यों ने चोल नरेश वीर राजेन्द्र (1062–1069 ई०) की सहायता से आक्रामकों को पूर्णतय: परास्त कर वैंगी पर पुन: अधिकार कर लिया। इस युद्ध में जयसिंह का भाई तथा सेनापति मारे गये। इसकी पुष्टि वीर राजेन्द्र के तिरवेंगाडु, कोमुब्यर और मनिमङ्गलम अभिलेखों से होती है।

कर्णाटों और चौलुक्यों से संघर्ष—सोमेश्वर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र भुवनैकमल्ल सोमेश्वर द्वितीय 1069 ई० में गद्दी पर बैठा। उसका अपने भाई विक्रमादित्य से मन-मुटाव हो गया, क्योंकि जयसिंह ने अपने मित्र विक्रमादित्य का पक्ष लिया था, अत: भुवनैकमल्ल ने मालवा पर आक्रमण कर दिया तथा चौलुक्य नरेश कर्ण से मित्रता कर ली। जयसिंह युद्ध में पराजित हो मारा गया। मालवा पर कर्णाटों और चौलुक्यों का अधिकार हो गया। इसकी पुष्टि नागपुर प्रशस्ति, सुदि अभिलेख तथा वेलग्रामि शिलालेख से होती है। "पृथ्वीराज विजय" ग्रन्थ से भी स्पष्ट होता है कि चौलुक्य कर्ण की मालवा पर विजय हुई जिसका समर्थन अरिसिंह और सोमेश्वर भी करते हैं।

उदयादित्य (1070–1086 ई०)

मालवा पर शत्रुओं के अधिकार कर लेने तथा जयसिंह के मारे जाने से मालवा

1. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास (पृ. 195)

के इस संकटकाल में भोज के एक चचेरे भाई उदयादित्य ने मालवा की राजगद्दी पाई किन्तु उसे शत्रुओं से संघर्षरत रहना पड़ा। वागड़ के परमार सामंत चामुण्ड ने उदयादित्य की अधीनता अस्वीकार कर दी।

उदयादित्य का संघर्ष गुजरात के चालुक्य नरेश कर्ण (1064–1094 ई०) से हुआ। अरिसिंह कृत 'सुकृतसंकीर्तन'' ग्रन्थ से पता चलता है कि कर्ण ने मालवराज कोहरा से नीलकण्ठ की मूर्ति उठा ली। किन्तु शीघ्र ही उदयादित्य ने नाडुल्ल के चाहमान शासक पृथ्वीपाल और मेवाड़ के गुहिलोत नरेश व शाकम्भरी के चाहमान शासक विग्रहराज तृतीय की सहायता से कर्ण को पीछे हटने पर विवश किया। "पृथ्वीराज विजय" से भी इसकी पुष्टि होती है।

उदयादित्य ने उदयपुर नगर (भिलसा के निकट) बसाया और नीलकण्ठेश्वर मंदिर और उदयसमुद्र नामक तालाब का निर्माण किया।

लक्ष्मणदेव (1086–1094 ई०)

उदयादित्य की मृत्यु के बाद लक्ष्मणदेव मालवा का शासक बना। होयसल शिलालेखों में उत्कीर्ण उत्तराधिकारी जुगदेव ही लक्ष्मणदेव था। वह एक वीर शासक था जिसने अनेक युद्ध किये।

बंगाल से युद्ध—नागपुर शिलालेख के अनुसार वह दिग्विजय के लिए निकला। उसने बंगाल के पाल नरेश रामपाल की दुर्बलता का लाभ उठाकर बंगाल पर आक्रमण किया और राजधानी को लूटा।

कलचुरियों से युद्ध—लक्ष्मणदेव ने अपने परम्परागत शत्रु कलचुरि नरेश यशःकर्ण (1072–1115 ई०) पर आक्रमण कर उसे पराजित किया और राजधानी त्रिपुरी को लूटा।

अंग और कलिंग से संघर्ष—पाल नरेश के विरुद्ध अभियान के समय लक्ष्मणदेव ने अंग और कलिंग की सेनाओं को धराशायी किया। नागपुर अभिलेख में इसका उल्लेख है।

दक्षिणी अभियान—लक्ष्मणदेव ने कर्णाट नरेश विक्रमादित्य षष्ठ से मैत्री की और द्वारसमुद्र के होयसल शासक एरेयंग पर आक्रमण किया किन्तु एरेयंग के तीनों पुत्रों बल्लाल प्रथम, विष्णुवर्धन और उदयादित्य ने मालवा-सेना पर विजय प्राप्त की। इसकी पुष्टि शिलालेखों से होती है।

चोलों से संघर्ष—लक्ष्मणदेव ने अपने समकालीन चोल शासक कुलोत्तुंग प्रथम पर भी आक्रमण किया और उस पर विजय प्राप्त की। ताम्रपर्णी और श्रीलंका पर तथाकथित लक्ष्मणदेव का अभियान ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसकी पुष्टि किसी साक्ष्य से नहीं होती।

मुसलमानों से संघर्ष—पंजाब के मुसलमान प्रशासक महमूद ने 1075 ई. में अपने उत्तरी अभियान में आगरा व कन्नौज को जीतकर मालवा पर आक्रमण किया।

प्रारम्भ में लक्ष्मणदेव को सफलता नहीं मिली किन्तु बाद में वह तुरुष्कों को मालवा-सीमा से बाहर करने में सफल हुआ।

इस प्रकार लक्ष्मणदेव एक वीर योद्धा एवं विजेता शासक सिद्ध हुआ।

नरवर्मन (1094–1133 ई०)

लक्ष्मणदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई नरवर्मन मालवा का शासक बना। उसे भी संघर्षरत रहना पड़ा।

चन्देल, चोल तथा गुजरात से संघर्ष—अजयगढ़ शिलालेख के अनुसार चन्देल शासक सल्लक्षणवर्मन ने नरवर्मन पर विजय प्राप्त की। चोल शासक विक्रम चोल (1118–1133 ई०) ने भी नरवर्मन को पराजित किया। मेरुतुंग के अनुसार गुजरात का शासक जयसिंह सिद्धराज जब तीर्थ यात्रा पर गया था तो उसकी अनुपस्थिति में गुजरात पर नरवर्मन के राजकुमार यशोवर्मन ने आक्रमण कर वहाँ के मंत्री शान्तु को अपमानजनक सन्धि के लिए विवश किया। नरवर्मन पराजित हुआ और यशोवर्मन को भी अपने शासन-काल में इसके परिणाम भुगतने पड़े।

यशोवर्मन (1134–1142 ई०)

नरवर्मन के बाद यशोवर्मन शासक बना। उस समय गुजरात के चालुक्यों से अनवरत संघर्ष के कारण मालवा संकट-ग्रस्त था तथा राज्य में अराजकता फैली हुई थी।

गुजरात के चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज से संघर्ष—जैसाकि पूर्व में गुजरात के चालुक्यों से सम्बन्धित अध्याय में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है सिद्धराज ने यशोवर्मन को पराजित कर बन्दी बना लिया। समस्त मालवा प्रदेश सिद्धराज ने चालुक्य साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। मेरुतुंग, सोमेश्वर तथा अन्य गुजराती लेखकों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। सिद्धराज के गाला शिलालेख (1137 ई०), दोहद लेख तथा वड़नगर प्रशस्ति से भी इसकी पुष्टि होती है। सिद्धराज ने अपने दण्डनायक महादेव के पुत्र को अवन्ति प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया।

जयवर्मन (1142 ई०) **तथा बल्लाल** (1172 ई०)

यशोवर्मन बन्दी बन कर 1142 ई० तक जीवित रहा किन्तु उसके पुत्र जयवर्मन के एक अतैथिक लेख द्वारा उसकी उपाधियाँ "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" से यह प्रकट होता है कि जयवर्मन ने मालवा पर 1138 ई० के लगभग अधिकार कर लिया। किन्तु वह अनेक शत्रुओं से घिर गया।

मऊ शिलालेख के अनुसार चन्देल मदनवर्मन (1128–1163 ई०) ने जयवर्मन को पराजित किया। कर्णाट नरेश जगदेकमल्ल द्वितीय (1139–1148 ई.) ने भी मालवा पर आक्रमण किया। जयवर्मन इस युद्ध में मारा गया। शिलालेखों से इसकी पुष्टि होती है। इस घटना के बाद मालवा का इतिहास अन्धकार में डूब गया। जयवर्मन की पराजय और मृत्यु सम्भवतः 1143 ई० के पूर्व हुई। जयवर्मन

के बाद बल्लाल नामक शासक ने मालवा पर राज्य किया जो होयसलवंशी प्रतीत होता है। बल्लाल सम्भवतः 1172 ई० में कुमारपाल से पराजित हो मारा गया क्योंकि कुमारपाल की मृत्यु 1172 ई० में हुई।

गुजरात के चालुक्य शिलालेखों तथा साहित्यिक साक्ष्यों से विदित होता है कि कुमारपाल चौलुक्य नरेश ने मालवा नरेश बल्लाल को पराजित किया। आबू शिलालेख के अनुसार चालुक्य नरेश के सामंत आबू के शासक यशोधवल ने बल्लाल का वध किया। इस प्रकार मालवा पुनः गुजरात साम्राज्य का अंग बन गया।

विन्ध्यवर्मन (1176–1194 ई०)

मालवा पर गुजरात के चालुक्यों का अधिकार कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल (1172–1176 ई०) तक बना रहा किन्तु आगामी शासक मूलराज द्वितीय (1176–1178 ई०) के समय जयवर्मन के पुत्र विन्ध्यवर्मन ने दक्षिण से आकर मालवा पर 1178 ई० के लगभग आक्रमण किया। देवपाल के मान्धाता अभिलेख के अनुसार विन्ध्यवर्मन ने परिस्थिति का लाभ उठा कर तलवार के बल पर धारा को बचा लिया। अतः स्पष्ट होता है कि विन्ध्यवर्मन को कुछ सफलता मिली क्योंकि सोमेश्वर के अनुसार चालुक्य सेनापति ने विन्ध्यवर्मन को हराया। किन्तु मूलराज की मृत्यु के बाद विन्ध्यवर्मन मालवा के सिंहासन पर आसीन था। सम्भवतः विन्ध्यवर्मन ने मूलराज के समय चालुक्यों की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

सुभटवर्मन (1194–1209 ई०)

विन्ध्यवर्मन के बाद उसका पुत्र सुभटवर्मन मालवा के सिंहासन पर बैठा। विन्ध्यवर्मन को मालवा स्वाधीन कराने में जो असफलता मिली उसका बदला सुभटवर्मन ने लिया। गुजरात के चालुक्य नरेश भीम द्वितीय के मंत्री और माण्डलिक स्वतन्त्र शासक बन गये थे। गुजरात की स्थिति दुर्बल थी। सन् 1194 ई० में कुतुबुद्दीन ने गुजरात प्रदेश को पददलित किया। सुभटवर्मन ने इस अवसर से लाभ उठा कर गुजरात पर आक्रमण की योजना बनाई।

लाट पर अधिकार—इस समय लाट गुजरात साम्राज्य का अंग था। सुभटवर्मन ने लाट नरेश सिंह को पराजित कर उसे अपने अधीन किया। लाट को लूट कर मालवा राज्य में मिला लिया गया।

गुजरात पर आक्रमण—लाट पर अधिकार करने के बाद सुभटवर्मन ने गुजरात पर सैनिक अभियान किया। उसकी सेना लूट और विध्वन्स करती हुई सोमनाथ (सौराष्ट्र) तक पहुँच गई किन्तु वहाँ के चालुक्य राज्यपाल श्रीवर ने परमारों को पराजित कर पीछे हटने को बाध्य किया। भीम द्वितीय के मंत्री लवणप्रसाद ने भी सुभटवर्मन का पीछा किया और उसे अपने राज्य तक खदेड़ दिया। मेरुतुंग, "कीर्तिकौमुदी" तथा दभोई शिलालेख से लवणप्रसाद की इस विजय की पुष्टि होती है।

यादवों से युद्ध—यादव नरेश भिल्लम के बाद उसका पुत्र जयतुगि (1191–1210 ई०) इस समय यादव शासक था। उसने मालवा की दक्षिणी सीमा पर नियुक्त मालव सेनापति को हराया जिसकी पुष्टि मोग्गोलि अभिलेख (1200 ई०) से होती है। किन्तु मालवा की स्वतन्त्रता पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा।

परमार राज्य का पतन

सुभटवर्मन के बाद उसका पुत्र अर्जुनवर्मन 1210 ई० में शासक बना जिसे गुजरात के चालुक्यों तथा यादवों से संघर्षरत रहना पड़ा। उसके बाद परमार वंश में अनेक छोटे-छोटे शासक—देवपाल, जयतुगिदेव, जयवर्मन द्वितीय, जयसिंह द्वितीय, अर्जुनवर्मन द्वितीय, भोज द्वितीय, मल्हकदेव तथा जयसिंह तृतीय—1305 ई० तक मुसलमानों द्वारा मालवा को पूर्णतय: अधिकृत करने की अवधि में हुए। अन्त में 1305 ई० में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा अपने साम्राज्य में मिला लिया।

परमारों की भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को देन
(Contribution of Paramaras to the Indian Culture and Civilization)

परमार राजवंश ने मध्य भारत के एक विशाल क्षेत्र कर लगभग 500 वर्षों तक राज्य किया किन्तु अन्त में वह अपने पड़ोसी राज्यों से विनाशकारी युद्धों तथा मुसलमानों के आक्रमण से धराशायी हो गया। राजनीतिक क्षेत्र में परमार नरेश मुंज तथा भोज तत्कालीन भारत के सर्वोत्कृष्ट शासक थे। साहित्यिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में परमारों की अभूतपूर्व देन रही। वास्तुकला की दृष्टि से वे महान् निर्माता थे। वस्तुत: भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को उनकी देन महान् थी। इसका विवरण संक्षेप में निम्नांकित है—

साहित्यिक क्षेत्र में देन

परमार नरेश तलवार के धनी ही नहीं थे अपितु वे साहित्य के प्रेमी एवं मर्मज्ञ भी थे। वाक्पति मुंज ने साहित्यिक प्रगति के लिए काफी प्रयास किया। "उदयपुर प्रशस्ति" में कविता, कला, वाक्शक्ति तथा शस्त्रों में मुंज की प्रवीणता की प्रशंसा की गई है। "नवसाहसांक चरित" ग्रन्थ का कथन है कि मुंज के स्वर्ग में चले जाने के बाद सरस्वती ने इस कविमित्र के पास विश्राम किया। यद्यपि मुंज रचित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है किन्तु धनिक कृत "दशरूपक", क्षेमेन्द्र कृत "सुवृत्ततिलक" तथा अर्जुनवर्मन कृत "रसिक संजीवनी" में मुंज रचित ग्रन्थों से उदाहरण दिये गये हैं।

भोज के समय साहित्यिक प्रगति चरमोत्कर्ष पर थी। भोज द्वारा रचित ग्रन्थों का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। वह स्वयं उच्चकोटि का कवि था तथा उसके आश्रय में अनेक कवि, नाकटकार एवं विद्वानों ने साहित्य रचना की।

परमारों के आश्रय में जिन साहित्यकारों का नाम विशेष उल्लेखनीय है उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम अग्रलिखित हैं—

1. धनपाल—"पाइललच्छी", "ऋषभ-पच्चशिका", "तिलक मंजरी"
2. शोभना—'विंशितास्तुति"
3. धनंजय—"देशरूप" (नाट्यशास्त्र)
4. धनिक—इसके रचित श्लोक दूसरों ने उद्धृत किये हैं।
5. पद्मगुप्त—"नवसाहसाङ्क चरित"
6. भट्टहलायुध—"अभिधान रत्नमाला" तथा "मृतसंजीवनी टीका"
7. अमितगति—"सुभाषितरत्न संदोह", "श्रावकाचार", "धर्म परीक्षा" तथा "द्वात्रिंशतिका"
8. उवट—"मंत्र भाष्य"
9. सीता—भोजकालीन प्रसिद्ध कवियित्री थी।
10. आशाधर—अनेक ग्रन्थों का रचियता,
11. मदन—"पारिजात मंजरी"
12. देवेन्द्र—"सिद्धपंचाशिका"

शैक्षिक क्षेत्र में देन

भोज के समय शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई जिनमें धारा की "भोजशाला" प्रसिद्ध थी। वर्तमान में यह कमाल मौली मस्जिद के रूप में उपलब्ध हैं। भोजशाला की दीवारों पर व्याकरण के नियमों को सचित्र उत्कीर्ण किया गया है। उदाहरणार्थ एक साँप की कुण्डली से तत्कालीन वर्णमाला तथा उसकी पूँछ से संज्ञाओं और क्रियाओं के प्रत्यय दिखलाये गये हैं। भोज वास्तव में सरस्वती का वरद पुत्र था। भोजशाला के अनुकरण पर अनेक नरेशों ने शिक्षा केन्द्र खोले।

वास्तुकला के क्षेत्र में देन

1. नगर—भोज के समय अनेक नगर, सरोवर, मंदिर, भवन आदि का निर्माण हुआ। भोज ने वर्तमान भोपाल से 20 मील दक्षिण में स्थित "भोज नगर" का निर्माण कराया। उदयादित्य द्वारा "उदयपुर" नगर की स्थापना की जो भिलसा से 30 मील उत्तर में है। परमार नरेश देवपाल ने वर्तमान इंदौर से 30 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित देपालपुर नगर निर्मित किया।

2. सरोवर—देपालपुर नगर में भोज ने एक विशाल सरोवर का निर्माण कराया जिसमें 365 धाराओं का जल एकत्रित होता था। इसके अतिरिक्त अनेक छोटे सरोवर अन्य परमार नरेशों ने निर्मित किये।

3. मन्दिर—परमार शासकों ने अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण कराया किन्तु मुस्लिम आक्रमणकारियों ने उनमें से अधिकांश को विनिष्ट कर दिया। परमार नरेश उदयादित्य द्वारा निर्मित नीलकण्ठेश्वर मंदिर अत्यन्त भव्य एवं विशाल है। वास्तुकला की दृष्टि से इसमें गर्भगृह, सभामंडप, नन्दी, मंडप की छत व स्तम्भ तथा कलश अत्यन्त कलात्मक हैं। इस मंदिर में छोटे अनेक शिखर हैं तथा मुख्य आमलक शिला है।

इन्दौर के नीयेर जनपद में परमारों द्वारा निर्मित खजुराहो शैली के अनेक मंदिर हैं जिनमें महाकालेश्वर, नीलकण्ठेश्वर, गुप्तेश्वर तथा गोम्रलेश्वर प्रसिद्ध हैं। नर्मदापुर में परमारों के सिद्धनाथ, विष्णु व जैन मंदिर प्रमुख हैं। भोजपुर में शिव तथा भिलसा में बीज मंदिर कलात्मक है। उज्जैन का महाकाल मंदिर भी परमार स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है।

4 **मूर्तिकला**—परमार शासन-काल में अनेक सुन्दर मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। इनमें सरस्वती की मूर्ति दर्शनीय है जो ब्रिटिश म्यूजियम में रखी हुई है। धारा के सरोवर से प्राप्त एक देवी की मूर्ति उदयादित्य ने बनवाई थी। इनके अतिरिक्त अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं जो तत्कालीन मूर्तिकला के विकास की सूचक हैं।

इस प्रकार परमारों की भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को विशेष देन रही।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भोज-परमार की राजनीतिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का उल्लेख कीजिये। (1974)

   Give an account of the political and cultural achievements of Bhoja Paramara.

2. मुंज परमार की सांस्कृतिक और राजनीतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये। (1975, 1976)

   Evaluate the military and cultural achievements of Munja Paramara.

3. क्या आप इस मत से सहमत हैं कि वाक्पतिराज मुंज बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था? अपने मत के समर्थन में प्रमाण दीजिये। (1976)

   Do you agree with the view that Vakpati Munja was a man of multifamous talent ? Support your view with evidences.

4. भोज परमार के राजनीतिक जीवनवृत्त एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों का परीक्षण कीजिये। (1977)

   Examine the political career and cultural achievements of Bhoja Parmara.

5. निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

   (क) भोज परमार,
   (ख) हर्ष सीयक द्वितीय,
   (ग) सिन्धुराज,
   (घ) परमारों का मुसलमानों से संघर्ष,
   (च) परमार राज्य के पतन के कारण,
   (छ) "नवसाहसाङ्क चरित" (1977),
   (ज) भोज-शाला।

Write short notes on the following—
(a) Bhoja Paramara,
(b) Harsha Siyaka II,
(c) Sindhuraj,
(d) Paramara–Muslim conflict,
(e) Causes of the downfall of Paramara Kingdom,
(f) "Navsahasank Charit",
(g) Bhoja–Shala.

6. परमारों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मतों की समीक्षा करते हुए अपना मत व्यक्त कीजिये।
Giving different theories of the origin of Paramaras. Express your view.
7. परमारों की भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को देन का मूल्यांकन सोदाहरण कीजिये।
Evaluate the contribution of Paramaras to Indian culture and Civilization giving suitable examples.
8. परमार कौन थे ? वाक्पति मुंज के राज्यकाल में उनकी शक्ति के विकास का निरूपण कीजिये। (1978)
Who were Paramaras ? Describe the expansion of their power during the reign of Vakpati Munja.

अतिरिक्त अध्ययन हेतु सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Dr. D. C. Ganguli : History of the Parmar Dynasty.
2. Dr. H. C. Roy : Dynastic History of Northern India.
3. Pratipal Bhatia : The Parmaras.
4. Dr. Dashrath Sharma : Early Chauhan Dynasties.
5. डॉ० विशुद्धानन्द पाठक : उत्तर भारत राजनीतिक इतिहास
6. डॉ० सत्य प्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूतकाल.
7. लक्ष्मीकांत मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास
8. डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताना का इतिहास
9. Jai Narain Asopa : Origin of the Rajputs.

परिशिष्ट—1

उत्तरी भारत के इतिहास (650–1200 ई०) के राजवंशों के प्रमुख शासक, शासन-काल एवं साम्राज्य-सीमा

राजवंश	प्रमुख शासक	शासन-काल	साम्राज्य-सीमा
1. गुर्जर-प्रतिहार वंश	नागभट्ट प्रथम (राज्य-संस्थापक)	733–756 ई०	भीनमाल राजधानी, राज्य-सीमा उत्तर में मारवाड़ से दक्षिण में भड़ौंच तक।
	वत्सराज	778–794 ई०	कन्नौज को अधिकृत करने का असफल प्रयास।
	नागभट्ट द्वितीय	795–833 ई०	साम्राज्य-विस्तार—मालवा तथा कन्नौज विजय—कन्नौज राजधानी—सीमा के अन्तर्गत राजपूताना, उत्तर-प्रदेश, मध्यभारत, काठियावाड़ तथा कौशाम्बी थे।
	मिहिर भोज प्रथम	836–889 ई०	साम्राज्य-विस्तार सीमा पूर्व में पाल राज्य व कौशाम्वी से पश्चिम में राजपूताने व पंजाब तक उत्तर में सतलज नदी, उत्तर प्रदेश व पश्चिमी विहार से दक्षिण में नर्वदा तक।

राजवंश	प्रमुख शासक	शासन-काल	साम्राज्य-सीमा
	विग्रहराज चतुर्थ	1150–1164 ई०	साम्राज्य-विस्तार–दिल्ली, हाँसी, चित्तौड़, नाडोल, जालौर, पाली व पूर्वी पंजाब पर अधिकार।
	पृथ्वीराज चतुर्थ	1177–1192 ई०	साम्राज्य सीमा पूर्वत: किन्तु मुहम्मद गोरी द्वारा पराजय व चौहान राज्य का विघटन।
5. गाहड़वाल वंश	यशोविग्रह (संस्थापक)	1050 ई०	कलचुरि नरेशों का सामन्त—कान्यकुब्ज राज्य।
	चंद्रदेव	1089–1104 ई०	स्वाधीन शासक—राज्य-सीमा गंगा व घाघरा नदियों के मध्य काशी व अयोध्या सहित—राजधानी कन्नौज।
	गोविन्दचंद्र	1114–1154 ई०	मुसलमानों (तुर्कों) से कन्नौज पुन: हस्तगत किया–साम्राज्य-विस्तार पूर्व में मुंगेर व उत्तर में हिमालय तराई से पश्चिम में दिल्ली तथा यमुना नदी तक था।
	विजयचंद्र	1155–1169 ई०	दिल्ली पर चाहमानों का अधिकार।

राजवंश	प्रमुख शासक	शासन-काल	साम्राज्य-सीमा
	जयचंद्र	1170–1194 ई०	चाहमानों से संघर्ष तथा मुहम्मद गौरी द्वारा पराजय—राज्य का विघटन ।
गुजरात का चालुक्य वंश	मूलराज (संस्थापक)	941–996 ई०	अन्हिलवाड़ राजधानी—सारस्वत क्षेत्र तथा लाट प्रदेश विजित कर राज्य सीमा उत्तर में साँचौर, सूरक्षेत्र व कच्छ से दक्षिण में नर्मदा नदी तक विस्तृत की ।
	भीम प्रथम	1024–1064 ई०	महमूद गजनवी का सोमनाथ आक्रमण (1025 ई०)—राज्य-विस्तार सिंध व आबू विजय द्वारा ।
	जयसिंह सिद्धराज	1094–1142 ई०	साम्राज्य-विस्तार—सौराष्ट्र, नाडौल, मालवा, सिन्ध तथा बर्बरक पर विजय ।
	कुमारपाल	1143–1172 ई०	साम्राज्य-विस्तार पश्चिम में सौराष्ट्र व कच्छ, उत्तर में चित्तौड़ व जैसलमेर, पूर्व में भिलसा तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक था ।
	भीम द्वितीय	1178–1241 ई०	पड़ौसी राज्यों तथा मुसलमानों के आक्रमणों से चालुक्य-साम्राज्य का विघटन ।

राजवंश	प्रमुख शासक	शासन-काल	साम्राज्य-सीमा
7. परमार-वंश	उपेन्द्र (संस्थापक)	८08–817 ई०	मालवा या अवन्ति प्रदेश—प्रतिहारों का सामन्त।
	वाक्पति प्रथम	894–920 ई०	प्रतिहारों से स्वाधीनता।
	हर्ष सीअक द्वितीय	945–972 ई०	राज्य-विस्तार उत्तर में बाँसवाड़ा से दक्षिण में गोदावरी नदी तक तथा पूर्व में भिलसा से पश्चिम में माही नदी तक।
	वाक्पति द्वितीय (मुंज)	973–996 ई०	साम्राज्य-विस्तार पूर्व में कलचुरि राज्य, पश्चिम में गुजरात, उत्तर में मेवाड़ तथा दक्षिण में मारवाड़ व लाट तक।
	भोज	1010–1055 ई०	साम्राज्य-विस्तार तथा प्रभाव क्षेत्र पूर्व में कलिंग व चेदि, उत्तर में ग्वालियर, उत्तरप्रदेश व विहार का कुछ प्रदेश, पश्चिम में लाट, समुद्र-तट व कौंकण व मेवाड़ व मारवाड़ का काफी भाग था।
	यशोवर्मन	1134–1142 ई०	चालुक्य नरेश सिद्धराज का मालवा पर अधिकार।
	बल्लाल	1172 ई०	चालुक्य नरेश कुमारपाल द्वारा मालवा पर पुन: अधिकार—मालवा-नरेश चालुक्यों के सामन्त बने।
	सुभटवर्मन	1194–1209 ई०	कुतुबुद्दीन द्वारा गुजरात की पराजय—परमार राज्य का पतन।

परिशिष्ट–2

स्मरणीय प्रमुख घटनाएं तथा उनका तिथि-क्रम

1. गुर्जर प्रतिहार वंश

घटना	तिथि
वंश की राज्य स्थापना	733 ई.
प्रतिहार-राष्ट्रकूट-पाल त्रिशक्ति संघर्ष आरम्भ	756 ई.
वत्सराज की गौढ़ विजय	786 ई.
वत्सराज की राष्ट्रकूटों से पराजय	793 ई.
नागभट्ट द्वितीय द्वारा कन्नौज विजय	833 ई.
मिहिर भोज की कालिंजर विजय	836 ई.
मिहिर भोज की राष्ट्रकूटों से पराजय	867 ई.
महमूद गजनवी की कन्नौज विजय	1018 ई.
महमूद गजनवी का कन्नौज पर द्वितीय आक्रमण	1019 ई.

2. पाल-वंश

घटना	तिथि
गोपाल द्वारा राज्य स्थापना	750 ई.
धर्मपाल की गुर्जर-प्रतिहारों से पराजय	770 ई. तथा 803 ई.
धर्मपाल की दिग्विजय	760–770 ई.
देवपाल की कामरूप, उत्कल, पंजाब तथा द्रविड़ विजय	770 ई.
नारायणपाल के समय कामरूप, उत्कल व उत्तरी बंगाल का विघटन	854–908 ई.
महीपाल प्रथम द्वारा बंगाल की पुनः विजय	988 ई.
राजेन्द्रचोल का आक्रमण	1023 ई.
उत्तरी बंगाल पर सेन-वंश का अधिकार	1161 ई.

3. चन्देल-वंश

घटना	तिथि
नन्नुक द्वारा राज्य-स्थापन	831 ई.
यशोवर्मन की कालिंजर विजय	950 ई.

4. चाहमान-वंश

घटना	तिथि
वासुदेव द्वारा राज्य-स्थापन	551 ई.

घटना	तिथि
प्रतिहारों से स्वाधीनता	954 ई.
धंग की कालिंजर, प्रयाग, काशी व कौशल विजय	998 ई.
धंग की सुबुक्तगीन तथा मुहम्मद गोरी पर विजय	997 ई. तथा 1002 ई.
विद्याधर द्वारा कन्नौज नरेश राज्यपाल की हत्या	1018 ई.
महमूद गजनवी का कन्नौज पर दूसरा आक्रमण तथा विद्याधर से संधि	1022 ई.
परमर्दिदेव की चाहमानों से पराजय	1165 ई.
परमर्दिदेव की कुतुबुद्दीन से पराजय	1202 ई.

घटना	तिथि
अजयराज द्वारा अजमेर नगर व अजयमेरु दुर्ग की स्थापना	1113 ई.
अर्णोराज द्वारा मालवा विजय तथा चालुक्य सिद्धराज से सन्धि	1143 ई.
अर्णोराज की कुमारपाल से पराजय	1147 ई.
विग्रहराज चतुर्थ द्वारा आर्यावर्त विजय	1157 ई.
पृथ्वीराज तृतीय द्वारा महोबा विजय व संयोगिता हरण	1182 ई. तथा 1191 ई.
मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान की पराजय (तराइन का दूसरा युद्ध)	1192 ई.

5. गाहड़वाल-वंश

घटना	तिथि
यशोविग्रह द्वारा राज्य-स्थापन	1050 ई.
चन्द्रदेव द्वारा स्वाधीन शासन	1089 ई.
युवराज गोविन्दचंद्र द्वारा तुर्कों पर विजय व कन्नौज पर पुनः अधिकार	1104 ई.
गोविन्दचन्द्र द्वारा सरयू पार, पूर्वी मालवा व दिल्ली पर विजय	1154 ई.
चाहमानों का दिल्ली पर अधिकार	1169 ई.

6. गुजरात का चालुक्य-वंश

घटना	तिथि
मूलराज द्वारा राज्य-स्थापन	941 ई.
मूलराज द्वारा लाट विजय	973 ई.
महमूद गजनवी का सोमनाथ आक्रमण	1025 ई.
भीम द्वितीय की सिन्ध व आबू विजय	1062 ई.
जयसिंह सिद्धराज द्वारा सौराष्ट्र, नाडोल, मालवा व सिन्ध विजय	1094–1142 ई.
कुमारपाल की अर्णोराज पर विजय	1150 ई.

घटना	तिथि	घटना	तिथि
जयचन्द्र की मुहम्मद गोरी से पराजय व राज्य का अन्त	1194 ई.	कुमारपाल की मालवा तथा कौंकण विजयें	1151 ई.
		भीम द्वितीय के समय गुजरात पर कुतुबुद्दीन का आक्रमण	1197 ई.

7. परमार-वंश

घटना	तिथि
उपेन्द्र द्वारा राज्य-स्थापन	808 ई.
हर्ष द्वारा भिलसा विजय	954 ई.
वाक्पति मुंज की कलचुरियों, मेवाड़ व लाट पर विजय	977–997 ई.
भोज द्वारा कर्णाट, लाट, कौंकण, त्रिपुरी व कन्नौज पर विजय	1010–1055 ई,
यशोवर्मन के समय मालवा पर चालुक्यों का अधिकार	1142 ई.
वल्लाल को पराजित कर कुमारपाल का मालवा पर पुन: अधिकार	1172 ई.

परिशिष्ट–3

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Asopa J. N.* : Origin of Rajputs.
2. *Dr. Smith Vincent* : Early History of India.
3. *Vaidya C. V.* : History of Medieval India.
4. *Dr. Dashrath Sharma* : Rajasthan through Ages Vol. I.
5. *Dr. Dashrath Sharma* : Early Chauhan Dynasties.
6. *Dr. Majumdar R. C.* : The History of Bengal.
7. *Roma Niyogi* : History of the Gahadwal Dynasty.
8. *Ganguli D. C.* : History of Parmar Dynasty.
9. *Bose N. S.* : History of Chandellas.
10. *Tod James* : Annals and Antiquities of Rajasthan.
11. *Dr. Tripathi R. S.* : History of Kanauj.
12. *Dr. Majumdar R. C.* : The Age of Imperial Kanauj.
13. *Dr. Majumdar R. C.* : The Struggle for Empire.
14. *Dr. Roy H. C.* : Dynastic History of Northern India.
15. *Vaidya C. V.* : Downfall of Hindu India.
16. *Dr. Majumdar A. K.* : Chalukyas of Gujrat.
17. *Bhatia Pratipal* : The Parmaras.
18. *Basak R. G.* : History of Northern India.
19. *Misra B. B.* : The Gurjar Pratihars and their times.
20. *Puri B. N.* : The History of the Gurjar Pratihars.

21. *Bhandarkar D. R.* : Gurjaras
22. *Munshi K. M.* : The Glory that was Gurjardesh.
23. लक्ष्मीकान्त मालवीय : उत्तरी भारत का इतिहास
24. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक : उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास
25. डॉ. सत्यप्रकाश : भारत का इतिहास–राजपूत काल
26. डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : राजपूताना का इतिहास
27. हेमचंद्र : द्वयाश्रयकाव्य
28. मेरुतुंग : प्रबन्ध चिन्तामणि
29. डॉ. मनराल एवं डॉ. मित्तल : राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास
30. डॉ. पाण्डेय वी. सी. : उत्तर भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
31. केशवचन्द्र मिश्र : चन्देल और उनका काल
32. चंदवरदाई : पृथ्वीराजरासो
33. *Dr. Smith V.* : Fine Art in India & Ceylone.
34. *Percy Brown* : Indian Architecture.
35. *Fergusson J.* : History of Indian and Eastern Architecture.
36. *Benjamin Rowland* : The Art & Architecture of India.
37. *Havell* : A Handbook of Indian Art.
38. *Stilla Kramrisch* : Indian Sculpture.
39. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास–प्रथम भाग
40. *Reu B. N.* : Indian Culture Vol. III.
41. डॉ. ईश्वरीप्रसाद : मध्यकालीन भारत का इतिहास
42. टॉड : राजस्थान भाग–1
43. गौ. ही. ओझा : सोलंकियों का प्राचीन इतिहास
44. पं. रामकरन आसोपा : मारवाड़ का मूल इतिहास
45. जगदीशसिंह गहलौत : मारवाड़ का इतिहास
46. कल्हण : राजतरंगिणी
47. Antiquities of India.
48. *Illiot aud Dowson* : History of India as told by its Historians.

49. फरिश्ता : तारीख-ए-फरिश्ता
50. लक्ष्मीधर : कृत्यकल्पतरु
51. *Singh R. B.* : History of the Chahmans.
52. जयानक : पृथ्वीराजविजय
53. जयसिंह सूरि : कुमारपालदेव चरित
54. Epigraphica Indica
55. Archeological Survey of India.
56. डॉ. भार्गव वी. एस. : राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण
57. "तबकात-ए-नासिरी" (Raverty)
58. हसन निजामी : ताजुल-इ-मासिर